ओ३म्

न भूतो न भविष्यति

पूर्णपुरुष
का
विचित्र जीवन चरित्र
(एक जीवन में १०१ जीवन)

लेखक
कुन्दनलाल आर्य चूनियावाला

श्री ताराम आर्य

दिर खत्रयाना

आसी

२८-५-६५

आर्य उत्तर प्रदेश निर्वाचन

मेरठ

॥ ओ३म् ॥

संसार भर में सब से पहला और अनोखा ग्रंथ

न भूतो न भविष्यति

पूर्णपुरुष का विचित्र जीवन चरित्र

(एक जीवन में १०१ जीवन)

लेखक

कुन्दन लाल आर्य चूनियां वाला

बस्ती गुजां मकान नं० W. M. ६५ जालन्धर

(पंजाब)

दयानन्द १४०—२०२१ वि

वैदिक सम्वत् १९७२९४९०६४

सन् १९६५

प्रथमबार २०००

मूल्य सुनहरी जिल्द ८ रु०

प्रकाशक
कुन्दन लाल आर्य चूनियाँ वाला
बस्तीगुजां, मकान नं० W. M. 65
जालन्धर

ग्रन्थ प्राप्ति का पता—(१) लेखक से
(२) श्री धर्म वीर आर्य्य B. A.
१६८—Raja Garden,
P. O. Romesh Nagar,
New Dehli—३५

पुस्तक प्रकाशन के सहायकों की सूची

१.	श्री राधा कृष्ण जी सामाना ज़िला पटियाला	१०००/-
२.	,, लाल चन्द जी चड्डा गोबिन्द पुरी मेरठ	५००/-
३.	,, ओंकार नाथ जी Kumar Metal Industries 50 Nisbel Road Mazgaon Bombay—१०	३००/-
४.	,, हंस राज ट्रस्ट बरेटा मण्डी	१००/-
५.	,, परमेश्वरी दास जीं बेहल शाम चोरासी	१००/-
६.	सुन्दर दास जी मलहौत्रा वकील चूनियां वाले	१००/-

मुद्रक
लाला बाल मुकन्द अरोड़ा
प्रो० ओ. टी. प्रिंटिग प्रेस
पुरानी कचैहरी टांडा रोड,
जालन्धर शहर

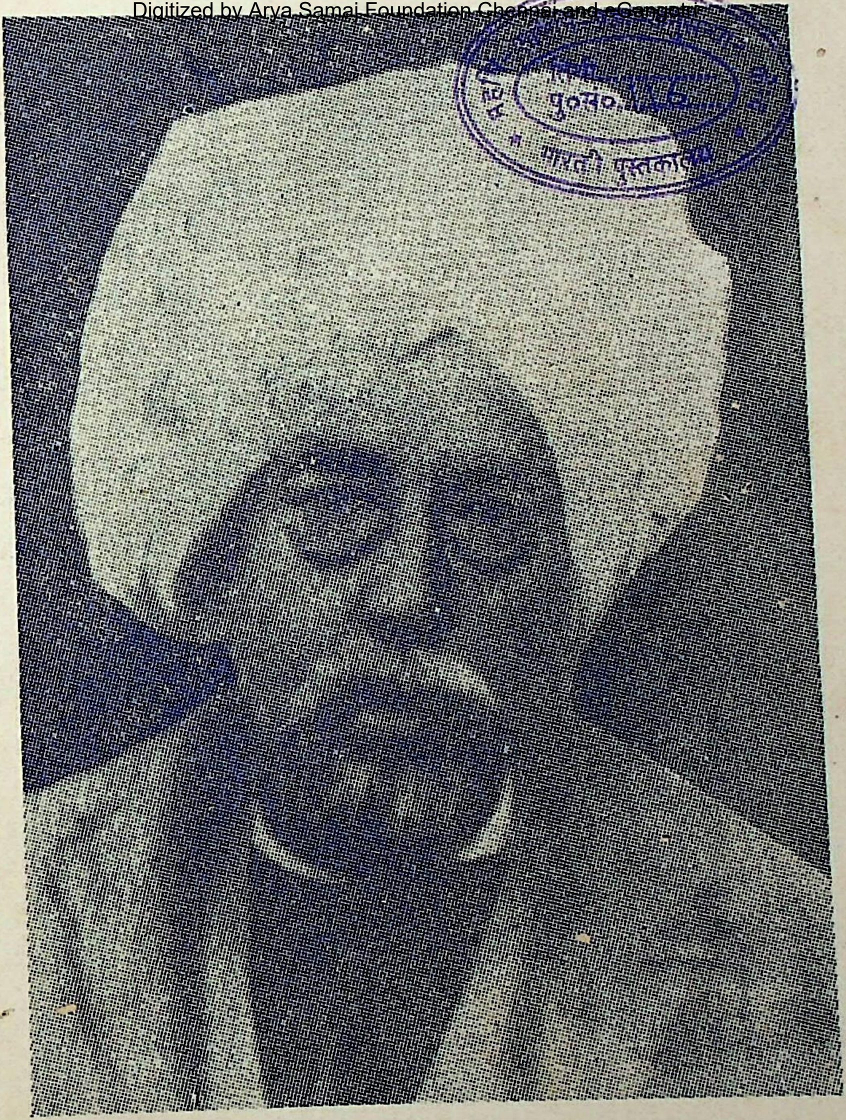
ॐ

प्राक्कथन

गिने जाएं मुमकिन है सैहरा के ज़र्रे,
समुद्र के कतरे फ़लक के सितारे
मगर कैसे मुमकिन है कि गिन सकें हम
जो अहिंसा ऋषि ने किये हैं वह सारे,,

सन् १९०७ में शेरे पंजाब लाला लाजपतराय जी वा शहीद भगत सिंह जी के चचा सरदार अजीत सिंह जी दोनों आर्य समाजो नेताओं को अंग्रेज़ी सरकार ने गिरफ़्तार कर लिया। और बग़ैर मुक़द्दमा चलाए बर्मा के माण्डले जेल में ले जाकर नज़र बन्द कर दिया। उन दिनों आर्य समाज पर अंग्रेज़ी सरकार को विशेष कृपा रही, आर्य समाजो होना जुर्म बन गया था। आर्य समाज के उपदेशिक बिना वजह बताए गिरफ़्तार कर लिए जाते थे। आर्य समाज के स्कूलों कालिजों विशेष कर दयानन्द कालिज लाहौर पर सरकार की कड़ी नज़र थी, इन्हीं दिनों दैव योग से हमारे शहर चूनियां ज़िला लाहौर में श्री देवदत्त जी उपदेशिक आर्य समाज के आए और बाज़ार में इनके लैक्चर करवाने का प्रबन्ध कुछ नवयुवकों ने किया। अभी दो लैक्चर ही हुए थे कि तीसरे दिन लैक्चर के समय थानेदार ने आकर इनको गिरफ़्तार कर लिया। मैं इस समय सातवीं श्रेणी में पढ़ता था मैं और मेरे कुछ सहपाठी लैक्चर के वक्त जरूर पहुंचते रहे। गिरफ़्तारी के समय भी हम सब जलूस बनाकर पंडित जी को थाने तक ले गये थे। आर्य समाज के उन लैक्चरों और पंडित जी की निर्भयता से हमारे कोमल हृदयों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। फिर १९१२ में मुलाज़मत के सिलसले में लाहौर आया तो बाकायदा आर्य समाज का मैम्बर बन गया। सन् १९१७ पहले

बड़े यद्ध में और मेरे कुछ दफ़तर के साथी डेपूटेशन पर F.C.M.A. के दफ़तर पूना में चले गये। वहां हम चार सज्जन एक ही मकान में रहने लगे, क्योंकि हम चारों आर्य समाजी विचारों के थे, और उस वक्त पूना शहर में कोई आर्य समाज न था। हमने अपने ही मकान में जो पूना शहर सोमवार पेठ में था, आर्य समाज स्थापित कर दिया। इन्हीं दिनों गढ़वाल में अकाल पढ़ गया। और आर्य गज़ट में महात्मा हंसराज जी की अपील छपी, तब हमने सलाह मशवरा किया की पूना शहर से भी कुछ धन इकट्ठा करके, भेजना चाहिए। इन दिनों पूना शहर में महर्षि जी के शिष्य महादेव गोविन्द रानाडे की स्मृति में बसन्त व्यत्खयान माला शुरू थी। हमगे एक अपील अंग्रेजी में टाईप की परन्तु इतने बड़े जलसे में पढ़ने का किसे साहस था। आखिर सब भाईयों ने मुझे इस जलसे में वह अपील पढ़ने के खिए मजबूर किया। और इस जलसे के प्रधात जी से वक्त लेकर मैंने अपील उस भरे जलसे में पढ़ी। यह मेरा सब से पहला साहस था, कि इतने बड़े जलसे में जिसमें उच्च कोटि के विद्वान और सरकारी कर्मचारी थे, लिखी हुई अपील पड़ी। इसका परिणाम यह हुआ कि हमने पूना शहर में करोबन सात सौ (७००) रुपया अकाल पीड़ित भाईयों के लिए इकट्ठा कर लिया। १९१८ में माता जी के बीमार हो जाने के कारण मुझ को पूना से वापस आना पड़ा और माता जी के देहान्त के बाद पिता जी इन्फलूएंजा से बीमार हो गये तब मैंने सरकारी नोकरी से इस्तीफ़ा दे दिया। इन्हीं दिनों हमारे शहर में आर्य समाज स्थापित हो गया। और मुझे मन्त्री बनाया गया, तब युवावस्था थी काम करने का जोश था. आर्य युवक समाज भी स्थापित कर लिया और गर्वनमैंट हाई स्कूस के करोबन ४०—५० विद्यार्थी युवक समाज में शामिल हो गये, उत्तरोत्तर प्रचार बढ़ता गया, नौजवान आर्य समाज के



मास्टर कर्म चन्द जी

1869—1929

लेखक अपने पूज्य पिता मास्टर कर्मचन्द जी की पुन्य स्मृति में यह ग्रंथ सर्मापित करता है।

लेखक : कुन्दन लाल आर्य

ाईयों ने सहायता की है और उत्साह दिलाया है, उनका धन्यवाद
करना भी अकृतज्ञता है। इस लिए मैं श्री राधा कृष्ण जी आर्य,
ामान वालों का हार्दिक धन्यवाद करता हूं जिन्होंने न सिर्फ एक
ज़ार रुपये की सहायता सब से पहले देने को कहा, बल्कि हर पत्र
मुझ को उत्साह दिलाते रहे। और यह पुस्तक ज़्यादा तर उन्हीं के
त्साह के परिणाम स्वरूप ही छप सकी है। श्री ओंकार नाथ
ी बम्बई वाले। और श्री लाल चन्द जी चड्डा गोबिन्द पुरी ज़िला
रठ वालों ने पांच पांच सौ रुपया की सहायता प्रदान की है, उनका
ी धन्यवाद हैं, और भी जिन जिन भाईयों ने पेशगी आर्डर देकर
त्साह बढ़ाया है उन सब भाईयों का धन्यवाद है। इस पुस्तक में
छ कमियां भी हैं। जो मेरी अपनी हैं, उनके लिए क्षमा का दान
ांगता हुआ मैं हर पढ़ने वाले भाई और बहिन से यह आशा करता
ं कि वह इस पुस्तक के सम्बन्ध में अपनी सम्मति मुझ को अवश्य
ाखें। ताकि अगले अडीशन में इस पुस्तक को और भी विचित्र
ताया जा सके, अगर कुछ भी पाठक इस पुस्तक से प्रभावित हो
केंगे तो मैं अपनें आठ वर्षों के निरन्तर प्रयत्न को जो मैंने इस
्तक की तैयारी में किया है सफल समझूंगा। इतने ही शब्दों
साथ मैं यह पुस्तक जनता जनार्दन को भेंट करता हूं।

आपका शुभ चिन्तक

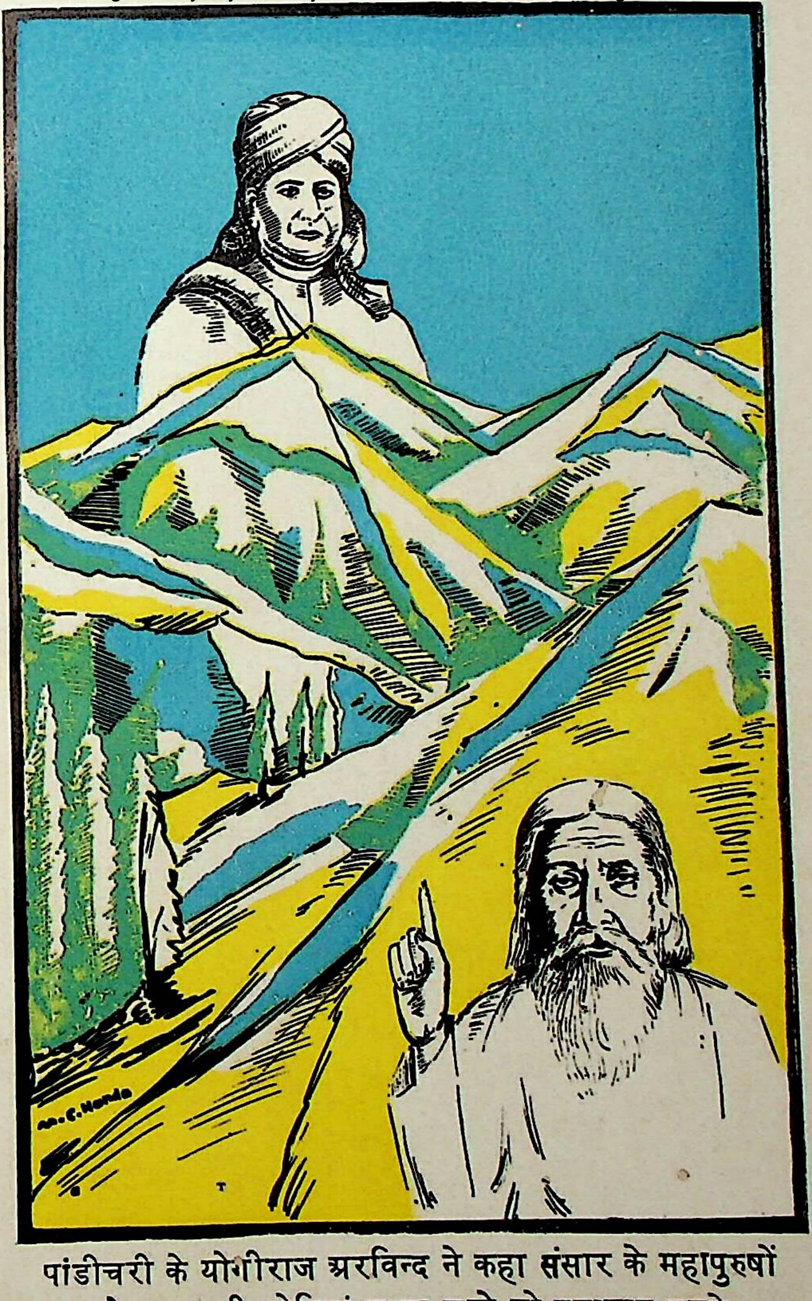
कुन्दन लाल आर्य

२५ जनवरी १९६५

विषय-सूचि

(१२) प्रचार काण्ड

(१३) संगठन काण्ड



पांडीचरी के योगीराज अरविन्द ने कहा संसार के महापुरुषों को पहाड़ की चोटियां माना जाये तो दयानन्द सबसे ऊँची चोटी है।

ॐ ओ३म् ॐ

विश्वानिदेवं सवितदुंरितानि परासुव यद्भद्रं तन्न आसुव

१. परिचय काण्ड

पूर्ण पुरुष का संक्षिप्त परिचय

संवत् १८८१ विक्रमीय की फागन वदि १० मुताबिक १२-२-१८२५ मूल नक्षत्र में मोरवी राज्य के 'टकारा' ग्राम में एक औदीच्य ब्राह्मण के घर, जो धनाढ्य, जमीदार और राजकर्मचारी था, एक बालक उत्पन्न हुआ। माता पिता ने उसका नाम मूलशंकर रक्खा। पिता का सारा परिवार शैव था। पांच वर्ष की आयु में ही बालक को देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करा के कुलधर्म की विधि अनुसार श्लोक, मन्त्र स्तोत्रादि कण्ठ कराने आरम्भ कर दिये गये। आठ वर्ष की आयु में यज्ञोपवीत संस्कार के साथ ही गायत्री मंत्र और साथ २ सध्यावन्दन की शिक्षा और रुद्राध्याय कंठ कराके यजुर्वेद सहिता का अभ्यास कराया गया। पिता ने शिवभक्ति में प्रेम उत्पन्न कराने के लिये पार्थिव-पूजा का उपदेश भी दिया। दश वर्ष की आयु में मूलशंकर ने पार्थिव-पूजा का साधारण व्रत लिया।

संवत् १८९४, चौदह वर्ष की आयु में पिता ने शिवरात्रि-व्रत के लिये पुत्र को तैयार कर लिया। दिन भर शिवपुराण आदिक से बड़ी रोचक कथाएं सुनाईं, जिन पर बालक इतना मोहित हुआ कि माता के मना करने पर भी उसने २४ घंटे उपवास करना मान लिया। रात को शिवमन्दिर में सब उपासक एकत्र हुए, शिवपूजन के पश्चात् धीरे २ सब सो गये, सामवेदी पिता भी ऊंघने लगे, परन्तु १४ वर्ष का बालक, श्रद्धा से प्रेरित, आंखों पर छींटे डाल २ कर जागता रहा

आधी रात के पीछे कैसा चमत्कार हुआ ? उस नायक के शब्दों में ही वर्णन करना ठीक है—

"मन्दिर के बिल में से एक चूहा निकल कर शिव की पिण्डी के चारों ओर घूमने लगा, फिर कूद कर ऊपर चढ़ गया और अक्षत नैवेद्यादि पर हाथ साफ करने लगा, उस समय चित्त में विविध प्रकार के विचार उत्पन्न हुए। प्रश्न यह था कि जिसकी हमने कथा सुनी थी वही यह महादेव है या अन्य कोई ?........... महादेव की कथा में जो सुना था, क्या सम्भव है कि वह परब्रह्म हो जिसके सिर पर चहे दौड़ते फिरते हैं...........जो शिव अपने पाशुपतास्त्र से बड़े २ दैत्यों का संहार करता है क्या उसे एक तुच्छ चूहे के भगाने की भी शक्ति नहीं है ?,

१४ वर्ष का बालक उसी समय पिता को जगाता है और व्याकुलतापूर्वक उनके सामने अपने प्रश्न रखता है। पिता पुत्र की तर्कबुद्धि की अप्रतिष्ठा करके उसको अन्धविश्वास में फँसाना चाहते हैं, परन्तु पुत्र को सन्तोष नहीं होता। तब दृढ़ सङ्कल्प करता है कि जबतक उस कल्याणकारी शिव के प्रत्यक्ष दर्शन न कर लूंगा तबतक ऐसी बाह्यपूजा के समीप नहीं फटकूंगा और जबतक उस बालक ने परम पिता के प्रत्यक्ष दर्शन न कर लिए तबतक किसी अन्य के आगे शिर नहीं झुकाया ❁। इसी दिन इस विचित्र बालक का आत्मिक जन्म हुआ। इसलिये उसकी जन्मतिथि न जानते हुए भी यही दिवस उसकी वर्षगांठ मनाने के लिए उचित समझा गया है।

विद्योपार्जन में मूलशंकर लग्न से तत्पर हो गया। १६ वर्ष की

❁ प्रसिद्ध मुसलमान नेता सर सय्यद अहमद ने संवत् १९३७ में लिखा था:—"अगर इलहाम नहीं था तों क्या था जिसने स्वामी दयानन्द सरस्वती के दिल को मूर्तिपूजन से फेरा ? वेदों के उन मुकामात को देखो जहां ज्योति स्वरूप निराकार की वहदानियत और उसकी सिफात को बयान किया है।"

अवस्था में मूलशंकर से २ वर्ष छोटी बहिन का देहान्त हो गया। हैज़ा हुआ और कितना ही यत्न करने पर भी देखते देखते, चार घन्टों के अन्दर, प्राणान्त हो गया। बालक चकित हो गया, भगिनी भाई की ओर देखती नहीं है, मानो निष्ठुर होकर भ्रातृप्रेम को बिलकुल भुला दिया है। विस्मित बालक चित्र-लिखित की नाईं खड़ा रह गया, सारा घर रो रहा है और उसके आंसू नहीं निकलते। देखनेवाले उसे पाषाण-हृदय कहते हैं परन्तु वह मन ही मन में सोच रहा है -

"एक दिन मुझे भी मृत्यु का सामना करना पड़ेगा, उस समय मृत्यु के दुःख से मुक्ति के लिए औषध कहां ढूंढता फिरूंगा और मुक्ति प्राप्तकरने के लिए किस पर भरोसा करूंगा ? तब जिस प्रकार भी हो सके मुक्ति को हस्तगत करना ही चाहिये" उसी समय वैराग्य उत्पन्न हो गया और आत्मविचार होने लगा।

इस घटना से ३ वर्ष पीछे मूलशंकर के गुरु, उसके विद्वान चचा को भी उसी रोग ने आ घेरा। मृत्युशय्या पर पड़े चचा ने भतीजे को प्रेमपूर्वक पास बैठा कर प्रेम भरी आंखों से देखा और वैद्य के हाथ में नाड़ी देकर परलोक का रास्ता पकड़ा। इस बार आंसुओं की तार बंध गई। संसार की असारता का चित्र खिंच गया और अमर होने के साधन इष्ट मित्रों से पूछने लगा।

माता पिता ने वैराग्यवान पुत्र को फंसाने के लिये विवाह की तय्यारी करदी। सिद्धार्थ ने तो गृहस्थ में फंसने के पीछे संसार की असारता के दृश्य देख कर सोई हुई धर्मपत्नी को पुत्रसहित छोड़ दिया था, परन्तु मूलशंकर ने फँसावट से पहिले ही घर बार छोड़ने की ठान ली।

२२ वें वर्ष के आरम्भ में बिना किसी को सूचना दिये एक दिन सायंकाल मूलशंकर घर से निकल खड़ा हुआ और मतों और सम्प्रदायों के फन्दों से बचता हुआ कार्तिक के मेले में सिद्धपुर जा

पहुँचा। पुत्र का समाचार पाकर मूलशंकर के पिता मेले में जा पहुँचे और उसको शारीरिक दण्ड देकर अपने साथ लौटाया। पिता उधर मूलशंकर को लौटा ले जाने में दृढ़ थे और पुत्र बन्धनों से छुटकारा पाने के लिए दृढ़ संकल्प किये बैठा था। तीसरी रात भाग कर जो पिता से विदा हुआ तो फिर घरवालों के कभी दर्शन नहीं किये।

ब्रह्मचारी मूलशंकर ने सुन रक्खा था कि बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं होती और बिना स्वाध्याय तथा योगसाधन के सम्यक् ज्ञान प्राप्त नहीं होता, इसलिए दिन रात शास्त्रों के अध्ययन में लगा रहा। ब्रह्मचारी होते हुए भोजन का बड़ा बखेड़ा था इसलिए नर्मदा तट पर स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती से चौथे प्रकार का संन्यास ग्रहण कर लिया और गुरु ने 'दयानन्द सरस्वती' नाम रख दिया। उस समय दयानन्द की आयु २४ वर्ष की थी।

संन्यास लेकर दयानन्द ने सच्चे योगियों से सत्संग करने के लिए राजपूताना, मालवा, राजस्थान के पहाड़ों और जंगलों में, जहां कहीं किसी योगी का पता सुना वहाँ पहुँच कर, सत्संग किया। इस प्रकार संवत् १९०६ से १९११ के अन्त तक भ्रमण करते हुए संवत् १९१२ के आरम्भ में 'कुम्भ' मेले के अवसर पर हरिद्वार पहुँच साधु संन्यासियों से सत्संग किया फिर जब तक मेला रहा चण्डी पहाड़ के जंगल में योगाभ्यास करता रहा। कुम्भ के मेले के पीछे ऋषिकेश, टिहरी, गढ़वाल, श्रीनगर आदि घूमते हुए केदारघाट रुद्रप्रयाग, गुप्त काशी, गौरीकुण्ड, त्रिजुगी नारायण और तुंगनाथ की चोटी पर चढ़ कर, रमणीय और भयानक प्राकृतिक दृश्यों को देखते हुए, कुछ दिन ऊखीमठ में विश्राम किया। केदारनाथ की ऊंची चोटी पर चढ़ कर फिर दूसरी ओर जोशी मठ से होते हुए बदरीनाथ की ऊंची पहाड़ी की खबर ली। जोशीमठ के रावलजी विद्वान् आदमी थे, उनसे पता लगाकर कई महात्माओं के सत्संग के

लिए भ्रमण करता रहा । कभी अलखनन्दा का स्रोत ढूंढने चला गया, कभी पाण्डवों के स्वर्गारोहण के मार्ग पर जा खड़ा हुआ, पैर बरफ के ऊपर चलने से कट गए और उनसे रक्त बहने लगा, कहीं से भी अमृतरूपी औषध न पाकर द्रोणासागर में शरद्ऋतु व्यतीत की। चारों ओर से थककर निराश हो एक क्षण के लिए यह संकल्प उठा कि हिमालय पर पहुँच कर देह त्याग देना चाहिए। फिर उसी समय अन्तरात्मा से शब्द उठा कि पहिले ज्ञान की प्राप्ति आवश्यक है।

संवत् १९१३ के आरम्भ में मिरज़ापुर होते हुए कुछ दिन काशी निवास किया और चैत्र सवत् १९१४ वि० के आरम्भ से मध्य प्रदेश के जंगलों में नर्मदा का स्रोत ढूंढने के लिए चल दिये। जैसे अलख-नन्दा का स्रोत ढूंढने में असली लक्ष्य योगी महात्माओं का सत्संग था उसी प्रकार नर्मदा के स्रोत की तलाश भी उसी उद्देश्य से थी। इसी प्रकार ३ वर्ष जंगलों की खाक छानते और पहाड़ों वृक्षों और झाड़ियों में से बदन छिलवाते हुए संवत् १९१७ में मथुरा पहुँच कर दयानन्द ने गुरु विरजानन्द के सामने सिर झुका दिया और सब आधुनिक ग्रन्थों को यमुना में बहा कर ऋषिप्रणीत ग्रन्थों का अध्ययन आरम्भ किया चेले का गुण कर्म गुरु से मिल गया, प्रज्ञा-चक्षु दण्डी स्वामी जिस शिष्य की प्रतीक्षा में वर्षों से बैठे थे वह सेवा में उपस्थित हो गया, गुरु के आशय को समझ कर, कपट छल को छोड़ सरलता से गुरु-आज्ञा का पालन होने लगा। पहर के तड़के यमुना से जल के कलश लाकर गुरु को स्नान कराना, अखंडित ब्रह्मचर्यव्रत का धारण करना, और गुरु के दण्ड को औषधवत स्वीकार करना यह सब गुण थे, जिन्होंने गुरु विरजानन्द के अन्दर शिष्य के लिये प्रेम का प्रवाह चला दिया। भक्त कबीर ने सच कहा है :—

> शिष तो ऐसा चाहिये गुरु को सब कुछ देय।
> गुरु तो ऐसा चाहिये शिष से कुछ ना लेय॥

स्वाध्याय का समय समाप्त हुआ, शिष्य ने विदा के लिए आज्ञा मांगी और गुरु के आगे भेंट में लौंग रख दिये। गुरु बोले—'भोले शिष्य! क्या इस भेंट के लिए मैंने परिश्रम किया था?'' उत्तर मिला—'भगवन्! यह तन और मन आपके हवाले है। आज्ञा कीजिए, जो कुछ शक्ति में है उसके पालन के लिए यह शिर आगे है।' गुरु विरजानन्द ने अन्तिम आदेश दिया—'देश का उपकार करो, सत्य शास्त्रों का उद्धार करो, मतमतान्तरों की अविद्या को मिटाओ और वैदिक धर्म को जगत् में फैलाओ दयानन्द ने अपना शिर दण्डी स्वामी के चरणों पर रख दिया। गुरु ने हार्दिक आशीर्वाद दिया और चलते हुए एक अमूल्य बात यह कह दी— मनुष्यकृत ग्रन्थों में परमात्मा और ऋषियों को निन्दा है, ऋषिकृत ग्रन्थों में नहीं, इस कसौटी को हाथ से न छोड़ना'।

वैशाख संवत् १९२० को मथुरा से चलकर आगरा पहुँचते ही धर्मोपदेश का आरम्भ हो गया। सन्ध्योपासना और योगाभ्यास की विधि सिखाते हुए ब्रह्मचर्य व्रत को सदाचार का मुख्य अंग बतलाते रहे। इस प्रकार के दौरे में मूलवेद के ग्रन्थों की ढूंढ भी होती रही।

धौलपुर, लश्कर, ग्वालियर, करौली, जयपुर से होते हुए संवत् १९२१ के चैत्रमास में पुष्कर के मेले पर भागवत और मूर्ति-पूजा खण्डन की धूम मचाई। पुष्कर से अजमेर आकर बहुत दिनों निवास किया। यहां ईसाई पादरियों और मुसलमान मोलवियों से प्रेम पूर्वक विचार होता रहा। गोरक्षा के सम्बन्ध में इसी स्थान से लेख निकलने आरम्भ हुए और अंग्रेज़ राजकर्मचारियों को गोवध बन्द करने के लिए प्रेरणा की गई।

संवत् १९२४ के हरिद्वार कुम्भ से एक महीना पहिले ही सप्तस्रोत पर डेरा जा लगाया और 'पाखण्डखण्डिनी' नाम की झण्डी खड़ी कर दी। इस समय कई संन्यासी ब्रह्मचारी साथ थे और

पुस्तक वस्त्र आदि का भी बड़ा सामान था। वेद के लिखित पुस्तक उनको प्राप्त हो चुके थे। मूर्तिपूजादिक कुरीतियों का ज़ोर से खण्डन प्रारम्भ हो गया। सारे मेले में धूम मच गई और समस्त पन्थाई उनके दर्शनों को आने लगे। यति दयानन्द ने मठ धारी संन्यासियों को निमन्त्रण दिया कि उनके साथ मिलकर सत्य का प्रचार करें परन्तु उधर से उत्तर मिला कि कहीं उलटी गंगा भी बही है। वर्त्तमान अविद्या को नाश करते हुए देख कोई गृहस्थ लोटा भाङ्ग को भी न पूछेगा। सत्य पर आरूढ़ दयानन्द का हृदय हिल गया। पन्थाइयों के चारों ओर अविद्या के बादल घिरे देखकर उन को छिन्न भिन्न करने के लिये कमर कसली। अन्तिम व्याख्यान देते देते कण्ठ से आर्तनाद निकल पड़ा। और 'सर्वं वै पूर्ण स्वाहा' कहकर पुस्तक, बर्तन, पीताम्बरी धोतियाँ, रेशमी कपड़े, दुशाले, नकदी इत्यादि सब कुछ बांटकर केवल एक मात्र कौपीन धारण कर सत्य के प्रचारार्थ चलने को तैयार हो गये। सारा मेला चकित रह गया। एक परम मित्र विद्वान् के पूछने पर उत्तर दिया—"मैं सत्य को स्पष्ट कहना चाहता हूँ और आवश्यकताएँ उसमें बाधक हैं, उनके त्यागे बिना बेखटके नहीं हो सकता और न अपने उद्देश्य को पूरा कर सकता हूँ।"

हरिद्वार से सीधे ऋषिकेश पहुँचे। फिर लौट कर गङ्गा के किनारे जो यात्रा आरम्भ की तो उसी अवस्था में ७ वर्ष तक भ्रमण करते रहे। कई बार कई दिनो तक निराहार रहकर प्रचार किया। जाड़ों में भी सिवाय कौपीन और भस्म रमाने के कोई वस्त्र धारण न किया। गङ्गा-रज पर पत्थर का सिराहना रख रातें काटीं। पर्णकुटी में जाड़ा मिटाने के लिए सोये, ब्रह्मचारी वीर को भक्त रजाई उढ़ा जाते परन्तु प्रातःकाल उसे अलग फैंकी हुई पाते। यज्ञोपवीत के अधिकारियों को यज्ञोपवीत दिलाते, जनता को सन्ध्या-वन्दन की विधि सिखाते और अविद्याग्रस्त हिन्दुओं को पौराणिक

जाल से मुक्त करते कराते हुए अनूपशहर, बेलोन, रामघाट, अत-रौली, छलेसर सोरों कासगञ्ज, फर्रुखाबाद, कन्नोज व कानपुर होते हुए काशी पहुँचे जहाँ महाराजा काशीनरेश की संरक्षा में ३२ प्रसिद्ध विद्वानों के साथ अपूर्व शास्त्रार्थ हुआ। इस शास्त्रार्थ की वह धूम मची कि अंग्रेजी समाचारपत्र "पायोनियर" ने दयानन्द को 'हिन्दुस्तानी लूथर' की उपाधि दी और काशी के पण्डितों ने माना कि "गृस्थ ब्राह्मणों में विद्याध्ययन का न्यून अवकाश है। इन लोगों में जो कोई विद्याध्ययन करते हैं बहुधा एक ही शस्त्र पढ़ते हैं... और कोई पुण्यशाली पुरुष हैं जो वेदशास्त्र सब जानते हों परन्तु सन्यासियों में ऐसे विद्वान हैं जो वेदों के उपनिषद् भाग भली प्रकार जानते है...और दयानन्द स्वामी प्रतिवादी के वचन में शीघ्र कह देते हैं कि यह वेद में नहीं है अथवा वेदविरुद्ध है इससे प्रमाण नहीं, इससे जाना जाता है कि दयानन्द स्वामी को वेद, मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्र बहुत उपस्थित है" (धर्मनिर्णय पृ० २१)

दयानन्द ऋषि थे, क्योंकि तत्वदर्शी थे। "ऋषि दर्शनात्" निरुक्त में है। काशी में ऋषि दयानन्द ६ बार गये और वहीं से वैदिक पाठशालाओं का सिलसिला आरम्भ किया। वेदभाष्य की छपाई भी 'लाजरस' के यन्त्रालय में यहीं शुरू हुई। काशी से निवृत्त हो मुंगेर व भागलपुर होते हुए राजधानी कलकत्ते में पहुंचे, जहाँ ब्रह्मसमाज के सञ्चालकों से विशेष भेंट हुई। इस समय तक ऋषि दयानन्द ने संस्कृत भाषण का ही अभ्यास रक्खा था। एक व्याख्यान का अनुवाद पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न ने अशुद्ध किया। उस दिन से दयानन्द ने निश्चय कर लिया कि हिन्दी भाषा द्वारा ही उपदेश दिया करेंगे। कलकत्तें से हुगली में प० तारानाथ तर्क-वाचस्पति के साथ शास्त्रार्थ करते हुए भागलपुर, पटना, छपरा, आरा और डुमरांव के मार्ग से फिर कानपुर पहुँचे। वहाँ मूर्तियों को गङ्गा में प्रवाह करने के भाव को फैलाकर फर्रुखाबाद, छलेसर, अलीगढ़,

हाथरस होते हुए मथुरा बृन्दावन में अपने गुरु दण्डी स्वामी विरजानन्द के सिद्धान्तों को धूम मचा दी। फिर प्रयाग में पहुँचकर पहिला सत्यार्थप्रकाश लिखाया और जब्बलपुर से नासिक होते हुए संवत् १९३१ के कार्तिक मास में बम्बई पहुंचे।

गुजरात काठियावाड़ की यात्रा से लौटकर चैत्र शुक्ला ५ सम्वत् १९ २ शनिवार के दिन बम्बई में 'आर्यसमाज' को स्थापन किया। वहां से पूना जाकर जबर्दस्त १५ व्याख्यान दिये और कुछ प्रसिद्ध शास्त्रार्थ करने के पीछे ज्येष्ठ संवत् १९३३ में फर्रुखाबाद, बनारस, जौनपुर, अयोध्या, लखनऊ, शाहजहांपुर, बरेली व कर्णवास घूमते हुए जनवरी सन् ८७७ ई० (माघ संवत् १९३४) के आरम्भ में लार्ड लिटन वाले देहली दरबार में पहुंच गए! वहां भारत के हिन्दू मुसलिम सब सुधारकों को एकत्र करके सङ्गठित रूप से कार्य करने का विचार किया, परन्तु उसका कुछ फल न निकला। वहां से मेरठ व सहारनपुर होते हुए पञ्जाब का दौरा किया और उन्हीं दिनों लाहौर आदि स्थानों में आर्य्यसमाज की बुनियाद डाली गई। आर्य्यसमाज लाहौर के स्थापना की तिथि ज्येष्ठ शुक्ला १३ सवत् १९३४ है। पञ्जाब में ऋषि दयानन्द की शिक्षा का लोगों ने शीघ्र ही ग्रहण किया जिससे आचार्य को बड़ा सन्तोष हुआ और उन्होंने समझा कि अब वैदिकधर्म के पुनरुद्धार को बुनियाद दृढ़ पड़ गई।

पञ्जाब की यात्रा से लौटकर सयुक्त प्रान्त के भिन्न २ नगरों में प्रचार करते हुए अजमेर पधारे जहां से फिर लौट कर विधर्मियों से शास्त्रार्थ करते हुए संयुक्तप्रान्त और बिहार के बहुत से शहरों में प्रचार किया। संवत् १९३६ वि० के कुम्भ के मेले पर हरिद्वार में अन्तिम उपदेश हुआ जिसका प्रभाव सारे भारत पर पड़ा। फिर देशी रियासतों में प्रचार करते हुए उदयपुर में महाराणा सज्जनसिंह के जीवन में परिवर्तन कर उसी स्थान में अपना इच्छापत्र (Will)

रजिस्ट्री कराया जिसके द्वारा "परोपकारिणी सभा" की बुनियाद पड़ी।

उदयपुर में हिन्दूपति महाराणा सज्जनसिंहजी को शास्त्रीय शिक्षा देकर रियासत शाहपुरा में वहां के श्रद्धालु नरेश श्री नाहरसिंह जी को मनुस्मृति का अध्ययन कराया।

३१ मई सन् १८८३ ईस्वी (ज्येष्ठ १९४० वि०) को महाराजा जोधपुर के निमन्त्रण पर ऋषि दयानन्द वहां पधारे। महाराजा प्रतापसिंह को शारीरिक व्यायाम और सदाचार की शिक्षा दी। विधर्मी मतों के प्रचारकों ने राजवेश्या के साथ समवेदना का भाव प्रकट करते हुए पाचक जगन्नाथ ब्राह्मण द्वारा विष दिला दिया। ऋषि दयानन्द को जब रुग्ण होने पर इसका ज्ञान हुआ तो उन्होंने अपने उदार भाव का कई प्रकार से परिचय दिया। घातक जगन्नाथ को कुछ रुपये देकर फाँसी से बचाने के लिये भगा दिया और निरन्तर एक मास तक तीक्ष्ण पीडा के समय भी शान्त रहकर सिद्ध कर दिया कि बाल ब्रह्मचारी में कितनी सहनशक्ति होती है। फिर कार्त्तिक संवत १९४० को अमावास्या के सायंकाल ६ बजे, जब कृष्ण-पक्ष का अन्त और शुक्ल पक्ष का उदय था, ईश्वर प्रार्थना के पश्चात हर्ष सहित गायत्री मन्त्र का पाठ करने लगे। फिर प्रफुल्लित वदन समाधि में रहकर आंखें खोलीं और प्रेम भरे शब्दों में कहा—

"हे दयामय! हे सर्वशक्तिमन् ईश्वर! तेरी यही इच्छा है, तेरी यही इच्छा है तेरी इच्छा पूर्ण हो!! अहा! तुमने अच्छी लीला की।" इतना कह कर करवट ली और श्वास को रोक कर एक बार ही प्राण त्याग दिये।

आदर्श पुरुष 'दयानन्द'

अन्य धार्मिक संशोधकों की तरह दयानन्द केवल एक ऐतिहासिक पुरुष ही नहीं हैं अपितु वह करोड़ों नरनारियों के सामने

प्रत्यक्ष कार्य करते रहे हैं परन्तु मैंने इसके अनेक रूप देखे हैं, और इसको अनेको रूपों में देखा हैं; जिससे मुझको इस ग्रन्थ के लिखने की प्रेरणा हूई है, और इस ग्रन्थ को आद अन्त पर्यन्त पढ़ने वाले सज्जन भी दयानन्द के अनेक रूपों का दर्शन कर पायेंगे, जिससे मैं अपने पचास साला प्रयत्न को सफल मानूंगा। यूरोपियनों ने उसे 'भारतीय लूथर' कहा, हिन्दुओं ने शङ्कराचार्य का अवतार लिखा, अमेरिका में बैठे योगी ऐन्ड्रयूजैक्सन डेविड ने परमात्मा का आज्ञा-पालक पुत्र बतलाया, जिसने जो कुछ समझा उसी रूप में दयानन्द को देखा। दयानन्द के अन्दर शरीरिक, मानसिक और आत्मिक सभी प्रकार की उत्तम शक्तियों का उत्तम रूप में समावेश था। दो गज से ऊंचा कद, तेजोमय उन्नत तथा प्रशस्त ललाट, दुहरा परन्तु गठा हुआ बदन, पक्का न बदलने वाला रंग, आँखों की ज्योति में असीम आकर्षण शक्ति, जिसके तेज के आगे ठहरना कठिन, वाणी में माधुर्य और वीररस का मेल, सारांश यह कि उस विशाल, प्रभावशाली मूर्ति को देखकर यह ज्ञात होता था कि परमेश्वर ने इसे मनुष्यों के हृदयो पर राज्य करने के लिये जन्म दिया है। आधुनिक हिन्दुओं ने योग के साथ शरीर की सूक्ष्मता का सम्बन्ध जोड़ रक्खा है। दयानन्द ने प्रत्यक्ष सिद्ध कर दिया कि बाल-ब्रह्मचारी योगी के अन्दर शारीरिक शक्ति की भी पराकाष्ठा होती हैं। बिहार में एक ब्रह्मचारी को साथ लिये जा रहे हैं, २० मन बोझ से लदे हुए छकड़े को ३ मजबूत बैल खींच रहे है, पहिये आधे कीचड़ के अन्दर धंस गये हैं, बीसियों आदमी, प्रयत्न करने पर भी, छकड़े को आगे चला नहीं सकते। दयानन्द अपनी पुस्तकों का बोझ रखकर कीच में उतर जाता है, बैल खोल दिये जाते हैं। जुए को बगल में दबाकर बालब्रह्मचारी चल देता है, छकड़ा कीच से निकलकर सड़क पर आजाता है।

निर्भीकता का एक ही उदाहरण पर्याप्त है। सत्य सनातन

वैदिक मत का मण्डन और असत्य मतों का खण्डन हो रहा है। क्रोध से विवश हो कलियुगी राजपूत म्यान से तलवार निकाल लेता है। पुरुषसिंह की गरज से लरज कर राजपूत को तलवार हाथ से गिर जाती है और ऋषि का गम्भीर नाद सुनाई देता है—"क्षत्रिय का कृपाण अधर्म को देखे विना म्यान से बाहिर नहीं निकलता और जब निकलता है तब विना दुष्टों को दण्ड दिये म्यान में नहीं जाता" कितनी ही वार सांसारिक बड़े से बड़े आक्रमणों के सामने दयानन्द का विशाल वीर हृदय चट्टान की तरह दृढ़ रहा। इसके उदाहरण पर उदाहरण देने के लिये स्थान नहीं है। फिर हृदय की कोमलता का क्या ठिकाना है! खण्डनरूपी खड्ग से दुःखित ब्राह्मण ने विष-युक्त पेड़े सामने धर दिये, योगी ने परीक्षा करके भांप लिया, ब्राह्मण घबरा गया परन्तु दयालु आचार्य ने उसे उपदेश देकर विदा किया, ऋषिभक्त मुसलमान तहसीलदार ने दुष्ट ब्राह्मण को अन्य अपराध लगा कर ६ महीने का कारावास दिया। तहसीलदार अपनी कारगुज़ारी की दाद लेने आया, ऋषि ने मुँह फेर लिया। फिर पूँछने पर उत्तर दिया—"मैं कैद कराने नहीं आया किन्तु संसार को अविद्यान्धकाररूपी कारावास से छुडाने आया हूँ" दयानन्द की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक योग्यता के इतने उदाहरण ही पर्याप्त हैं। इन सब घटनाओं से इतना ही पता लगता है कि दयानन्द एक उच्चकोटि का मनुष्य था परन्तु जो शिक्षा उसने अपने समय में फैलाई उसकी दृष्टि से हम उसे तत्ववेत्ता' कह सकते हैं, क्योंकि हमें वह भारत वर्ष में वर्तमान युग का विधाता दिखाई देता है।

"युग-विधाता दयानन्द"

एक योरोपियन विचारक ने लिखा है—

"किसी युग का आदर्श मध्यस्थ संशोधक अपने समकालीन पुरुषों की अधिक संख्या की दृष्टि में अवश्यमेव पीछे की ओर लेजाने

वाला प्रतीत होता है। इसके कई कारण हैं परन्तु मुख्य कारण एक ही होता है जो विविध दृष्टियों से देखा जाता है। सच्चा संशोधक वह मनुष्य नहीं हे जिसमें समय की क्षणिक आवश्यकता को पूरी करने के लिए कोई नई बात गढ़ने की मौलिकता हो। सच्चा संशोधक वह है जो प्राचीन संशोधकों के काम के अन्दर घुसकर उनके विचारों के स्वाध्याय से, उनमें से स्थिर मूल्य और महत्व के सिद्धांतों को चुन लेता है❀।"

भारत में यह सर्वमान्य सच्चाई है कि आत्मज्ञान के प्रसारक बालब्रह्मचारी स्वामी शंकराचार्य्य के पश्चात् बालब्रह्मचारी दयानन्द ने ही सच्चे संशोधक का आसन ग्रहण किया था। वे अपने प्रधान ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के अन्त में लिखते हैं—सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् साम्राज्य सार्वजनिक धर्म जिसे सदा से मानते आये......वही सब को मन्तव्य............अब जो वेदादि सत्य शास्त्र और ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि पर्य्यन्तों के माने हुए ईश्वरादि पदार्थ हैं............मैं अपना मन्तव्य उसी को जानता हूं कि जो तीन काल में सब को एक सा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतांतर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है।'

❀ The typical central reformer of any age necesearily appears, to a large majority of his contemporaries. as a retrogade, for several reasons : which however, are probably one, seen under several aspects. The true reformer is not the man who has sufficient originality to present something new, to meet some accidental need of the moment, but he who goes back to the work ancient reformers. carrying to the study of their work sufficient genius to select out, among their data, those of permanent value and impor- tance.

संसार में ऐसे विरले ही लोग होते हैं जो सर्वथा किसी नये सिद्धान्त का प्रादुर्भाव करें। तत्ववेत्ता वह नहीं कहाते जो किसी नये सिद्धान्त का प्रादुर्भाव करें, क्योंकि इन अर्थों में तत्ववेत्ताओं की संख्या छंटते २ शायद शून्य तक पहुँच जाय। तत्तववेत्ता वे कहाते हैं जो पहिले से विद्यमान अनेक सिद्धान्तों की परीक्षा कर एक नवीन रूप तथा अपेक्षया सत्य के अधिकपास विद्यमान सिद्धान्त का प्रकाश तथा व्याख्यान करें। तत्ववेत्ता का काम ठीकठीक चुनाव करना है, नई घड़न्त करना नहीं। इस अनन्त जीर्णाङ्ग ससार में भला नई घड़न्त कसे सम्भव है उपस्थित सचाइयों में से चुनाव किया जा सकता है, उनमें से किसी एक का विस्तार भी किया जा सकता है किन्तु किसी नई सचाई का सर्वथा उद्भव करना सर्वथा असम्भव है। कपिल मुनि भारी दार्शनिक थे किन्तु उनका दर्शन "अजामेकां लोहित शुक्लकृष्णां" इत्यादि उपनिषद् वाक्य का व्याख्यान मात्र था। योरोप के विकासवादी (Evolutionist) डार्विन, हबर्टस्पेंसर और बीजमैन तत्ववेत्ता कहाते हैं, किन्तु वस्तुतः वे भी कपिलमुनि के परिणामवाद के व्याख्याता मात्र ही हैं। तत्ववेत्ता सचाई के उद्भावक नहीं होते किन्तु चुनने वाले और व्याख्या करने वाले होते हैं, चुनना तथा व्याख्या करना तत्ववेत्ताओं के सम्बन्ध में बहुत बड़े महत्व को पा जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि तत्ववेत्ताओं का कार्य चुनाव तथा व्याख्यान का है। इस दृष्टिसे ऋषि दयानन्द ने वेदादि सत्य शास्त्रों में से जिन छिपे रत्नों को चुन कर जनता के सामने रक्खा उन्हें देख दयानन्द की बुद्धि का चमत्कार प्रतीत होता है।

युग की आवश्यकता

दयानन्द के कार्यक्षेत्र में आने के समय यद्यपि भारत में कई छोटे बड़ सम्प्रदाय काम कर रहे थे परन्तु सब के सब अपने पुराने आदेशों से गिर चुके थे। विचार-स्वातन्त्र्य का ऐसा तिरोभाव था

मानों उसका कभी प्रादुर्भाव ही नहीं हुआ धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक पराधीनता ने भारत सन्तान को मुर्दा बना दिया था। किसी क्षेत्र में भी भारतनिवासियों को दास्ता की जंजीरें काटने का साहस नहीं होता था। ऋषि दयानन्द ने अन्य संशोधकों की तरह बाह्य कुरीतियों से जूझने का प्रयत्न ही न किया प्रत्युत गिरावट के कारणों की तह में जाकर मुर्दा जाति में प्राण डालने का साहस किया।

धार्मिक संशोधन के क्षेत्र में मायावाद, प्रकृतिवाद और नैष्कर्म्यवाद तथा शून्यवाद के एकदेशीय जालों को छिन्नभिन्न कर दयानन्द ने कर्मवाद तथा त्रयीवाद की स्थापना करके समकालीन सम्प्रदायों की सब कमियों को पूरा कर दिया। मूर्तिपूजन, अद्वैतवाद, मृतकश्राद्ध, पाप की क्षमा, अवतारवाद और इसी तरह के बीसियों अन्धविश्वासों के जाल पर वार करने का उस समय किसे साहस होता था ? दयानन्द ने दृढ़ता से इन सब का मुकाबला किया। पण्डितों, मौलवियों और पादरियों की दासता से जनता को छुड़ाने के लिये तर्क के ऐसे बाण छोड़े कि सारा जाल कट गया । उन्होंने दिव्यदष्टि से देखा कि परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति तीनों प्राचीन हैं। उनके परस्पर सम्बन्ध का ज्ञान भी अनादि है। सारे संसार के सम्प्रदायों का स्रोत भी वही ज्ञान होना चाहिये। जब नवीन कुछ भी नहीं तो नवीन कल्पना से क्या प्रयोजन ? जब सम्पूर्ण मतमतान्तर एक अनादि ज्ञान से ही निकले हैं तो उन में पराया है ही क्या ? जब सब अपने है, तो उन सब में पीछे से मिली हुई अविद्या को दूर करना भी अपना ही कर्त्तव्य है। इस उदार दृष्टि से दयानन्द ने, किसी मत को पराया न समझते हुए, सब में धार्मिक संशोधन का ही प्रयत्न किया। इस सचाई को न समझ कर साधारण मस्तिष्क वाले पुरुष ऋषि दयानन्द के खण्डन खड्ग की निन्दा करते हैं। परन्तु दीर्घदर्शी पुरुष जानते हैं कि दयानन्द ने जो खण्डनात्मक कार्य किया

वह उस उदार आत्मा का कर्त्तव्य ही था। अल्पबुद्धि जन उसे समझ नहीं सकते।

सब से पहले वैदिक धर्म से निकले मतों को सीधा रास्ता दिखलाने के लिए वेदार्थ का सरल मार्ग ऋषि ने दिखलाया। पौराणिकों की बुद्धि चकित रह गई। मुसलमानों में सर सय्यद अहमद ने दयानन्द के महत्व को समझा और उनसे शिक्षा पाकर कुरान का बुद्धिपूर्वक भाष्य आरम्भ कर दिया। 'बहिश्त' के नये अर्थ किये और कुरानियों को अन्धविश्वास से निकालने का यत्न किया। कादियानी मिरजा ने भी अपने मत को चलाने के लिए उसी स्रोत से शिक्षा लेकर भी कृतघ्नता से स्रोत पर लाञ्छन लगाना आरम्भ किया। खालसा-वीरों ने भी अंधविश्वास की दासता से निकलने का उसी समय पाठ पढ़ा। ईसाइयों में भी खलबली मच गई और उन्होंने भी उस समय से अपनी धर्म पुस्तक के नये नये भाष्य करने आरम्भ किये।

सामाजिक क्षेत्र में वर्णाश्रम-व्यवस्था को क्रियात्मक स्वरूप देकर दयानन्द ने सारे युग को पलटा दे दिया। ब्रह्मचर्य और सन्यास का शुद्ध स्वरूप अपने जीवन में दिखा, गृहस्थों को गुणकर्मानुसार वर्ण व्यवस्था की मर्यादा बतला, जहां एक ओर स्वच्छन्दतारूपी बोलशेविजम (Bolshevism) से संसार को बचाया वहां दूसरी ओर प्राकृत नियमों के विरुद्ध स्थापित ज्ञाति बन्धन की जंजीरों को तोड़ कर सामाजिक स्वतन्त्रा की बुनियाद डाली। शताब्दियों से अन्धविश्वास में जकड़ा हुआ हिन्दू-समाज स्थिर सड़े हुए छप्पड़ (कच्चे तालाब) की तरह तामस वृत्ति में बेहोश पड़ा था, ऋषि ने तालाब को हिलाकर हिन्दुओं को जागृत किया। जो सड़ांद उठी उससे वह घबरा गए परन्तु जब सम्पूर्ण कीचड़ बाहर निकाल कर समाजरूपी जल को स्वच्छ कर दिया जायगा तब हिन्दू जनता ऋषि के उपकार को समझेगी।

दयानन्द धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में ही युग का विधाता नहीं हुआ, प्रत्युत—

राजनैतिक क्षेत्र में भी उसने बड़े परिवर्तन कर दिये। आज 'स्वदेश भक्ति' 'स्वराज्य' 'साम्राज्य' और 'प्रजातन्त्र राज्य' की चारों ओर धूम मच रही है, परन्तु ऋषि दयानन्द ने ४२ वर्ष पूर्व राजनैतिक शास्त्र की स्पष्ट बुनियाद डाल दी थी। जिस आर्य शास्त्र को एकसत्तात्मकराज्य का गुलाम समझा जाता था उसी में से दयानन्द ने सिद्ध किया कि एक-सत्तात्मकराज्य प्राकृतिक नियम के ही विरुद्ध है। सत्यार्थप्रकाश के छठे समुल्लास में तीन सभाओं (विद्यार्यसभा, धर्मार्य सभा और राजार्यसभा) की बुनियाद डालकर शतपथ ब्राह्मण के प्रमाण से बतलाया कि एकसत्तात्मक राज्य कभी न होना चाहिये, उससे प्रजा का कभी कल्याण नहीं हो सकता। राज सभा के प्रधान और सभ्यों का परस्पर सम्बन्ध जतला कर राज्य का सम्पूर्ण प्रबन्ध स्वदेशी अधिकारियों के ही आधीन करने पर बल दिया। फिर लक्ष ग्रामों की एक राजसभा के प्रबन्ध का वर्णन करके लिखा—

"लक्ष ग्रामों की राजसभा को (कर्मचारीगण) प्रतिदिन का वर्तमान जनाया करें और वे सब राज-सभा महाराजसभा अर्थात् सार्वभौम महाराज चक्रवर्ती राजसभा में सब भूगोल का वर्तमान जनाया करें" इस प्रकार से अन्तर्राष्ट्रीय सभा की भी बुनियाद आर्य ग्रन्थों से दिखलादी।

राजनैतिक उन्नति के अभिमानी योरोप का केन्द्र ब्रिटेन (Britain) समझा जाता है। कहा जाता है कि इंगलैंड की भूमि पर पैर रखते ही गुलाम आजाद हो जाता है, ब्रिटेन प्रजातन्त्र राज्य का आदर्श समझा जाता था और उसका नाम राष्ट्रीय सभाओं की माता (Mother of Parliaments) रक्खा हुआ था परन्तु अन्य देशस्थ मनुष्य समाजों को दास बनाने में उसे कोई संकोच नहीं होता और

उस राष्ट्र की पार्लियामेंट में भी पहिले पहल यह भाव प्रधानामात्य सर हेनरी कैम्पबैल वैनरमैन (Sir henry Campbell Banner-man) ने ही प्रकट किया था, कि "प्रजातन्त्र शासन का स्थान उत्तम शासन भी नहीं ले सकता।" परन्तु उसमें भी बीस वर्ष पहिले सच्चे संशोधक दयानन्द ने लिखा था :—'कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित अपने और पराये का पक्ष-पात शून्य, प्रजा पर पिता माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ भी विदेशियों का राज्य पूर्ण सुखदायक नहीं है" इससे बढ़ कर स्वराज्य की महिमा कोई क्या करेगा ? परन्तु साथ ही दीर्घदर्शी ऋषि ने अयोग्य शीघ्रगामी राजनैतिकों को सावधान भी कर दिया। स्वराज्य प्राप्ति के लिये यत्न प्रत्येक देशवासी का कर्तव्य है "परन्तु भिन्न भिन्न भाषा, पृथक् पृथक् शिक्षा, अलग अलग व्यवहार का विरोध छूटना अति दुष्कर है। बिना इसके छूटे परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है। इसलिये जो कुछ वेदादि शास्त्रों में व्यवस्था वा इतिहास लिखे हैं उसी का मान्य करना भद्र पुरुषों का काम है"।

यह बड़ी कठिन मंजिल है। इसके लिये वेद शास्त्रों के सिद्धाँतो को समझकर उस पर अमल करना आवश्यक है। जहां धार्मिक और सामाजिक उन्नति क्षेत्र में भारत प्रजा को दयानन्द के पीछे चलकर ही कल्याण मार्ग सूझा है वहां राजनैतिक क्षेत्र में भी ४४ करोड़ भारतनिवासियों व ऋषि दयानन्द के बतलाये मार्ग पर ही चल कर यह सम्भव है कि झूठे अभिमान में फंसकर भारत के वर्त्त-मान नेता ऋषि दयानन्द का नाम लेने में आनाकानी करें परन्तु उन सब को वास्तविक सफलता के लिए चलना उसी के निर्दिष्ट मार्ग पर पड़ा।

आओ ! तत्ववेत्ता सच्चे संशोधक, युगविधाता, वर्तमान संसार

के भाग्यनिर्माता ऋषि दयानन्द की शिक्षा का गहरी दृष्टि से स्वाध्याय करें।

पूर्ण पुरुष का आकार प्रकार

स्वामी जी का कद $6\frac{1}{4}$ फुट था, शरीर सुडौल वज्र की भान्ति कठोर, रंग गोरा, मुख मण्डल पर चमक, आंखें बड़ी बड़ी, सर की खोपड़ी उभरी हुई, गुम्मद की तरह गोल। आवाज बहुत गम्भीर घोर गूंजने वाली, ऊँची और मधुर थी। पाँच पाँच मील तक उनकी आवाज गूंजती सुनाई देती थी और ऐसे समय में जबकि बिजली का इतना प्रयोग न था, और लाऊडस्पीकर कोई जानता न था। हजारों की हाजरी वाले बड़े बड़े जलसों में महर्षि के व्याख्यान होते थे, तो वह अपनी ऐसी आवाज़ से ही पचास पचास हज़ार की हाजरी को कण्ट्रोल करते थे। पांव में संदली खड़ाऊँ। भगवें रंग का खुले बाजुओं वाला चोला पहनते थे तो सत्युग के ऋषियों के समान प्रतीत होते थे। उनकी नज़र और उनके मुख मण्डल की आभा दुश्मनों के दिलों में खौफ़ हरास पैदा करती थी। बड़े बड़े ईसाई पादरी, मुसलमान मौलवी, धुरन्धर पंडित कोई भी दयानन्द के सामने आकर मैंदान में खड़ा न रह सका।

———

१. देवता काण्ड

एक जीवन में १०१ जीवन

(१) विष्णु आदित्य

सूर्य का नाम ही प्राचीन काल में विष्णु था। अतः विष्णु पुराण प्रथम अंश, श्लोक १३०—१३१ जीवानन्द विद्यासागर प्रैस कलकत्ता १८८२ ई० में सूर्य के १२ नाम गिनाये हैं। अदिति-पुत्र आदित्य के नाम :—(१) विष्णु (२) शुक्र (३) अर्यमा (४) धाता (५) त्वष्टा (६) पूषा (७) विवस्वान (८) सविता (९) मित्र (१०) वरुण (११) अंश और (१२) भग। इसी तरह महाभारत आदिपर्व अध्याय १२३ में भी लगभग १२ ही नाम सूर्य के लिखे हैं। जिस में वष्णु नाम भी सूर्य का वर्णित है। शतपथ ब्राह्मण १४-१-१-६ और १४-१-३-२६ में हरि नाम भी सूर्य का लिखा है। निघण्टु (जो वेद का शब्द कोष है) में भी अध्याय (५) खण्ड ६ में सूर्य के आठ नाम गिनाए हैं। (१) त्वष्टा (२) सविता (३) भग (४) सूर्य (५) पूपा (६) विष्णु (७) वैश्वानर और (८) वरुण। आकाश का एक नाम विष्णु पद भी इस लिये है कि अन्तरिक्ष सूर्य का स्थान है। वेद भगवान् में भी कई स्थानों पर सूर्य का नाम विष्णु आता है। सूर्य का एक शरीर धारी देवता खड़ा करने वालों ने बड़ी चतुरता से काम लिया है और सूर्य से सम्बन्धित सभी घटनाओं को इस मनघड़न्त देवता के साथ जोड़ दिया है उदाहरणतया—

(१) विष्णु की सवारी गरुड़। गरुड़ को संस्कृत में सुपर्ण भी कहते हैं। और सुपर्ण नाम वैदिक देववाणी में सूर्य की किरणों का है। निघण्टु प्रथम अध्याय खण्ड ५ में सूर्य की किरण के नामों

में सुपर्ण का नाम भी लिखा है अर्थात सूर्य की किरण भी सुपर्ण (गरुड़) विष्णु की सवारी है। हर कोई आदमी किसी सवारी पर ही चढ़ कर कहीं जाता है। इसी तरह सूर्य भी अपनी किरणों के द्वारा ही संसार को प्रकाशित करता है। गोया गरुड़ या सुपर्ण किरण ही विष्णु यानी सूर्य की सवारी ठहरती है।

(२) **विष्णु और समुद्र**—यह उक्ति प्रसिद्ध है कि विष्णु भगवान् क्षीरसागर में निवास करते हैं। निघटु में समुद्र नाम आकाश का है और सागर नाम भी आकाश का है। क्योंकि विष्णु नाम सूर्य आकाश में निवास करता है इस का देहधारी देवता बनाने वालों ने चतुर्भु ज विष्णु को भी क्षीरसागर में ही सुला दिया है।

(३) **विष्णु और शेषनाग**—यह भी कहा जाता है कि विष्णु भगवान् शेषनाग पर सोते हैं। गोया उन के सोने का आधार शेष नाग है। यानी जैसे हम चारपाई पर सोते हैं इसी तरह विष्णु भगवान् शेषनाग पर सोते हैं। तो सूर्य भी आकाश यानी सागर में शेष यानी परमात्मा के आधार पर स्थित है। शेष परमात्मा को इस लिये कहते हैं कि इस का कभी नाश नहीं होता वह सदा शेष यानी बाक़ी रहता है। पौराणिक लोग यह मानते हैं कि पृथ्वी शेषनाग के सिर पर खड़ी है। तो फिर विष्णु और पृथ्वी का एक ही शेषनाग को आधार मानना बुद्धि एवं युक्ति विरुद्ध भी है। इस लिये भी ये सब अलंकारिक वर्णन ही है।

(४) **चतुर्भुज विष्णु**—विष्णु को चतुर्भु ज बना दिया गया है। "चत्वारो भुजा बाहवो यस्य स चतुर्भु जः" चारों दिशाएं जिस को भुजाएं हों वह चतुर्भु ज है। वैसे लोक में साधारणतया यही देखने में आता है कि जब कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति से कोई रास्ता पछता है तो बतलाने वाला झट कह देता है कि आप दक्षिण बाहु जावें अथवा उत्तर बाहु जावें और साथ ही हाथ यानी बाहु से संकेत भी करता है। आप स्वयं भी ऐसा ही करते हैं और सब ही ऐसा करते

हैं। आप ने यह भी देखा होगा कि सड़क पर चौक आ जाते हैं या दो सड़कों का मेल हो जाता है तो वहां बाहु के समान आकृति वाला संकेत दोनों ओर अथवा चारों ओर के जाने वाले रास्तों का संकेत करता है। अब ऊपर लिखित बातों से यह बात सिद्ध हो गई कि विष्णु जिस को आदित्य भी कहते हैं सूर्य का ही नाम है और जब सूर्य उदय होता है तो अन्धकार का नाश हो जाता है। परन्तु सूर्य एक ही समय में केवल आधी दुनियां को प्रकाशित कर सकता है। जो उसके सामने होती है दूसरो आधी दुनियां में अन्धेरा छाया रहता है।

परन्तु

महर्षि दयानन्द रूपी सूर्य में इस लौकिक विष्णु रूपी सूर्य में एक विशेषता थो कि उसने एक ही समय में सारे संसार को ज्ञानालोक से आलोकित कर दिया। सूर्य रूपी विष्णु के वर्णन में बताया जा चुका है कि सूर्य का नाम आदित्य भी है और लोक में ४२ वर्ष तक ब्रह्मचर्य धारण करने वाले ब्रह्मचारी को भी आदित्य कहते हैं परन्तु ऋषि दयानन्द तो जन्मपर्यन्त ब्रह्मचारी रहे इस लिये वह भी आदित्य ही थे। महर्षि दयानन्द के समय में प्रचार एवं सूचनाप्रसार के इतने साधन उपलब्ध न थे जितने आज कल हैं। उस समय न तो वायरलैस थी न रेडियो न ही तार अभी पूर्ण रूप से चालू हुई थी न इतने समाचारपत्र थे। वर्तमान युग की सूचना प्रसार (प्रापैगेंडा) कला के अभाव में भी महर्षि दयानन्द रूपी सूर्य का ज्ञानालोक जहां अमेरिका में पहुंचा वहां जर्मनी, स्काटलैंड रूस कम्बरलैंड आदि भिन्न भिन्न दिशाओं के देशों में भी पहुंच गया जो निम्नलिखित घटनाओं से भली भाँति स्पष्ट हो जावेगा।

१. कैम्बरलैंड से मिस्टर Mild M. A. ने १७ जून १८७९ में एक पत्र ऋषिदयानन्द जी की सेवा में लिखा था कि "मेरी कामना

यही नहीं कि मैं सत्य को मानूं प्रत्युत यह कि जहां तक मेरी आत्मा और शरीर से हो सके यथा शक्ति सत्य का जीवन भी व्यतीत करूँ।

(२) स्काट लैंड से मिस्टर डेवीसन ने महर्षि को लिखा था "मैंने मांसाहार करना छोड़ दिया है और मद्यपान का भी त्याग कर दिया है। यद्यपि मेरा विवाह हो चुका है परन्तु मैं ब्रह्मचारियों का सा जीवन व्यतीत कर रहा हूं मुझे धन और संसार के पदार्थों की कामना नहीं है। मेरी जिज्ञासु आत्मा में केवल यही प्रेरणा हो गई है कि इस बात का ज्ञान हो कि मनुष्य वास्तव में क्या है और क्या बन सकता है। साथ ही मैं सदाचार में अपने आप को निपुण करना चाहता हूँ। जिस से मैं इस योग्य हो जाऊँ कि ब्रह्म के साथ अपनी आत्मा को मिला सकूँ।

(३) रूस के काउंट टालस्टाई जो प्रकृति के सुविख्यात लेखक और विद्वान थे, ने महर्षि दयानन्द से ज्योति पाकर जब मांस खाना छोड़ दिया तो वहाँ के लोग कहने लग गये कि काऊंट पागल हो गया है परन्तु काउंटटालस्टाई तो महर्षि का भक्त बन चुका था उसने किसी की परवाह नहीं की अपितु महर्षि के बतलाये मार्ग पर चल कर गृहस्थ छोड़ वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश कर लिया था।

(४) जर्मन देश के विद्वान मिस्टर जी.वाइज. जो वीडन कालेज प्रिंसिपल थे महर्षि को जो पत्र लिखते थे उन को अपना गुरु मान कर ही लिखते थे और जर्मन देश में बैठे बैठे ही ऋषिवर की ज्योति से अपने मन को ज्योतिष्मान कर पाते थे।

(५) अमेरिका से कर्नल अल्काट ने १४ फरवरी सन् १८७८ को एक पत्र महर्षि की सेवा में लिखा पत्र बहुत लम्बा है मैं, आदि को, कुछ पंक्तियां सेवा में उपस्थित करता हूं जो मेरे इस शीर्षक से सम्बन्ध रखती हैं। वे इस प्रकार हैं "सेवा में परम मान्य पण्डित दयानन्द सरस्वती। भारतवर्ष पूज्यनीय गुरु ?

अमेरिका के कितने ही निवासी और अन्य विद्यार्थी जो सच्चे मन से विद्या की खोज करना चाहते हैं। आप के चरणों में आते हैं और आप से प्रार्थना करते हैं कि हमें ज्ञान ज्योति दीजिये।

(६)—कर्नल अल्काट का दूसरा पत्र जो उन्होंने ५-६-१८ को महर्षि जी को लिखा वह भी बहुत लम्बा था परन्तु मैं कुछ पंक्तियां आपकी सूचनार्थ देता हूं। वे लिखते हैं—

पूज्यपाद गुरु जी !

जो सद्भावना पूर्ण पत्र आप ने लिखा है वह पहुंच गया है। थियासोफीकल सोसाइटी के समस्त सदस्यों और अधिकारियों को जो आशीर्वाद आपने दिया है उससे परम प्रसन्नता हुई उस के प्रत्युत्तर में हम केवल अपनी आशा हो प्रकट कर सकते हैं कि आप की स्थिति संसार में उसी काल तक रहे जब तक आप का उपकारमय उद्देश्य पूर्ण हो और मनुष्य जाति आप के बुद्धि अनुकूल उपदेश को सुनने और उस से लाभ प्राप्त करने के लिये तय्यार हो।

(७)—फ्राँस का प्रसिद्ध एवं जगत् विख्यात दार्शनिक और लेखक रोमन रोलैंड महर्षि के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हुए लिखता है "दयानन्द सरस्वती उच्चतम व्यक्ति थे, क्योंकि उनके अन्दर कर्म-योगी विचारक और नेता के गुणों का दुर्लभ मिश्रण था। वेदों के शक्तिशाली प्रचारक के रूप में अकेले ही भारत के आक्रमणकारियों के विरुद्ध युद्ध का उद्घोष किया। दयानन्द ने ईसाई-मत के विरुद्ध युद्ध घोष किया और उस की सुदृढ़ तलवार ने उसे टुकड़े टुकड़े कर दिया।

(८)—अमेरिका के महान् योगी डाक्टर इंड्रोजैक्सन डेविस ने अपनी पुस्तक Beyond the Velley के पृष्ठ ३८२—३८३ में महर्षि रूपी सूर्य के प्रकाश को प्राप्त कर लिखा है।

मैं एक आग देखता हूं जो कि सार्वभौमिक है और अविनाशी प्रेम की अग्नि है जो कि घृणा को भस्मसात करती है और समस्त

बस्तुओं को शुद्ध कर रही है। अमेरिका के मैदानों पर अफ्रीका के रेगिस्तान पर एशिया के बड़े बड़े पर्वतों और योरुप के बड़े बड़े राज्यों में इस शुद्धि करने वाली अग्नि का प्रकाश देख रहा हूँ। इस अविनाशी अग्नि को देख कर जो कि राजनैतिक बुराइयों से भरपूर राज्यों को विनष्ट कर देगी आनन्द की अनुभूति कर रहा हूँ और मैं जीवन में एक आनन्दयुक्त, उत्साह अनुभव करता हूँ। आदि वैदिक धर्म को अपनी पहली सर्वोत्तम अवस्था को पहुंचाने के लिये यह अग्नि आर्य समाज रूपी भट्टी में जल रही है। जो भारत के महान सुपूत महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के हृदय में उत्पन्न हुई और इस से यह आग बहुत से महानुभावों के हृदय में प्रकट हुई हिन्दु मुसलमान और ईसाई मिल कर इस पवित्र अग्नि को बुझाने दौड़े परन्तु यह प्रभु की जलाई हुई अग्नि बढ़ती चली जा रही है।

इतने उदाहरणों से अब भली भान्ति सिद्ध हो गया है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती ने विष्णु यानी सूर्य से भी बढ़कर विश्व में प्रकाश फैला कर अविद्यान्धकार का नाश किया। महर्षि दयानन्द विष्णु थे और सूर्य समान चमके इसी बात को बतलाते हुए एक कवि ने ऋषि के देह त्याग के समय लिखा था—

दो आफताब डूबते हैं एक आन में,
मग़रिब (पश्चिम) में एक दूसरा हिन्दुस्तान में।

परन्तु इस विष्णु रूपी सूर्य से एक और भी विशेषता महर्षि में वह यह कि भौतिक सूर्य जब अस्त होता है तो अन्धकार फैल जाता है परन्तु महर्षि देह त्याग कर जगत गुरु बन गये और समस्त विश्व में उन का प्रकाशित प्रकाश मानवमात्र का पथ प्रदर्शन कर रहा है। इंगलिस्तान के विख्यात कवि लांगफैलो ने ठीक कहा है—

So when a good man dies
for years beyond his Ken
The light he leaves behind him
lies upon the Path of men.

अर्थात् महापुरुष देह त्यागने के उपरान्त भी जो प्रकाश छोड़ जाते है मनुष्यमात्र का पथप्रदर्शन करता रहता है। महर्षि के इसी गुण को देख कर एक अन्य कवि ने भी लिखा था।

दुनिया से भी गए तो दिवाली की रात को।

अर्थात् महर्षि अपने जीवन का उद्देश्य पूर्ण करके यानी अविद्यान्धकार का नाश कर के घर घर प्रकाश करा कर ही इस संसार से विदा हुए।

बोलो बिष्णु भगवान् दयानन्द की जय।

२. त्रिनेत्रधारी शिव

पौराणिक देव माला में जिस तरह विष्णु की चार भुजाएें ब्रह्मा के चार मुख प्रसिद्ध हैं उसी तरह शिव जो के तीन नेत्र विख्यात हैं और तोन आँखों वाले शिव जी की पूजा को वेदविहित सिद्ध करने वाले यजुर्वेद अध्याय ३० का ६० वां मन्त्र प्रमाण के रूप में सम्मुख लाते हैं। वह मन्त्र यह है—

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टि वर्धनम्। इत्यादि

इस मन्त्र में समागत 'त्र्यम्बक' शब्द का अर्थ त्रिनेत्रधारी शिव शंकर महादेव अथवा रुद्र कर के उस की पूजा का विधान करते हैं। इसी मन्त्र को मृत्युञ्जय मन्त्र भी कहा जाता है अर्थात् मृत्यु पर विजय दिलाने वाला मन्त्र परन्तु वेदों का आध्यात्मिक महत्व बतलाने वाले महर्षि दयानन्द "त्र्यम्बक शब्द का अर्थ ईश्वरपरक करते हुए वेद भाष्य में रुद्र रूप जगदीश्वर तथा सब के अध्यक्ष जगदीश्वर लिखते हैं और उस की स्तुति प्रार्थना तथा उपासना से ही मृत्यु को जीतने और मोक्ष प्राप्ति का साधन बतलाते हैं। और यज्ञ पक्ष में इस "त्र्यम्बक शब्द का अर्थ करने वाले विद्वान् ऐसा करते हैं कि 'त्र्यम्बक' यानी तीन औषधियों जिन के नाम अम्बा अम्बिका और अम्बालिका हैं। से हवन यज्ञ करने वाला पूर्ण आयु भोग कर

अपने शरीर को ऐसे छोड़ देता है जैसे पका हुआ फल अपने आप अपनी बेल से अपना सम्बन्ध अथवा बन्धन बिना किसी कष्ट और क्लेश के तोड़ लेता है। इसी प्रकार मनुष्य मृत्यु समय हंसता हंसता इस संसार का त्याग कर देता है और मृत्यु में भी आनन्द अनुभव करता हुआ मोक्ष पद को प्राप्त कर लेता है। क्योंकि ये तीनों औषधियां सुगन्धि फैलाती और शक्ति प्रदान करती है। अस्तु इस तरह हमारे भाई शिव जी की तीन आंखें मानते हैं।

और

महर्षिदयानन्द की न केवल तीन ही आँखें थीं अपितु वे त्रिकाल-दर्शी। (भूतःवर्तमान और भविष्यत् को भांपने वाले) भी थे।--दो आखें तो सबके पास होती ही हैं परन्तु तीसरी आँख वह होती हैं जिसको गीता में दिव्य चक्षु कहा गया है। जिन दिव्य चक्षुओं (दिव्य दृष्टि) से अर्जुन ने भगवान् का विराट रूप देखा था। वह दिव्य दृष्टि वास्तविकता को देखने वाली होती है और गहराई तक देखता है। केवल ऊपरली सतह तक तो दो चर्मचक्षु देखती हैं। और कई बार तो ये दोनों आँखें ऊपरली सतह पर भी ठीक नहीं देख सकतीं अपितु कई बार धोखा खा जाती हैं। रस्सी को साँप, सीप को चांदी और बालू (रेत) को पानी समझ बैठती हैं। परन्तु यह दिव्य दृष्टि रूपी तीसरी आँख ठीक ठीक देखती है और सचाई को पा लेती है। इस बात को महर्षि यास्क मुनि जो ने अपनी पुस्तक निरुक्त में अपने ढंग पर वर्णन करते हुए लिखा है। 'ऋषि दर्शनात्' अर्थात् जो किसी वस्तु का दर्शन करता है, साक्षात्कार करता है वह ऋषि है और दयानन्द तो महर्षि थे तभी तो मैं ने ऋषि को त्रिकालदर्शी लिखा है। उन्होंने वर्तमान को देखा और दिव्यदृष्टि से यानी अपनी तीसरी आँख से अंग्रेजों के राज्य काल में अंग्रेज़ों के षड्यन्त्र को भली भांति देखा और फिर यह भी देखा कि अंग्रेज़ लोग भविष्य में इस देश में अपने राज्यशासन को चिर-स्थाई बनाने के लिये ये सब षडयन्त्र रच रहे हैं। गोया वर्तमान और भविष्य को अच्छी तरह गहराई तक पहुंच

कर महर्षि ने अपने अतीत को भी झांका इस तरह तीनों कालों को देख कर अपने देश वासियों को गाढ़ निन्द्रा से जगाया।

१. पहली बात ऋषि ने जो देखी वह यह कि अंग्रेज़ों ने अपने राज्य को इस देश में सुदृढ़ और चिरस्थाई बनाये रखने के लिये हमारे साहित्य और इतिहास को ऐसा बिगाड़ा कि उस का वास्तविक रूप ही दृष्टि से ओझल हो गया और बड़े बड़े विद्वान् भी अंग्रेज़ों की बातों को सत्य मानने लग गए। अंग्रेज़ों ने Divide & Rule फूट डालो और राज्य करो के नियम पर आचरण करते हुए इतिहास की पुस्तकों में यह लिख दिया कि आर्य लोग इस देश के रहने वाले नहीं यह तो मध्य एशिया से आक्रमणकारी के रूप में भारत में आए और यहाँ के आदिवासियों को यानी गोंड, भील् सन्थाल आदि जातिय को पराजित करके इन की संस्कृति को नष्ट कर दिया और इन को दक्षिण की ओर धकेल कर स्वयं यहां के शासक बन बैठे। इस बात से अंग्रेज़ों के दो प्रयोजन सिद्ध होते थे। एक तो यह कि भारत वासियों में परस्पर विरोध पैदा होता था और दूसरे जिनको अंग्रेज आदिवासी का नाम देते थे उन को यह जतलाना था कि यदि हम बाहर से आकर राज्य करने लगे हैं तो आर्य भी तो बाहर से ही आकर राज्य करते रहे हैं। क्या हुआ वे पहले आक्रमणकारी थे और हम अब के हैं। आर्यों को आक्रमणकारी सिद्ध करना उनका मुख्य प्रयोजन था। सो उन का यह प्रयोजन भली प्रकार सिद्ध हुआ और इस पारस्परिक विरोध बनाये रखने के लिये।

१९०१ की पृथक जनगणना कर के विधानसभाओं में उनकी सीटें सुरक्षित कर दीं। इस प्रकार हमारा इतिहास बिगाड़ कर अंग्रेज़ों ने अपना प्रयोजन सिद्ध किया।

(२)—दूसरी बात महर्षि ने यह देखी कि हमारे साहित्य को भी बिगाड़ना आरम्भ कर दिया। अतः ईसाई पादरियों और

मैक्समूलर आदि के द्वारा वेद मन्त्रों के ऊटपटांग अर्थ करवाये और वेदों को गडरियों के गीत प्रसिद्ध कर दिया और यहां तक प्रसिद्ध किया कि वेदों में कोई बात युक्ति और बुद्धि पूर्वक हो नहीं है। अपितु वेदों में गाय, घोड़े, बकरे से लेकर आदमी तक को मार कर यज्ञों में उन की बलि देने का विधान है और कि प्राचीन आर्य लोग मद्यपान करते गोमांस इत्यादि भक्षण किया करते थे और ईंट पत्थर नदी, पर्वत, वृक्ष, आग, हवा, पानी, सूर्य, चाँद सब जड़ पदार्थों से भयभीत हो कर उन्हें देवता मानकर उन की पूजा करते थे वेदों में कहीं भी ईश्वर पूजा का वर्णन नहीं है।

(३) तीसरी बात ऋषिवर दयानन्द ने यह देखी कि अंग्रेजी शिक्षा का जो क्रम लार्ड मेकाले की योजना के अनुसार अंग्रेज़ों ने आरम्भ किया था जिसमें विद्यार्थियों को यह पढ़ाया जाता था कि आर्य लोग या तुम्हारे पूर्वज जंगली असभ्य थे। वे जंगलों में गौ, भैंस चराया करते थे और इस तरह जो गीत वे गाते थे उन को बाद में वेद कह कर लोगों को सुनाया करते थे। नीम वाहशी अवस्था में थे। लार्ड मेकाले ने इस शिक्षा पद्धति को भारत में प्रचलित करके अपने पिता के नाम एक पत्र लिखा था जिसमें उसने लिखा था कि "हमारे स्कूलों में शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त भारतवासी भले ही वे रंग, आकृति और बाह्य रूप से भारतीय दीखेंगे परन्तु वे अन्दर (मन, बुद्धि एव मस्तिष्क रूप से भारतीय नहीं रह सकेंगे और अपनी संस्कृत एवं सभ्यता पर गर्व करने के स्थान उस से घृणा करते हुए उस का उपहास तक उड़ाएगे। इस प्रकार के प्रकार के प्रचार से अंग्रेज़ों की अभिलाषा भारत वासियों के भीतर (Inferiorty Complex) अर्थात् आत्म हीनता के भाव पैदा करना थी। यह बात शत प्रतिशत सत्य है कि जिस देश के वासियों में अन्दर हीनता के भाव दृढ़ हो जावें वह देश तथा ज़ाति कभी उन्नति नहीं कर सकती क्योंकि वह मानसिक दासता

की ज़ंजीरों में जकड़ी जाती है। अंग्रेज़ जाति अपने षडयन्त्रों से इस देश में ऊपरलिखित तीनों विचार फैलाने में कुछ सीमा तक सफल भी हो रही थी कि परमपिता परमात्मा की अपार दया से त्रिकालदर्शी दयानन्द जी महाराज कार्यक्षेत्र में आ डटे और उन्हों ने अपने अतीत काल को भली भाँति देखा और देख कर अंग्रेज़ों के षड्यन्त्र को तार तार कर दिया।

१. सर्वप्रथम ऋषिवर ने यह घोषणा की कि आर्य लोग कहीं बाहर से नहीं आए इसी देश के वासी है। उन्होंने यह कहा कि हमारे किसी भी ऐतिहासिक ग्रन्थ में कहीं पर भी यह नहीं लिखा कि आर्य लोग कहीं बाहर से आकर इस देश में बस गये और यहां के आदि वासियों (अपने से पहले रहने वालों) को परास्त किया। यह सब विदेशियों की मनघड़न्त और कपोलकल्पित बातें हैं। आर्यों से पहले इस देश में कोई भी नहीं बसता था। आर्यों के इस देश में बसने के कारण ही इस देश का नाम आर्यावर्त हुआ है। इस से पहले इस देश का और कोई नाम नहीं था। अतः 'आर्योद्देश्यरत्न माला नामक छोटी सी पुस्तका में महर्षि लिखते हैं। जो श्रेष्ठ स्वभाव धर्मात्मा परोपकारी सत्यवादी गुणयुक्त और आर्यावर्त देश में सदा से मानी सब दिन से रहते हैं उन को आर्य कहते हैं।

इस प्रकार महर्षि ने अंग्रेज़ों की इस Divide Rule "फूट डालो और शासन करो" चाल को विफल कर दिया। जो कहते थे कि आर्य लोग आक्रमण कारी हैसियत में इस देश में आए और इस के आदिवासियों को परास्त कर यहां के राजा बन बैठे न केवल अपने ग्रन्थों में ही लिखा अपितु व्याख्यानों में भी स्थान स्थान पर अंग्रेज़ों की इस चाल का प्रबल रूप से खण्डन करते रहे। जिस के फलस्वरूप भारतीय जनता के मस्तिष्क में ये भाव जमने आरम्भ हो गये और अंग्रेज़ों के फैलाये हुए जाल को तार तार कर दिया।

(२) अंग्रेज़ों की दूसरी चाल का भी महर्षि ने बड़ा प्रबल

खण्डन किया। महर्षि ने यह प्रमाणित कर दिया कि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है गडरियों के गीत नहीं हैं इस विषय में सारे संसार को अह्वान (चैलेंज) किया परन्तु महर्षि का यह चैलेंज स्वीकार करने का किसी को भी साहस न हुआ। अपितु मैक्समूलर आदिक यह मानने पर बाध्य हुए कि महर्षि वेदों के धुरन्धर विद्वान हैं। और उन की रची ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पढ़े बिना जो वेद पढ़ेगा वह वेद के मर्म को नही समझ पावेगा। महर्षि ने वेद मन्त्रों "इन्द्रं मित्रं वरूणमग्निम्: इत्यादि का प्रमाण देकर यह सिद्ध किया कि "अग्नि इन्द्र मित्र और वरूण: आदि उस एक परमात्मा के ही गुण कर्म और स्वभाव अनुसार भिन्न भिन्न नाम हैं और प्राचीन आर्य लोग परमात्मा के इन गौणिक नामों से एक परमात्मा की पूजा स्तुति प्रार्थना और उपासना किया करते थे न कि अग्नि जल वायु वन पर्वत पत्थर इत्यादि की फिर ऋषि ने यह भी घोषणा कि वेदों में कहीं किसी स्थान पर भी आदमी गौ, घोड़ा, बकरा इत्यादि का बधकर के यज्ञों में डालने का विधान नहीं है बल्कि यज्ञ शब्द का अर्थ ही है कि जिस में किसी प्रकार की भी हिंसा न की जावे वहीं अध्वरयज्ञ कहलाता है। ऋषि के इस चैलेंज को स्वीकार कर सम्मुख आने का किसी को साहस न हो सका। इस प्रकार ऋषिवर ने अंग्रेजों की इस चाल को भी विफल बना दिया।

(३) अंग्रेजों द्वारा भारतवासियों में आत्महीनता के भाव पैदा करने वाली चाल का तो ऋषि ने इतनी प्रबलता से खण्डन किया जिस से उनकी यह चाल पंगु बन कर रह गई। अतः सत्यार्थ प्रकाश के ग्याहरवें समुल्लास में महर्षि ने सब से पहले मनुस्मृति का यह प्रमाण दे कर कि :—

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनाः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्याँ सर्व मानवाः॥

सारे संसार के लोगों को इस भारत देश के ब्राह्मणों के चर्णों

में बैठ कर आचार व्यवहार की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये ऐसा मनुभगवान् (जो चक्रवर्ती राजा थे) ने आज्ञा दी और घोषणा की हुई थी कि सारे संसार में जितनी सत्यविद्याएं फैली हैं वे सब भारत वर्ष से ही फैली हैं। और भारतवर्ष के प्राचीन पुरुष न केवल विद्वान् ही थे बल्कि धनवान् भी थे और बलवान् तो इतने थे कि आर्यों का चक्रवर्ती राज्य संसार में करोड़ों वर्षों तक चलता रहा और महर्षि ने इसी ११ वें समुल्लास में चक्रवर्ती राजाओं की वंशावलि भी दी है और भारत भूमि को स्वर्ण भूमि का नाम दिया हैं। अतः महर्षि लिखते हैं:—

"यह आर्यावर्त देश ऐसा है जिस के सदृश भूगोल में कोई दूसरा देश नहीं है। इस लिये इस भूमि का नाम स्वर्ण भूमि है क्यों कि यही स्वर्ण आदि रत्नो को उत्पन्न करती है। इस लिये सृष्टि के आदि में आर्य लोग इस देश में आकर रहे। जितने भूगोल में देश हैं। वे सब इस देश की प्रशंसा करते हैं और आशा रखते हैं कि पारसमणि पत्थर सुना जाता है वह बात तो झूठी है परन्तु आर्यावर्त देश ही सच्ची पारसमणि है जिस को लोह रूप दरिद्र देश छूने के साथ ही स्वर्ण अर्थात् धनाढय हो जाते हैं। सृष्टि से लेकर पांच हज़ार वर्षों तक आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्ती राज्य था और अन्य देशों में माण्डलिक अर्थात् छोटे छोटे राजा रहते थे क्योंकि कौरव और पाण्डव पर्यन्त यहाँ के राजा और राज्यशासन में सब राजा और प्रजा चलते थे। और महाराजा युधिष्ठर पर्यन्त राजसूय यज्ञ और महाभारत के युद्ध में सब संसार के माण्डलिक राजा लाग सम्मिलित हुए थे।

वैसे अब महर्षि दयानन्द महाराज की कृपा से सब लोग मनु को सब से पहला विधान बनाने वाला मानने लग गये हैं। यानी Manu was the first Law giver of men.

और सारी दुनियाँ के अन्दर जितने भी शासन विधान

राज्य प्रशासन के लिये प्रचलित हैं उन के मूल में मनुमहाराज का विधान ही काम कर रहा है। पुनः इसी समुल्लास में महर्षि लिखते हैं कि जितनी भी विद्यायें संसार में फैली हैं वे सब आर्यवर्त देश से ही फैली हैं। ऋषिवर की इस बात का भी अब योरुप के विद्वान् समर्थन कर रहे हैं कि सब सत्यविद्यायें आर्यावर्त देश से ही संसार में फैली हैं। अत: Meterlenk नामी एक विख्यात विद्वान ने अपनी पुस्तक Secret Heart के पृष्ठ ५ पर महर्षि दयानन्द जी महाराज के इस कथन को अक्षरशः सत्य मानते हुए साफ शब्दों में स्वीकार किया कि आर्यावर्त से मिस्र देश में फिर वहां से ईरान और Chaldia में वहां से युनान में फिर योरुप चीन और अमेरिका में सब विद्याओं का शनैः शनैः प्रचार होता गया। सच्ची बात तो यह है कि महर्षि दयानन्द जी महाराज ने सत्यार्थ प्रकाश जैसा अमर ग्रन्थ लिख कर अपने त्रिकालदर्शी होने की छाप संसार पर लगा रखी है। जो भी इस अपूर्व ग्रन्थ को पढ़ेगा महर्षि की विद्या, तप, योगबल, ब्रह्मचर्य का सिक्का माने बिना न रह सकेगा। इसलिये महर्षि न केवल तीन आँखें रखते थे अपितु त्रिकालदर्शी थे।

५—पाँडीचरी का योगी अरविन्दघोष महर्षि की दिव्य दृष्टि के विषय में यूं कहता है—

महर्षि के व्यक्तित्व को व्याख्या यूं की जा सकती है कि वह एक ऐसा मनुष्य था जिस की आत्मा में परमात्मा की अनुभूति, आँखों में दिव्य तेज और हाथों में इतनी शक्ति है कि जीवन तत्व से अभीष्ट स्वरूप वाली मूर्ति घड़ सके।

६—फ़ांस का सुप्रसिद्ध लेखक रोमन रोलैंड लिखता है--आधुनिक भारत में केवल एक महाविद्वान् दिव्यद्रष्टा ऋषि दयानन्द ही ऐसा महापुरुष हुआ है जिस ने तर्क और वैदिक ज्ञान की ऐसी दृढ़ चट्टान खड़ी कर दी है कि जिस से टकरा कर पश्चिमी सभ्यता की लहरें चकनाचूर हो गईं।

७—महर्षि ने सत्यार्थप्रकाश में ये शब्द कि "विदेशी राज्य चाहे कितना ही अच्छा हो वह स्वराज्य की समानता नहीं कर सकता लिख कर अंग्रेज़ों के षड्यन्त्र पर वज्रपात कर दिया और फिर कलकत्ता से बम्बई तक और रावलपिंडी से पूना तक पूरे सोलह वर्ष तक "इडा सरस्वती महि तिस्रो देवीर्मयोभुवः बर्हिः सीदन्तु अस्रिधा:" के आधार पर सारे देश में मातृ-भूमि, मातृ भाषा और मातृ सभ्यता और संस्कृति के लिये प्रेम की एक अग्नि प्रचण्ड कर दी और इस अग्नि को सदा प्रज्वलित रखने के लिये १८७५ ई० में आर्यसमाज की स्थापना कर दी। जिस अग्नि की ज्योति को मिस्टर ए.जे, डयूसन सच्चे रूप में देखा जिस का वर्णन "विष्णु: शीर्षक नामक प्रकरण में किया जा चुका है। जिसका परिणाम यह हुआ कि अंग्रेज़ के राज्य में आर्यसमाज को विरोधी संस्था समझा जाने लगा और सत्यार्थप्रकाश ज़ब्त करने के चर्चे आरम्भ हो गये परन्तु आर्य समाज इतना शक्तिशाली था कि अंग्रेज़ों को सत्यार्थ प्रकाश पर प्रतिबंध लगाने का साहस न हुआ।

८—कुछ समय के उपरान्त बर्तानियां की मज़दूरपार्टी का नेता मिस्टर रेम्ज़े मेकडानल्ड भारत के दौरे पर आया तो आर्य समाजियों का एक शिष्टमण्डल उन को मिलने गया। बातों बातों में आर्य समाजी शिष्ट मण्डल ने यह बात कह दी कि अंग्रेज़ी शासक अकारण ही आर्य समाज को विद्रोही संस्था समझ रहे हैं। इस पर मेकडानल्ड महोदय ने उस शिष्ट मण्डल वालों से निम्नलिखित तीन प्रश्न किये—

(१) क्या आप मातृ भाषा का प्रचार चाहते हैं ?

(२) क्या आप मातृ-सभ्यता का प्रचार चाहते हैं ?

(३) क्या आप मातृ-भूमि से प्यार करते हैं ?

जब उन तीनों प्रश्नों के उत्तर हां में दिये तो मेकडानल्ड महोदय कहने लगे कि विदेशी राज्य में इन तीनों बातों का प्रचार करना

ही तो विद्रोह है और विद्रोह किसका नाम है। गोया जादू वह जो सिर चढ़कर बोले।

९—और आखिर में उस त्रिकालदर्शी महर्षि दयानन्द के बतलाए हुए मार्ग पर चल कर ही भारतीय जनता ने अंग्रेज़ों की पराधीनता के जोए को उतार फैंका और स्वराज्य शब्द जो ऋषिवर ने सर्वप्रथम लिखा था उसे सार्थक सिद्ध करने में सफल हो सके जब कि महर्षि ने अंग्रेज़ों के षड़यन्त्र को अपने भरसक प्रयत्न से तार तार कर दिया। किसी कवि ने ठीक ही कहा है।

अगर देशहितैषी हमें न जगाता तो देश उन्नति का किसे ध्यान आता,

१०—महर्षि दयानन्द जी ने अपनी दिव्य दृष्टि से अतीत को झांका था और संसार में खुले आम घोषणा की थी कि कोई समय था कि संसार में आर्यों का चक्रवर्ती राज्य था। वैदिक धर्म का प्रचार सारे संसार में था। और संस्कृत भाषा सारे संसार में बोली जाती थी। महर्षि के इस विचार को अब पश्चिमी विद्वान भी समर्थन कर रहे हैं। और सब से अधिक आश्चर्य की बात यह है कि अफ्रीका जैसे पिछड़े हुए देश में अब भी ऐसे क़बीले मौजूद हैं, जिन की बोली संस्कृत से मिलती है, और जो नित्य प्रति हवन करते हैं। जिसकी खोज अभी अभी एक विदेशी अंग्रेज देवी ने वहां जाकर स्वयं की है जो खबर संसार के सारे अखबारों में थोड़े दिन हुए छपी थी—जिसका लेख इस प्रकार है।

सारा लेटन एक नौजवान औरत जो एम. ए. पी. एच. डी. पास थी, उसने अफ़्रीका के घने जंगलों में और दल दल वाले इलाका में ऐसे कबीलों के हालात मालूम किये जो नंग धड़ग रहते हैं। परन्तु उनकी बोली में संस्कृत के शब्द पाये जाते हैं। सारा ने संस्कृत में खूब अभ्यास प्राप्त किया हुआ था। एक किताब के पढ़ने से जो एक अंग्रेज प्रोफैसर ने लिखी थी, सारा को ज्ञान हुआ कि भारत की सभ्यता तथा सदाचार भारत तक ही सीमित नहीं था बल्कि अफ्रीका

में भी इसका प्रचार था, और सारा यह जानना चाहती थी, कि अफ्रीका में आज भी भारतीय सभ्यता के चिन्ह मौजूद हैं या नहीं। वह इंगलिस्तान से वायुयान के द्वारा नैरोबी पहुंची। वहां से काफ़ला के साथ उन इलाकों में गई जहां आज भी ऐसे लोग रहते हैं जो देवताओं की पूजा करते हैं। और उनकी बोली में अधिक शब्द संस्कृत के होते हैं। इनके देवता की शकल देख कर मालूम होता है कि यह लोग भगवान कृष्ण के पुजारी हैं। यह लोग प्रति दिन सायं काल को एक स्थान पर इकट्ठे होते हैं। मूर्ति पूजा के बाद नाचते और गाते हैं। और जिस प्रकार भारत में हिन्दू हवन करते हैं, यह लोग भी प्रातःकाल आग जला कर उसमें खुशबूदार बूटियां डालते है, जिसकी सुगन्ध से वायु सुगन्धित हो जाती है। इनका विचार है कि इस भान्ति वर्षा का देवता प्रसन्न होता है। यह विचार भी यज्ञ का पद्धति से मिलता जुलता है"।

३. ब्रह्मा

जिस प्रकार विष्णु की चार भुजा शिव जी की तीन आँखें अलंकारिक हैं उसी प्रकार ब्रह्मा के चार मुख भी अलंकारिक ही हैं। और इस का यही अभिप्राय समझा जाता है। ब्रह्मा चारों वेदों के विद्वान् थे इस लिये उनके चार मुख कहे जाते हैं। इसी लिये आज तक भी जो वेदवक्ता हो उस को लोग ब्रह्मा कह देते हैं। यज्ञों में भी यज्ञ के अधिष्ठाता को ब्रह्मा की पदवी दी जाती है। वास्तव में ऐसा कोई मनुष्य संसार में कभी उत्पन्न नहीं हुआ जिसके चार मुख हों। यदि शारीरिक रूप में किसी के चार मुख हों तो वह प्राणी नींद भी नहीं ले सकेगा। क्यों कि सोते समय एक न एक मुख तो नीचे की ओर रहने से वह सो नहीं सकेगा। इसलिये वास्तविक बात यही है कि ब्रह्मा एक पदवी का नाम है जो प्राचीन काल में चारों

वेदों के विद्वान को दी जाया करती थी ।

और

इसी ब्रह्मा की पदवी के अधिकारी महर्षि दयानन्द जी थे। क्योंकि जो जो सिद्धान्त महर्षि ने वेदानुकूल निर्धारित किये आज तक उन का कोई खण्डन नहीं कर सका और मूर्तिपूजा, अवतारवाद, अद्वैतवाद, मृतकश्राद्ध, छूतछात, ऊँचनीच का भेदभाव आदि का वेद विरुद्ध होने से खण्डन किया उन का मण्डन आज तक कोई नहीं कर सका। कलकत्ता से बम्बई तक रावलपिंडी से पूना तक महाराज निरन्तर 16 वर्ष वेद प्रचार करते रहे और किसी को उन के सामने आने का साहस न हो सका।

(१) जब महर्षि ने काशी में जा कर [काशी नरेश को ललकारा कि अपने पंडितों से मेरा शास्त्रार्थ कराओ और काशी नरेश ने पण्डितों को महर्षि से शास्त्रार्थ करने पर विवश किया तो काशी के पण्डितों ने काशी नरेश को साफ कह दिया कि दयानन्द तो वेद का ही प्रमाण माँगता है परन्तु हम वेद पढ़े नहीं हैं। इस पर जहाँ काशीनरेश बड़ा आश्चर्य चकित हुआ वहाँ पण्डितों के प्रार्थना करने पर उन को पन्द्रह दिनों की मुहलत महर्षि से दिला दी ताकि इतने में पण्डित वेद देख लेंगे। मानो कि काशी के पण्डितों ने स्वयं स्वीकार कर लिया था कि महर्षि वेदों के विद्वान् हैं। इसी को कहते हैं—

जादू वह जो सिर चढ़ बोले क्या मतलब जो ग़ैर पर्दा खोलें।

(२) योरुप और अमेरिका के वेदों के विद्वानों में शिरोमणि प्रोफ़ेसर मैक्समूलर भी महर्षि को ब्रह्मा ही मान कर लिखते हैं।

"स्वामी दयानन्द एक महान् विद्वान् थे। उन के धर्म, नियमों की नींव ईश्वरकृत वेदों पर थी। उन्हें वेद कण्ठस्थ थे। उन के मन और मस्तिष्क में वेदों ने घर किया हुआ था। वर्तमान समय में संस्कृत का एक ही बड़ा विद्वान् साहित्य का पुतला वेदों के महत्व

समझने वाला, प्रबल युक्ति-युक्त विचारक यदि कोई भारत वर्ष में हुआ है तो वह महर्षि दयानन्द सरस्वती था।"

३—फ़ांस के संस्कृत के प्रोफेसर "प्राचीन भारत के धर्म" नामक अपनी पुस्तक के पृष्ठ 45 में लिखते हैं :—

"उन्नीसवीं शताब्दी में एक बार फिर महर्षि दयानन्द जैसे विद्वान् की कृपा से वेद सत्यज्ञान के पुस्तक के रूप में उभरे हैं। फिर इसी पुस्तक के पृष्ठ 107 पर लिखते हैं कि आर्यसमाज के प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द ने दुनियां के सामने वेद के मन्त्रों से ईश्वर की एकता और धर्म और सदाचार के स्वच्छ सिद्धान्त रखने की कृपा की है।

४—फ्राँस का विख्यात विद्वान् लेखक रोमन रोलैण्ड लिखता है" महर्षिदयानन्द वेदों और संस्कृत का अद्वितीय विद्वान् था जबकि उसके विरोधी उसके सामने नहीं के बराबर थे।

देश-विदेश के विदानों की ऊपर लिखित सम्मितियों से महर्षि दयानन्द ब्रह्मा ही सिद्ध होते हैं। इस में किञ्चितमात्र भी सन्देह नहीं है।

देवता काण्ड समाप्त

———

३. रामायण काण्ड

४. भगवान राम

भगवान राम राजा दशरथ की आज्ञा से चौदह वर्ष बनवास में रहे, परन्तु सती साधवी सीता और प्राण निछावर करने वाला भाई लक्षमन उनके साथ गये थे और साथ रहे।

और

भगवान दयानन्द भी राजा दशरथ की आज्ञा से चौदह वर्ष बनवास में रहे पर अकेले ही रहे।

अथर्व वेद १०. २. ३१. में मन्त्र आता हैं—

अष्ट चक्रा नव द्वारा देवानाँ पूर अयोध्या।
तस्यां हिरण्यः कोषः स्वर्गों ज्योतिषः आवृतः ॥

अर्थात् आठ चक्र और नौ द्वारों वाली देवताओं की पुरो अयोध्या है, इस में प्रकाश स्वरूप कोष हैं, और स्वर्ग है। क्योंकि वह ज्योति स्वरूप परमात्मा से व्याप्त हो रही है। यह मनुष्य शरीर का ही वर्णन है, जिसमें आठ चक्र और नौ द्वार होते हैं। और इसका राजा आत्मा है, जिसको दशरथ इसलिए कहते हैं कि पांच ज्ञान इन्द्रियां और पांच कर्म इन्द्रियां इसके रथ रूप हैं। इसलिए कहा जाता है—

राम राम सब कोई कहे दशरथ कहे न कोय।
एक बार दशरथ कहे तो पार अतारा होय ॥

यानि अपनों आत्मा को जान लेना ही मनुष्य जीवन का उद्देश्य हैं और महर्षि दयानन्द भी अपने आत्मा की आवाज़ पर

सच्चे शिव के दर्शन करने और मृत्यु पर विजय पाने के संकल्प को लेकर भरी जवानी में, ऐश वा आराम से भरे घर और मां बाप के प्यार को ठुकरा कर ऐका एकी २१ वर्ष की आयु में जब कि विबाह को तैयारियां हो रही थीं शाम के धुंधले में घर से निकल खड़े हुए। और राम की तरह पूरे चौदह साल बनवासी रहे। किसी ने ठीक कहा है—

न सुघ वुध की ली, और न मंगल की ली।
घर से निकल राह जंगल की ली ॥

संवत १९०३ मुताबिक १८४६ को वह घर से निकले और संवत १९१७ मुताबिक १८६० को वह मथरा गुरू विरजा नन्द जी के आश्रम में पहुँचे।

२. भगवान राम को घर वापिस ले जाने के लिए भरत जी उन के पास चित्र कूट पहुचे और बहुत मिन्नत समाजत करके उन को वापस ले जाना चाहा। लेकिन भगवान राम वापस जाने पर राज़ी न हुए और उन्होंने कहा कि हम अपने पिता राजा दशरथ के वचना नुसार चौदह साल पूरे करके ही वापस आएँगे।

और

भगवान दयानन्द को भी घर वापस ले जाने के लिए उनके पिता जी ने प्रयत्न किया। घर से निकल कर इस विचार से कि घर वालों को पता न लग सके, भगवान दयानन्द ने अपना नाम और वेश बदल लिया था नाम रखा था शुद्ध चैतन्य और ब्रह्मचारियों के पीले वस्त्र धारण कर लिए थे और सिद्ध पुर के मेले में योगियों की तलाश में आए हुए थे. कि उनके पिता श्री कर्षण जी को कहीं से पता लग गया तो वह भी अपने प्यारे पुत्र की तलाश करने के लिए पांच छः सिपाही साथ लेकर मेला सिद्ध पुर में पहुंच गये। और जब इनका अपने पुत्र से मिलाप हुआ तो उस समय की

वार्ता महर्षि खुद अपने स्वलिखित जोवन चरित्र में इस तरह लिखते हैं। "पिता के संकल्प" मुझ को वापस ले जाने के समान मेरा संकल्प घर वापस न जाने का अविचलित था, इसलिए मैं सिपाहियों के हाथ से निकलने का मौका ढूँढने की तलाश में था। (क्योंकि महर्षि के पिता जी ने अपने पुत्र पर सिपाहियों का दिन रात्त कड़ा पहरा लगा रखा था ताकि यह फिर भाग न जाय) घटना वश उसी रात्रि को ही मुझे मौका मिल गया। जब रात्रि के तीन बजे तो मेरे रक्षक मुझे को सोया हुआ समझ कर आप भी सो गये, तब मैं अच्छा मौका देख कर धीरे धीरे उठा और लोटा हाथ में लेकर थोड़ी दूर बैठा बैठा चल कर वहाँ से निकला और मेरे भागने का समाचार पाने से पहले ही मैं एक मील दौड़ गया । मार्ग में जाते जाते मूझे एक वड़ का पेड़ दिखाई दिया। इस पेड़ के नीचे पहुंच कर देखा कि इस वृक्ष की शाखें एक देव मन्दिर के ऊपर झूल रही हैं तो मैं जल्दी से इसके ऊपर चढ़ गया और इसकी जो घनी शाखें मन्दिर के ऊपर लटक रही थीं उन में छिप कर बैठ गया। और यह प्रतीक्षा करता रहा कि अब भविष्य में क्या होता है। उषा काल होने पर मैंने इस गुम्बज़ के छिद्र से देखा कि सिपाही लोग मुझे ढूंढते हुए इधर उधर दौड़ रहे हैं। वह घूमते २ उसी मन्दिर के अन्दर आ पहुंचे, मैं उस वक्त अपने श्वास रोक कर बिल्कुल चुप चाप होकर बैठ गया । जब सिपाही लोग मन्दिर के अन्दर और बाहर अच्छी तरह देख भाल कर मेरा पता न पा सके तो वह वापस चले गये, मैंने यह समझ कर कि कहीं फिर फंस न जाऊं सारा दिन उसी जगह पर बैठ कर काटा। शाम होते ही मैं वृक्ष से नीचे उतरा और प्रसिद्ध रास्ते से न चल कर उल्टे मार्ग पर चलना शुरू कर दिया और रास्ते में किसी से भी रास्ता न पूछा और मैं अहमदाबाद पहुंच गया, वहां से तुरन्त ही मैं वड़ौदा को ओर चल दिया।'

जिस तरह भगवान राम अपने संकल्प पर अविचलित रहे,

उस प्रकार भगवान दयानन्द भी अपने संकल्प पर अविचलित रहे और "रघुकुल रीति सदा चलि आई, प्राण जाय पर वचन न जाई॥ दोनों महापुरुषों के जीवन में एक जैसा ही चरितार्थ होता है, क्योंकि दोनों ने ही दशरथ के साथ किया हुआ वचन पूरा किया।

बनवास में भगवान राम भी योगियों के दर्शन करते रहे। परन्तु उनके साथ सती साध्वी सीता जैसी पतिव्रता धर्म पत्नी और प्राण न्योछावर करने वाले लघु भ्राता लक्ष्मण थे, जिससे उनको बनवास में इतनी तकलीफ बरदाशत न करनी पड़ी। और इस जमाने में ऋषि मुनि योगी बहुत बड़ी तादाद में बनों में आसानी से मिल जाते थे, और भगवान राम को उनकी तलाश करने में कोई तकलीफ बरदाशत नहीं करनी पड़ी थी।

और

महर्षि दयानन्द क्योंकि एकाएकी वनवास में विचरते थे इस लिए उन को घोर कष्ट सहन करने पड़े। जिसके कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं। ताकि आपको पता लग सके कि संसार के कल्याण के लिए भगवान् दयानन्द ने कितनी घोर तपस्या की थी। जहां भगवान् राम को योगी जन आसानी से मिलते रहे वहाँ भगवान् दयानन्द को योगियों को तलाश करना पड़ा और इस तलाश में नाकाबिल बयान दुख उठाने पड़े।

घर से निकल कर पहले तो गृहस्थ के कपड़े उतार कर ब्रह्मचारी बने और पीले वस्त्र धार कर अपना नाम शुद्ध चैतन्य रखा फिर जब ब्रह्मचारी होने के कारण विद्या और योग सीखने में बाधा पड़ती देखी तो संवत् १६०५ में घर से निकले २ बर्ष के बाद पूरे २३ साल की आयु में स्वामी पूर्णानन्द जी से सन्यास ग्रहण करके स्वामी दयानन्द नाम रखा कर बिना खटके अब बन वन विचरने लगे। तथा योगियों की तलाश में जहाँ जहाँ भी उन को खबर मिलती

चले जाते रहे, संवत् १९१२ में हरद्वार के कुम्भ में भी योगियों की तलाश में आए और कुम्भ की समाप्ति पर बद्रीनारायण तक जाने का संकल्प कर लिया। क्योंकि पता लगा कि इस इलाकामें पहाड़ों की कन्दराओं में योगी मिल जाते हैं अर्थात् हरद्वार से चल कर टीहरी, गढ़वाल, श्री नगर, केदार नाथ, रुद्र, प्रयाग, शिवपुरी आदि होते हुए तुंग नाथ जब वहुँचे तो योगियों की तलाश में पहाड़ों में घूमने लगे, इस भ्रमण का वर्णन महर्षि स्वयं लिखते हैं।

(१) "कि जब मैं पहाड़ से नींचे उतरने लगा तो मैंने अपने सामने दो मार्ग देखे एक मार्ग पश्चिम की ओर और दूसरा दक्षिण पश्चिम की ओर जाता था, मैं यह स्थिर न कर सका के उन मार्गों में से मुझे किस मार्ग पर जाना चाहिए। अन्त में मैं इस मार्ग की ओर चल दिया जो जंगल की ओर जाता था। कुछ दूर ही बढ़ा था कि मैं एक घने जंगलमें घुस गया। जंगल में कहीं कही बड़े बड़े ऊँचे नीचे पाषाण खण्ड थे और कहीं जल हीन छोटी छोटी नदियां थीं, थोड़ी दूर और आगे चलने पर मैंने देखा कि वह मार्ग रुका हुआ है। वहां किसी तर्फ भी और कोई मार्ग न पाकर मैं सोचने लगा कि ऊपर चढ़ूं या नीचे जाऊँ, यदि ऊपर चढ़ता हूं तो अनेक विघ्न बाधाओं का सामना करना होगा। और सम्भव है कि ऊपर चढ़ते चढ़ते ही रात्रि हो जाय। अतः मैंने नीचे उतरना ही युक्ति युक्त समझा और घास के गुच्छों को दृढ़ता से पकड़ कर धीरे धीरे नीचे उतरने लगा। थोड़ी देर बाद मैं एक सूखी नदी के तट पर जा पहुँचा। इस के बाद मैं एक ऊंची पत्थर की चट्टान् पर खड़ा हो कर चारों ओर देखने लगा। मैंने देखा कि चारों ओर ऊंची ऊंची भूमि, छोटे छोटे पर्वत और मनुष्य के लिए अगम्य और मार्गहीन वन था। इस समय सूर्य भी अस्त होनें को तैयार था। इस वक्त मेरे मन में यह आन्दोलन हो गया कि जल्दी अंधेरा छा जायगा और अन्धेरे में मुझे इस घोर

जंगल में जहां न कोई मनुष्य है न आग जलाने का सामान, यहां अकेले ही रहना पड़ेगा इस वक्त सिवाय उत्कट पुरुषार्थ का सहारा लेने के और कोई उपाय न था। इस लिए यद्यपि इस दुर्गम वन में मेरे वस्त्र आदि फट गये थे और शरीर बहुत थक गया था और पांव कांटों से छलनी हो गये थे और इस कारण मैं लंगड़ों के समान चलता था तथापि मैं केवल प्रबल पुरुषार्थ के प्रभाव से उसे पार कर गया। अन्त में एक पर्वत के पादामूल में आ कर मैंने एक मार्ग देखा। यद्यपि चारों ओर अन्धकार फैल गया था तथापि मैंने कुछ सोच विचार न करके वही मार्ग पकड़ लिया और धीरे धीरे आगे बढ़ने लगा। कुछ दूर आगे बढ़ कर कुछ कुटिया नजर आई। कुटी वालों से पछने पर पता लगा कि यह मार्ग ओखी मठ को गया है। मैं भी ओखी मठ की ओर चल पड़ा और कुछ देर में वहां पहुँच गया और ओखो मठ में रात्रि बिता कर प्रातःकाल उठ कर फिर योगियों की तलाश में चल खड़ा हुआ।

(२) ओखी मठ से जोशी मठ, अलख नन्दा स्रोत, वसुधारा होते हुए बद्री नारायण पहुँच गये, इस वक्त स्वामी जी तीस वर्ष के हो चुके थे, बद्री नरायण के मुख्य पुजारी को रावल जी कहते हैं। स्वामी जी ने उन से पूछा कि यहां आस पास कोई योगी भी रहते हैं तो उन्होंने कहा कि सुना है एक योगी रहते हैं और कभी कभी मन्दिर में भी आ जाते हैं। यह बात सुन कर स्वामी जी उस योगी की तलाश में निकले जिसका वर्णन वह स्वयं करते हैं।

"एक दिन सूर्य के निकलते ही मैं बद्रीनारायण के मन्दिर से बाहर निकला और पर्वत के नीचे नीचे चलने लगा तो अन्त में अलखनन्दा के तटपर जा पहुँचा। अलखनन्दा के उस पार बड़ा माना ग्राम दिखाई देने लगा, परन्तु उस पार जाने की मेरी इच्छा न थी, मैं पहाड़ के नीचे नीचे ही चलता रहा और वन की ओर अलखनन्दा के साथ साथ चलने लगा। पर्वत और पर्वत के नीचे का मार्ग सब

ही मोटी बर्फ से ढका हुआ था। इस कारण मैंने बहुत ही कठिनता से इस मार्ग का अतिक्रमण किया और अलखनन्दा के उत्पत्ति स्थान पर पहुंच गया। वहां मैंने देखा कि चारों ओर गगन भेदी पर्वत माला खड़ी है। एक तो वह स्थान अपरिचित था, और दूसरी ओर चारों ओर पहाड़ और किसी ओर भी कोई मार्ग न पाकर कुछ देर मैं ऐसे ही घूमता रहा फिर नदी की दूसरी ओर जाकर मार्ग का पता लगाने का निश्चय किया। इस समय मैं साधारण पतला कपड़ा पहने हुए था और वहां का शीत असह्य था। इस पर भूख और प्यास से शरीर कलन्त हो रहा था। भूख मिटाने के लिए मैंने एक बर्फ का टुकड़ा गले से नीचे उतारा परन्तु इस से कुछ भी न हुआ। इसके बाद मैं नदी को पार करने के लिए नदी में उतर पड़ा। नदी की तली छोटे मोटे बर्फ के टुकड़ों में भरी पड़ी थी, इन नुकीले बर्फ के टुकड़ों से मेरे पांव लहू लुहान हो गये, और लहू बहने लगा। लहू बहने से कमजोरी होने लगी और शिद्दत की सर्दी से बेहोशी होती जा रही थी। मेरे पैर डगमगाने लगे और कई दफ़ा मैं गिरने को हुआ तो मेरे मन में विचार आया त्रा कि शायद अलखनन्दा में ही प्राण देने होंगे, मेरा शरीर इस वक्त इतना निर्बल हो गया था कि मैं एक बार भी अलखनन्दा में गिर पड़ता तो फिर मेरा उठना मुशकिल हो जाता। इस लिए भरपूर उत्साह करके में नदी के दूसरी पार पहुंच हो गया, इस वक्त मेरी दशा मृतवत थी, मैं ने जल्दी जल्दी अपने शरीर पर से कपड़े उतारे और इनकी पट्टी बना कर तलवों से लेकर घुटनों तक बाधी, इस वक्त मैं बहुत थका हुआ था और भूख भी जोर से लग रही थी और मुझ में चलने की शक्ति भी न थी, परन्तु मैं कुछ देर विश्राम करके चल पड़ा और रात के आठ वजे वापस बद्रीनारायण पहुंच गया, परन्तु कोई भी योगी न मिला। और दूसरे दिन बद्रीनारायण से प्रस्थान कर जंगलों और पहाड़ों को पार करते

हुए राम पुर आ पहुंचा।

(३) जब महर्षि योगियों की तालाश में नरबदा नदी के उत्पत्ति स्थान की ओर अग्रसर हुए तो उनको बहुत ही घोर और घने जंगलों में से गुजरना पड़ा, तथा वह स्वयं लिखते हैं—"कि जब मैं एक घने जंगल में से गुजर रहा था कि एक बहुत बड़ा काला रीछ मेरे सामने आकर खड़ा हो गया वह गर्ज कर अपनी पिछली टांगों पर खड़ा हो गया और मुझे खाने के लिए अपना मुंह खोला, मैंने अपनी पतली लाठी धीरे धीरे इसके मुख पर मारने के लिए उठाई, इसे देख कर न जाने किस कारण वह रीछ पीछे हट कर चला गया। अनेक फूल के वृक्षों और अनेक प्रकार की काँटें दार झाड़ियों से वह जंगल भरा हुआ था, किसी ओर से भी इस जंगल से निकलने का रास्ता नहीं था, कुछ दूर तक बैठे बैठे और कुछ दूर तक घुटनों के बल चलना पड़ा। कुछ देर इसी तरह चल कर मैं इस घोर जंगल से बाहर तो निकल आया, परन्तु मेरे सारे कपड़े फट गये और काँटे लगने से मेरे शरीर के बहुत से भागों से लहू बहने लग पड़ा। भूख के सबब और शरीर से लहू बहने के कारण मेरा शरीर दुर्बल हो रहा था और इधर सूर्य भी अस्त होने को तैयार था पर मैं पूरे उत्साह से काम लेकर नदी किनारे पहुंच गया।"°

(४) भगवान राम लक्ष्मण और सीता बनवास में एक दफा एक ऋषि आश्रम में पहुंचे तो भीलनी ने बड़े प्रेम से इनका स्वागत किया और मीठे मीठे बेर इनको अर्पण किये जो भगवान् राम ने भीलनी के छोटी जाति में उत्पन्न होने का विचार न करके उसके प्रेम उपहार को स्वीकार कर वह बेर बड़े प्रेम से खाकर भीलनी का कृतार्थ किया। और इसी तरह भगवान् कृष्ण के सहपाठी सुदामा ब्राह्मण ने जब भगवान कृष्ण को तंदुल (चावल) भेंट किये तो उन्होंने भी सुदामा की गरीबी की तर्फ़ न देखकर सुदामा के प्रेम भरे उपहार

को बड़े प्रेम से स्वीकार कर वह चावल खा लिए । भगवान राम और कृष्ण प्रम के ही भूखे थे ।

और

इसी तरह भगवान दयानन्द भी प्रेम के भूखे थे । भगवान राम और भगवान कृष्ण जी के वक्तों में इतना छूत-छात और ऊंच नीच का बखेड़ा न था, परन्तु भगवान दयानन्द के ज़माने में ये सब इतना भयंकर रूप में इस देश में था कि यू. पी. के लोग तो चूल्हे में लकड़ियां भो धोकर जलाया करते थे परन्तु भगवान दयानन्द के जीवन की निम्नलिखित घटनाएं इनके मनुष्य मात्र से प्रेम का दर्शण कराती हैं ।

(५) सम्वत् १६६८ में जब महाराज दूसरी वार फर्रुखाबाद पधारे तो एक दिन सुखवासी लाल साधु स्वामी जी के लिए कढ़ी और भात बनवा कर लाया और महाराज ने उसे खा लिया। इस पर ब्राह्मणों ने कहा कि आप भ्रष्ट हो गये हैं जो साधू के घर का भोजन खा लिया । महाराज ने उत्तर दिया कि भोजन दो प्रकार से भ्रष्ट होता है । एक तो अगर किसी का दुख देकर धन प्राप्त किया जावे, और उससे अन्नादि खरीद कर भोजन बनाया जावे। दूसरे भोजन मलीन हो अथवा उस में कोई मलीन वस्तु गिर जावे । साधु लोगों का परिश्रम का पैसा है, इसये प्राप्त किया हुआ भोजन उत्तम है । इस पर ब्राह्मण लोग निरुत्तर हो गये ।

(६) सम्वत् १८७० में भगवान दयानन्द अनूप शहर पधारे तो एक दिन एक नाई अपने घर से महाराज के लिए भोजन बना कर लाया और महाराज से प्रार्थना की कि आज तो मेरी भिक्षा ही स्वीकार कीजिए, महाराज ने बड़े प्रेम से उसको स्वीकार कर लिया और भोजन पा लिया । उपस्थित लोगों ने कहा—महाराज यह तो नाई की रोटी है, परन्तु महाराज ने हंसी में कह दिया कि यह नाई

को रोटी नहीं यह तो गेहूं को रोटी है।

(७) इसी साल जब भगवान दयानन्द छलेसर पधारे तो महाराज के लिए भोजन ठाकुर मुकन्द सिंह जो के घर से आया करता था। एक दिन महाराज चबूतरे पर विराजमान थे, अभी तक उनके लिए भोजन नहीं आया था, एक किसान मक्की की दो मोटी मोटी रोटियां लेकर अपने घर से आ रहा था, जब वह इस चबूतरे के पास पहुँचा जहां महाराज विराजमान थे तो इसके मन में रोटियों को महाराज की सेवा में अर्पण करने की इच्छा हुई उसने नम्रता पूर्वक नमस्कार करके निवेदन किया कि महाराज आज मेरी रूखी सूखी रोंटियां स्वीकार कीजिए। महाराज ने कृपा पूर्वक उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और उसके भोजन कों बड़ी प्रसन्नता से पा लिया। किसान महाराज के इस प्रेम के लिए तथा कृपा से गद्‌गद् हो गया, सच है महापुरुष सब संसार से प्रेम किया करते हैं किसी कवि के वाक्य मशहूर हैं जिसमें दूसरा मिसरा फिट हो गया—

भीलनी के बेर सुदामा के तंदुल हंस हस भोग लगाए।
नाई की रोटी को स्वामी दयानन्द बड़े प्रेम से खाए॥

(४) भगवान राम और लक्ष्मण जब सीता स्वयंवर जीत कर वापस अयोध्या आ रहे थे तो रास्ते में परशुराम जी उनको मिले और दोनों भाइयों से बहुत क्रोध से बात चीत करके लड़ने को तैयार हुए कि भगवान राम ने अपनी तीव्र बुद्धि से उनकी युद्ध की प्रवृत्ति वाली विचार शक्ति को हर लिया था और पशुराम जी खिसयाने होकर चुपचाप वापस चले गये थे।

और

इस तरह महर्षि दयानन्द के सामने भी जो पंडित मौलवी पादरी, शास्त्रार्थ के लिए आऐ थे वह भी उनकी विचार शक्ति को हरण कर लिया करते थे और कई वार तो मुखालफ महाराज के सामने काँपने

लग जाते थे। जौलाई सन् १८७६ में जब महाराज मुरादाबाद पधारे तो एक दिन तीन पंडित स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने के विचार से उनके पास आए परन्तु शास्त्रार्थ करना तो अलग रहा, स्वामी जी को देख कर ही काँपने लगे, और उनके मुंह से बात तक निकलनी कठिन हो गई।

(२) प० खड़क सिंह, पादरी बेरंग के उपदेश से ईसाई हो गये थे और उन को ईसाई हुए बारह वर्ष हो चुके थे, और वह ईसाई धर्म के बड़े भारी प्रचारक बन गये थे अर्थात् पादरी साहब ने स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने को इन्हें बुलाया और वह अमृतसर पहुंच गये। इधर पादरी के पक्ष वाले खुश हो रहे थे के अब पादरी खड़क सिंह आ गये हैं, स्वामी जी से खूब शास्त्रार्थ होगा और यह दयानन्द को परास्त करके ईसाईयों का सिर ऊंचा करेंगे परन्तु Man proposes & God Disposes के अनुसार परमेश्वर की लीला और ही हो रही थी। पादरी खड़क सिंह बाबू संघो के मकान पर बाबू ज्ञान सिंह से मिले और उनसे पूछा कि आप जानते हैं कि वह कौन हैं कि जिस से शास्त्रार्थ करने को मुझे बुलाया गया है। बाबू ज्ञान सिंह ने कहा कि इनका नाम स्वामी दयानन्द सरस्वती है, और वह सरदार भगवान सिंह के बाग के ठहरे हुए हैं आप जरूर उनको मिलिये। एक दिन शाम को चार बजे के करीब बाबू ज्ञान सिंह पादरी खड़क सिंह को स्वामी जी के स्थान पर ले गये। पादरी खड़क सिंह प्रणाम करके स्वामी जी के नज़दीक बैठ गये, इसके बाद जो दृश्य बाबू ज्ञान सिंह ने देखा उस को देखकर वह हैरान हो गये। हुआ यह के स्वामी जी महाराज से एक ब्राह्मण धर्म विषय पर बात चीत कर रहा था। स्वामी जी इसके प्रश्नों का उत्तर दे रहे थे। परन्तु अब पादरी खड़क सिंह उनको उत्तर देने लग पड़े। तब ब्राह्मण ने कहा कि मैं तो स्वामी जी से बातें कर रहा हूं आप बीच में क्यों बोलते हैं तो खड़क सिंह जी ने कहा कि यदि मेरे उत्तर से आप की सन्तुष्टि न होगी तो

स्वामी जी से पूछ लेना। उसी वक्त से खड़क सिंह जी ईसाई न रहे थे। महाराज के दर्शन करने से ही इनका पार उतारा हो गया और वैदिक धर्म का प्रचार करने लग गये।

(३) सम्वत् १९३६ में स्वामी जी महाराज हरद्वार में कुम्भ पर लगातार २१ फरवरी १८७९ से १६ अप्रैल १८७९ तक रात दिन परिश्रम करने के कारण कुछ रोगी हो गये थे, और उन को दस्त आने लगे थे और कुछ दिन आराम करने के लिये वह देहरादून आ गये और जब रोग का वेग कुछ कम हुआ तो फिर प्रचार आरम्भ कर दिया। एक दिन बाईबल और कुरान की समालोचना कर रहे थे कि पादरी मारसन साहब बड़े क्रोध में आ गये, और व्याख्यान की समाप्ति पर अण्ड बण्ड बोलने लग पड़े, तब उनके ही साथी एक अंग्रेज़ ने इनको समझाया कि पादरी साहब जिस सभ्यता से स्वामी जी बात कर रहे हैं आप भी वैसे ही बात चीत करें। इस पर पादरी साहब इस अंग्रेज़ से भी उलझ पड़े और कहने लगे कि मैं ठीक बोल रहा हूं अगर आप स्वामी जी को ठीक समझते हैं तो आप भी इनके साथ मिल जावें। इतना कह कर वह सभा से उठ कर चले गये।

(४) इसके बाद एक और विचित्र घटना हुई—दो अंग्रेज़ सज्जन जिनके नाम पारमर और गारटन थे स्वामी जी से बात चीत करनी चाहीं सो महाराज ने स्वीकार कर ली परन्तु बीच में मिशन स्कूल के हैड मास्टर बिपन मोहन बोस ने टांग अड़ा दी और स्वामी जी महाराज़ के सामने बाईबल का मण्डन करने लगे और स्वामी जी महाराज उन का उत्तर दे ही रहे थे कि गार्टन साहब ने भी बोस साहब का ही खण्डन करना शुरू कर दिया। सब लोगों का इस अद्भुत दृश्य को देख कर मनोरंजन भी हुआ और आश्चर्य भी शाम के आठ बजे से दस बजे तक यह दृश्य चलता रहा।

यह थी भगवान राम की तरह महाराज दयानन्द में अद्भुत

शक्ति जिससे वह अपने विपक्षियों की विचार शक्ति को हरण कर लिया करते थे ।

(५) सन् १८७७ में जब महाराज मेरठ में थे तो एक दिन एक निदी नाम के पंडित स्वामी जी के पास शास्त्रार्थ करने की नीयत से से आए जब वह स्वामी जी के पास पहुंचे तो स्वामी जी ने मुस्कराते हुए पूछा कि पण्डित जी कैसे आए तो उसके उत्तर में जो कुछ पण्डित जी ने कहा वह किसी की समझ में नहीं आया क्योंकि पण्डित जी की घिग्घी बन्ध गई थी और एक अक्षर भी उनके मुख से स्पष्ट न निकल सका, इस पर पास बैठ हुए सब लोग हँस पड़े और पण्डित जी लज्जित होकर वापस चले गये।

रावण राक्षस सीता को चुराकर ले गया था और भगवान राम उसको मार कर सीता को ले आए थें।

और

पुराणो के अन्दर एक कथा आती है कि शंखासुर वेद चुरा कर ले गया था और स्वामी जी महाराज शंखासुर राक्षस को मार कर वेद ले आए थे, जिसकी कथा इस तरह से है।

जब महाराज सन् १८७९ में शाहजहांपुर पधारे थे, तो एक दिन पंडित लक्ष्मी नारायण एक विज्ञापन देख कर महाराज के पास मूर्ति पूजा पर शास्त्रार्थ करने के लिए आया; महाराज ने इससे कहा कि मूर्ति पूजा के समर्थन में कोई वेद का प्रमाण दीजिए, तो शास्त्री जी बोले. महाराज वेद का प्रमाण कहा से दूं, वेद तो शंखासुर ले गया। महाराज ने वेद का पुस्तक उनके सामने रख कर कहा कि हमने आपके आलस्य और प्रमाद के शंखासुर का बध कर के वेद जर्मनी से मंगाए हैं, इन में से खोज कर कोई प्रमाण दीजिए तब पंडित जी को मौन रहने के सिवाय कोई उपाय न सूझा और सारी सभा हँस पड़ी।

७— भगवान राम ने अपने आत्म विश्वास के बल पर अपने भाई भारत से फ़ौजी इमदाद न लेकर लंकापुरी पर चढ़ाई करके रावण को पराजय कर लिया था।

और

इसी तरह भगवान दयानन्द ने अपने आत्म विश्वास के बल पर काशी पुरी पर चढ़ाई कर के अविद्या अन्धकार के रावण को पराजय कर लिया था।

निज धाम को वापसी

८—भगवान राम रावण पर विजय प्राप्त कर दीवाली को निज धाम अयोध्यापुरी पधारे थे। और घर घर दिये जलाए गए थे।

और

इसी हरत भगवान दयानन्द भी अविद्या अन्धकार रूपी रावण पर विजय प्राप्त कर के ३० अक्तूबर १८८३ को दीवाली की रात को अपने निज धाम तथा मोक्ष धाम को पधारे थे। और घर घर दिये जलाए गये थे।

पैग़ाम वेद पाक का दे खास आम को।
दुनियां से भी गये, तो दीवाली शाम को॥
"बोलो भगवान राम और भगवान दयानन्द की जय"

५. लक्ष्मणयती

१—राम के साथ अपनी निज पत्नी को त्याग कर लक्ष्मण का बन को जाना उस के पर्ण संयम शीलता को प्रकट करता है। परन्तु जिस वक्त रावण ने सीता का हरण किया और सीता की खोज करते हुए मार्ग में पड़े हुए कुछ भूषण मिले तो राम जब लक्ष्मण से पूछने लगें कि हे लक्ष्मण तुम इन भूषणों को पहचानते हो यह सीता के ही हैं तो उत्तर में लक्ष्मण कहता है (बाल्मिकी रामायण किस्किन्धा काण्ड (५—१२)

नाहं जानामि केयूरे न अहम जानामि कुंडले ।
नूपुरे त्वाभिः जानामि, नित्यपादाऽभिवन्दनात् ॥

अर्थात् मैं सीता के बाहूभूषण को नहीं जानता और न ही कानों के कुण्डलों की ही पहचान कर सकता हूँ । मैं तो सिर्फ पांव के ही भूषण पहचानता हूँ । वह भी नित्य सीता के चरणवन्दना करने से ।

अहो कितना सदाचार है. चौदह वर्ष साथ रहे और आंख उठा कर सीता को न देखा ।

(२) जब सरूपनखा ने पंचवटी में आकर राम के सामने विवाह का प्रस्ताव रखा और उन्होंने नामंजूर कर दिया । तो वह लक्ष्मण के पास गई और उसके सामने भी अपने साथ विवाह करने का प्रस्ताव रखा तो लक्ष्मण ने कहा—

सांच कहुं सुन लेहु निशाचरी, तू जननी मेरी भई तब से ।
काम के भाव धरी मन में, श्री राम के पास गई जब से ॥

अर्थात् जब तू राम के पास विवाह का प्रस्ताव लेकर गई थी तभी से तू मेरी माता के समान हो गई है, इस लिए मेरे साथ तेरे विवाह का तो कोई प्रश्न ही नहीं पैदा होता ।

(३) फिर बाल्मीकि रामायण किष्किन्धा कांड श्लोक ३३—३५ में लिखा है—कि तारा नाम की वाली पत्नी को देख कर ही उदासीन भाव अर्थात् उपेक्षा से लक्ष्मण औरग मुख यानि दूसरी तर्फ मुंह करके खड़ा हो गया । ऐसा सदाचारी होने से लछमन यति मशहूर हो गया ।

ऐसे ही महर्षि दयानन्द भी यति थे ।

१—जब महाराज मथुरा में गुरु विरजानन्द जी से विद्या प्राप्त कर रहे थे तो एक दिन ऐसी घटना हुई—कि महाराज यमुना की रेत में समाधि लगाये बैठे हुए थे । एक देवी यमुना में स्नान करने आई, और उसने स्नान करके दयानन्द के चरणों में मस्तक

रखकर बड़ी श्रद्धा से नमस्कार किया। दयानन्द कभी स्त्री स्पर्श न करते थे वह एक दम चौंक पड़े,समाधि खुल गई और माता माता कहते हुए उठकर दूर चले गये। और स्त्री स्पर्श का प्रायश्चित करने के लिये वह गोवर्धन पर्वत की ओर गये और एक निर्जन स्थान में तीन दिन और तीन रात निराहार रह कर समाधि लगाई और प्रायश्चित पूरा किया। जब वह गुरु देव के पास आए तो उन्होंने गैर हाज़िरी का कारण पूछा—उन्होंने सब कथा सुनाई तब गुरु देव बहुत प्रसन्न हुए।

(२) संम्वत् १८७४ में जब महाराज सूरत पधारे, तो वहां के एक मठधारी मोहन बाबा की उन पर बहुत श्रद्धा हो गई, उनके आग्रह करने पर वह उनके स्थान पर गये। मोहन बाबा ने अपने स्थान को ऐसे सजाया हुआ था जैसे लाट साहब का स्वागत करना हो। जब स्वामी जी पण्डित नर्बदा शंकर, दुर्गाराम मोता और पं० कृपाराम को लेकर मोहन बाबा के मठ पर गये, तो मोहन बाबा नें बड़े प्रेम और श्रद्धा से इनका स्वागत किया। महाराज को ऊचे आसन पर बिठाया और फूल मालाओं से लाद दिया, और पुष्प वर्षा तथा चन्दन वर्षा भी की, मोहन बाबा के चेले चेलियां भी महर्षि के दर्शन के लिए पधारे थे। परन्तु चेलियों को अलग कमरे में बिठाया गया था। जब मोहन बाबाने महाराज से आग्रह किया कि वह उनकी चेलियों को भी दर्शन देवें तो उन्होंने इन्कार कर दिया, तब पंडित नरबदा शंकर ने महाराज से कहा कि आप जितेन्द्रिय पुरुष हैं, और वह स्त्रियां आपके दर्शनों की अभिलाषा से आई हैं उन्हें निराश करना उचित नहीं है। तब महाराज उनके अनुरोध की रक्षा करने के लिए उस कमरे में गये, परन्तु स्त्रियों की ओर न देख कर भूमि की ओर टकटकी लगाये बैठे रहे, स्त्रियों ने दूर से ही उन पर पुष्प वर्षा की, स्त्रियों ने महाराज के चरण छूने की विनीत प्रार्थना की, परन्तु इस बात पर महर्षि किसी प्रकार सहमत न हुए।

(३) दिसम्बर १८७४ में महाराज जब भड़ोंच पधारे तो एक दिन ऐसा हुआ कि ऊपदेश श्रवण करने की अभिलाषा से बहुत से भार्गव ब्राह्मण और स्त्रियां धर्मशाला में आई। स्त्रियों में अधिक संख्या अद्वैतानन्द की चेलियों की थी, स्वामी जी स्त्रियों से वार्तालाप नहीं करना चाहतें थे। परन्तु जब उन्होंने विशेष आग्रह और अनुरोध किया तो उनके और अपने बीच में एक पर्दा डाल कर इन्हें उपवेश दिया जिसका सारांश यह है।

'पति सेवा करना ही तुम्हारा धर्म है और अपने पतियों से उपदेश लेना तुम्हारा कर्त्तव्य है। मंदिरों आदि स्थानों में आना जाना और साधू सन्यासियों के दर्शनो के लिए इधर उधर घूमना स्त्री जाति के लिए अत्यन्त अनुचित है। स्त्री जाति का मुख्य धर्म पति सेवा और उत्तम रीति मे सन्तान का पालन पोषण करना ही है।'

(४) सन् १८७५ में बम्बई निवास के दिनों में हरियाणा ज़िला होशियारपुर की एक महिला माई भगवती जो जवानी में ही वैराग्यवती हो गई थी, इसके विचार नवीन वेदान्त के थे, परन्तु सत्यार्थ प्रकाश पढ़ कर इसके विचारों में परिवर्तन हो गया था वह स्वामी जी के दर्शनार्थ वम्बई पहुंची, और उनसे उपदेश लेकर कृतार्थ हुई स्वामी जी ने उसे स्त्री जाति में धर्म प्रचार करने का उपदेश दिया। स्वामी जो ने माई भगवती को पर्दे में बिठा कर उपदेश दिया था।

(५) नवम्बर १८७६ ई० में जब महाराज छठी वार काशी पधारे तो एक दिन एक स्त्री आकर महाराज से बातें करने लगी, महाराज जी नीचे गर्दन किये, इससे बातें करते रहें, थोड़ी देर बाद उसकी तरफ से मुंह फेर कर बैठ गये और वह निराश होकर चली गई।

(६) जौलाई मास १८८३ में महाराज जोधपुर में विराजमान थे, फ़ैज़उलाह खां के बाग़ में जहां महाराज ठहरे हुए थे उनके दरवाज़े के दोनों तर्फ़ दो मंज़िले मकान थे। इन्हीं दिनों द्वार के

ऊपर के कमरों में कई पण्डित ठहरे हुए थे, उनके लिए बड़ी महारानी ने कुछ फल वगैरह ४—५ दासियों के हाथ भेजे थे, जब वह द्वार पर आई पंडित जी का पता पूछा तो किसी ने यह समझ कर के कि यह स्वामी जी महाराज का पूछ रही हैं उनको कह दिया कि बाग के बीच में बंगले में हैं, वहां पहुंच कर उन्होंने पहरेदारों से पूछा, उन मूर्खों ने भी यही समझा कि पंडित जी से उनकी मुराद स्वामी जी से ही है, और कह दिया कि ऊपर हो हैं। वह बेधड़क ऊपर चली गई। पहरेदारों ने उन्हें न रोका। उस समय महाराज पलंग पर लेटे हुए थे। उन्होंने करवट ली थी, तो बरामदे में वह स्त्रियां, खड़ी दिखाई दी, इन्हें देखकर स्वामी जी सहसा उठ कर बड़े जोर में चिल्लाए। चारन नवलदान साथ के कमरे में लेटा हुआ था, वह शोर सुन कर आया, उसे यह भय हुआ कि कहीं किसी ने महाराज पर कातलाना हमला न कर दिया हो। वह नंगे पांव और नंगे सिर महाराज के कमरे में भागा भागा आया, महाराज ने रोष प्रकट करते हुए कहा कि कैसा अन्याय है कि हमारे कमरे में स्त्रियां आ गई हैं, यह सब आपके प्रबन्ध को कमी है, इन्हें निकाल दो तुरन्त इन स्त्रियों को निकाल दिया। और कहा कि महाराज यह सब पहरेदारों की गलती से हुआ है, महाराज ने कहा उनको बदलवा दो। अर्थात् उनके बदले नये पहरे दार आए तो उनको ताकीद कर दी गई कि किसी स्त्री या लड़के को बंगले के पास मत आने दो।

बोलो लक्ष्मणयती और दयानन्द यती की जय

६. प्रतिज्ञा पालक भरत

भगवान राम को वापिस लाने पर जब भरत जी असफल हुए तो उन्होंने दो प्रतिज्ञाएं की थीं।

१. अयोध्या के तख्त पर मैं न बैठूंगा, आप की खड़ाऊं तख्त पर रखीं जाएंगी।

२. जब तक आप बनवास से वापिस न आएंगे, आप के नाम पर ही राज्यकाज संभाले रखूँगा।

और यह दोनों प्रतिज्ञाएं भरत जी ने 14 वर्ष तक खूब निभाई और बनवास से राम जी की वापिसी पर उन की इमानत उन के सुपुर्द कर दी।

और प्रतिज्ञा पालक दयानन्द

महर्षि विरजानन्द जी ने भी महर्षि दयानन्द जी से दो प्रतिज्ञाएं करवाई थी।

१. वैदिक धर्म का प्रचार और अवैदिक मतों का खण्डन।

२. किसी एक स्थान पर आश्रम बना कर न बैठना। सदा घूम फिर कर प्रचार करना।

और यह दोनों प्रतिज्ञाए महर्षि दयानन्द जी ने सारी आयु पूर्ण रूप से निभाईं। कई बड़े बड़े राजाओं, महाराजाओं के कहने पर भी एक स्थान पर आश्रम बना कर न बैठे बल्कि सर्वत्र घूम कर वैदिक धर्म का प्रचार और अवैदिक मत खण्डन पूरे बल से करते रहे। पूना में व्याख्यान देते हुए एक दिन महाराज ने स्वयं कहा था कि मैंने जो प्रतिज्ञा अपने गुरू विरजानन्द जी से की है कि स्थान २ पर भ्रमण करके वैदिक धर्म का प्रचार करूँ, उस का यथा शक्ति पालन करता हूं। परन्तु संसार सुधार का कार्य इतना महान है कि मेरे जैसे कई सदोपदेशक हों तभी संसार सुधार हो सकता है। और उदयपुर के महाराणा सज्जन सिंह जी महर्षि जी के बड़े श्रद्धालु थे। उन्होंने ने भी यह प्रस्ताव किया था कि आप यहाँ रह कर प्रचार करें, परन्तु महर्षि जी नहीं माने अतः महाराणा साहब ने जो अपने हाथ से लिख कर मान पत्र उन को विदायगी पर दिया है उस में इस बात का इशारा भी किया है :—

मान पत्र

चलते समय महाराणा ने एक मान पत्र स्वहस्ताक्षर युक्त महाराज को दिया, जो इस प्रकार था :—

स्वास्ति श्री सर्वोपाकार्थ कारुणिक परमहंस परिव्राजकाचार्य वर्य श्री मद्दयानन्द सरस्वती यतिवर्येषु इतः महाराणा सज्जनसिंहस्य नतिततय: समुल्लसन्तु ।

इदन्तु, आप का अठं मास का निवास सूं चित अत्यन्त आनन्द में रह्यो, क्योंकि आप की शिक्षा को प्रकार श्रेष्ठ और उन्नति दायक है, और आप का संयोग सूं ही न्याय धर्मादि शरीरिक कार्य में निस्संदेह लाभ प्राप्त होना कि म्हां का सभ्य जना सहित दृढ़ आशा हुई कारण कि शिक्षा और उपदेश वां का श्रेष्ठ पुरुषों का दृढ़ होवै है जो स्वकीय आचरण भी प्रतिकूल नहीं राखै. सो आप में यथार्थ मिल्यो, अब म्हे आप का वियोग का संयोग तो नहीं चाँवां हाँ, परन्तु आप का शरीर अनेक पुरुषां के उपकारक है। जी सूं अवरोध करणो अनुचित है। तथापि पुनरागमन सूं आप भी म्हां का चित ने शीघ्र अनुमोदित करेगा इत्यलम् ।

संवत १७३१ फाल्गुन कृष्ण ५ भौमे
हस्ताक्षर महाराणा सज्जन सिंहस्य ।

७. शत्रुघन

काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार ये पाँच विषय कहलाते हैं जिन को जीतना महा कठिन समझा जाता है। जिस के मुतालिक एक श्लोक है जिस का अर्थ है कि विष और विषय में बहुत अन्तर है। विष तो खाने से ही मनुष्य को मारता है परन्तु विषय तो ध्यान मात्र से ही मनुष्य का सर्वनाश कर देते हैं इस लिए एक कवि ने भी कहा है—

दुखदाई हैं सब शत्रु हैं, ये विषय हैं जितने दुनियां के।
वही पार हुआ भव सागर से, जो जाल में इनके फंसा न रहा ॥

सो महर्षि दयानन्द जी ने इन पाचों शत्रुओं को मार कर इन पर विजय पाई हुई थी इस लिए सच्चे अर्थों में शत्रुघन थे।

१. काम

महर्षि दयानन्द जी आजन्म ब्रह्मचारी रहे इसलिए काम को मारना तो स्वत: सिद्ध ही है। इस के अतिरिक्त जब महाराज मेरठ में निवास करते थे तो एक भक्त ने एक दिन सवाल कर ही दिया कि महाराज आप तो हाड़ मांस का शरीर रखते हैं क्या आप को कभी काम ने नहीं सताया। तो महाराज ने हँस कर जबाव दिया प्यारे मेरा कभी इस ओर ध्यान ही नहीं गया और न ही मेरे पास इतना वक्त ही फालतू है जो मैं इस के मुत्तल्लिक सोच सकूं। अपने जीवन में उन्होंने कभी किसी स्त्री को आँख भर कर भी न देखा था।

२. क्रोध

क्रोध तो महराज को अपने बड़ से बड़े अपमान पर भी कभी न आता था। क्रोध करना तो एक तरफ रहा अपने जहर देने वाले और कातलाना हमले करने वालों को भी माफ़ कर दिया करते और गालियां देने वालों को तो मिठाईयां भी खिलाते थे।

१—फ़र्रुखाबाद में ज्वाला प्रसाद नामक एक शराबी और मांसाहारी ब्राह्मण इन दिनों पोस्ट मास्टर था। एक दिन वह एक वाम मार्गी ब्राह्मण को पालकी में बिठा कर ले गया और स्वामी जी के सामने कुर्सी डाल कर बैठ गया। और महाराज ने उसे कुछ भी न कहा।

२—फर्रुखाबाद में ही एक दुष्ट स्वामी जी के पास आया और स्वामी जी से पूछा कि गंगा मुक्ति देती है या नहीं। स्वामी जी ने

उत्तर दिया कि नहीं। इस पर उस ने स्वामी जी की तरफ जूता फेंका और भागने लगा। परन्तु एक साधु ने उसे पकड़ लिया फिर भी स्वामी जी ने उसे छुड़ा दिया कि इसने अज्ञान वश ऐसा किया है। निर्बल पर दया करने में बल की प्रशंसा है।

(३) जो लोग गंगा के यात्रियों के दान से जीविका करते हैं वह गंगा पुत्र कहलाते हैं! एक गंगा पुत्र स्वामी जी के स्थान पर ही रहता था. उसने यह नियम बना लिया था कि हर रोज नियत समय पर महाराज को गालियां सुनाया करे। उसे ऐसा करते कई दिन हो गये परन्तु स्वामी जी ने इसको गालियों की ओर ध्यान न दिया।

कानपुर निवास के समय श्रद्धालु जनों में से अनेक भक्तजन गुरु जी महाराज के लिये मिठाई, फल आदि लाया करते थे. वह स्वामी जी आने वालों में बांट दिया करते थे, एक दिन ऐसा हुआ कि कुछ मिठाई फल आदि बच रहे, महाराज यह सोच रहे थे कि यह किस को देवें कि इतने में वही गंगा पुत्र सामने से जाता हुआ दिखाई दिया। महाराज ने प्रेम भरे शब्दों से उसे बुलाया और उसे वह सब पदार्थ दे दिये और कह दिया कि प्रति दिन हमारे पास आ जाया करो और खाने की चीज़ें ले जाया करो। वह कई दिन तक आता रहा और खाद्य वस्तुए ले जाता रहा। एक दिन इसकी आत्मा ने इस को फटकारा कि ऐसे दयालु महात्मा के प्रति गालियां देकर मैंने बहुत पाप किया। एक दिन वह श्री चरणों में गिर पड़ा और कहने लगा कि महाराज अगर मेरी दुष्टता का पार नहीं, तो आपकी क्षमता की भी कोई सीमा नहीं है। आप मेरा अपराध क्षमा करें। महाराज ने कहा कि तुम्हारी गालियों को हमने अपनी स्मृति में स्थान भी नहीं दिया। तुम्हें इस के कारण दुखी होने की आवश्यकता नहीं।

(४) अलीगढ़ निवास के वक्त एक दिन एक भंगी चरसी साधू

स्वामी जी के पास आया और असभ्यता पूर्ण कहने लगा, दयानन्द क़ौन है और कहां है। उस वक्त महाराज के पास एक सौ भद्र पुरुष बैठे थे, लोगों ने संकेत किया कि वह बैठे हैं। स्वामी जी ने इससे पूछा कि तुमने गले में क्या डाल रखा है, उसने कहा रुद्राक्ष. स्वामी जी बोले रुद की आंख निकाल लाये हो, इस पर वह क्रोध में आकर महाराज को गालियां देने लग पड़ा परन्तु महाराज ने उसकी कुछ परवाह न की जब वह बक बक करता ही रहा,तो स्वामी जो उठकर शौच को चले गये।

५—फर्रुखा बाद निवास के समय एक दिन महाराज प्रातः काल भ्रमण करने जा रहे थे कि मार्ग में इन्हें एक हट्टा कट्टा उजड़ मनुष्य मिला, उसने महाराज को सुबह सवेरे अनेक दुर्वचन कहे, और कहने लगा कि तू ईसाईयों का नौकर है, हिन्दुओं को ईसाई बनाने आया है। महाराज उसकी गालियां सुन कर मुस्कराते रहे और आगे निकल गये।

(६) मुरादाबाद में एक दिन व्याख्यान हो रहा था, कि एक ब्राह्मण ने व्याख्यान में ही उठ कर महाराज को गालियां देनी शुरु कर दीं, कि यह दुष्ट हमारे देवताओं की निन्दा करता है,, हम इस का मुंह भी देखना नहीं चाहते। परन्तु महाराज ने इसकी ओर ध्यान न दे कर अपना व्याख्यान जारी रखा।

७—एक दिन मुरादाबाद का टीका सुपरिन्टेन्डेन्ट जो ब्राह्मग था, महाराज का व्याख्यान सुनने आया और मूर्ति पूजा का खडन सुन कर वह इतना आवेश में आया कि स्वामी जी को गालियां देने लग गया और यह कह कर कि यह दुष्ट हमारे देवताओं की निन्दा करता है, इसका मुंह नहीं देखना चाहिए चला गया। महाराज ने इसकी गालियों पर लेश मात्र भी ध्यान न दिया।

८--गुजरात निवास के समय एक दिन एक मनुष्य ने महाराज को ईंट मारी, पर वह उनको लगी नहीं, पुलिसमैन ने उसको पकड़

लिया। उसने ईंट फेंकने से इन्कार किया। महाराज ने हंस कर टाल दिया और उसको क्षमा प्रदान कर दी।

९ मुनशी हर गोबिन्द ने मथरा निवास के समय एक दिन मुट्ठी में धूली भर स्वामी जी पर डाल दी, स्वामी जी ने इस पर भी उसे कुछ नहीं कहा।

१०—कानपुर में जहां स्वामी जी के व्याख्यान होते थे, इससे थोड़ी दूर एक और शामियाना खड़ा करके गोस्वामी नर हरगिरी, स्वामी जी महाराज को गालियां निकाला करते थे और कहते थे कि अंगरेजों ने हिन्दुओं को ईसाई बनाने के लिए इसको भेजा है और एक दिन एक ईंट भी उस तर्फ से आ कर स्वामी जी के पास गिरी, परन्तु स्वामी जी महाराज मुस्कराते रहे और उसे क्षमा ही करते रहे।

३. लोभ

धन के लोभ को महाराज ने जितना मर्दन किया था उस का वर्णन भीष्मपितामा के प्रकर्ण में आप पढ़ेंगे ही परन्तु यहाँ एक बहुत ही बड़े लोभ की कथा आप को सुनानी है जिसको महाराज ने विजय कर लिया था। काशी शास्त्रार्थ से पहले जब पंडितों ने देखा कि अब हमारा कोई बचाव नहीं है और शास्त्रार्थ में हम मूर्ति पूजा वेदानुकूल सिद्ध नहीं कर सकेंगे, तो उन्होंने मिल कर खुफ़िया तौर पर कुछ पंडित महाराज के पास भेजे कि अगर आप मूर्ति पूजा का खंडन छोड़ देवें तो हम आप को निष्कलंक अवतार बना देंगे, और हाथी पर आपका जलूस निकाल कर हम सब आप की जय जयकार करेंगे। अहो! कितना बड़ा लोभ है। विपक्षी ईश्वर का अवतार मानने को तैयार हैं। परन्तु महर्षि जी ने इतने बड़े लोभ को भी तिनके के बराबर परवाह नहीं की, और अपने सत्य पथ पर चल कर मूर्ति पूजा का भरपूर खण्डन करते रहे, किसी ने ठीक कहा है—

दुनिया तजनी सहज है, सहज त्रिया का नेह।
मान बड़ाई ईर्षा दुर्लभ तजनी एह ॥

सब से बड़ा लोभ या मान जो किसी को दिया जा सकता है वह महर्षि को दिया गया, परन्तु उसे स्वीकार न करके महाराज ने लोभ पर पूर्ण विजयी होने का प्रमाण दे दिया।

४. मोह

भला स्वामी दयानन्द जैसा मोह का विजेता भी संसार कभी पैदा कर सकेगा। अपना जन्म नाम न बताथा, जन्म धाम न बताया, माता पिता का नाम न बताया और जो कुछ किया उससे मोह न लगाया, अपने नाम का कुछ न बनाया, अपने काम का मोह न किया अपने शरीर का मोह न किया और जब कभी किसी ने मोह ममता की बात कही तो वह उसका तिरस्कार करते रहे।

१—राजपूताना में रायपुर के ठाकुर साहब के आग्रह करने पर महाराज उन के यहां पधारे थे और उपदेश शुरु कर दिये। ठाकुर साहब ने एक यज्ञ कराने का निश्चय किया था, परन्तु वह न हो सका इतने में ठाकुर साहब की ठकुरानी स्वर्गवास हो गई। तब कोठारी चाँद मल और बाबू रूप सिंह ने स्वामी जी से प्रस्ताव किया कि आप ठाकुर साहब से शोक प्रकट करने किला में तशरीफ ले चलें, तो महाराज ने उत्तर दिया कि मैंने सारे संसार से सम्बन्ध त्याग दिया है, किसी का मरना और जीना मेरे लिए एक जैसा है, मैं किसी का शोक व हर्ष नहीं करता, मेरा सम्बन्ध तो केवल उपदेश व धर्म से है शेष किसी वस्तु से नहीं है, इस पर वह दोनों चुप हो गए।

२—जब गंगा के किनारे महाराज एक लंगोटी में नंगे वदन विचरते थे, तो एक जगह के लोग बड़े श्रद्धालु हो गये। और महाराज की बड़ी सेवा करने लगे, जब महाराज को वहां रहते तकरीबन एक महीना हो गया, तो एक दिन महाराज ने कहा कि अब हम

आगे जायेंगे, इस पर श्रद्धालु भक्तों ने कहा कि महाराज हमको बता देना जब आपने जाना होगा, तब स्वामी जी कहने लगे कि हमने घर से निकलते समय अपने माता पिता तो नहीं बताया तो आप को कैसे बता देंगे। चुनांचे उसी सुबह को एक कोपीन जो स्वामी जी को इन लोगों ने बड़े आग्रह से दी थी और नस्य की डब्बी छोड़ कर बरसते मेंह में आगे चले गये। जब सुबह को भक्त आए तो स्थान खाली पाया।

३—इसी तरह कानपुर में मुंशी गंगा सहाय जी ने कहा कि महाराज जिस दिन आप ने जाना हो मुझे बता देना, महाराज ने कहा—ऐसा नहीं हो सकता। अगर ऐसा ही करना होता तो घर से ही क्यों निकलता, यह कार्य मोह का है। हम नहीं बतलायेंगे, जब इच्छा होगी चल देंगे।

५. अहंकार

आप में से कई भाईयों ने पहलवानों की कुशतियां देखी होंगी इसमें यह प्रकार होता है कि छोटे-छोटे पहलवानों की कुशतियां पहले कराई जाती हैं, और जो सब से बड़ा जोड़ पहलवानों का होता है वह सब से आख़ीर में लड़ाया जाता है, ठीक इसी तरह काम, क्रोध लोभ, मोह, अहंकार इन पांच पहलवानों में भी अहंकार सब से बड़ा पहलवान है। जो पहले एक, दो, तीन या चारों पहलवानों को भी जीत लेता है, वह पाँचवें से तो बड़ी मुशकिल से ही बच सकता है क्योंकि यह सब से बड़ा है—किसी ने कहा भी है—

दुनिया तजनी सहज है. सहज त्रिया का नेह।
मान बडाई ईर्षा, दुर्लभ तजनी एह॥

अंग्रेज़ी में भी एक कहावत है—

"Fame is the last infirmity of hunman mind

यानि अहकार को जीतना सबसे मुश्किल काम है परन्तु महर्षि

दयानन्द ने अहंकार को भी चकनाचूर कर दिया था जब कभी किसी ने पूछा कि आप का क्या धर्म है, तो यही जवाब दिया कि मेरा कोई नया मत नहीं है। ब्रह्मा से लेकर जैमनी पर्यन्त जो ऋषियों का मन्तव्य है सो मेरा भी वही है।

१—दाना पुर में एक दिन कुछ श्रद्धालुओं ने कहा कि महाराज आप तो ऋषि हैं, आप जैसा विद्वान तो कभी सुना ही नहीं गया तो महाराज हंस कर फरमाने लगे, कि ऋषि मुनियों और विद्वानों के अभाव में आप ऐसी बात कहते हो। यदि मैं ऋषि मुनियों के ज़माने में होता तो शायद मेरी गिनती विद्वानों में भी न हो सकती।

२—एक दिन एक जगह व्याख्यान देते समय इन के मुख से एक शब्द अशुद्ध निकल गया। हाज़रीन में से एक ने महाराज की अशुद्धि जतला दी, महाराज ने तुरन्त अपनी अशुद्धि स्वीकार करली, परन्तु वह बार-बार यही कहने लग पड़ा कि मैंने आपकी अशुद्धि पकड़ी। कुछ देर तो महाराज चुप रहे। आखिर महाराज ने कहा कि आप ने अशुद्धि पकड़ी मैंने स्वीकार कर ली, अगर मैं चाहूं तो इस अशुद्धि को भी शुद्ध सिद्ध कर सकता हूं। परन्तु मैं ने ज़िद नहीं की पर आप बार बार ऐसा कह कर अपने संकीर्ण हृदय का परिचय दे रहे हो, फिर वह चुप हो गया।

३—महर्षि पूर्ण विद्वान होकर और जगद् गुरु की पदवी प्राप्त कर लेने पर भी अपने आपको गुरु न कहलवा कर वह महर्षि स्वामी विरजानन्द जी का शिष्य कहलाने में ही अपना गौरव समझते थे, अपने सब ग्रन्थों की समाप्ति पर उनके यह शब्द उनके अहंकार पर पूर्ण विजय की घोषणा करते रहेंगे।

इति श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य परमविदुषां श्री विरजानन्द सरस्वती स्वामीनाम शिष्येण श्रीमद्दयानन्द सरस्वती स्वामिन्यां विरचितः।

४—एक बार महर्षि से एक सज्जन ने प्रश्न किया कि आप इतने विद्वान् होने पर भी कोई एक शास्त्र रचकर संसार में अपना नाम क्यों नहीं छोड़ते। तो महर्षि ने उत्तर दिया कि आगे जो शास्त्र बने हैं, उन में कौन सी कमी है। जिस को पूरा करने के लिए अपना नया शास्त्र बनाऊं और केवल नाम छोड़ने की आशा से पुस्तक बनाने में समय व्यर्थ गंवाऊँ।

८. वीर बजरंगी हनुमान

पवन सुत अंजना देवी के दुलारे को वीर बजरंगी हनुमान कहते हैं, इनके सम्बन्ध में यह बात कही जाती है, कि वह बन्दर थे, परन्तु यह बात युक्ति संगत नहीं, प्रथम तो इनके माता पिता का नाम ही सिद्ध करता है कि वह मनुष्य थे, क्योंकि किसी बन्दर के माता पिता का नाम आज तक नहीं सुना जाता। दूसरे वानर शब्द से यह ग़लत फ़हमी हुई है। वानर शब्द से नर की अर्थ मनुष्य ही है, यानी ऐसे मनुष्य जो नगरों में न रह कर वनों में अथवा ज़मीन के नीचे गुफ़ाओ में या ज़मीन के नीचे शहर बना कर रहते हैं। जैसे वह किष्किन्धा नगरी में जो ज़मीन के नीचे बसी थी रहते थे। जैसे आज कल गोरीला फ़ौज होती है जो पहाड़ों और जंगलों की लड़ाई में निपुण होती हैं। वैसी ही वह वानर फ़ौज होगी, जो गोरीला जंग में निपुण होगी, आज कल बंगाल में एक बैनरजी नाम की जाति विशेष भी रहती है। और फिर भगवान राम हनुमान के मुतल्लिक कहते हैं के बिना ऋगवेद, यजुर्वेद, सामवेद का विद्वान् हुये ऐसा नहीं बोल सकता निश्चय ही उसने व्याकरण भीं बहुत पढ़ा है। बाल्मीकी रमायण शिष्किन्धा काण्ड) और बाकी रहा पूंछ का सवाल तो आज कल भी पुलीस या फ़ौज वाले जब आंसू लाने वाले गोले छोड़ते हैं या ैस वगैरा दुश्मन पर छोड़ने वाले फ़ौजी ख़ास किसम की पोशाक पहनते हैं, उसको मास्क कहते हैं और उनकी नाक के आगे बहुत

लम्बा सूंड की तरह लगा होता हैं, इस तरह मुमकिन हो सकता है कि वानर सेना ने इस क़िसम का कोई हथियार बनाया हो जो पूंछ के समान आकृति वाला हो या बिजली वगैरा के प्रयोग के लिए इसमें बैटरी वगैरह लगाई जाती हो, और इस बैटरी के ज़ोर से अकाश में उच्छल कूद करना आसान हो जाता हो जैसा के बाल्मीकि रमायण में लिखा है के हनुमान आकाश में उड़ा और हज़ारों को ऐसे मार दिया जैसे इन्द्र दैत्यों को, फिर लिखा है के बड़ा वेगवान हनुमान राक्षसों पर टूट पड़ा, जसे पर्वत पर बिजली, वैसे ही रामायण के अन्दर यह बात भी स्पष्ट लिखी है कि हनुमान और सुगरींव जब भगवान राम से मिलने आए तो वह बन्दर रूप छोड़ कर मनुष्य के रूप में मिले, इस से यह बात भी स्पष्ट होती है कि उनका बन्दर रूप बनावटी था और रावण आदि राक्षसों से मुकाबला करने के लिए उन्होंने ऐसी वर्दी बनाई थी जो वह जब चाहते थे उतार सकते थे, आज कल राकेटों में जाने वालों की पोशाक आप देखें तो बिल्कुल बन्दर जैसी ही लगती है। क्योंकि हनुमान जो का जिस्म सर्दी गर्मी सहन करने के कारण वज्र के समान था, इस लिए वह वीर बजरंगी के नाम से प्रसिद्ध थे।

और

महर्षि दयानन्द ने भी ब्रह्मचर्य, तप योग साधन और चौदह वर्ष तक निरन्तर पर्वतों जंगलों में घूमने से और कुछ साल तक सिर्फ एक लंगोट में रहने से अपने अंग अंग को वज्र के समान बना लिया हुआ था, उनके जीवन की निम्नलिखित घटनाएं उनको वीर बजरंगी ही सिद्ध करती हैं।

१—जब महर्षि गुरू विराजानन्द जी महाराज के पास पढ़ते थे तो एक दिन गुरू जो ने क़िसी बात पर नराज़ होकर स्वामी जी के जिस्म पर लाठी मारी जिससे दण्डी स्वामी विरजानन्द जी का हाथ दर्द करने लग गया। तब महर्षि गुरु देव का हाथ दबाते हुएं

कहने लगे। गुरुदेव आप मुझे न मारा करें, मेरा शरीर तो वज्र के समान है, आपके कोमल हाथों को दुख होगा। जब आपने मुझे सजा देनी हो तो किसी और शिष्य को कह दिया करें। और महर्षि गुरू जी से खाई हुई इस चोट का निशान देख कर गुरुदेव के उपकारों को याद कर लिया करते थे।

२—संम्वत् १९२४,में जहांगीराबाद ज़िला बुलन्द शहर का एक रहीस जो वरजशी नौजवान भी था वह गंगा स्नान को आया और वह स्वामी जी के उपदेश सुनकर उनका श्रद्धालु बन गया। एक दिन स्वामी जी के बल की परीक्षा करने को नीयत से महाराज के पांव दबाने लगा। परन्तु उसको ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वह पाँव वज्र के हों। पांव दबाते दबाते वह खुद पसीन पसीना हो गया परन्तु वह अपनी उंगलियां स्वामी जी के पैर में न घुसेड़ सका।

३—सम्वत् १९२४ पोह महीने की एक रात्रि के समय महाराज गंगा के तट पर ठंडी रेत पर सिर्फ एक कौपीन धारण किये समाधि लगाये हुए थे, इतने में दो अंग्रेज़ अफ़सर शिकार खेलते हुए वहां आ निकले। महर्षि को इस अवस्था में देख कर उन्होंने यकीन कर लिया कि यह मरा हुआ आदमी है, क्योंकि इनके विचार में ऐसे कड़ाके की सर्दी में कोई आदमी नंगे वदन जीवित नहीं रह सकता था, उन्होंने स्वामी जी की देह को हाथ लगा कर हिलाया तो महाराज की समाधि खुल गई, महाराज को ज़िन्दा देखकर उनकी हैरानी की कोई हद न रही। तब अंग्रेज़ अफ़सर ने जो ज़िला का क्लैकटर था। बड़ी हैरानी से स्वामी जी से पूछा कि आप ऐसे कड़ाके की सर्दी में नंगे वदन कैसे जिन्दा रह सके। अभी स्वामी जी उत्तर देने ही वाले थे कि उनके साथ वाले अंग्रेज़ ने कहा—अंडे माँस खाता होगा, ब्रांडी पीता होगा। तब स्वामी जी ने हंस कर कहा—कि अंडे मांस तो आप खाते हैं। हम तो दाल रोटी ही खाने वाले हैं. परन्तु यदि आप को अंडे मांस खाने में यह शक्ति प्रतीत होती है तो जरा अपने कपड़े

उतार कर मेरे साथ बैठ जायें तब वह शर्मिंदा होकर वहां से चल दिये।

४—इन्हीं दिनों का ज़िकर है कि जहांगीराबाद में जब श्रोतागण कड़ाके की सर्दी से बचने के लिये लिहाफ़ और गर्म कंबल लेकर भी कांपा करते थे तो महाराज नंगे बदन उपदेश दिया करते थे। एक दिन जब भक्तों ने पूछा—महाराज आपको सर्दी नहीं लगती तो आपने दोनों हाथों के अगूठें दबा कर सारे जिस्म को पसीना पसीना कर लिया। भक्त लोग महाराज की इस अद्‌भुत शक्ति को देख कर हैरान रह गये। लगातार छः साल तक सिर्फ एक लंगोट में विचरने के बाद महर्षि दयानन्द जी का अंग अंग वज्र के समान हो चुका था।

बोलो वीर वजरंगी दयानन्द महाराज की जय॥

६. बाली सुत अंगद

रामायण में बाली सुत अंगद का पार्ट यह है कि वह राम चन्द्र जी का दूत बन कर रावण की सभा में गया। ताकि युद्ध की नौबत न आने पाये। और रावण सीता जी को रामचन्द्र जी के हवाले कर देवे। परन्तु रावण न माना और कुछ लोगों के परामर्श से उसको मरवा डालने की योजना बनाने लगा। जिस पर अंगद ने अपना एक पांव ज़मीन पर जमा कर रावण को चैलैंज किया कि आपका अगर कोई योद्धा मेरा पांव जमीन से हिला सके तो मेरे सामने आवे परन्तु रावण के जवानों ने बहुत ज़ोर लगाया लेकिन अंगद का जमा हुआ पांव न हिला सके और शर्मिन्दा हो कर बैठ गए। और अंगद सही सलामत वापिस आ गया। अंगद को यह विद्या याद थी कि वह अपनी सारी शक्ति को किसी एक अंग में इकट्ठी कर लेता था।

और

१—महर्षि दयानन्द जी भी इस विद्या के पूर्ण विद्वान थे।

महर्षि जी सन १८७८ में जब मेरठ पधारे तो एक दिन, रात के नौ बजे श्री वेनी प्रसाद शारदा और उनके कई मित्रों ने महाराज की सेवा में उपस्थित हो कर कहा कि हम आप के चरण दबाना चाहते हैं, महाराज जान गये कि यह मेरे बल की परीक्षा करना चाहते हैं। महाराज ने कहा पैर तो पीछे दबाना पहले मेरा पाँव उठाओ तो सही यह कह कर उन्होंने अपने पांव ज़मीन पर जमा दिए। नौजवान जो वरज़शी भी थे बहुत ज़ोर लगा-लगा कर थक गये। लेकिन महाराज का जमाया हुआ पांव उठा नहीं सके।

२—गुजरां वाला में महाराज ब्रह्मचर्य पर व्याख्यान देते हुये एक दिन कहने लगे कि ब्रह्मचर्य में बड़ा बल होता है। अतः चैंलिज कर दिया कि मेरी आयु इस समय ५१ साल की है मैं अपना हाथ ऊपर उठाता हूं कोई मेरा हाथ झुका देवे। इस वक्त ५००—६०० पुरुषों की हाज़िरी थी। और गुजराँवाला के मशहूर कश्मीरी पहलवान भी मौजूद थे। लेकिन किसी में भी स्वामी जी का चैंलिज्ञ मंजूर करने की हिम्मत न हुई। और स्वामी जी का खड़ा हुआ हाथ किसी ने नीचा न किया।

३—उसी गुजरांवाला में स्वामी जी स्नान करके अपनी कौपीन निंचोड़ कर आ रहे थे कि रास्ता में कश्मीरी पहलवानों का अखाड़ा आया। स्वामी जी खड़े हो कर देखने लगे। फिर कहने लगे कि मैं अपनी कौपीन नहा कर निचोड़ कर लाया हूँ। आप में से कोई पहलवान ऐसा है जो इस में से एक बून्द पानी को निकाल सके। एक दो पहलवान आगे आए और अपना पूरा जोर लगा कर भी कौपीन से एक बून्द पानी की न निकाल सके।

महर्षि दूसरी सब विद्याओं की तरह इस विद्या में भी पूर्ण विद्वान थे।

रामायण काण्ड समाप्त

४. महाभारत काण्ड

१०. भगवान कृष्ण

१—भगवान कृष्ण की माता जी का नाम यशोदा था, और भगवान दयानन्द जी की माता का नाम भी यशोदा था।

२—भगवान कृष्ण का जीवन उद्देश्य गीता के अ० ४ श्लोक ७—८ में कहा है—

यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय, संभवामि युगे युगे ॥

अर्थात् जब जब धर्म की ग्लानि यानि धर्म से लोगों को नफ़रत होने लगती है। अधर्म बढ़ने लगता है, तो धर्मात्माओं की रक्षा, दुष्टों के नाश, और धर्म की स्थापना करना।

इसी तरह भगवान दयानन्द का जीवन उद्देश्य भी एक संस्कृत के श्लोक में ऐसा ही लिखा है—

पाखंडानां विनाशाय वेदानां रक्षणाय च।
धर्म संशोधनार्थाय दयानन्दस्य जीवनम्।

अर्थात् (१) पाखंड का नाश (२) वेदों की रक्षा, (३) धर्म का संशोधन लिखा है।

भगवान दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के अन्त में स्वमन्तव्यामन्तव्य में तो अपने नहीं, परन्तु मनुष्य जीवन का बिल्कुल यही उद्देश्य लिखा है जो गीता के उपरोक्त श्लोकों से विदित होता है।

वहाँ लिखा है—

मनुष्य उसी को कहना कि जो मननशील होकर स्वात्मवत अन्यों के सुख दुख और हानि लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं, की, चाहे वह महा अनाथ निर्बल और गुण रहित क्यों न हों, उनकी रक्षा, उन्नति प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती, सनाथ, महा बलवान, गुणवान, भी हो तथापि उनका नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करें अर्थात् जहां तक हो सके अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वदा किया करे। इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही चले जावें, परन्तु इस मनुष्यपन धर्म से पृथक कभी न होवे (यह गीता के उपरोक्त दो श्लोकों का अत्यन्त विस्तार पूर्वक अनुवाद ही समझना चाहिए) किसी कवि ने खूब कहा है—

इन्सान है वह जो आप सा जाने जहान को।
तफ़रीक जिसके दिल में कभी मैं वा तू न हो॥

३—गीता अध्याय ३ श्लोक १४—१५ में भगवान कृष्ण वेद को ईश्वर से उत्पन्न हुआ मानते हैं—(अन्नाद् भवन्ति भूतानि)

और

भगवान दयानन्द वेद के इस मन्त्र से वेद को ईश्वर कृत मानते हैं—

"यथे मां वाचं कल्याणि" इत्यादि

४—गीता के इस श्लोक के अनुसार भगवान कृष्ण ईश्वर को सब हृदयों में होना वा निराकार मानते हैं—(अ० १८, श्लोक २०)

ईश्वर सर्वभूतानां, हृदये तिष्ठति अर्जुनः॥

यजुर्वेद अ० ४०, मन्त्र ८ के अनुसार महर्षि भी ईश्वर को निराकार और सब हृदयों में होना घोषित करते हैं—

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमऽस्नाविरम्शुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषिपरिभू स्वयंभू: याथातथ्यतोऽर्थान व्यवधा-
शाश्वतीभ्य: सभाभ्य: ।।

५—भगवाग कृष्ण जब कौरवों और पांडवों में सुलह कराने की आखिरी कोशिश करने के लिए दूत बनकर हस्तिना पुर गये, तो दुर्योधन को अन्यायकारी और दुराचारी समझ कर उसके घर का भोजन स्वीकार न कर विदुर के घर भोजन किया था।

और

इसी तरह भगवान दयानन्द जब मुरादाबाद गये तो एक दिन शाहू शाम सुन्दर ने जो मुरादाबाद के रईस थे, परन्तु वैश्यागमनादि दुर्व्यसनों में ग्रसित थे. महाराज से प्रार्थना की कि आज मेरे घर पधार कर भोजन करें। महाराज ने उसकी प्रार्थना अस्वीकार कर दी। परन्तु उसी समय इसके सामने ही जब एक दूसरे सज्जन ने ऐसी ही प्रार्थना की, तो उसे स्वीकार कर लिया। व्याख्यान के समय इस घटना का वर्णन करते हुए साहूकार साहब को सम्बोधन कर के कहा—कि जब तक तू कुकर्म न छोड़ेगा तेरे घर पर जाकर भोजन नहीं करेंगे। अतः उसने महर्षि के आदेश से सब कुकर्म छोड़ दिये, तब महाराज ने इसका भोजन स्वीकार किया, और शाम सुन्दर जी की माता को कहा कि जिस दिन तुम्हारा पुत्र वलिविश्वदेव यज्ञ न करे इसको भोजन मत देना।

६—भगवान कृष्ण ने अपने सहपाठी गरीब ब्राह्मण सुदामा की चावलों की भेंट बड़े प्रेम से स्वीकार की थी।

और इसी तरह

भगवान दयानन्द जब अमृतसर में विराजमान थे तो एक

दिन महाराज बग्घी पर सवार होकर मलोहबुंगे व्याख्यान देने जारहे थे तो एक गरीब ब्राह्मण पं० तुलसी राम ने बड़े प्रेम और नम्रता से महाराज को नमस्कार किया और अपनी बैठकमें पधारने की प्रार्थना की,महाराज ने कृपापूर्वक यह प्रार्थना स्वीकार कर ली और उस की बैठक में पधारे उसने महाराज को प्रेम पूर्वक दो रुपये और मिश्री के दो कूजे भेंट किये, वह भेंट महाराज ने इस प्रकार स्वीकार कर ली जिस तरह भगवान कृष्ण ने सुदामा की ।

गोपाल कृष्ण—गौ रक्षक दयानन्द

१—भगवान कृष्ण के ज़माने में भारत भर में गौ घात न होता था क्योंकि भगवान कृष्ण गौएं चराया करते थे, इसलिए उन का नाम गोपाल पड़ गया था बृज की भूमि भी गोपालन के लिए विशेष तौर पर रखी गई थी, और इसी गोपालन को वजह से ही इस भूमि का नाम बृज पड़ा था और नन्द जो इस बृज रूपी महा गौशाला के अध्यक्ष थे और भगवान कृष्ण जी ने इनके घर ही में बचपन में परवरिश पाई थी और नन्द जी की गौ पालन में सहायता करना अपना धर्म समझते थे, इसलिए भी गोपाल के नाम से प्रसिद्ध हो गये थे ।

परन्तु

भगवान दयानन्द का जन्म जिस समय इस देश में हुआ तो उस वक्त इस देश में मुसलमानों और अंग्रेज़ों की ओर से गौ घात बड़े जोरों पर प्रचलित था और प्रतिदिन हज़ारों गौओं के गले पर छुरी चल जाती थी, ऐसा अवस्था देख कर भला दया के स्रोत दयानन्द चुपके कैसे रह सकते थे । इसलिए महाराज ने गौ रक्षा के लिए बड़ा ज़ोरदार आन्दोलन शुरू कर दिया । धार्मिक दृष्टि कोणसे उन्होंने बड़ी मौकाकी बात संसार के सामने रखकर उन दुष्टों का मुंह हमेशा के लिए बन्द कर दिया जो यह कहते थे कि यज्ञों में गौ मारी

जाती थी, इसलिए महर्षि ने वेद के मन्त्रों से गौ के लिए एक विशेष शब्द निकाल कर दुनियां को चकित कर दिया। जब उन्होंने घोषणा की कि वेद में तो अघ्न्या शब्द गौ के लिए निश्चित किया गया है। और अघ्न्या शब्द के अर्थ हैं "न मारने योग्य" अर्थात जब वेद में गौ को न मारने योग्य ही घोषित किया गया है तो फिर इसका यज्ञों में मार कर डालना किसी तरह भी सिद्ध नहीं हो सकता है।

"नहि मे अस्ति अघ्न्या" इत्यादि। ऋग्वेद १३-१०२-८

परन्तु महर्षि दयानन्द जी महाराज ने गौ रक्षा आन्दोलन में इस धार्मिक दृष्टि कोण पर इतना बल नहीं दिया जितना के गौ के आर्थिक दृष्टिकोण में उपयोगी होने पर क्योंकि यह बात तो उन लोगों को भी अपील करती थी, जो मज़हबी तौर पर हमारे दृष्टि कोण को न मानते हों। इसलिए महर्षि दयानन्द जी महाराज ने अपने व्याख्यानों में भी और अपनी बनाई पुस्तक 'गौ करुणानिधि' में इसी भी पहलू पर ज़ोर दिया हैं। जिसका नतीजा यह हुआ कि बहुत से अंग्रेज़ और मुसलमान भी महर्षि के इस दृष्टिकोण से सहमत हो गये और जहां उन्होंने खुद गौ हत्या से तोबा की वहां उन्होंने इस बारे में महर्षि की सहायता करने का भी प्रण किया।

१—सन् १८६६ में महर्षि जी पहली बार अजमेर आए तो कर्नल ब्रोक साहब एजन्ट गवर्नर जनरल राजपूताना से उनकी बात चीत इस विषय पर हुई थी, और महर्षि जी ने कर्नल ब्रोक को इस बात का कायल कर लिया था कि गौ हत्या से हानि होती है जब महर्षि ने कहा कि फिर आप गौ हत्या बन्द क्यों नहीं करवा देते। तो कर्नल साहब ने कहा कि यह मेरे बस की बात नहीं है आप लाट साहब से मिलें और उन्होंने एक चिट्ठी स्वामी जी को दी, कि लाट साहब को मिल कर आप यह बात उनसे कहें और फिर स्वामी जी की बात चीत इस विषय पर डिप्टी कमिश्नर से भी हुई उन्होंने भी

एक चिट्ठी महर्षि को दी थी कि आप लाट साहब से मिलकर यह बात करें।

२. सन् १८७६ में फरूखाबाद में गौ रक्षा पर महाराज का उपदेश हुआ, जिसमें आपने कहा था कि यदि एक मोटी ताज़ी गौ को मारा जाय तो उसके खाने से केवल २० मनुष्यों का पेट भर सकता है, वह भी तब कि जब इसके माँस में दस सेर अन्न मिलाया जावे। यदि इस की रक्षा की जाय तो वह दस बार जनेगी। यदि पांच सेर दूध प्रति दिन एक वर्ष तक देवे तो १८००० सेर दूध देगी, जिसमें यदि पांच सेर प्रति मन चावल डाल कर खीर बनाई जावे, और एक मनुष्य एक सेर खावे तो २०२५० मनुष्यों का पेट भर सकता है। इसके अतिरिक्त इसकी जो बछियां होंगी, वह गाय बनेंगी और उत्तरोत्तर अधिक से अधिक लाभ होगा। इसके बछड़े बैल बन कर भूमि जोत कर सहस्रों मन अन्न पैदा करेंगे। जिससे सहस्रों मनुष्यों का पेट भरेगा। देश में हजारों गौएं रोज ही मारी जाती हैं। जिससे देश की अत्यन्त हानि हो रही है, इस कारण देश दुर्दशा को प्राप्त हो रहा है कितने शोक की बात है कि इतनी बड़ी हानी को देखते हुए भी हमारे देश के शासक इस ओर ध्यान नहीं देते। परन्तु केवल इतमें शासकों का ही अपराध नही है, हमारा भी अपराध है। हममें एकता नहीं है, इसी कारण यह क्षति होती चली जा रही है। यदि सब मिलकर सरकार से निवेदन करें तो क्या गौ बध वन्द नहीं हो सकता।

३ सम्मत १९३६ के हरद्वार कुम्भ पर प्रचार करते करते एक दिन महर्षि यकायक चुप करके वेदी पर लेट गये। श्रद्धालु सहम गये। महाराज कुछ देर चुप चाप लेटे रहे, फिर उठ बैठे तो श्रद्धालु भक्तों ने कहा कि महाराज कुछ रोग हो तो औषधि लावें। महाराज ने लम्बी सांस लेकर कहा—गौ, विधवाओं की आहों ने इस देश का सत्यानाश कर दिया है।

४—जब महाराज ने देखा कि गौ रक्षा आर्यावर्त की उन्नति

का मूल है और गौ वध से देश की भयंकर हानि हो रही है । दूध घी दिन प्रति दिन मँहगा होता जा रहा है, और लोगों को काफ़ी खुराक न मिलने से उनके शरीर दुर्बल होते जा रहे हैं तो सन् १८८१ में बम्बई आकर महर्षि ने बड़े जोर से गौ रक्षा आन्दोलन जारी कर दिया और उन्होंने गौ रक्षा को भी अपने सुधार कार्य का एक अंग बना लिया । गौ रक्षा पर उन्होंने जगह जगह पर व्याख्यान दिये, गौ करुणा निधि पुस्तक लिखी, राजपुताने के एजण्ट कर्नल ब्रोक से और उत्तर प्रदेश के लेफटिनेंट गवर्नर सरमयोर साहब से गौ वध बन्द कराने का अनुरोध किया था, उनके व्याख्यान को सुन कर वीसियों मुसलमान और ईसाईयों ने गौ रक्षा का समर्थन शुरू कर दिया था । महाराज ने अन्त को यह विचार किया कि यदि तीन करोड़ आदमियों के हस्ताक्षर करवा कर एक मैमोरियल महारानी विक्टोरिया की सेवा ऐ भेजा जावे तो सम्भव है कि गौ वध बन्द हो जावे। इस विचार से उन्होने चैत्र कृष्ण सम्मत् १९३८ को एक विज्ञापन बम्बई से गौ रक्षा के लाभ, और गौ वध की हानियां दिखलाते हुए और गौ रक्षा के मैमोरियल पर हस्ताक्षर करवाने के लिए प्रचारित किया और उसे सब आर्य समाजों में और देश के राजों महाराजाओं और सम्भ्राप्त व्यक्तियों के पास भेजा और बड़े जोंर से काम शुरू कर दिया, कहते हैं कि महाराज का यह भी विचार था कि वह विलायत जाकर स्वयं उस मैमोरियल को महारानी का सेवा में प्रस्तुत करेंगे और इस कारण उन्होंने अंग्रेज़ी पढ़ना भी शुरू कर दिया था । इस मैमोरियल के लिए आर्यासमाजिक पुरुषों ने बड़े उत्साह से कार्य किया था । लाखों हस्ताक्षर कराये गये, परन्तु १८८३ में महाराज का देहान्त हो जाने से यह काम पूरा न हो सका और मैमोरीयल न भेजा जा सका । जो अभी तक अजमेर में महाराज के पुस्तकालय में लाखों आदमियों के हस्ताक्षर होकर पड़ा हुआ है । महाराज के उपदेश और प्रयत्न से अनेक स्थानों पर गौ रक्षिणी

सभाएं भी स्थापित हो गई थी, जिनका काम कुछ दिन तक तो खत्र चलता रहा, परन्तु महर्षि की आंखें बन्द होते ही यह कार्य शिथिल हो गया। बम्बई के भाटिया लोग जिनके हाथों में समुद्र यात्रा का प्रबन्ध था। पहले महाराज के खिलाफ थे परन्तु महाराज के गौ रक्षा आन्दोलन में वह भी सहमत हो गये और उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि मैमोरियल लेकर जब महाराज विलायत जायेंगे तो उनसे जहाज़ का किराया नहीं लिया जायगा। महर्षि अपने जीवन भर गौ वध का विरोध और गौ रक्षा का समर्थन करते रहे, इसलिए सच्चे अर्थों में वह गौ रक्षक थे।

बोलो गौ रक्षक दयानन्द की जय

अब आप को इस मैमोरियल से परिचित कराता हूं, जिससे महर्षि के हृदय के महां उद्गार का परिचय मिलता है।

गौ रक्षा मैमोरियल

जगत में ऐसा कौन मनुष्य है जो सुख के लाभ होने में प्रसन्न और दुख की प्राप्ति में अप्रसन्न न होता हो। जैसे दूसरे के साथ किये अपने उपकार में स्वयं आनन्दि होता है। ऐसे ही परोपकार करने में सुख अवश्य हना चाहिए। क्या ऐसा कोई भी विद्वान भूगोल में था है—या होगा, जो परोपकार रूप धर्म और पर हानि स्वरूप अधर्म के सिवा धर्म अधर्म की सिद्धि कर सके। धन्य वह महाशयजन हैं जो अपने तन-मन-धन से ससार का अधिक उपकार सिद्ध करते हैं। निंदनीय मनुष्य वह हैं जो अपनी अज्ञानता से स्वार्थ वश होकर अपने तन-मन और धन से जगत में पर हानि करके बड़े लाभ का नाश करते हैं। सृष्टि क्रम से ठीक ठीक यही निश्चय होता है कि परमेश्वर ने जो जो वस्तु बनाई है वह वह पूर्ण उपकार लेने के लिए हैं, अल्प लाभ से महान हानि करने के अर्थ नहीं। विश्व में दो ही जीवन के मूल हैं एक अन्न दूसरा पान, इसी अभिप्राय से आर्यवर श्रोमणी राजे

महाराजे और प्रजाजन महोपकारक गाय आदि पशुओं को न आप मारते थे, और न किसी को मारने देते थे, अब भी इन गाय बैल और भैंस को मारने और मरवाने देना नहीं चाहिए, क्योंकि अन्न और पान की बहुतायत इन्हीं से होती है। इससे सबका जीवन सुख से हो सकता है जितना राजा और प्रजा का बड़ा नुकसान इन के मारने और मरवाने से होता है, उतना किसी अन्य कर्म से नहीं। इसका निर्णय गौ करुणा निधि पुस्तक में अच्छी प्रकार प्रगट कर दिया है। अर्थात् एक गाय के मारने मरवाने से चार लाख, बीस हजार मनुष्यों के सुख की हानि होती है। इसलिए हम सब लोग स्त्र प्रजा की हितैषी राज राजेश्वरी क्वीन विक्टोरिया के न्याय-प्रणाली में जो यह अन्याय रूप बड़े बड़े उपकारक गाय आदि पशुओं की हत्या होती है, इसको इनके राज्य से छुड़वा के अति प्रसन्न होना चाहते हैं। यह हमको पूरा निश्चय है कि विद्या धर्म प्रजाहित प्रिय श्रीमती राजराजेश्वरी क्वीन विक्टोरिया, पार्लीमैंट सभा और सर्वो-प्रिय प्रधान आर्यवर्तस्य श्रीमान् गवर्नर जैनरल साहब बहादर सम्प्रति इस बड़ा हानिकारक गाय बैल तथा भैंस की हत्या को हटा उत्साह और प्रसन्नता पूर्वक शीघ्र बन्द करके हम सब को परम आनन्दित करें। देखिये कि उक्त गुण युक्त गाय आदि पशुओं के मारने और मरवाने से दूध घी और किसानों की कितनी बड़ी हानि होकर, राजा और प्रजा की बड़ो हानि हो रही है और नित्य प्रति अधिक अधिक होती जा रही है। पक्षपात छोड़ के जो कोई देखता है तो वह परोपकार को ही धर्म और पर हानि अधर्म निश्चित जानता है। क्या विद्या का यह फल और सिद्धान्त नहीं है कि जिस जिस से अधिक उपकार हो उस उस का पालन और वर्धन करना और नाश कभी न करना। परम दयालु न्यायकारी सर्वान्त-र्यामी, सर्व शक्तिमान, परमात्मा इस जगत उपकारक काम करने में समस्त राजा प्रजा की एक सम्मति करें।

हस्ताक्षर—

वर्ण व्यवस्था गुण कर्मानुसार है

१—गीता अ० ४ श्लोक १३ में भगवान कृष्ण वर्णव्यवस्था को गुण कर्मानुसार ही मानते हैं—

चतुर्वर्ण्यं मया सृष्टा गुणकर्मविभागशः ।

और इस तरह महर्षि दयानन्द जी भी वर्णव्यवस्था गुण कर्म अनुसार ही मानते थे और इस लुप्त प्राय विधि को फिर से प्रचलित करने का भरपूर प्रयत्न करते रहे और जन्म से वर्णव्यवस्था को तो महर्षि मरन व्यवस्था ही कहते और लिखते रहे तथा इतिहास के पन्ने भी जन्म से वर्णव्यवस्था को मरन व्यवस्था ही सिद्ध करके महर्षि के कथन का समर्थन कर रहे हैं। वैसे तो इतिहास में बहुत सी ऐसी घटनाएं मिलती हैं परन्तु मैं आपकी सूचनार्थ दो ही घटनाएं उपस्थित करता हूं जिससे आप का पता लग जायगा कि जन्म से वर्णव्यवस्था (जिस को आज कल जात पात कहते हैं) के मानने से इस देश में कितने भयंकर परिणाम निकले।

१—जब शेरशाह सूरी ने हुमायूं को यहां से भगा दिया उस वक्त हेमूराय जो रिवाड़ी का रहने वाला जन्म का बनिया था, सूरी की फोज में बतौर सिपाही भर्ती होकर उन्नति करते करते अपनी योग्यता से कमाण्डर बन गया था शेरशाह को मौत के बाद वह आगरे के किला पर काबज हो गया, और इर्द गिर्द का इलाका अपने मातहत कर लिया, इतने में ही हुमायूं के मरने के बाद, अकबर जो नावालिग ही था हिन्दुस्तान में आ धमका और आगरे को जीतने की तैयारियां करने लगा। हेमूराय जिसने विक्रमाजीत सानी का लकब अखितयार करके सूरज वंशी झंडा आगरे के किला पर लहरा रखा था, राजपूताने के समस्त राजपूतराजाओं को निमन्त्रण भेजा कि वह इस के साथ मिलकर मुशतर्का दुशमन यानि अकबर को शिकस्त देवें। लेकिन राजपूत राजाओं ने जन्म अभिमान में पड़ कर हेमूराय की यह प्रार्थना इस बिना पर ठुकरा दी,

कि हेमूराय जन्म का बानिया है। हम क्षत्री राजपूत इसके साथ कैसे मिल सकते हैं। नतीजा यह हुआ कि हेमूराय अकेला अकबर के मुकाबला में न ठहर सका, और पराजित होकर मारा गया। और अकबर हिन्दुस्तान का शहन्शाह बन गया। अगर जन्म जात का अभिमान राजपूतों को हेमू का साथ देने से न रोकता तो भारत का इतिहास और ही तरह से लिखा जाता।

वही जन्म अभिमानी राजपूत राजे महाराजे मुसलमान बादशाहों के गुलाम बनकर जीवन व्यतीत करने पर विवश न होते।

जन्म से जात पात मानने से विनाश

सन् १७०७ ईस्वी में औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुग़ल-साम्राज्य निर्बल हो गया था। बाद में मुग़ल सम्राटों में कोई दम नहीं था कि वे नादिरशाह और अहमद शाह अब्दाली के आक्रमणों का सामना करते। तब अवध के नवाब शुजाउद्दौला ने रुहेलों और मरहठों से मिलकर सलाह की कि अबकी बार मिलकर अहमद-शाह अब्दाली का सामना करें। शुजाउद्दौला और रुहेलों के सरदार नज़ीबखां ने कुरान हाथ में लेकर क़सम खाई कि अब हम लोग एक दूसरे से नहीं लड़ेंगे और अहमदशाह के विरुद्ध मराठों का साथ देंगे, लेकिन जब सन् १७६१ ईस्वी में हिन्दुस्तान के एक मुस्लिम शासक का निमन्त्रण पाकर अब्दाली ने हिन्दुस्तान पर फिर चढ़ाई की तो रुहेले जा मिले और यह कहकर कि मुसलमान को काफ़िर का साथ देकर मुसलमान के विरुद्ध लड़ना हराम है, उन्होंने शुजाउद्दौला को भी अपनी ओर मिला लिया। शुजाउद्दौला दिखावे के लिए मरहठों से मिला रहा लेकिन गुप्त रूप से अब्दाली की सहा-यता करने लगा।

उधर सदाशिवराव भाऊ (ब्राह्मण), मल्हारराव होल्कर और

सूर्यमल जाट में युद्धमन्त्रणा होते समय भाऊ ने कह दिया कि खेती करने वाले (जाट) और भेड़ बकरी चराने वाले गडरिया (होल्कर) की राय राजसभा में नहीं ली जाती। इससे सूर्यमल और होल्कर दोनों नाराज हो गये। सूर्यमल अपनी फ़ौज लेकर चला गया। उसको जाते देखकर, राजपूत सेना भी चल दी लेकिन ब्राह्मणत्व के अभिमान में सदाशिवराव भाऊ ने उन जाते हुओं से यह भी न पूछा कि क्यों वापिस जा रहे हो? इस प्रकार मरहठी सेना का पक्ष निर्बल हो गया। उधर शुजाउद्दौला भी अब्दाली से जा मिला। युद्ध में मरहठों की हार हुई। विश्वासराव और सदाशिवराव भाऊ मारे गये। जनकोजी सिन्धिया और मरहठों के तोपखाने का संचालक इब्राहीम गार्डी पकड़े गये। जनकोजी से मुसलमान होने को कहा गया, उस के स्वीकार न करने पर, उस का सिर काट दिया गया।

इब्राहीम गार्डी से अब्दाली ने पूछा कि तुम मुसलमान होकर काफ़िरों की तरफ़ से क्यों लड़े? उसने वीरता से उत्तर दिया कि मैंने उनका नमक खाया था, मैं नमकहरामी नहीं करना चाहता था। अब्दाली ने फिर पूछा, "क्या इस्लाम और कुरान इस बात की आज्ञा देता है?" इब्राहीम ने जवाब दिया, "जिस किताब में नमकहरामी करने की आज्ञा हो, मैं उसको खुदा का कलाम नहीं मानता। यदि इस्लाम में अपने मालिक के साथ विश्वासघात और नमकहरामी करने की आज्ञा है तो मैं दूर से ही उसको सलाम करता हूँ।" इस पर क़ाज़ी की सलाह से इब्राहीम का सिर काट डाला गया। धन्य है! मुसलमान होते हुए भी इब्राहीम गार्डी ने अपने प्राणों पर खेल कर अपने स्वामी का साथ दिया और नमकहरामी और विश्वासघात करने वाले रुहेलों और शुजाउद्दौला की तरह अपने नाम को कलंकित नहीं किया, लेकिन मुन्शी करम-इलाही ने अपनी पुस्तक, "बहादुराने इस्लाम" में इसी वीर स्वामी भक्त और अपने

कर्त्तव्य पालन करने वाले इब्राहीम गार्डी को "निर्लज्ज और मज़-हब का दुश्मन" लिखा है। पाठको! देखा, आपने मुन्शी करम-इलाही की इस मुस्लिम मनोवृत्ति को जो मोहम्मद वारिस और शेख़ हमीद जैसे नमक हरामों को तो इस्लाम का बहादुर मानते हैं और सच्चे बहादुर और नमक हलाल इब्राहीम गार्डी को निर्लज्ज कहने में लज्जा नहीं करते!

पानीपत के इस तीसरे युद्ध में हिन्दुओं को केवल हार ही नहीं हुई, किन्तु वीर शिवा जी द्वारा स्थापित महान् मरहठा साम्राज्य का सूर्य उसी दिन से अस्त हो गया। इसका कारण सदाशिवराव भाऊ को गर्वोक्ति और ब्राह्मणत्व का अभिमान था जो उसे ले डूबा। मरहठों की वह नीति निपुणता, जो शिवाजी के समय में थी, अब उनमें नहीं रही थी। इसलिये भी वे रुहेलों और शुजाउद्दौला के विश्वासघात के शिकार बन गये, जो उनके पतन का कारण बना। ऐ जाति के भेद भाव! तेरा नाश हो।

इतिहास की यह दोनों घटनाएं महर्षि के इस वाक्य की कि स्पष्ट जन्म से वर्ण व्यवस्था तो मरण व्यवस्था ही है, बिल्कुल करती है।

(११) बाल ब्रह्मचारी भीष्म पितामह

कौरवों के प्रसिद्ध वंश में राजा शान्तनु के घर श्रीमती गंगा देवी की कुक्षि से एक बालक उत्पन्न हुआ जिस का नाम देवदत्त रखा गया जब छत्तीस वर्ष का हुआ तो उसकी माता का देहान्त हो गया। उनके पिता महाराज शान्तनु ने धीवर राज की लड़की सत्यवती से विवाह करने की इच्छा प्रकट की। धीवरराज ने यह शर्त लगाई कि जो लड़का मेरी लड़की के गर्भ से उत्पन्न हो वही राज्य का अधिकारी बने। परन्तु यह शर्त महाराज ने न मानी देवदत्त को इस बात का पता लग गया, और वह खुद धीवर राज के पास गया और कहा कि

आप अपनी लड़की की शादी मेरे पिता जी से कर देवें मैं अपने राज्याधिकार का त्याग करता हूं। धीवरराज ने कहा आपने तो अपना अधिकार छोड़ दिया, परन्तु आप की सन्तान इस राज्य पर अपना अधिकार जतायेगी। इस पर देवदत्त ने यह भीष्म प्रतिज्ञा की, कि मैं आजन्म ब्रह्मचारी रहूंगा, और शादी नहीं कराऊंगा। पिता के सुख के लिए पुत्र का अद्वितीय त्याग था, इस भीष्म प्रतिज्ञा के कारण देवदत्त का नाम भीष्म हो गया। वह आजन्म ब्रह्मचारी रहे इस लिए उनको पितामह भी कहा जात है। क्योंकि शास्त्रों में ऐसा ही विधान है, परन्तु यह सब कुछ होते हुए और वेद वेदांग की शिक्षा प्राप्त करते हुए भी जब उनसे प्रश्न किया गया कि भरी सभा में द्रोपदी का अपमान होते देख कर और पांडवों के साथ दग़ाबाज़ी देखकर भी आप चुप क्यों रहे और आपने ऐसे अन्याय के खिलाफ़ आवाज़ तक क्यों न उठाई तो उन का जवाब महाभारत के इस श्लोक में वर्णन है।

अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित्।
इति सत्यं महाराजः बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः॥

मनुष्य अर्थ का दास है। अर्थ किसी का दास नहीं। महाराज यह बात सत्य है, मैं उस समय में कौरवों के अर्थ से बन्धा हुआ था।

और

आज से एक सौ चालीस साल पहले, गुजरात काठिया वाड़ के मौरवी राज्य अन्तर्गत टंकारा नगर में कर्षण जी तिवारी के घर एक बालक पैदा हुआ जिसका नाम मूलशंकर अथवा दयाराम रखा गया। जिसने २१ साल की आयु में सच्चे शिव की तलाश और मौत पर विजय प्राप्त करने की भीष्म प्रतिज्ञा की और अपने पिता के सुख के लिए नहीं अपितु संसार मात्र के सुख लिए आजन्म ब्रह्मचारी रहे, और इस तरह भीष्म और पितामहा होकर दयानन्द नाम रखाया। वालब्रह्म-

धारा भीष्म के कहे उपरोक्त श्लोक की धज्जियां उड़ा कर सारी आयु अर्थ का दास न होकर, जिसने अर्थ को हमेशा ही दास बनाए रखा, जिसके उदाहरणार्थ कुछ घटनाएं निम्नलिखित हैं—

१—महर्षि दयानन्द जी के पिता ज़मीदार थे, और शाहूकारा भी करते थे, और सरकार में भी अच्छे कर्मचारी थे, और इस तरह सुख आराम के लिए उनके घर में सब सामान उपस्थित थे, और उनके विवाह की तैयारियां भी पूरे ज़ोर से हो रही थीं। सिर्फ एक महीना बाकी रह गया था कि पूरे बाईस साल की भरी जवानी में प्रतिज्ञा को पर्ण करने के निमित्त बालक मूलशंकर अथवा दयाराम ने माता पिता की सख सम्पत्ति से भरे घर को छोड़ दिया। और ऐसी भरी जवानी में भी पितृ सम्पत्ति उनको अर्थ का दास न बना सकी।

२—योगियों की तलाश में जब महर्षि दयानन्द हिमालय की बर्फ़ानी चोटियों पर घमते फिरते थे, तो कुछ दिन के लिए वह ओखी मठ में भी ठहरे थे। ओखी मठ का मुख्य महन्त स्वामी जी के ज्ञान और गुणों पर मोहित हो गया। और स्वामी जी को अपना चेला बनाने की प्रेरणा करते हुए बोला। "यदि तुम हमारे शिष्य बन जाओ तो इस गद्दी के महन्त बन जाओगे। लाखों रुपये की सम्पत्ति तुम्हारे हाथ में हो जाएगी, तुम महन्त कहलाओगे और इस तरह मान प्रतिष्ठा भी बहुत होगी, इस प्रकार स्वच्छन्दता पूर्ण यथेष्ट सुख भोगोगे, इस पर महर्षि जो ने उत्तर दिया, कि मेरे पिता की सम्पत्ति आपके पूजा पाठ या पाखण्ड द्वारा एकत्रित की हुई पूंजी से कई गुणा अधिक थी,जब मैं उसे ही त्याग कर आया हूं तो आपके धन धान्य की ओर कब ध्यान कर सकता हूं। जिस उद्देश्य को लेकर मैंने संसारिक सुखों से मुंह मोड़ा है और ऐश्वर्य शाली पितृ गृह को सदा के लिए छोड़ा है मैं देखता हूं कि इस उद्देश्य पर न तो तुम चलते हो और न ही तुम लोगों को इसका कुछ ज्ञान है। इस अवस्था में चेला बनना तो दूर रहा, मेरा तो अब तुम्हारे पास रहना भी असंभव

है। और यह कह कर दूसरे ही दिन ओखी मठ से प्रस्थान करके जोशी मठ चले गये। अब की भी अर्थ इन्हें दास बनाने में असमर्थ ही है।

३—जब महाराज कांशी पहली बार पधारे और मूर्ति पूजा का ज़ोरदार खण्डन करते हुए काशी के समस्त पंडितों को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा तो महाराजा राम नगर ने महर्षि को कहलवा भेजा कि यदि आप मूर्ति पूजा का खण्डन न करें तो आपको १००) रुपया माहवार वज़ीफा मिल जाया करेगा, तो महर्षि ने कहला भेजा कि यदि महाराजा अपना सारा राज पाठ भी देदें तब भी मैं मूर्ति पूजा का खंडन नहीं छोड़ सकता।

४—जब महाराज बड़ोदा राज्य में थे तो श्री माधोराव दीवान उनके बहुत भक्त बन गये थे, और यह बात बहुत मशहूर हो चुकी थी, चुनांचे एक राज्यधिकारी पर मुकद्दमा बना हुआ था, उसके दामाद ने एक कर्मचारी पण्डित कृष्ण राम को कहा—कि यदि स्वामी जो श्री माधोराव से सिफ़ारिश करके मेरे ससुर को छुड़ा देवें तो मैं बीस हज़ार रुपया उनको वेद भाष्य के लिए दे दूंगा। पडित कृष्ण राम ने मौका पाकर यह प्रस्ताव स्वामी जी के सामने रखा, इस पर महाराज ने क्रोध में आकर कहा—कि ऐसे प्रस्ताव मेरे सामने रखते हुए तुम्हें शर्म आनी चाहिए। रुपया का प्रलोभन दिखाकर ऐसे प्रस्ताव हमारे सामने फिर कभी न रखना।

५—देहली दर्बार के वक्त जब महाराज देहली में थे तो एक सेठ ने दो लाख रुपया नक़द गड्डे पर लदवा कर स्वामी जी को भेंट करना चाहा, इस शर्त पर कि आप मूर्ति पूजा का खण्डन करना छोड़ दें। महाराज ने उसको फटकार देते हुए कहा—कि उठा लो अपना रुपया और चलते बनो।

६—सम्वत् १९८० में जब महाराज कांशी में पांचवी बार पधारे तो एक दिन वैङ्कट गिरी के महाराज दो तैलंगू ब्राह्मणों के साथ

महाराज से मिलनें के लिए आए । उन्होंने कहा कि क्या प्रमाण है कि वेद ही ईश्वर की बाणी है और बाईबल अथवा कुरान नहीं। महाराज नें उत्तर दिया, कि कुरान आदि में अनेक कथाएं सृष्टि कर्म और ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव के विरुद्ध हैं। कुरान में काफ़रों के विनाश, अथवा स्वर्ग में सुरा, हूर आदि के रहने की बातें हैं, इस लिए वह ईश्वर की वाणी नहीं हो सकती । इसके पश्चात मूर्ति पूजा की बात चली, स्वामी जी नें कहा आप महाराजा होकर किस प्रकार मूर्ति पूजाका पोषण करते हैं। यदि आप इसका पोषण न करें तो आपके लिए ऐसा तो नहीं है कि दरिद्र ब्राह्मण के समान आपका उदर पोषण न हो सके राजा ने स्वीकार किया कि आप की बात कई अंशों में ठीक है। परन्तु यदि आप अन्य बातों का प्रचार करें और मूर्ति पूजा की बात सबसे पीछे के लिए रखें तो आपके वेद भाष्य के लिए जितने धन की आवश्यकता होगी हम देंगे । महाराज ने यह सुन कर कुछ आवेश में आकर कहा आप इन बातों को नहीं समझते, मैं क्या कोई दुकानदार हूं जो रुपये के कारण अपने कर्त्तव्य को आगे पीछे करूं । अर्थ ने इस बार भी महाराज से पछाड़ खाई ।

७—एक दिन महाराना उदयपुर ने अत्यन्त नम्र भाव से निवेदन किया कि राजनीति के सिद्धान्तानुसार आप को मूर्ति पूजा का खण्डन नहीं करना चाहिए, यह तो आप जानते ही हैं कि यह राज्य एकलिंग महादेव के अधीन है । आप एक लिंग के मंदिर के महन्त बन जावें। कई लाख रुपयों पर आपका अधिकार हो जावेगा और एक अर्थ में यह राज्य भी आपके अधीन हो जाएगा । महर्षि बहुत शान्त स्वभाव के थे, और उनको क्रोध बहुत कम आता था, परन्तु महाराना की यह बात सुन कर उन्हें आवेश आ गया, और कड़क कर बोले कि आप मुझे लोभ देकर सर्वशक्तिमान परमेश्वर की आज्ञा भंग कराना चाहते हैं । ये छोटा सा राज्य और इसके मंदिर जिससे मैं एक दौड़ में बाहर हो सकता हूं। मुझे कभी भी वेद

और ईश्वर की आज्ञा भंग करने पर उतारु नहीं कर सकते। मैं कदापि सत्य को छोड़ तथा छिपा नही सकता। आगे से आप विचार कर बात किया करें। महाराना महर्षि के वचनों को सुन कर स्तम्भित हो गये। उन्हें कभी ऐसे वचन सुनने की आशा न थी, अन्त में महाराना ने कहा कि अब मुझे ज्ञान हो गया है कि आप अपने विचारों पर कितने दृढ़ हैं। अर्थ अब भी बाल ब्रह्मचारी भीष्म दयानन्द को दास न बना सका। और सारी आयु ही बालब्रह्मचारी भीष्म के श्लोक की धज्जियां उड़ाते रहे।

ये माया ठगनी भई, ठगत फिरे सब देस।
जिसने यह ठगनी ठगी तिसको है आदेस॥
पूर्ण निर्लोभी बालब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द की जय।

१२. सत्यवादी युधिष्ठिर

धर्म पुत्र युधिष्ठिर सत्यवादी था, यह तो जगत विख्यात ही है और इसलिए दोस्त दुश्मन इसका विश्वास भी करते थे, महा भारत के युद्ध में जब गुरु द्रोणाचार्य सप्रीम कमाण्डर की हैसियत में युद्ध कर रहे थे, तो उन्होंने पांडवों का काफ़िया तंग कर दिया था, तब कृष्ण और अर्जुन ने विचार किया जब तक गुरु द्रोणाचार्य को समाप्त न कर दिया जायगा युद्ध नहीं जीता जा सकता, द्रोणाचार्य के कान में यह आवाज पहुचाई जावे कि अश्वत्थामा मारा गया। तब वह निरुत्साह होकर हथियार छोड़ देंगे और उनको मारना सहल हो जायगा, और यह भी उन को मालूम था कि द्रोणाचार्य केवल युधिष्ठिर की ही बात को सत्य मानेंगे किसी और की बात को नहीं। और युधिष्ठिर यह झूठ बात कहने को तैयार न होगा। तब यह सलाह ठहरी कि एक हाथी का नाम अश्वत्थामा रखा जावे, और युधिष्ठिर के सामने उसे मार डाला जावे, ऐसा ही किया गया, और युधिष्ठिर को यह कहा गया कि वह द्रोणाचार्य

के सामने जाकर यह कह दे कि अश्वत्थामा मारा गया, परन्तु वह इसके लिए भी तैयार न हुआ। फिर कृष्ण और अर्जुन ने इसको जंग में हार जाने का भय दिखा कर यह कहा कि तुम द्रोण के सामने इतनी बात कह दो कि "अश्वत्थामा हतो-नरो कुञ्जरो वा" यानि अश्वत्थामा मारा गया, आदमी या हाथी, बाकी हम संभाल लेंगे, अर्थात जब द्रोणाचार्य के सामने जाकर युधिष्ठिर ने यह शब्द मुंह से निकाले "अश्वत्थामा हतो" तब उसी वक्त अर्जुन और कृष्ण ने जंगी बाजे बजाने शुरू कर दिये, ताकि युधिष्ठिर के मुंह से निकले हुए दूसरे शब्द जो संदेह पैदा कर सकते थे वह द्रोण के कान तक न पहुचे और ऐसा ही हुआ। और द्रोणाचार्य पुत्र घात की खबर सुन कर युद्ध से निवृत्त हो गया और अर्जुन ने उसको मार डाला और तब ही महाभारत युद्ध में पांडवों का जीत हो सकी।

और

इसी तरह महर्षि के सामने भी इसी किसम की स्थिति आई जब सन् १८७५ में महर्षि ने बम्बई में अपने प्रचार की धूम मचा रखी थी तब महर्षि के कुछ भगतों के मन में यह विचार पैदा हुआ कि महर्षि की विचार धारा के प्रचार को स्थाई बनाए रखने के लिए यहां आर्य समाज कायम करना चाहिए और महर्षि जी ने भी उन को इस कार्य को करने के लिए उत्साह दिलाया था। तो एक सज्जन राज कृष्ण महाराज ने आर्य समाज के नियम बनाने की इच्छा प्रकट की, तो स्वामी जी ने कहा कि नियम हम स्वयं बना देंगे। और नियमावली बना दी। राजकृष्ण महाराज ने कहाकि नियमों में जीव ब्रह्म के एकत्व का समावेश होना चाहिए पीछे से उसे छोड़ देंगे, ऐसा करने से अनेक लोगों को आर्य समाज की ओर आकृष्ठ कर सकेंगे, इस पर महाराज ने कहा - 'मैं आर्य समाज को असत्य पर कदापि स्थापित नहीं करूंगा।" इस पर राजकृष्ण महाराज इतने चिढ़ गये कि आर्य समाज के मेम्बर होने वालों की जो

सूची बना कर लाये थे उसे लेकर वह स्वामी जी के पास से चले गये, और स्वामी जी का विरोध करने लगे। उनका यह विचार था कि अब आर्य समाज शायद बन ही न सकेगा। लेकिन महर्षि के सत्य पर आरूढ़ रहने से कुछ ही दिनों के बाद चैत्र शुक्ला ५ समत् १९३२ तदानुसार १० अप्रैल १८७५ ई० में गुड़गांव रोड पर डाक्टर मानक जी की बागबाड़ी में सायं के साढ़े पांच बजे बम्बई में आर्य समाज स्थापित हो गया, और एक सौ के करीब आर्य समाज के सभासद बन गये।

२—लाहौर में ब्रह्म समाज के सभासदों ने कहा कि यदि आर्य समाज का तीसरा नियम न रखो तो हम भी आर्य समाज में सम्मिलित हो सकते हैं, परन्तु स्वामी जी ने इनका यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया।

३—लाहौर में ही राय बहादुर मूल राज एम. ए. आर्य समाज के उपप्रधान ने महाराज को सम्मति दी कि तीसरे नियम में जो वाक्य लिखा है कि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है! इस में से यदि सत्य शब्द निकाल दिया जावे तो यह नियम बहुत व्यापक हो जावेगा, और किसी को आर्य समाज में प्रवेश करने में संकोच न होगा। परन्तु स्वामी जी ने इनकी यह बात भी न मानी।

४—महाराना उदय पुर ने महाराज से कहा कि आप मूर्ति पूजा का खंडन न करें, इससे जन साधारण आपके विरुद्ध हो जाते हैं, आप नीति का अवलम्बन करके अन्य विषयों पर उपदेश करें ताकि लोग शीघ्र आप की बात को मान लें। स्वामी जी ने महाराना जी को उत्तर दिया कि मैं सत्य को नहीं छोड़ सकता और न छिपा सकता हूं चाहे कोई कितना ही विरोधी क्यों न हो।

५—बरेली में व्याख्यान देते समय प्रकरण वश महाराज ने कहा कि हिन्दु लोग एक तर्फ तो द्रोपदी के पांच पति बतलाते हैं और दूसरी तर्फ़ इसको पाँच कंवारियों में शुमार करते हैं, इस पर व्या-

ख्यान में आए हुए अंग्रेज़ कमिश्नर वगैरह मुस्कराने लग पड़े। जिस वक्त महाराज की नज़र उन पर पड़ी तो महाराज ने उन की तर्फ़ रुख करके कहाकि भला हिन्दू लोग तो विद्या हीन हो चुके हैं, जो ऐसी बातें कहते और मानते हैं, लेकिन इन अंग्रेजों को देखो, पढ़े लिखे साईंसदान होते हुए भी कंवारी के लडका होना मान रहे हैं। (यह हज़रत ईसा की तर्फ़ महाराज का ईशारा था) इस पर सब अंग्रेज़ अफसरान की तेवरियां चढ़ गईं लेकिन वह चुप-चाप व्याख्यान सुनते रहे। दूसरे दिन अंग्रेज़ कमिश्नर ने खज़ांची साहब को जिनके बंगले में स्वामी जी उतरे हुए थे, बुला कर कहा कि वह स्वामी जी को ऐसा तीखा खंडन करने से मना करे, खज़ांची जी विचारे गये तो सही लेकिन महाराज को अच्छी तरह कह न सके। इस पर भी महाराज समझ गये। दूसरे दिन आत्मा के अमरपन पर व्याख्यान दिया, सब अंग्रेज़ अफ़सर आए हुए थे, तो महाराज ने व्याख्यान में गर्जदार आवाज़ में कहा—कि लोग कहते हैं सत्य को प्रगट न करो, कलक्टर क्रोधित होगा, कमिश्नर अप्रसन्न होगा, गवर्नर पीड़ा देगा, यदि चक्रवर्ती राजा क्यों न अप्रसन्न हों, हम तो सत्य ही कहेंगे फिर कहा कि जब तक कोई ऐसा शूरवीर मुझ दिखाई नहीं देता जो मेरे आत्मा का हनन कर सकता हो, तब तक मैं सत्य को प्रकट करने से कभी पृथक नहीं रह सकता। महर्षि के ऐसे सत्य प्रेम को देख कर अंग्रेज़ अफ़सरों ने मुंह में उंगलियां डाल लीं और फिर किसी को महाराज के व्याख्यानों पर एतराज़ करने की जुरंत न हो सकी।

भीम

युधिष्टिर के छोटे भाई भीम का कद काठ बड़ा था, वह विशाल काय था। इसके कदावर और बड़े डोल डौल के होने से ही इसका नाम भीम था, क्योंकि भीम शब्द का अर्थ है

विशाल काय कि जिसको देख कर डर लगे, उसको भीष्म कहा जाता है।

और

सन् १८७१ में महर्षि मिर्ज़ापुर पधारे और सेठ रतन लाल गड्डा के बाग़ में ठहरे। गंगा तट पर जाने का मार्ग मिस्टर सी बोल्ड एक अंग्रेज़ के लाख बनाने वाले कारख़ाने के नीचे होकर था। एक दिन रात्रि के समय ऐसा हुआ कि मिस्टर सी बोल्ड के चौकीदार ने स्वामी जी को कारख़ाने के नीचे से होकर जाते हुए देखा। अन्धेरे में वह एक विशाल काय मनुष्य को कारख़ाने के पास देख कर डर गया। उसने मिस्टर सी वोल्ड से जाकर कहा कि कोई बड़ा लम्बा चौड़ा आदमी कारखाने के पास है। वह लालटैन लेकर साथ आए तो उसने देखा स्वामी जी हैं। उसने चौकीदार को कह दिया कि यह चाहे जिस समय आवें इनको मत रोको। इस तरह विशाल काय होने से भीम और महर्षि दयानन्द में समानता है।

[१४] अर्जुन

जब पांडवों का बनवास समाप्त होने के करीब पहुंचा तो अर्जुन इस भाव से कि शायद अपना हक लेने के लिए युद्ध ही करना पड़े, कुछ दिनों के लिए अपने भाईयों से अलग होकर एक निर्जन बन में अस्त्र शस्त्र विद्या का अभ्यास करने चले गये। और वहीं एक झोंपड़ी बना कर रहने लगे। एक शाम को जब वह अपनी कुटिया में बैठे थे। तो एक अत्यन्त सुन्दर युवती हार शिंगार लगा कर, इन की कुटिया में दाख़ल होकर इन के सम्मुख बैठ गई। अर्जुन के पूछने पर इस अप्सरा ने कहा—कि मैं आप जैसा पुत्र उत्पन्न करने के लिए अपनी कामना पूरी करने आई हूं। और मुझे विश्वास है कि आप मुझे निराश नहीं करेंगे। अर्जुन ने कहा देवी हो सकता है कि मेरे जैसा पुत्र उत्पन्न न हो सके, इस लिए आज से तू मेरी

माता है मुझको ही तू अपना पुत्र मान ले। इस पर वह अप्सरा उठ कर चली गई।

और

महर्षि दयानन्द जी जब मथरा में विराजमान थे, तो सब पंडित इन के सामने शास्त्रार्थ के लिए अपने आप को असमर्थ पाते थे। तब महर्षि को कलंक लगाने की नीयत से मथरा के पंडितो ने एक नवयुवती वैश्या को ५००) रुपया का लालच देकर महर्षि के पास भेजने के लिए तैयार कर किया। वह युवती भी हार शिंगार लगा लगा कर महर्षि की कुटिया में पहुंच गई। महर्षि उस समय समाधि अवस्था में थे समाधि खुली तो उन्होंने अपने सामने बैठी इस सुन्दर युवती से आने का कारण पूछा तब उस युवती ने भी वही बात कही कि मैं आप जैसे पुत्र लेने की कामना से आपके पास आई हूं। तब महर्षि जी ने भी अर्जुन की तरह वही जवाब दिया। कि देवी आज से तू मेरी माता हुई, और मुझ को अपना पुत्र समझ ले। महर्षि के यह वचन सुन कर इस दुष्टा का चित्त पिघल उठा। उसके सब पाप आँसू बन कर आंखों की राह से बह गये। और आयन्दा के लिए सच मुच वह देवी बन गई। परन्तु जो पंडित कुटिया के बाहर इस प्रतीक्षा में लाठियां लिए खड़े हुए थे, कि अन्दर से ज़रा इस वैश्या की आवाज़ निकले और हम हमला करके महर्षि के महत्व का सर्वनाश कर दें। विचारे निराश होकर चले गये।

महा भारत काण्ड समाप्त

५. महर्षि काण्ड

१५. महर्षि मनु

आचार्य दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश के ११वें समुल्लास के आरम्भ ही में लिखा है कि मनुस्मृति सृष्टि के आरम्भ ही में लिखी गई थी उस समय वेद के विषय में भगवान मनु ने जो कहा वही जगत गुरु दयानन्द जी ने इस युग में बतलाया भावसाम्य देखने ही योग्य है।

आर्य समाज के १० नियमों में तीसरा नियम यह है कि—वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है वेद का पढ़ना पढ़ाना सुनना और सुनाना सब आर्यों का परम कर्तव्य है।

यदि इस नियम के दो भाग पृथक २ कर लिये जांय तो इस प्रकार होगा कि—

१—'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में भी महर्षि लिखते हैं कि 'वेदेषु सर्वा विद्याः सन्ति' अर्थात वेदों में सारी पिद्याएं हैं।

इस विषय में आदि सृष्टि में भगवान मनु ने कहा—

(१) सर्वेषांतु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेद शब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ॥ १।२१

अर्थात्—उस परमेश्वर ने सष्टि के आरम्भ में सब के नाम और कर्म तथा अन्य व्यवस्था पृथक् पृथक् वेदों से निर्माण की।

अभिप्राय यह है कि नाम कर्म और व्यवस्था सब को सब वेदों में ठीक बताई है।

(२) वेदोऽखिलो धर्म मूलम्, १२।६

वेद धर्म का मूल है। अर्थात वेद बिना धर्म नहीं।

(३) सेनापत्यं च राज्यं च दण्ड नेतृत्वमेव च।
सर्वं लोकाधिपत्यं च वेद शास्त्र विदर्हति ॥

सेना पति बनने, राज्य करने, दण्ड देने, नेता बनने सर्व लोकों का अधिपति बनने के लिये वही योग्य है जो वेद शास्त्र को जानता है। अर्थात यह सारी विद्याएं वेद ही से जानी जा सकती हैं, वेद के बिना नहीं। अभिप्राय यह है कि सब विद्याएं भी वेद ही में है।

(४) चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमा पृथक्।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति ॥

चारों वर्ण तीनों लोक चारों पृथक् आश्रम जो हो चुका हो जो हो रहा है और जो कुछ होगा वह वेद ही से प्रसिद्ध होता है। अर्थात् यह सब विद्याओं का पुस्तक है।

नियम का दूसरा भाग यह है "वेद का पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।"

परम धर्म वह है जो अवश्य ही करना चाहिये। जिस के न करने से मनुष्य पाप का भागी बनता है।

चारों वा तीन वा दो वा एक वेद को यथाक्रम अवश्य पढ़ ले तो गृहस्थाश्रम मे प्रवेश करे अर्थात वेदों को बिना पढ़े विवाह न करे कम से कम एक वेद पढ़ कर ही विवाह करना चाहिये।

२—गौ, बकरी, भेड़, द्रव्य, और अन्न से बहुत समृद्ध भी हो तो भी इन दश कुलों में विवाह सम्बन्ध न करे। उन दश में तीसरा वह कहा है जो वेद ज्ञान रहित कुल है उस से विवाह सम्बन्ध न करे।

(६) वेदमेवाभ्यस्येन्नित्यम्।
वेद का नित्य अभ्यास करे। मनु० ।६।१४७।

(५) अधीत्य विधिवद्वेदान्। मनु० ६।३६।

वेद का विधिवत अध्ययन करे आदि वेद की महिमा पर मनु स्मृति में ८०० से अधिक श्लोक हैं। लेख विस्तार भय से अधिक नहीं देते हैं सार रूप यह समझिये कि :—

(७) योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ।।

मनु० २, १६८

जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वेद को न पढ़ कर इधर उधर श्रम करता है वह जीवन में ही सकुटुम्ब शूद्रतत्व को प्राप्त हो जाता है, अर्थात जो वेद नहीं पढ़ता वह शूद्र हो जाता है । इसलिए वेद का पढ़ना अत्यन्त आवश्यक है ।

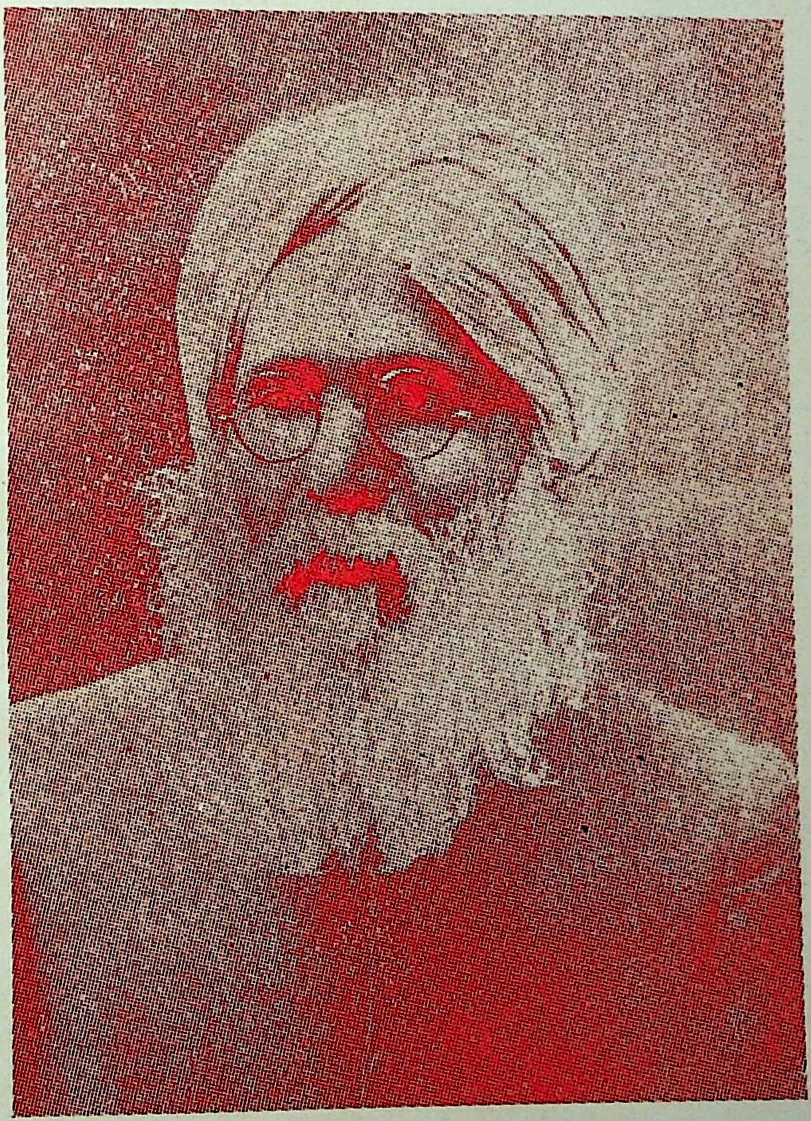
(८) धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ।

मनु। २।१३।

महर्षि दयानन्द जी महाराज ने अपने ग्रन्थों में जो कुछ भी लिखा है वह वही है जो आरम्भ से सारे ऋषि महर्षि मानते आए हैं भगवान करे कि आर्य अपने आचार्य के परम धर्म को समझें और वेद को पढ़े, पढ़ावें, सुनें, सुनावें ।

१६ महर्षि बाल्मीक तुलसी दास

तकरीबन १० लाख साल हुए जब त्रेता युग के अन्त में भगवान राम का जन्म अयोध्या में हुआ । और वह अपनी जीवन लीला से संसार को एक आदर्श मनुष्य और आदर्श राजा का स्वरूप दिखा गए । और उनकी जीवन लीला को संस्कृत में महर्षि बाल्मीकि ने काव्य का रूप दे कर संसार का महान उपकार किया । और गुसाई तुलसीदास जी ने हिन्दी भाषा में राम चरित्र मानस लिख कर आम जनता को भगवान राम के सत्य स्वरूप का दर्शन कराया और इन दोनों ग्रन्थों ने लाखों करोड़ों मनुष्यों के लिए ज्योति स्तम्भ का काम दिया और जब तक सूर्य चान्द हैं । जनता जनार्धन इन ज्योति



महात्मा हंस राज
1864—1938

सतम्भों से प्रकाश प्राप्त करती रहेगी।

और महर्षि दयानन्द

अपने अपूर्व योगबल से पहले स्वयं राम बने और फिर उन के जीवन से प्रेरणा पाकर १० लाख साल के बाद रामायण का पूरा २ ड्रामा सचमुच जीवन के रंगमंच पर खेला गया। जिस के पात्र सच्चे अर्थों में राम, लक्ष्मण और सीता का रूप बन गए।

(१) १६ अप्रैल १८६४ की सुबह को हुशियारपुर शहर के नज़दीक बिजवाड़ा नामी एक प्रसिद्ध पुराने कस्बा में माता गणेश देवी की कोख से एक बालक पैदा हुआ जिस का नाम उस के पिता श्री चूनी लाल जी ने हंसराज रखा। पर यह बालक बड़ा होनहार और हुश्यार निकला। और सन् १८८० में मिश्न स्कूल लाहौर से मैट्रिक का इम्तिहान पास कर लिया। अतः १८७८ में पिता जी का देहान्त हो गया था। तब भी उन्होंने अपनी तालीम जारी रखी और सन् १८८५ में पंजाब यूनिवर्सिटी से बी. ए. का इम्तिहान पास कर लिया। और यह दोयम रहे। और अव्वल नम्बर पर पं० गुरु दत्त जी विद्यार्थी आए थे। उस समय बी. ए पास कर लेने वाले युवक के लिए सरकार का बड़े से बड़ा ओहदा यानी एकस्टरा ऐसिसटैंट कमिश्नरी का पद मिल जाता था और राजा, ऐसे युवकों को अपना वज़ीर भी बना लेते थे। इनके बी. ए. पास कर लेने पर सब घर वालों को आशा बंधी कि अब धन धान्य की कमी न रहेगी। सन् १८७९ से ही श्री लाला साईं दास जी जो उस समय आर्य समाज लाहौर के मन्त्री थे और जो बड़े मर्दमशनास थे, के सत्संग से हंसराज जी पर आर्य समाज का रंग पक्का चढ़ चुका था। और उन्होंने पं० गुरु दत्त जी से मिल कर सन् १८८२ में रीजनरेटर आर्य वर्त Regenrater of Aryaverta) अंग्रेज़ी सप्ताहिक अखबार जारी करके आर्य समाज की सरगर्मियों में पूरा पूरा भाग लेना शुरू कर दिया था। जब सन् १८८३ में दिवाली के दिन महर्षि दयानन्द अपने प्राण परोपकार की वेदी पर

न्योछावर कर अपने निज धाम को चले गए तो लाहौर आर्य समाज ने महर्षि का स्मारक बनाने का निश्चय किया और ६—११—८३ को सर्व सम्मति से महर्षि की यादगार में दयानन्द ऐंगलो वैदिक कालेज और स्कूल खोलने का निश्चय किया गया। और योजना बनाई गई कि कालेज के प्रिंस्पिल का वेतन ५०० रु० माहवार और स्कल के हैंडमास्टर का २५० रु० महावार होगा। और ८ लाख रुपये इकठ्ठा करने का भी निश्चय किया गया। परन्तु बहुत यत्न करने पर भी १० हज़ार रु० से अधिक दिसम्बर के अन्त तक न जुट सका। हंसराज जी के मन में किसी रियासत के वज़ीर बनने की इच्छा थी और घर वाले भी उनसे बहुत सी आशाएं लगाए बैठे थे, कि अब हंसराज जी धन से घर भर देंगे। परन्तु जब हंसराज जी ने देखा कि धनाभाव के कारण महर्षि की पुण्य स्मृति में खोला जाने वाला कालज नहीं खुल रहा तो उनके मन में एक दम त्याग की ज्योति जाग उठी। और एक दिन वह अपने भाई श्री मुलख राज जी से कहने लगे कि महर्षि की पुण्य स्मृति में खुलने वाला कालेज धनाभाव के कारण नहीं खुल रहा। और मेरा विचार हैं कि मैं इसके लिए अपना जीवन दान दे दूँ। और बग़ैर कुछ लिए सेवा करूँ। परन्तु इस के लिए आपकी सहायता की आवश्यकता है, उन दिनों लाला मुलखराज की तनख्वाह केवल ८० रुपये माहवार थी। उसमें से भी उन्होंने अपनी आधी तनख्वाह हंसराज जी के लिए रिज़र्व कर देने का वचन दे दिया। जिस तरह राम के बन-वास लेने पर लक्ष्मण भाई बनबास में उन की सेवा के लिए उन के साथ चल पड़े थे। उसी प्रकार मुलखराज जी ने भी लक्ष्मण बनकर राम रूपी हँसराज का राज त्याग कर फ़कीरी कबूल करने पर साथ देने का निश्चय कर लिया। अब सिर्फ एक मश्किल हंसराज जी के सामने थी। वह थी सीता की तरह नवव्याहता ठाकर देवी जी अपनी धर्म पत्नी की, जो बहुत दिनों से आशा लगाये बैठी थी, कि अब पती देव ने B. A. कर लिया है और किसी बड़े ओहदे पर पहुंच कर धन

धान्य की कोई कमी न रहेगी । सो महात्मा हँसराज जी ने अपना यह निश्चय अपनी सती साध्वी ठाकुर देवी नामी, सीता के सामने रख दिया कि मैं अमीरी छोड़ कर फ़कीरी अख्तयार करना चाहता हूं। आपकी क्या राय है तो ठाकुर देवी जी ने भी हंसराज जी को वही जवाब दिया जो सीता जी ने राम को बनवास में साथ जाने के लिए दिया था। कि यदि आप अमीरी छोड़ कर फ़कीरी करना चाहते हैं तो मैं हर हाल में आप के साथ रहूंगी। और अब रामायण के तीनों पात्र यानि राम लक्ष्मण और सीता इकट्ठे हो गये। और दस लाख साल के बाद एक बार महर्षि दयानन्द की कृपा से रामायण की लीला इस पुण्य धरती पर खेली जानी शुरू हो गई। महात्मा हंसराज जी की आँखें दुखती थीं। श्री मुलखराज जी ने आर्य समाज लाहौर के प्रधान जी को पत्र लिखा और हंसराज जी ने अपने हस्ताक्षर कर दिये। "दयानन्द स्कूल खुलने पर मैं अवैतनिक मुख्याध्यापक बनने के लिए तैयार हूं। इस संक्षिप्त से पत्र ने आर्य समाज के कार्य कर्ताओं में उत्साह फूँक दिया। और ३—११—८५ को यह पत्र आर्य समाज की अन्तरंग सभा में रखा गया। जहां हंसराज का जीवन दान धन्यवाद सहित स्वीकार किया गया। महात्मा जी ने कहा था कि जिस दिन मैंने जीवन दान देने का निश्चय किया था, उस रात देर तक मुझे नींद नहीं आई और मैं आसन लगा कर प्रभु भजन में लगा रहा। गायत्री का जाप करते करते मेरी मूंदी आंखों ने एक ऐसी ज्योति देखी कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। मैंने अनुभव किया कि मेरा आत्मा ऊपर उठ रहा है।

(२) ३१—१—८६ को आर्य समाज मन्दिर में सब प्रमुख आर्य समाजियों की मीटिंग हुई जिस में दयानन्द कालज ट्रस्ट और दयानन्द कालज मैनेजिंग कमेटी बना दी गई। २० मार्च को चुनाव हो गया। और राय बहादर लाल चन्द इसके पहले प्रधान चुने गये। इस समय तक २४८६८) रुपया इकट्ठे हुए थे। और १—६—१८८६

को आर्य समाज लाहौर के भवन में स्कूल जारी कर दिया गया। पंजाब भर में यह पहला स्कूल था जिसका हैडमास्टर एक हिन्दु नौजवान बना था मिशन स्कूल के हैडमास्टर हैरान थे कि एक नातजरबाकार नौजवान जो कल तक हमारे स्कूल में पढ़ता रहा है किस तरह इतनी बड़ी ज़िम्मेदारी उठा सकता है। सिर्फ़ पांच दिन के अन्दर ही स्कूल में ३०० लड़के दाखिल हो गए। १८८६ में कालिज खुल गया और महात्मा जी इस के पहले प्रिंसिपल बनाए गए। १८९० में आर्य समाज लाहौर के प्रधान बने और १८९१ में आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान चुने गए, १८९३ में अपनों की ओर से घोर अपमान होने पर भी महात्मा जी अपने सेवा के रास्ते पर अग्रसर ही रहे। और अपने गुरु महर्षि दयानन्द की तरह मान अपमान की परवाह न करते हुए अपने कर्तव्य को पूरे तौर पर निभाते चले गए। परन्तु महात्मा जी के इस तरह अपमान किए जाने पर स्वामी रामतीर्थ जैसा त्यागी विद्वान पुरुष जो एम. ए. पास करके दयानन्द कालिज को सिर्फ १०/-p. m. वेतन लेकर जीवन दान देना चाहते थे, पीछे हट गये। अगर स्वामी रामतीर्थ जैसा महात्मा भी आर्य समाज में आ जाता तो कितना प्रचार आर्य समाज का होता। लेकिन महात्मा जी के अपमान ने उन को इसलिए आर्य समाज में आने से रोक दिया कि जिस समाज में अपने सेवकों से बुरा सलूक होता है उस में काम करना व्यर्थ है। १८९६ में Engineering क्लास कालिज में खोल दी गई। कालिज के प्रिंसिपल आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के प्रधान, कालिज होस्टल के प्रधान सुपरिन्टैन्डैन्ट यह सब ज़िम्मेदारियाँ अकेले महात्मा जी ने संभाल रखीं थीं। होस्टल में रहने वाले विद्यार्थियों के धार्मिक जीवन का वह पूरा ध्यान रखते थे। कालिज में धर्म शिक्षा वह स्वयं पढ़ाते थे। और इस मतलब के लिए उन्होंने धर्मशिक्षा की ख़ास पुस्तकें तैयार करवाईं थीं। कालिज की पहली बिलडिंग तंग हो जाने पर २३—४—१९०५ को महर्षि दयानन्द जी

के श्रद्धालु महाराजा सर प्रताप सिंह ईदर नरेष के करकमलों से कालिज की आधार शिला रखवाई गई। और ३ वर्ष में महात्मा जी ने पचास हज़ार रुपया बिल्डिंग के लिए जमा कर लिया । यह वह दिन थे, जव १९०७ में ला० लाजपत राय जी को सरकार अंग्रेज़ी ने गिरफ़तार कर लिया था। और हर आर्य समाजी पर सरकार की कड़ी नज़र थी। ऐसे विकट समय में इतना रुपया कालज के लिए इकट्ठा कर लेना महात्मा जी का ही काम था। अतः कालज के लिए शानदार बिल्डिंग बन गई। फिर इस कालज की इतनी बिल्डिंगें बन गईं कि जब १९४७ में विभाजन हुआ तो कालज की जायदाद की कीमत कई करोड़ रुपया की थी।

३—महात्मा जी के तप और त्याग से प्रेरणा पाकर बहुत से नौजवान आजीवन सेवा करने के लिए तैयार होना शुरू हो गये। तो श्री महात्मा जी ने सन १९०२में आजीवन सदस्यों की एक योजना बनाई। जिस से प्रभावित होकर ला० साईंदास, ला० दीवान चन्द, भाई परमानन्द, पं० मेहर चन्द, ला० देवी चन्द, ला० रामचन्द, बख्शी राम रत्न, डा० गोवर्धन लाल जी दत्त, कैप्टन अमर नाथ वाली, प्रो० बहादर मल, पं० दीवान चन्द पं० विश्वबन्धु, प्रो० श्री राम, पं० सरेन्द्र मोहन, डा० आसानन्द, ला० सूर्य भानु, प्रो० भगवान दास, श्री ज्ञान चन्द महाजन, ला० अमोलक राम, ला० चमन लाल, श्री रामदास, पं० वज़ीर चन्द, ला० लालचन्द, ला० राम लाल, पं० रला राम, इन नौजवानों को जो सब के सब M.A. पास थे, निर्वाह के लिए कुछ शुल्क मुकर्रर कर दिया गया और नियम बना दिए गए और इन सज्जनों ने महात्मा जी की देख रेख में डी.ए.वी.कालज की तहरीक को चार चांद लगा दिये। और आर्य समाज के विस्तृत विद्या क्षेत्र में हर जगह कामयाबी का झंडा गाड दिया क्योंकि महात्मा जी की कृपा से आर्य समाज के स्कूलों और कालजों का एक जाल सा सारे पंजाब में फैल गया था।

(४) १-६-८६ से अपना प्रण शुरू कर के पूरे पचीस वर्ष तक सेवा करके बग़ैर एक पैसा लिए महात्मा जी ने २७. ११. १६११, को दयानन्द कालज के प्रिंसिपल पद से त्याग पत्र दे दिया। जहां महात्मा जी क काम शुरू करने पर केवल २४८६६) रुपया कालज कोष में जमा थे। वहां उनके त्याग पत्र देते समय लाखों रुपयों की कालज की इमारतों के इलावह ८३१००० रुपया कालज कोष में जमा थे। १६११ में महात्मा जी की आयु ४८ वर्ष की थी। यह वह उमर है जब लोग प्रिंसिपल बनते हैं। परन्तु महात्मा जी ने स्वय ही इस पद को त्याग दिया। यहां तक कि कालज कमेटी इनका त्याग पत्र किसी सूरत में भी स्वीकार करने को तैयार न थी, परन्तु आपने आग्रह करके, अपना त्याग पत्र स्वीकार करवा लिया। महात्मा हसराज जी भारत भर में पहले भारतीय थे जो किसी कालज के प्रिंसिपल थे। जब तक उन्होंने अपने तप और त्याग से यह सिद्ध नहीं कर दिया कि भारतीय लोग भी महत्व पूर्ण ज़िम्मेवारी निभा सकते हैं। और अंग्रेज़ों की मदद के बग़ैर ऐशिया की सब से बड़ी संस्था, डी. ए. वी. कालज लाहौर का संचालन अत्यन्त उत्तमता से कर सकते हैं। तब तक किसी भारतीय को साहस नहीं हुआ था कि वह अपने स्कूल या कालज खोलें, सिर्फ़ गवर्नमैन्ट या मिशन स्कूल कालज ही थे। परन्तु महात्मा जी को सफलता से उत्साह पाकर स्थान स्थान पर स्कूल कालज गुरुकुल, ऋषिकुल, कन्या पाठशालाएं स्थापित होने लगीं। इस समय सनातन धर्मियों, सिखों, जैनियों, मुसलमानों, ब्रह्म-समाजियों, आदि की जो शिक्षा संस्थाएँ आप देख रहे हैं, यह कहीं न दिखाई देतीं। अगर महात्मा जी ने अपने बलिदान से आत्म विश्वास और आत्म सन्मान की भावना पैदा न की होती। इस के सम्बन्ध में तीन घटनाएँ उल्लेखनीय हैं।

(क) अलीगढ़ मुसलिम कालज के बानी सर सैयद अहमद खां, दयानन्द कालज देखने आये, सब कुछ देखकर कहा कि मेरे

कालज में सब कुछ दयानन्द कालज से अधिक है—परन्तु मेरे पास कोई हँसराज नहीं है। और यह कमी मैं पूरी नहीं कर सकता।

(ख) सनातन धर्म कालज खोलने के लिए लाहौर में एक बड़ा भारी जलसा म्यूनिसिपल वाग में हुआ। महाराजा जम्मू कशमीर सर प्रताप सिंह जी इसके प्रधान थे। महात्मा हँसराज जी को भी निमंत्रित किया गया था। महाराजा भाषण करते करते अनायास रुक गए। और महात्मा हँस राज जी को सम्बोधन करके कहने लगे "हंसराज जी एक हंसराज इनको भी दे दो ताकि यह कालिज भी सफ़ल हो सके।" (इस पुस्तक का लेखक इस जलसा में स्वयं उपस्थित था)

(ग) शिकागो मुलक अमरीका में सकल सँसार के विद्या प्रसारकों का एक बड़ा भारी समारोह किया गया। जिस में सर्व सम्मति से यह निश्चय करके घोषित किया गया कि विद्या प्रचार के लिए महात्मा हँसराज जी से बढ़ कर सारे संसार में किसी का बलिदान नहीं है।

५—स्वराज्य की मांग करने पर अंग्रेजों ने जब यह अक्षेप किया कि अभी हिन्दुस्तानी राज्य संभालने के लायक नहीं हुए, तो उसके जवाब में यही उदाहरण दिया गया। जो हिन्दुस्तानी अंग्रेजों की मदद के बग़ैर ही डी. ए. वी. कालिज और उसके साथ सम्बन्धित सैंकड़ों कालिजों और स्कूलों को सुचारू रूप से चला रहे हैं वह देश का शासन भी सुचारू रूप से चला सकते हैं। और इस उदाहरण का अंग्रेजों के पास कोई जबाब नहीं था। और यह उदाहरण भी महात्मा हंसराज जी के बलिदान से ही बना था महात्मा हंसराज जी के अमूल्य बलिदान ने भारत का कितना ऊँचा सर किया। यह इस उदाहरण से भली भाँति समझा जा सकता है। और फिर स्वराज प्राप्ति में डी. ए. वी. कालिज के विद्यार्थी नवयुवकों ने बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिया। और भगतसिंह जैसे सैकड़ों नौजवान इस कालिज

की ही पैदावार थे। जिन्हों ने हँसते-हँसते फांसी के रस्सों को चूम कर भारत वर्ष को आज़ाद कराया।

६—जब विदेशी भारत में आये तो उन्होंने अपनी इच्छानुसार भारत का इतिहास लिखा। उस का ध्येय भारतियों को ईसाई बनाना और भारत में अपना राज्य बनाए रखना था। विनसेन्ट स्मिथ नामक इतिहासकार ने लिखा कि "प्राचीन आर्य लोग गौ मांस खाते थे।" वह एक बार लाहौर आए और महात्मा हँसराज जी से मिलने गए। महात्मा जी ने पूछा—"क्या आप ने वेद पढ़े हैं?' उन्हों ने उत्तर दिया—"नहीं"। महात्मा जी ने कहा, "तो आप ने यह बात बिना पढ़े कैसे लिख दी?" स्मिथ बहुत लज्जित हुए, और वचन दिया कि पुस्तक के आगामी संस्करण में यह बात नहीं छपेगी।

७—वैसे तो महात्मा जी कालिज के प्रिंसिपल होते हुए भी आर्य समाज और इस के प्रचार का सब प्रबन्ध करते ही रहते थे लेकिन कालिज के प्रिंसिपल के पद से त्याग पत्र देकर अब बिल्कुल ही आर्य समाज के लिए हो गए। अतः १८९५ में जो आर्यसमाज अनारकली दो रुपया माहवार किराया के कमरे में था वह महात्मा जी की कृपा से १९४५ में हजारों रुपया किराया की जायदाद का मालिक बन गया था। आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा स्थापित करके वह इस के प्रधान चुने गए और फिर इन को दयानन्द कालिज कमेटी का भी प्रधान बना दिया गया। अब दो महत्त्व पूर्ण संस्थाओं का भार उनके कन्धों पर डाल दिया गया। जिस को उन्होंने निहायत उत्साह से निभाया। उनके साथ ही उनकी धर्म पत्नी ने भी आर्य समाज के कामों में हिस्सा लेना शुरू कर दिया और उन्होंने महिलाओं में प्रचार करना शुरू कर दिया। और स्त्री समाज लाहौर में स्थापित कराया। अतः महात्मा जी और उन की धर्मपत्नी दोनों ने ही वैदिक धर्म प्रचार को अब अपना जीवन ध्येय बना लिया था,

और जगह-जगह आर्य समाजें कायम होने लगीं। और महात्मा जी छोटी से छोटी समाज में प्रचारार्थ जाते रहते थे। अतः पूरी लगन से आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के संगठन को मजबूत कर के और लाखों रुपया वेद प्रचार फ़ण्ड में जमा करके आपने १९३७ में इस सभा के प्रधान पद से भी त्याग पत्र दे दिया। यह त्याग की तीसरी घटना थी। उन का सारे का सारा जीवन त्यागमय ही था।

८—महारानी सीता रावण की कैद में थी। उन के छुड़ाने के लिए भगवान राम ने लंका पर चढ़ाई कर दी। युद्ध में प्राणों से प्यारा भाई लक्ष्मण घायल हो कर बेहोश हो गया तो भगवान राम ने घोर वर्लाप किये। और जब तक लक्ष्मण को होश न आई तब तक गहरे दुख में डूबे रहे।

और

इसी तरह का एक वाक्या महात्मा जी के जीवन में भी आया। परन्तु न तो उन्होंने वर्लाप किया और न दुख ही माना। वह इस तरह है कि २०—१—१९१४ को महात्मा जी के सब से बड़े लड़के बलराज जी पर पुलिस ने क्रांतिकारी दल का मैम्बर होने के कारण मुकद्दमा चला दिया। जिसके सम्बन्ध में यह कहा जाता था कि राश बिहारी बोस ने अंग्रेज़ों को कत्ल करने के लिए यह दल बनाया है। और ४—३—१९१४ को बलराज जी को अदालत में पेश किया गया। जिन दिनों बलराज जी पर यह मुकद्दमा चल रहा था उन्हीं दिनों महात्मा जी की सीता साधवी धर्मपत्नी ठाकर देवी, रोग रूपी रावण की कैद में थी। अतः ४—७—१९१४ को उन की हालत नाज़ुक हो गई। महात्मा जी ने मजिस्ट्रेट का देहली तार दिया कि बलराज की माता मृत्यु शैया पर पड़ी है और अपने पुत्र को आखिरी बार देखना चाहती है। जज साहिब ने कहा कि अपराधी केवल पोलिस की हरासत में ही भेजा जा सकता है। लेकिन पोलिस ने पहले ही ज़िम्मेदारी लेने से इन्कार कर दिया। इसलिए बल-

राज अपनी मरती हुई माता के दर्शन न कर सका और माता भी अपने सपुत्र के अन्त समय दर्शन करने से वंचित रह गई। और ७—७—१९१४ को परलोक सिधार गई। १५ अक्तूबर को शैशन जज ने बलराज जी को उमर कैद की सजा सुनाई और १०—२—१९१५ को हाईकोर्ट में अपील पर सज़ा घटा कर ७ साल कर दी। परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी महात्मा हंसराज जी ने न वर्लाप किया न दुख मनाया बल्कि पहले की तरह ही आर्य समाज का काम निःशुल्क करते रहे। और इस साल के आर्य समाज लाहौर के सलाना जलसे के सम्बन्ध में निकले नगर कीर्तन के साथ पहले की तरह ही शामिल हुए और जलसा पर उसी गम्भीर आवाज़ और हंसते हुए चेहरे से अपील भी की। और किसी भी मनुष्य ने यह महसूस न किया कि महात्मा जी पर इतनी बड़ी भारी मुसीबत आई हुई है।

वृक्षा फले न आप को, नदी न अचवे नीर।
परउपकार के कारणे, सन्तन धरा शरीर।।

९. विद्या प्रसार और धार्मिक प्रचार में संलग्न रहते हुए भी महात्मा जी दुखियों के दुःख को भी भूल न पाते थे, भारत वर्ष में जहाँ कही भी अकाल भूकम्प या फ़िर्का दाराना फ़साद के कारण जनता को दुखी देखकर उसी समय उनकी सहायता के लिए कमर कस कर तैयार हो गये। और जहां लाखों रुपये स्कूल और कालेज के लिये इकट्ठे किये, वहाँ लाखों ही रुपये दुखियों की सहायता के लिए भी इकट्ठे किये और खर्च किये। अतः १८९५ में बीकानेर में अकाल पड़ा, तो महात्मा जी ने झट सहायता भेज दी। १८९९ में बीकानेर में कहर पड़ गया, ईसाई लोग ऐसे अवसरों पर खूब लाभ उठाते हैं। महात्मा जी इस बात से बेख़बर न थे। इसलिए उन्होंने फिर सहायता भेज दी। और ईसाईयों को अपनी फ़सल काटने

से रोक दिया। १९०५ में काँगड़ा में बड़ा ज़बरदस्त भौंचाल आया। हजारों मनुष्य गिरे मकानों के नीचे दब गये। अतः महात्मा जी ने शीघ्र ही आर्य सेवकों का जत्था भेज दिया, जिन्होंने जाकर सैंकड़ों जानों को बचा लिया। सन् १९०७ वा ८ में अवध में अकाल पड़ गया और महात्मा जी ने तुरन्त सहायता के लिए धन और जन भेज दिये और दीन दुखियों की सहायता की। हज़ारों आदमियों को काल का ग्रास होने से बचा लिया। १९१८ में गढ़वाल में कहत पड़ गया, वहां भी महात्मा जी ने तरन्त सहायता पहुंचाई। जहां हज़ारों जिन्दगियां बचा ली वहां हजारों को ईसाई होने से भी बचा लिया। १९२० में उड़ीसा में कहत शुरू हो गया, और उन्हीं दिनों छत्तीस गढ़ में भी कहत पड़ गया। महात्मा जो ने हर स्थान पर अपने स्वयं सेवक भेज कर हज़ारों मनुष्यों की जिन्दगियों को मौत के मुंह से बचा लिया। १९२१में शिमला कांगड़ा जम्मू—भिंबर, नौशहरा, राजौरी, कोटली, मीर पुर आदि में भी कहत पड़ने से लोग मौत का ग्रास बनने लगे। महात्मा जी ने तुरन्त यहां भी सहायता का प्रबन्ध करके सैंकड़ां जानें बचा लीं। १९२१—२२ में मालाबार में मोपले मुसलमाना ने हज़ारों हिन्दुओं को कत्ल कर दिया। हज़ारों को ज़बरदस्ती मुस्लमान बना लिया। महात्मा जी को जब बम्बई से एक लम्बा तार आया कि मालाबार में मुसलमान मोपालों ने हिन्दुओं पर घोर अत्याचार किया है। हज़ारों अनाथ और हज़ारों विधवाए बना दी गई हैं। इस तार का पहुंचना था कि हंसराज के हृदय में आग लग गई। तुरन्त ही स्वय सेवकों का एक जत्था तैयार करके भेज दिया। और अपील करने पर हज़ारों रुपया महात्मा जो के पास पहुंच गया। जिससे हजारों हिन्दुओं को जो ज़बरदस्ती मुसलमान बनाए गए थे। वापस लाया गया। सैंकड़ों टूटे हुए मन्दिरों की मुरम्मत कराई गई। अतः पं० ऋषिराम B. A., श्री खुशहाल चन्द खुर्सन्द, (आनन्द स्वामी सरस्वती) पं० मस्तान चन्द, प्रिंसिपल ज्ञान चन्द आदि महानु

भाव महात्मा जी की आज्ञा पाकर मालाबार में निडरता से काम करते रहे। सन् १९२४ में कोहाट में पठानों ने हिन्दुओं पर हमला कर दिया और तलवारों और बन्दूकों से निहत्थे हिन्दुओं को कत्ल करना शुरू कर दिया। और हिन्दुओं की जायदादें लूट ली गईं। और हज़ारों लोग तबाह वा बरबाद होकर कोहाट से निकल खड़े हुए। इस पर महात्मा जी ने उनको आर्थिक सहायता के लिए भी भरपूर यत्न किया। उन्हीं दिनों ज़िला मुज़फर गढ़ में सिंध दरया की बाढ़ से तबाही मची, इस तरह जिला रोहतक में बाढ़ के कारण तबाही मच गई थी, महात्मा जी की दूरबीन नज़र सब जगह देखती थी। और सभी स्थानों पर यथा शक्ति सहायता भी पहुंच जाती थी। १९३४ में बिहार में भूकम्प से तबाही मची, तो वहाँ भी पूरे ज़ोर शोर से सहायता का कार्य किया गया। १९३५ में कोयटा में भूचाल आया, परन्तु सरकार ने वहां आर्य समाज को सहायता की आज्ञा न दी। फिर भी महात्मा जी के आदेश से, रोहड़ी, सक्खर, अमृतसर और लाहौर में सहायता केन्द्र जारी कर दिये। ताकि भूचाल के पीड़ित लोग जो सरकार वहां से ज़ख्मी या दूसरी हालत में निकाल कर बाहर भेज रही थी, उनकी सहायता की जावे, और उन की सहायता इन चार केन्द्रों में की जाने लगी। अर्थात् महात्मा जी ने अपने जीवन में जहाँ से भी दुखी जनता की आवाज़ सुनी, शीघ्र ही उनकी सहायता करने को तैयार हो गये। १९३५ में एबटा बाद में आग से तबाह शुदा लोगों की सहायता की।

१०. इसके इलावा महात्मा जी ने छूत छात निवारण के लिए भी बड़ा काम किया। विधवा विवाह के लिए भी वह यत्नवान रहे। और देश के बच्चों में ब्रह्मचर्य की प्रथा को जारी करने के लिए, उन्होंने स्कूलों में विवाहित लड़कों को दाखल करने की मनाही कर दी। १९१९ में अखिल भारतीय समाजिक सुधार सम्मेलन के महात्मा जी प्रधान चुने गये। और प्रधान पद से बड़ा महत्वपूर्ण भाषण दिया।

और शुद्धि के काम में भी उन्होंने खूब योग दिया। अतः मलकाना शुद्धि के काम में भी उन्होंने खूब योग दिया। अतः मलकाना शुद्धि में १९२३ में जब आल इण्डिया शुद्धि सभा की स्थापना हुई तो स्वामी श्रद्धा नन्द जी प्रधान और महात्मा जी उप प्रधान बन कर इस महान कार्य को इकट्ठे करते रहे। और तीन महीनों के निरन्तर संघर्षण से १४७ गांव मलकानों के शुद्ध कर लिये और इस घोर परिश्रम से आपको पहले बुखार हो गया और जब आप फिर इस काम से न हटे तो कारबंकल फोडा निकल आया तब आप लाहौर वापस आए और इसका आपरेशन कराया गया। देश जाति धर्म के किसी भी काम में महात्मा जी पीछे न रह कर आगे ही रहे। और पूरी लगन से और मेहनत से हर काम को सम्पन्न किया। १९२७ में अपने आल इण्डिया आर्यन कांग्रेस देहली की सदारत की। १९२८ में लाहौर में लड़कियों के लिए महला महा विद्यालय स्थापित किया। महात्मा जी ने अपने जीवन में इतने काम किये हैं जिनका वर्णन एक बहुत बड़ी पुस्तक में किया जा सकता है। यहां तो केवल दिग् दर्शन मात्र ही कराया गया है।

अन्त में १५-११-१९३८ को रात के ११ बज कर ५ मिनट पर ७४ वर्ष की आयु में पूरे ५२ साल तक देश जाति समाज की अनथक निष्शुल्क सेवा करके इस असार संसार से विदा हो गये। ओं ओं का जाप करते हुए इस भौतिक देह को त्याग दिया। और यह उन का चौथा त्याग था। भगवान राम ने १४ वर्ष बनवास काटा, परन्तु महात्मा हंसराज ने पूरे ५२ वर्ष बनवास की तरह दिन काटे। जो अपनी शक्ति से सोने के मन्दिर बना सकता था, मरते दम तक किराया के मकान में रहता रहा। जो ज़री ज़रबफत के कपड़े पहन सकता था। सारी आयु खद्दर के कपडे ही पहनता रहा। कदाचित आपके मन यह विचार उठे कि राम तो राजा थे। परन्तु हंसराज तो रंक थे, इनका आपस में क्या मुकाबला है तो यह आपकी गलत

फ़हमी ही है। नरेन्द्र नाथ जी ने महात्मा जी के साथ ही बी. ए. पास किया और महात्मा जी से कम नम्बर लेकर जब वह अपनी सरकारी नौकरी से रिटायर हुए तो जहां लाखों की सम्पत्ति के मालिक थे। वहां राजा का ख़िताब भी लेकर राजा नरेन्द्र नाथ बन गये थे तो कोई वजह नहीं कि महात्मा हंसराज भी इन्हीं की तरह नौकरी करते तो उन जैसी दौलत पैदा न कर लेते या राजा न बन जाते। परन्तु हंसराज ने राजा बनना कबूल न करके फ़कीर बनना ही पसन्द किया। और इस फ़कीर हंसराज पर हज़ारों राजा बलिदान किये जा सकते हैं। इतना महान कार्य महात्मा जी ईश्वर विश्वास पर ही कर पाये थे। और विश्वास के मुतल्लिक उनके जीवन में एक विचित्र घटना आती है, जब इनकी धर्म पत्नी मृत्यु शैय्या पर थी। और पुत्र बलराज को उमर कैद की सज़ा हो गई थी। और भाई मुलख राज जो सारी आयु सहायता करता रहा. उसकी आर्थिक दशा पतली पड़ गई थी, तो उन की लड़की ने एक दिन कहा—कि पिता जी, "अब भी परमात्मा है "तो महात्मा जी ने मुस्कराते हुए कहा बेटा—ऐसी नास्तिकता की बात क्यों करती हो। परमात्मा है और अवश्य है ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है। इतनी मुसीबतों, तकलीफों, मुख़ालफ़तों, रुकावटों, को पार करते हुए जिस महापुरुषने २२ वर्ष की भरपूर जवानी में जो प्रतिज्ञा की थी, वह ७४ वर्ष की आयु तक पूर्ण रूप से निबाही। किसी शायर ने शायद महात्मा जी के जीवन को सम्मुख रख कर ही कहा है।

अगन आँच सहना सुगम, सुगम खड्ग की धार।
नेह निभावन एक रस, महा कठिन व्यवहार॥

जिस हंसराज ने शायर के शब्दों में—"हंस हंस के हंसराज ने तन मन वा धन लुटा दिया" उस हंसराज ने मौत का भी हंसते हंसते स्वागत किया। और १६—११—३८ को जब इनकी अर्थी निकली तो लाखों आंखें आँसुओं से पुरनम थीं। लाहौर के बाज़ार रोते हुए

मनुष्यों और बाजारों के किनारों पर मकानों की छतें रोती हुई देवियों और बालकों से अटी पड़ी थीं। परन्तु महात्मा जी अर्थी पर लेटे हुए भी हंस रहे थे। और शायर के इस शेर की पूरी परी ताबीर कर रहे थे।

जब तुम पैदा हुए जग हँसा तुम रोये।
ऐसी करनी कर चलो तुम हंसो जग रोये ॥

अब महात्मा जी का प्यारा गीत पढ़ें, जो वह सारी आयु गाते रहे, क्योंकि उन्होंने अपने बलिदान से इसके गाने का अधिकार प्राप्त कर लिया था।

(पहाड़ी झपताल)

भजन

हे जगत स्वामी प्रभु जी भेंट धरूं क्या मैं तेरी ॥
माल नहीं मेरे सम्पत्ति नाहीं, जिसको कहूं मैं मेरी ॥
इस जग में हम ऐसे विचरें, जोगी करें ज्यों फेरी ।२।भेंट०
धन जन यौवन अपना माने, मूर्ख भूला भारी।
तुझ बिन और सहाई न मेरा, देख लिया मैं विचारी ।३।भेंट०
यह तन यह मन होवे न अपना, है सब ही माल तुम्हारा।
जब चाहो तब ही तुम लेवो, न कुछ ज़ोर हमारा ।४।भेंट०
तुमरे दर का भिखारी मैं स्वामी, लाज तुम्हें है मेरी।
चरण शरण निज अर्पण करके, भक्ति दो बिन देरी ।५।भेंट०

१८. महर्षि शृङ्गी

सूर्यवंशी सम्राट यूनाश्व के कोई पुत्र न था, ऋषियों ने इसके लिए पुत्रेष्टि यज्ञ का अनुष्ठान कराया तो उसके घर बहुत बड़ा

प्रतापी राजकुमार पैदा हुआ, जिसका नाम मानधाता रखा गया, और वह चक्रवर्ती राजा हुआ। उसने अपने जीवन के दो नियम बनाये हुए थे।

१—साम्राज्य भोग के लिए नहीं, सेवा के लिए है।

२—ईश्वर की अराधना से ही ऐश्वर्य और सच्चा सुख मिलता है।

सम्राट मानधाता जीवन भर इन नियमों का बड़ी कठोरता से पालन करते रहे।

२—महाराज दशरथ के जब तीन विवाह करने पर भी पुत्र उत्पन्न न हुआ, तो महाराज इस बात से बहुत दुखी रहते थे, और इसका वर्णन बाल्मिकी रामायण बाल काँड में लिखा है, कि सन्तानार्थ दुखित दशरथ के वंश चलाने वाला पुत्र नहीं था, तो उनका यह दुख दूर करने के लिए पुत्रेष्टि यज्ञ का अनुष्ठान कराने का विचार निश्चित हुआ, और उस समय के यज्ञ प्रक्रया में प्रसिद्ध महर्षि शृङ्गी जी को जिनका आश्रम आसाम में था निमन्त्रित किया गया, अतः उन्होंने आकर महाराजा दशरथ को आश्वासन दिलाया कि मैं पुत्रेष्टि यज्ञ का अनुष्ठान कराऊँगा जो अवश्य सफल होगा, अतः बाल्मीकि रामायण बाल कांड १५—२में महर्षि शृङ्गी कहते हैं-

इष्टिं तेऽहं करिष्यामि पुत्रायां पुत्रकारणात्।
अथर्वशिरसि प्राक्तैर्मन्त्रैः सिद्धां विधानतः॥

(बाल्मीकि रामायण बाल कांड, १५-२)

अर्थ—महाराज! आपको पुत्र प्राप्ति के लिये अथर्ववेद के मन्त्रों से पुत्रेष्टि नामक यज्ञ करूँगा। वेदोक्त विधि के अनुसार करने पर वह यज्ञ अवश्य सफल होगा।

और उन्होंने पुत्रेष्टि यज्ञ कराया और राम, लक्ष्मण, भरत, और शत्रुघ्न चार पुत्र महाराजा दशरथ के घर उत्पन्न हुए। पुत्रेष्टि

यज्ञ की प्रक्रिया हमारे वेद शास्त्रों के आधार पर प्रचलित थी, तथा मानधाता जैसे शूरवीर चक्रवर्ती सम्राट् और भगवान राम जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम जन्म ले सके, और संसार का अब तक भी कल्याण उनके राम चरित्र मानस के पढ़ने सुनने से हो रहा है। महाराज दशरथ की आयु उस समय ४४ वर्ष की थी, जब पुत्रेष्टि यज्ञ का अनुष्ठान हो कर उनके गृह में पुत्र रत्न उत्पन्न हुए। यदि पुत्रेष्टि यज्ञ न होता तो राम लक्ष्मण भरत जैसे भाई कैसे पैदा होते, और राम न होते तो रामायण कैसे बनती, जो लाखों सालों से करोड़ों आदमियों के लिए रोशनी के मीनार का काम दे रहे हैं। ऐसे महान यज्ञ प्राचीन काल में हुआ करते थे।

और

हज़ारों लाखों वर्षों से लुप्त प्राय यज्ञ प्रक्रिया को फिर से महर्षि दयानन्द जी महाराज ने प्रचलित किया, और महर्षि जी ने भी पुत्रेष्टि यज्ञ का अनुष्ठान कराके इसकी सफलता का संसार को कायल कर दिया। अतः सन् १८७० में जब स्वामी जी महाराज अनूप शहर में विराजमान थे तो कर्णवास के एक ठाकुर ने महाराज से पुत्रेष्टि यज्ञ का अनुष्ठान कराया था, जो सफल हुआ, और निश्चित समय पर उस ठाकुर के घर पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ। सारे संसार में ऐसी उत्कृष्ट विद्या सिवाय वैदिक याज्ञकों के कहीं भी नहीं मिल सकती।

वैदिक धर्म और वैदिक सभ्यता का आधार यज्ञ ही है, क्योंकि समस्त वेद यज्ञ का प्रतिपादन करते हैं, सबसे पहले स्वय परमेश्वर ने ही यह सब संसार यज्ञ रूप ही बनाया है, और स्वय यज्ञ का देवाधिदेव बना हुआ है जैसा कि स्वयं ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र में कहते हैं—

अग्नि मीढे पुरोहितं यज्ञस्य देवं ऋत्विजं होतारं रत्नधातमं

यानि अग्नि स्वरूप परमात्मा इस यज्ञ का देव है, पुरोहित

है, ऋत्विज है, होता है, सब कुछ वही है, और फिर इस यज्ञ को स्वयं रचा कर भगवान ने यज्ञ को सार्थक करने का भी उपदेश दे दिया है। यज्ञ शब्द का अर्थ-संगति करण, देव पूजा और दान है। यह तीन यज्ञ के आधार हैं। सो आप भगवान की सृष्टि को देखें तो आप हैरान होंगे कि परम पिता परमात्मा ने इस ब्रह्माण्ड का कैसा संगति करण किया है। सूर्य, चांद सितारे, पृथ्वी सब अर्बों वर्षों से सब एक संगठन में बंधे चल रहे हैं, मजाल है जो कभी किसी में टकराव हुआ हो, इस का कारण यह है कि परमात्मा ने सब में कशश पैदा कर रखी है, जिस से यह संगठन सही तौर पर चल रहा है। इससे परमात्मा ने हमें उपदेश दिया है कि अगर तुम किसी संगठन को सुचारू रूप से चलाना चाहते हो तो आपस में कशश पैदा करो, जब तक संगठित रहने वालों में कशश रहेगी संगठन कायम रहेगा। और जिस समय बजाय कशश के कशमकश पैदा हो गई संगठन टूट जायगा। इसी तरह उसने देव पूजा यानि विद्वानों का भी इज्जत मान किया. आदि सृष्टि में अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा ऋषियों को वेद ज्ञान लेने के योग्य समझ कर उनको ज्ञान देकर उनकी पूजा की, जिस से आज तक भी उनकी पूजा हो रही है। और दान तो वह इतना दे रहा है, कि जिस का कोई शुमार नहीं कर सकता, जब से सृष्टि बनी है, सब संसार के प्राणी उसी के दान से परवरिश पा रहे हैं। इस तरह यज्ञ हमारी सभ्यता का आधार ही है, फिर यज्ञ की तीन किसमें हैं, कर्म यज्ञ, ज्ञान यज्ञ, उपासना यज्ञ, और इन तीन किसमों के यज्ञों में संसार की समस्त विद्याओं का समावेश हो गया है, क्योंकि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, इन यज्ञों में से एक पुत्रेष्टि यज्ञ भी है जिसके घर औलाद पैदा न होती हो, या केवल लड़कियां ही लड़कियां पैदा होती हों, पुत्रेष्टि यज्ञ के अनुष्ठान से पुत्र उत्पन्न करा सकता है, क्योंकि हमारे धर्म में ऐसा है कि हर मनुष्य जब पैदा होता है तो तीन ऋण इस के सिर पर होते हैं। देवऋण, ऋषिऋण, और पितृ ऋण, देवऋण और ऋषिऋण

कर्म यज्ञ और ज्ञान यज्ञ से उऋण होते हैं। परन्तु पितृऋण पुत्रेष्टि यज्ञ से उऋण होता है। इस लिए पितृऋण से उऋण होने के लिए हर गृहस्थि के घर पुत्र होना चाहिए, और यदि स्त्रि या पुरुष में किसी बिमारी के कारण पुत्र उत्पन्न न होने की सूरत में पुत्रेष्टि यज्ञ का अनुष्ठान हमारे ऋषि वेद द्वारा करके पुत्र उत्पन्न करा देते थे। अतः शतपथ ब्राह्मण में भी लिखा है. अर्थात् जो पुत्र की इच्छा करता हो, वह पुत्रेष्टि यज्ञ करे यजुर्वेद २—२३ में "आधत्त पित्रो" गर्भं कुमारम्" में पुत्रेष्टि यज्ञ का वर्णन आया और गृह्य सूत्रों में इसी मन्त्र को बोलकर बीज का पिंड पत्नी खा जावे कहकर पुत्रेष्टि यज्ञ की प्रक्रिया का वर्णन है। मनुस्मृति में भी इसका वर्णन आया है, और प्राचीन काल में इस यज्ञ का अनुष्ठान भी किया जाता रहा है और फिर महर्षि दयानन्द जी ने भी इस लुप्त प्राय यज्ञ विद्या को पुनर्जीवित कर दिया है। जब कि उपरोक्त दृष्टान्तों से भी भली भान्ति विदित हो गया है।

१६. देव ऋषि नारद

१. छान्दोग्य उपनिषद् में प्रपाठक ७ के २६ खण्ड में देव ऋषिनारद और सनत्कुमार ऋषि की बड़ी रोचक कथा आती है। देव ऋषि नारद बहुत सी विद्या पढ़ कर तृप्त न हुए और पूर्ण तृप्ति और शान्ति के लिए सच्चे गुरु की खोज करते करते महा मुनि सनत्कुमार जी के पास पहुंचे. तब सनत्कुमार जी ने नारद से पूछा कि आप क्या कुछ पढ़े हैं। जब नारद जी ने अपने पहले पढ़े हुए का वृत्तान्त बताया। तो सनत्कुमार जी ने कहा कि पहले जो कुछ आपने पढ़ा है वह शब्द ब्रह्म ही है, यानि शब्दों तक ही रह गया है। आत्मा नहीं है। इसलिए आप को तृप्ति नहीं हुई है। अब तुम इसको भूल जाओ, और मुझ से आत्म ज्ञान को सुनो। अतः देव ऋषि नारद सनत्कमार महामुनि के उपदेश से तृप्त हो गये और उनके सब संशय

निवृत्त होकर वह पूर्ण आत्मज्ञानी बन गये । और पूर्ण तृप्ति प्राप्त करने पर देव ऋषि नारद ने सनत्कुमार महामुनि को स्कन्द कह कर नमस्कार किया। स्कन्द उस विचित्र व्यक्ति को कहते हैं जो विघ्न बाधाओं को ज्ञान के सहारे छलांग मार कर लाँघ सकता हो। और जो भी कोई व्यक्ति इस प्रकार मनुष्यों को ज्ञान अन्धकार से पार ले जावे उसे स्कन्द कहते हैं। इस लिए देव ऋषि नारद ने महा मुनि सनत्कुमार को स्कन्द कहकर नमस्कार किया था।

और

इसी तरह देव ऋषि दयानन्द जी ने भी जब बहुत से योगियों और महात्माओं के संसर्ग से विद्या प्राप्त की। पूर्णानन्दस्वामी जी से संन्यास की दीक्षा ली। ज्वालानन्द और योगानन्द जैसे योगियों से योग विद्या प्राप्त करके योग साधन में पर्णता भी प्राप्त कर ली। महाराष्ट्र गुजरात, काशी, आदि स्थानों के दिग्गज पंडितों से विद्या भी प्राप्त कर ली। तब भी देव ऋषि नारद की तरह उनकी तृप्ति न हुई और वह देव ऋषि नारद की भांन्ति किसी ऐसे गुरु की खोज करने लगे जो इनके सब संशय निवृत्त करके इनको निहाल कर सके । अत: सन् १८६० में घर से निकलने के पूरे १४ वर्ष के बाद ३६ वर्ष की आयु में मथुरा में महर्षि विरजानन्द जी की ख्याति सुन कर उनके द्वार पर आये। गुरु जी ने भी देवर्षि दयानन्द जी से वही प्रश्न किया जो महामुनि सनत्कुमार जी ने नारद से किया था, और जब देवर्षि दयानन्द जी ने अपनी पिछली विद्या का वर्णन किया तो महर्षि विरजानन्द जी ने कहा—कि इसको भूल जाओ, और अगर आप के पास कोई ऐसे ग्रन्थ हैं तो उसको यमुना में बहा दो, फिर मेरे पास आओ, तुम्हारी झोली भर दूंगा। देवर्षि दयानन्द ने भी ऐसा ही किया, और तीन वर्ष तक गुरु विरजानन्द जी के चरणों में बैठ कर जो कुछ उन्होंने प्राप्त किया। उससे पूर्ण रूप से तृप्त हो गये। इनके सब संशय गुरू की कृपा से निवृत्त हो गये। इनके सब संशय गुरू की कृपा से

छिन्न भिन्न हो गये। हृदय की सब गांठें खुल गई, और ब्रह्म ज्ञान को प्राप्त कर महर्षि दयानन्द ने अपने गुरू स्कन्द स्वामी को नमस्कार किया। और गुरू दक्षिणा में अपना तन, मन, धन, गुरू जी के एक ही इशारे पर उन के समर्पण कर दिया और सारी आयु गुरू आज्ञा का पालन करते हुए ब्रह्म ज्ञान का प्रचार और पाखण्ड का खण्डन करते रहे।

देव ऋषि नारद की भान्ति देवर्षि दयानन्द भी सच्चे गुरू को पाकर निहाल हो गये।

२०. विश्वजित अथवा सर्वमेध यज्ञ के कर्ता वाजश्रवस

कठोपनिषद को कथा का इस तरह आरम्भ होता है, निश्चय से इतिहासक कथा है कि मोक्ष की कामना करने वाले वाजश्रवस ने दान में सब कुछ दे दिया। अन्न दान से जिसकी कीर्ति विशाल थी, उस वाजश्रवा ने ऐसा दान किया कि सर्वस्व अर्पण कर दिया, परन्तु उसका नचिकेता पुत्र था, उसने उसको किसी को न सौंपा। तब इस कुमार ने अपने पिता से पूछा—पिता जी मुझको किसको दोगे। पुत्र को भोली भाली बात सुनकर कहा कि तुझे भगवान के समर्पण करता हूं। पिता का ऐसा बचन सुन कर नचिकेता, वैवस्वत जो उस समय में प्रसिद्ध ब्रह्मज्ञानी था, ब्रह्मज्ञान उपाजन करने के लिए उसके पास चला गया। और बाकी सारी की सारी कठोपनिषद नचिकेता और वैवस्वत मुनि के उत्तर प्रश्न से भरी है। जिसमें ब्रह्मज्ञान की बारीकियों को अत्यन्त उत्तमता से समझाया गया है। यदि वाजश्रवस सर्वमेध यज्ञ न करता तो कठोपनिषद् न बनता, वाजश्रवस के सर्वमेध यज्ञ करने से ही कठोपनिषद् की रचना हुई, जिससे लाखों व्यक्ति अब तक भी ब्रह्मज्ञान को प्राप्ति करते चले आ रहे हैं।

और

सम्वत् १९२४, मताबिक १८६७ के हरद्वार कुम्भ के मेले पर

स्वामी दयानन्द जी महाराज पहुंचे और सप्त सरोवर पर ठहरे जो हरद्वार और ऋषि केश के बीच में है और हरद्वार से तीन कोस है। (जहां अब महात्मा हंसराज जी के पुरुषार्थ से मोहन आश्रम बना हुआ है) यहां बाड़ा बान्ध कर और ६—१० छप्पर डाल कर उन्होंने डेरा लगा लिया, और एक पताका जिस पर पाखण्ड खण्डन शब्द लिखे थे अपने डेरे पर लगा दी। इस समय १५--१६ सन्यासी और ब्राह्मण इनके साथ थे। वस्त्र उस वक्त गेरुवे पहनते थे। स्वामी जी ने प्रतिदिन उपदेश देना आरम्भ किया। जिसमें उन्होंने, मूर्ति पूजा, भागवत, तीर्थ, तिलक, छाप, कण्ठी आदि का प्रबल खण्डन किया, जिसकी चर्चा सारे मेले में फैल गई और सैंकड़ों मनुष्य इस अद्भुत संन्यासी को जो हिन्दु धर्म के आधार पुराणों मूर्ति पूजा, अवतार वाद आदि का खण्डन करता था, देखने को आने लगे, और उनके डेरे पर हर वक्त मेला सा लगा रहता था। दर्शकों में सभी प्रकार के लोग होते थे, किन्हीं के मन में उनका उपदेश घर कर जाता था, और उनके चक्षु खुल जाते थे, भ्रम दूर हो जाते थे और उन के अनुयायी हो जाते थे। प्रचलित धर्म के ठेकेदार भी आते, परन्तु स्वामी जी की युक्तियों का उत्तर न दे सकते तो खीझ कर उन्हें नास्तिक आदि कह कर अपना मन राजी कर लेते थे, कुछ संस्कृत पढ़े लिखे भी आते परन्तु उत्तर न देकर मौन होकर चले जाते। इस प्रकार महाराज का उपदेश प्रवाह चलता रहा। काशी के प्रसिद्ध पंडित स्वामी विशुद्धानन्द जी भी मेले पर उपस्थित थे। उन्होंने यजुर्वेद अध्याय ३ के ११ वें मन्त्र—"ब्राह्मणो अस्य मुख आसीत" का यह अर्थ किया, कि ब्राह्मण परमेश्वर के मुख से पैदा हुए, क्षत्री भुजा से, वैश्य उरु से और शूद्र पांव से। स्वामी जी ने उसका खण्डन किया और कहा कि यदि इसका यही अर्थ है तो मुख से तो खखार ही पैदा होता है। इसका शुद्ध अर्थ उन्होंने बतलाया है कि ब्राह्मण समाज के मुख हैं, क्षत्री भुजा हैं, वैश्य उरु, और शूद्र पैरों के समान हैं, इस घटना से

स्पष्ट है कि स्वामी जी इस समय भी वर्ण व्यवस्था गुण कर्म स्वभावानुसार ही मानते थे, जन्म गत नहीं। स्वामी जी ने एक पुस्तक भागवत खण्डन लिखी थी, जिसकी हज़ारों कापियां वह छपवा कर अपने साथ लाए थे, जो मेले में बांटी गईं। बहुत से श्रद्धालु जन फल फल मेवा मिष्टान् महाराज के लिए लाते थे, और सायंकाल तक अच्छी मात्रा में यह सब वस्तुएं इकट्ठी हो जाती थीं। महाराज वह सब पदार्थ दीन दरिद्री लोगों को बांट देते थे, अपने लिए कुछ भी नहीं रखते थे।

परन्तु जब महाराज ने मेले में यह अनुभव किया कि जनता अन्धकार में फंसी हुई है, संस्कृत के विद्वान स्वार्थान्ध होकर लोगों को धर्म के नाम पर लूट रहे हैं। जिन लोगों का कार्य गृहस्थियों को धर्मोपदेश करना था। वह स्वयं हो उन को असत्य सिद्धान्तों के कीचड़ में फंसा कर धर्म विमुख बना रहे हैं। साधू समाज की भी वैसी दीन हीन दशा है, वह अनेक शाखाओं में विभक्त हैं, केवल नाम के ही साधू हैं, पर गृहस्थियों से भी गये गुज़रे हैं। कौन सा दुर्व्यसन है जो गृहस्थों में है, और इन में नहीं। दूसरों में शान्ति स्थापन तो दूर रहा, साधू संन्यासी स्वयं ही आपस में झगड़े बखेड़े पैदा करके अशान्त हो रहे हैं। धर्म केवल आडम्बर का नाम रह गया है। ऐसी दशा में स्वामी जी के मन में देश हित और समाज कल्याण की तीव्र इच्छा उत्पन्न हुई। उन्होंने सोचा कि इस प्रकार दूसरे साधुओं की तरह रहने सहने से काम नहीं चलेगा। इन्हें संसार की मोह माया से सर्वथा ऊंचा उठना चाहिए। जो ज्ञान उन्होंने गुरु विरजानन्द की कृपा और वेद आदि सत्य सास्त्रों के अनुशीलन और अवगाहन से प्राप्त किया है, उस का निर्भय हो कर प्रचार करना चाहिए। जो सामग्री वस्त्र पुस्तक धन आदि उन के पास था, वह भी उन के मार्ग में बाधा जनक प्रतीत होने लगा। इन विचारों का उन के मन में स्फुर्ण हो ही रहा था, कि एक दिन व्याख्यान देते

हुए एक बार ही गद् गद् हो गये, और "सर्वं वै पूर्णं स्वाहा" कह कर उठ खड़े हुए और उठते के साथ ही जो कुछ भी उनके पास था, उसे लोगों में बांटने लगे, स्वामी कैलाश पर्वत ने उनसे कहा—कि आप ऐसा क्यों करते हैं। तब उन्होंने शायर के शब्दों में कहा—

एहसान नाखुदा के उठाये मेरो बला।
किश्ती खुदा पै छोड़ दूं लंगर को तोड़ दूं ॥

अर्थात् मैं सब कुछ सत्य और स्पष्ट कहना चाहता हूं और यह तब तक नहीं हो सकता, जब तक मैं अपनी आवश्यकताओं को इतना कम न कर दूं कि मुझे किसी पर निर्भर न होना पड़े। इस लिए मैंने ऐसा किया है—

और अपने पास केवल एक कोपीन रख कर सब कुछ जो पास था बाँट दिया। और कवि के शब्दों में ईश्वर को सम्बोधन करके यह कहते हुए—

अबसौंप दिया इस जीवन का, सब भार तुम्हारे हाथों में।
है जीत तुम्हारे हाथों में, और हार तुम्हारे हाथों में ॥

गंगा किनारे विचरने के लिए चल दिये। सवमेध यज्ञ को ही विश्वजित यज्ञ कहा गया है, जिसका करने वाला "अयन्त इध्म आत्मा जातवेद स ध्यस्व वर्द्धस्व" कहता हुआ अपने आत्मा को उस सर्व आत्मा के अर्पण कर देता है. और कहता है मैं तेरी महिमा को बढ़ाने चला हूँ, मेरा जो चाहे तू बना दे। मैंने अपना आप तेरे अर्पण कर दिया है। ऐसा करने से ही संसार जीता जाता है। किसो शायर ने क्या अच्छा कहा है—

मिटा दे अपनी हस्ती को अगर कुछ मर्तबा चाहे।
कि दाना ख़ाक में मिल कर गुले गुलज़ार होता है ॥

बस महर्षि भी उसी डगर पर चले, और अपने तप से त्याग

से ब्रह्मचर्य और योगबल से गुले गुलज़ार बन कर संसार में सुगन्धि फैला गये. अपने आप को स्वाहा करके संसार के प्राणी मात्र के दुख की दवा बन गये, गुरुवर टैगोर ने भी कहा है—

When the gain is completed by giving up, when love is fullfilled by self-sacrifice when passion is purified by penance of soul. then only is heroism born. which can save mankind from all defeat and disaster.

TAGORE

इसी तरह महर्षि पूरे छः साल तक सिर्फ एक लगोट में गंगा तट पर विचरते रहे और गर्मी सर्दी वर्षा सब ऋतुओं की यातनाएं, नंगे वदन, नंगे पैर, नंगे सिर, सहन करते रहे। ताकि संसार का भला कर सकें और इस इष्टसिद्धि को उन्होंने प्राप्त कर लिया। और न सिर्फ खुद वाजश्रवस ऋषि की तरह सर्वमेध यज्ञ किया, बल्कि औरों को भी ऐसा करने की प्रेरणा दी, न सिर्फ खुद वाजश्रवस ऋषि बने बल्कि अपने जीवन से दो और वाजश्रवस ऋषि बनाए, उन्होंने भी कठोपनिषद् को अपने जीवन में अपने गुरु की भांति धारण किया।

महात्मा—मुन्शी राम [स्वामी श्रद्धानन्द]

१. फागन कृष्ण त्रयोदशी सम्मत् १६१३ को तलवन जिला जालन्धर में श्री नानक चन्द जी के घर पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ, जिस का नाम मुन्शी राम रखा गया, श्री नानक चन्द जी पुलिस इन्सपैक्टर थे। सम्वत् १६२३ में मुन्शी राम जी का यज्ञोपवीत संस्कार हुआ, सम्वत् १६३३ में काशी के जै नारायण कालज से मैट्रिक पास किया, सम्वत् १६३४ में, मुन्शीराम जी का विवाह जालन्धर के राय सालग्राम जी की कन्या शिव देवी से हो गया। सम्वत १६३५ में ईलाहाबाद के मयोर सैन्ट्रल कालेज़ से एफ. ए. पास न

कर सके क्योंकि आखरी परचा देने के दिन इनको ज्वर हो गया, और वह परचा न दे सके। पिता जी के साथ मथरा काशी आदि स्थानों में हिन्दु मन्दिरों के पाखण्डों को देख कर और अंग्रेज़ी तालीम के कारण उनके विचार नास्तिकता की तर्फ झुक गये थे, इलाहाबाद से मुन्शीराम जी बरेली आ गये जहां उनके पिता जी कोतवाल लगे हुये थे। १४ सावन सम्वत १९३६ को महर्षि दयानन्द जी बरेली आए, और उनके व्याख्यान आरम्भ हो गये थे, और मुन्शी राम जी के पिता जी बहैसियत कातवाल उनका प्रबन्ध करते थे। महर्षि के पहले व्याख्यान से ही प्रभावित हो कर अपने नास्तिक पुत्र के सुधार के लिए अपने पुत्र को कहा—

"बेटा मुन्शीराम! एक दण्डी संन्यासी आये हैं, बडे विद्वान और योगीराज हैं, उनके उपदेश सुन कर तुम्हारे सशय दूर हो जाएंगे। कल मेरे साथ चलना। पहले तो मुन्शी राम ने समझा कि केवल संस्कृत पढ़ा हुआ साधू बुद्धि की कोई बात कैसे कह सकता है फिर भी पिता जी के आग्रह से उपदेश सुनने चले गये। और महर्षि के पहले ही दर्शन और उपदेश का प्रभाव जो मुन्शा राम जी पर पड़ा वह उनके ही शब्दों में सुनिये, वह स्वयं कहते हैं—

'उस समय उस दिव्य मूर्ति को देख कर कुछ श्रद्धा उत्पन्न हुई, परन्तु जब पादरी सकाट साहब तथा दो तीन और अग्रेज़ों को अत्यन्त श्रद्धा से बैठे देखा तो मेरी श्रद्धा और भी बढ़ी अभी १० मिनट ही उपदेश सुना था कि मन में विचार आया कि यह बड़ा विचित्र साधू है, केवल संस्कृत का विद्वान होने पर ऐसी युक्ति युक्त बातें करता है कि विद्वान दंग रह जाते हैं। उपदेश का विषय परमात्मा के निज नाम "ओं" पर था। यह पहले दिन का आत्मिक प्रसाद जो मुझ को मिला मैं आज तक भुला नहीं सका. महर्षि के उपदेशों के बाद मैंने अपने जीवन में इस किसम के उपदेश या लैक्चर किसी भी विद्वान के मुंह से नहीं सुने"।

जब पिता जी ने देखा कि मुन्शी राम अब कालज की पढ़ाई नहीं करेगा, तो उन्होंने कमिश्नर साहब को कह कर कायम मुकाम तहसीलदार बनवा दिया, परन्तु नौकरी में अपना अपमान समझकर नौकरी छोड़ दी। और सम्वत १९३६ में कानून पढ़ने के लिए लाहौर आ गये वकालत पढ़ते समय उन को सत्यार्थ प्रकाश पढ़ने का अवसर मिला और सत्यार्थ प्रकाश पढ़ कर सम्वत् १९४१ माघ के महीने में आर्य समाज वच्छोवाली लाहौर के मैम्बर बन गये और शराब मांस आदि सब दुर्व्यसन छोड़ दिये, और जालन्धर में आकर वकालत शुरू कर दी, और सरदार अर्जुन सिंह जी, सरदार भगत सिंह के दादा उनके मुन्शी बने, और उनके सत्संग से श्री अर्जुनसिंह जी का परिवार वैदिक धर्मी बन गया, और उनके सुपुत्र अजीतसिंह जी ने लाला लाजपतराय जी के साथ स्वतन्त्रता का काम किया, और उनके सपुत्र हर किशन सिंह जी के सपुत्र शहीद भगत सिंह जी ने देश सेवा में फांसी की रस्सी को चूम कर वैदिक धर्म की जय बुलाई। सम्वत १९४६ में सत् धर्म प्रचारक अखबार निकाला। मुन्शीराम जी स्त्रि शिक्षा के लिए पाठशाला खोलने का विचार कर ही रहे थे कि एक दिन उनकी अपनी पुत्री वेद कुमारी जो मिशन स्कूल में पढ़ती थी, वह गीत जो उनको मिशन स्कूल में सिखाया जाता था, उसके मुँह से सुन कर तुरन्त पाठशाला खोलने का निश्चय कर लिया, और सम्वत् १९४७ में वह पाठशाला खुल गई जो आज कन्या महाविद्यालय जालन्धर के नाम से सारे भारत में प्रसिद्ध हो चुकी है। वह गीत जो उन दिनों मिशन स्कूलों में लड़के लड़कियों को याद कराये जाते थे और जो वेद कुमारी ने अपने पिता मुन्शी राम जी को सुनाये वह यह थे। "ईसा ईसा बोल तेरा क्या लगेगा मोल, ईसा मेरा कृष्ण कन्हैया, ईसा मेरा राम रमैया" २१ अगस्त १८९५ को मुन्शी राम जी की धर्म पत्नी का देहान्त हो गया। उस समय उनके ४ बच्चे थे, वेद कुमारी आयु १० वर्ष, अमृत कला आयु ६

वर्ष, हरिश्चन्द्र ४ वर्ष, इन्द्र दो वर्ष, उस समय मुन्शी राम जी की आयु ३२ वर्ष की थी, पुनः विवाह के लिए उन पर दबाव डाला जाने लगा। लेकिन उन्होंने इस दबाव के आगे झुकने से इन्कार कर दिया और फिर विवाह न किया। सन् १८९२ में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान चुने गये। और लगातार ४ वर्ष वही प्रधान चने जाते रहे। २६ नवम्बर १८९८ में आर्य प्रतिनिधि सभा से गुरुकुल खोलने का प्रस्ताव स्वीकार कराया और घोषणा कर दी कि जब तक गुरुकुल के लिए ३० हज़ार रुपया इकट्ठा न कर लेंगे, घर में पैर नहीं रखेंगे, अतः लखनऊ से पिशावर तक और दक्षिण में मद्रास तक दौरा करके ८ अप्रैल १९०० तक ४० हज़ार रुपया इकट्ठा कर लिया। और तब आर्य प्रतिनिधि सभा ने उन का अभिनन्दन किया और उन का नाम महात्मा मुन्शीराम प्रसिद्ध हुआ। और २१, २२, २३, २४ मार्च १९०२ को मुन्शी अमन सिंह के दान किये गांव काँगड़ी में गुरुकुल स्थापित हो गया। वकालत तो उन्होंने जब उन की धर्म पत्नि का देहान्त हुआ था तब ही छोड़ दी थी, और आर्य समाज का ही दिन रात काम करने लगे, और अब गुरुकुल खुल जाने पर तो आप की ज़िम्मेदारी और भी बढ़ गई। गुरुकुल स्थापना के साथ ही महात्मा मुन्शी राम जी ने कठोपनिषद् के ऋषि वाजश्रवस और अपने गुरु महर्षि दयानन्द की तरह सर्वमेध यज्ञ करना आरम्भ कर दिया, सब से पहले तो अपने दोनों पुत्रों को गुरुकुल में प्रवेश करवाया। सम्वत् १९५९ में अपना पुस्तकालय गुरुकुल को भेंट कर दिया और सम्वत् १९६४ में सत्य धर्म प्रचारक प्रेस भी गुरुकुल को दे दिया। और लगभग ३० हज़ार रुपया की लागत की एक कोठी जालन्धर में बच रही थी, जो उन्होंने सम्वत १९६८ का गुरुकुल के दसवें सालाना जलसे पर भेंट करके "सर्वं वै पूर्ण ॐ स्वाहा" करके सर्वमेध यज्ञ को पूर्णाहुति दे दी। अतः आर्य समाजियों को सरकार क्रान्तिकारी समझती थी इसलिए गुरुकुल

पर अंग्रेजी सरकार की विशेष कड़ी निगाह रहती थी।

महात्मा मुन्शी राम जी १७ वर्ष गुरुकुल के आचार्य और मुख्य अधिष्ठाता रहे, और १२ अप्रैल १९१७ को माया पुर वाटिका कनखल में संन्यासआश्रम में प्रवेश करके स्वामी श्रद्धानन्द के नाम से विख्यात हुए। इस भान्ति पुत्रेष्णा, लोकेष्णा, गुरुकुलेषणा, त्याग कर निर्द्वन्द हो कर लोक सेवा में जुट गये, सन् १९०० से १९१० तक के बारह वर्ष आर्य समाज के लिए बड़ी परीक्षा के वर्ष थे. अंग्रेज सरकार तो आर्य समाज को बाग़ी जमायत समझती ही थो, उनकी देखा देखी और अपने स्वामी अंग्रेज़ों को खश करने के लिए कई देसी राजाओं ने भी आर्य समाजियों पर जुल्म करने शुरू कर दिये थे, आर्य समाजियों को नौकरी से निकाला जाने लगा, उन को नोटिस दिये जाने लगे, हर आर्य समाजो पर खुफ़िया पुलिस की निगरानी होती थी। इन दिनों जोधपुर रियासत में पोलीस ने आर्य ससाज मन्दिर से ओं का झंडा उतार दिया। रियासत पटियाला में सन् १९२९ में एक साथ ८४ आर्य सभासदों को गिरफ्तार करके इन पर राज विद्रोह का मुकद्दमा चलाया गया, उन को गिरफ्तार करके उनके परिवारों को अनेक प्रकार से तंग किया जाना शुरू कर दिया। उस वक्त महात्मा मुन्शी राम जी ने बड़ा काम किया और महात्मा मुन्शी राम जी के प्रयत्न से पटियाला रियासत ने आर्य समाजियों पर से मुकदमा तो वापस ले लिया, पर उनको रियासत से बाहर निकाल दिया। और उन सब परिवारों को महात्मा जी ने गुरुकुल में आश्रय दिया, और फिर महात्मा जी की कोशिशों से पटियाला राज ने यह हुक्म वापस ले लिया, और वह सब आर्य भाई रियासत में वापस चले गये, महात्मा मुन्शी राम जो के प्रयत्न और पुरुषार्थ से भारत की समस्त आर्य प्रतिनिधि सभाओं का एक सघठन रूप सार्वदेशिक आर्य प्रति निधि सभा के नाम से २५—९—१९०८ को बनाई गई और

महात्मा मुन्शीराम जी इसके पहले प्रधान चुने गये। १८१८ में गढ़-वाल के भयंकर दुर्भिक्ष में दुर्भिक्ष पीड़ितों को बड़ी सहायता की। धोलपुर रियासत में आर्य समाज मन्दिर का एक हिस्सा गिरा कर उसमें लोगों के लिए टट्टी खाना बना दिया गया। वहां के आर्य समाजियों के प्रोटेस्ट की रियासत ने कुछ परवाह न की, तब स्वामी श्रद्धानन्द जी ने सत्याग्रह करने की घोषणा कर दी। जगह जगह से आर्य समाजियों ने जत्थे धौल पुर भेजने शुरू कर दिये, तब रियासत की सरकार झुक गई और आर्य समाज मन्दिर को बदस्तूर पहले जैसा बना दिया।

सन् १९१९ में स्वामी श्रद्धानन्द जी राजनीति के क्षेत्र में आए, और ७—९—१९१९ को सब से पहला व्याख्यान कांग्रेस की स्टेज से देहली में दिया। ३० मार्च को देहली में बेनज़ीर हड़ताल हुई और जलूस निकला, जलूस की अगवाई स्वामी श्रद्धानन्द जी कर रहे थे। जब जलूस चांदनी चौक घंटा घर के करीब पहुंचा तो गोरखा सिपाही जो पहरे पर थे, उन्होंने जलूस रोक लिया। जब स्वामी श्रद्धानन्द जी आगे बढ़ने लगे, तो गोरखा सिपाहियों ने उनके सीने पर बन्दूक के आगे लगी हुई किर्च रख दी, पर स्वामी जी ने जब इसकी परवाह न करते हुए आगे कदम बढ़ाया तो सिपाही ने किर्च पीछे हटा ली, और जलूस गुज़र गया, फिर क्या था स्वामी जी की जै जै कार हो गई, और जामा मस्जिद देहली की तारीख में शायद पहली और आखरी बार एक गैर मुसलिम को मम्बर पर चढ़ा कर उपदेश कराया गया, और स्वामी जी ने जामा मस्जिद के मम्बर पर चढ़ कर "त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता" वाले वेद मन्त्र के द्वारा ईश्वर का स्वरूप वर्णन किया और ओं शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः के साथ अपना भाषण समाप्त किया। जब मार्शल ला की सख्तियों से पंजाब में कांग्रस का इजलास होना नामुमकिन सा हो गया था, सन् १९१८ में स्वामी श्रद्धानन्द जी ने साहस करके कांग्रस का

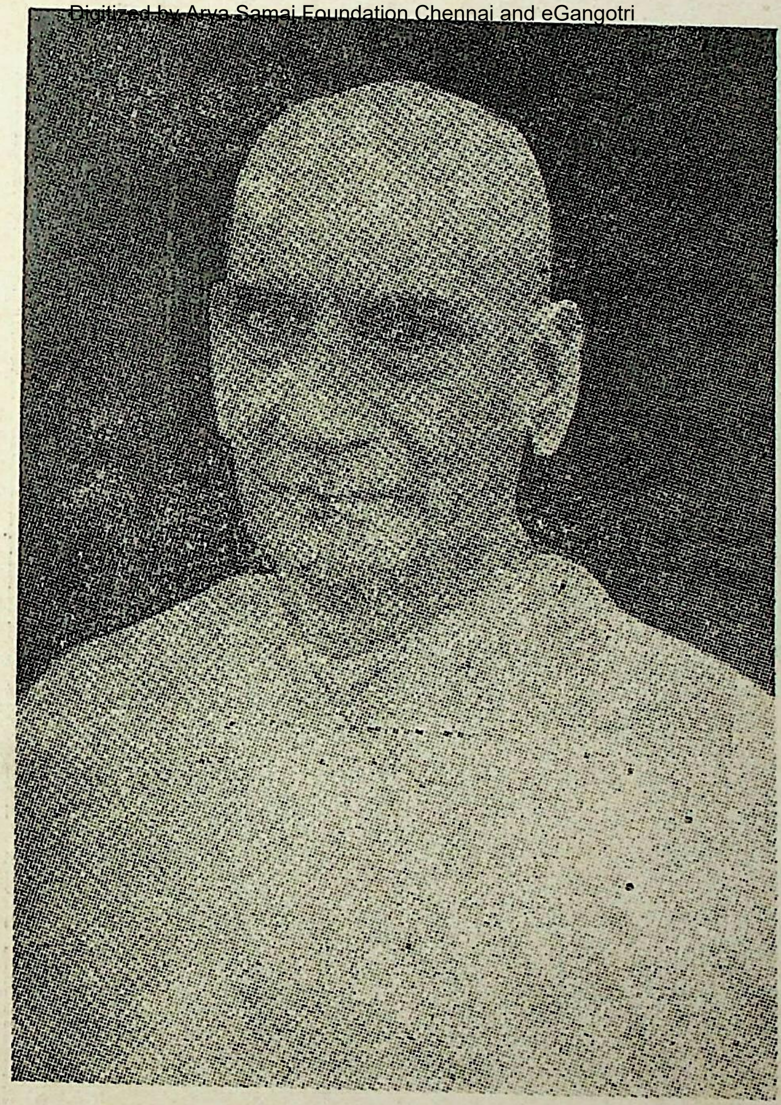
इजलास अमृतसर में कामयाब कराया और स्वागतकारिणी के अध्यक्ष के रूप में कांग्रस की तारीख़ में सब से पहले हिन्दी भाषा में अपना सदारती एड्रेस पढ़ा।

आप अछूत उद्धार के लिए कांग्रेस कमेटी में रेजूलेशन पास कराने में बहुत प्रयत्न करते रहे, परन्तु जब इसने ध्यान न दिया तो सन् १९२२ में कांग्रस से अस्तीफ़ा दे दिया। और आप अछूत उद्धार के काम पर लग गये। अमृतसर गुरु के बाग के मोर्चे में भाग लेने के लिए सितम्बर १९२२ को अमृतसर पहुंचे, और अकाल तख्त से भाषण दिया। और गिरफ़्तार हुए, और एक वष चार माह की सज़ा हुई।

सन् १९२४—२५ में मद्रास का दौरा करके छूत—छात के खिलाफ़ आन्दोलन शुरू किया। और मालावार के फसाद में मोपला मुसलमानों के हाथों हिन्दुओं का कत्लेआम होने पर वहां खूब काम किया, और जबरदस्ती मुसलमान बनाए गए हिन्दुओं को शुद्ध किया। सन् १९२५ में मथरा में दयानन्द जन्म शताब्दी को सफल बनाने में इनका बड़ा हाथ था, सन् ९१२१ में मालाबार के मोपला कांड को निन्दा का प्रस्ताब अहमदाबाद में कांग्रेस की विषय निर्धारणी सम्मति में आने पर मोलाना हसरत मोहानी जैसे कांग्रेसी ने भी जब इस का विरोध किया तब स्वामी श्रद्धानन्द चमक उठे, देहली में सत्याग्रही शहीदों का स्मार्क बनाने को स्वामी जी देहली में चन्दा इकट्ठा कर रहे थे तो डाक्टर इन्सारी और हकीम अजमल खां जैसे लीडरों ने एक पाई भी चन्दा न दिया। और मौलाना मुहम्मद अली ने कोकनाडा कांग्रस के अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए अछूतों को लावारस माल समझ कर आधा हिन्दू और मुसलमानों में बांट लेने की बात कही, तो यह सब बातें स्वामी जो के दिल पर चोट लगाती रहीं और वह कांग्रेस से अलग हो गये।

२. सन् १९२३ में आगरा में हिन्दू शुद्धि सभा की स्थापना

हुई और स्वामी श्रद्धानन्द जी इसके प्रधान चुने गये। और शुद्धि का काम तेज़ी से होने लगा। मलकाने राजपूतों की शुद्धि भी इन्हीं दिनों में हुई थी, और देहली में अखिल भारतीय हिन्दू सभा की स्थापना भी हुई, और इस कार्य क्रम के विस्तार के लिए स्वामी जी ने देहली से दो अखबार अर्जुन हिन्दी, और तेज उर्दू में निकालने शुरू कर दिये : और सन् १९२६ में अंग्रेज़ी में लिबरेटर नाम का अखबार निकाला स्वामी जी के शुद्धि और सगठन के प्रचार से मुसलमान उनके सख्त वरखिलफ़ हो गये, और उनको हर रोज़ कत्ल करने की धमकी देने वाले पत्र आने लगे। एक दिन एक मुसलिम देवी असगरी बेगम अपने बच्चों के साथ आर्य समाज देहली में आई और शुद्ध होने की प्रार्थना की, इसकी इच्छानुसार शुद्ध करके इसका नाम शान्ति देवी रखा गया। और वह देहली के वनिता आश्रम में रहने लगी, पीछे से उसके पिता और पति ढूँढते हुए आए। और उसको फिर मुसलमान हो जाने को कहा, परन्तु उसने इन्कार कर दिया, परन्तु उसके पति ने स्वामी जी और ४ –५ आदमियों पर मुकद्दमा दायर कर दिया। मुकदमा खूब जोरों से चला, और इस दरमियान मुसलमान अखबारों ने स्वामी जी के खिलाफ़ खूब ज़हर उगला। ८ दिसम्बर १९२६ को सब मुलज़िम बरी हो गये, फिर तो स्वामी जी को कत्ल की धमकियों के पत्रों का तांता बन्ध गया, और ख्वाजा हसन नज़ामी ने खूब ज़ोर शोर से स्वामी जी का विरोध करना शुरू कर दिया। स्वामी जी का शरीर रोगी था और वह रोग शय्या पर लेटे हुए थे, २३ दिसम्बर १९२६ को राजा रामसिंह को पत्र का उत्तर लिखाते हुए उन्होंने लिखवाया कि अब तो यही इच्छा है कि दूसरा शरीर धारण कर शुद्धि के अधूरे काम को पूरा करूं। अतः यही २३ दिसम्बर १९२६ को गुरुवार का दिन था, शाम का वक्त था, डाक्टरों ने मुलाकात पर पाबन्दी लगा रखी थी, एक नौजवान सीढ़ियों पर चढ़ आया, सेवक ने रोक दिया, स्वामी



स्वामी श्रद्धा नन्द
1856 – 1926



पण्डित लेख राम

1858—1897

जी ने आवाज़ सुन कर बुला लिया । आने पर उसने कहा कि मैं आपके साथ इस्लाम के विषय में कुछ बात चीत करना चाहता हूं। स्वामी जी ने कहा भाई मैं बीमार हूं। तुम्हारी दुआ से राज़ी हो जाऊंगा तो फिर बात चीत करूँगा। इस नौजवान का नाम अब्दुल रशीद था, फिर उसने पानी माँगा, सेवक पानी लाने को गया ही था कि उसने झट से पिस्तौल से तीन फायर किये, सेवक धर्म सिंह ने पकड़ना चाहा परन्तु उसके भी एक गोली लगी, कातल भागना ही चाहता था कि स्वामी जी के सैकेट्री धर्मपाल विद्यालंकार ने इसे दबा लिया, आधे घंटा बाद पोलीस आई और इस कातल को गिरफ्तार कर के ले गई, प्रीवी कौंसिल तक मुक़दमा चला, परन्तु फांसी की सज़ा बहाल रही, किसी शायर ने ठीक कहा था कि स्वामी जी को "दरद वतन की जब न कोई दवा मिली—रिवालवर की गोलियाँ खाकर शफ़ा मिली" स्वामी जी की इस मौत पर तबसरा करते हुए महात्मा गांधी जी ने भी कहा था, । "शानदार ज़िन्दगी का शानदार इन्जाम"

आप न जानते होंगे। गांधी जी को महात्मा का खिताब सबसे पहले महात्मा मुन्शीराम जी ने उस वक्त दिया था, जब मिस्टर गाँधी गुरुकुल देखने आए थे, और तब से मिस्टर गांधी, महात्मा गांधी के नाम से विख्यात हुए।

२. वाजश्रवस ऋषि ने अपने इकलोते पुत्र नचिकेता को कहा था, "मृत्यवे त्वा ददामीति" यानि तुझे मृत्यु को देता हूं। और इसी तरह महर्षि दयानन्द के सत्संग और उनके जीवन से प्रेरणा पाकर वाजश्रवस ऋषि की भान्ति पंडित लेखराम ने अपने इकलौते पुत्र को 'मृत्यवे त्वा ददामीति' कहा है, जिसका सक्षिप्तवर्णन निम्नलिखित है।

मेहता तारा सिंह के घर ८ चैत सम्वत् १९१५, शुक्रवार सैदपुर तहसील चकवाल ज़िला जेहलम में पण्डित लेखराम का जन्म हुआ, ६ वर्ष की आय में पाठशाला में प्रविष्ट हुए और मिडल तक तालीम पाई, 17 वर्ष की आयु में उनके चचा गंडाराम जी ने पिशा-

-वर में पुलिस में भर्ती करवा दिया, और तरक्की करके वह सारजेंट बन गये। २१ वर्ष की आयु में इन की माता जी ने इनकी शादी का आयोजन किया। पर वह नहीं माने, धार्मिक विचार उनको माता पिता जी से ही मिले थे, इस लिए धार्मिक ग्रन्थ पढ़ने और ईश्वर उपासना करने में वह पोलीस की नौकरी में भी कभी आलस्य नहीं करते थे। उस समय उनके नवीन वेदान्त के विचार थे। जब महर्षि की बाबत उनको मालूम हुआ और सत्यार्थ प्रकाश आदि पढ़ा तो तत्काल आर्य समाजी बन गये, और सम्वत् १९३७ में पिशावर में माई रंभी की धर्म शाला में आर्य समाज स्थापित कर दिया। परन्तु इनके मन में महर्षि दर्शन की बड़ी तीव्र इच्छा जाग उठी, और ५ मई १८८० को एक महीने की छुट्टी लेकर अजमेर चले गये, और महर्षि के दर्शनों से कृत्य कृत्य हो गये, महर्षिजी से कुछ संशय मिटाने के लिये निम्नलिखित प्रश्न किये। जिसके महर्षि जी ने युक्ति युक्त उत्तर देकर पंण्डित लेखराम जी को सन्तुष्ट कर दिया।

प्रश्न—जीव ब्रह्म की भिन्नता में कोई वेद का प्रमाण बतलाइये?

उत्तर—यजुर्वेद का ४० वां अध्याय सारा जीव ब्रह्म का भेद बतला रहा है।

प्रश्न—अन्य मतों के मनुष्यों को शुद्ध करना चाहिए या नहीं?

उत्तर—अवश्य शुद्ध करना चाहिए।

प्रश्न—बिजली क्या वस्तु है, और कैसे उत्पन्न हुई है?

उत्तर—बिजली सब स्थानों में है और रगड़ से पैदा होती है, बादलों की बिजली भी बादलों और वायु की रगड़ से पैदा होती है।

प्रश्न—आकाश भी व्यापक और ब्रह्म भी व्यापक एक स्थान में इकट्ठे कैसे रह सकते हैं?

उत्तर—जो वस्तु जिससे सूक्ष्म होती है, वही उस में व्यापक

होती है। इस तरह ब्रह्म आकाश से भी सूक्ष्म है, इस लिए ब्रह्म आकाश में भी व्यापक है। महर्षि जी ने पंडित जी को कहा कि २५ वर्ष की आयु से पहले विवाह न करना। महर्षि के दर्शन और सत्योपदेश पाकर पडित लेख राम निहाल हो गये और वैदिक धर्म में उनको धारणा दृढ़ तर हो गई। अजमेर से लौटते ही इन्हें दिन रात वैदिक धर्म प्रचार की लगन लग गई, और उन्होंने आर्य समाज पिशावर की तरफ़ से एक माहवारी रिसाला धर्म उपदेश उर्दू में निकालना शुरू कर दिया, और उन्होंने सब मत वालों से शास्त्रार्थ करने भी आरम्भ कर दिये, खास तौर पर मुसलमानों के साथ और वह भी पिशावर जैसे सरहदी शहर में, जहां मुसलमानों की बहुत बड़ी अक्सरीयत थी। इस बात से उनकी निर्भयता का प्रमाण मिलता है। एक मुसलमान अफसर से बहस करने पर उस अफ़सर ने रिपोर्ट कर दी और आपका दर्जा छोटा कर दिया गया, सम्वत् १८८२ में पंडित जी को दो पत्र महर्षि दयानन्द जी के मिले। एक पर गौ रक्षा मैमोरियल पर हस्ताक्षर करवाने थे. और दूसरे पर पंजाब में हिन्दी प्रचार के लिए शिक्षा कमीशन को मैमोरियल भेजने की प्रेरणा थी, और दोनों कार्य पंडित जी ने उत्साह पूर्वक किये। जब पोलीस में उनके धार्मिक विचार असह्य हो गये, तो उन्होंने २४ दिसम्बर १८८४ को अपनी नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया। नौकरी से त्याग पत्र देकर पंडित जी रावलपिंडी आर्य समाज के वार्षिकोत्सव पर आए। और फिर गुरदास पुर आए। और मिर्ज़ाकादियाँ को चैलेंज कर दिया और उसके एतराज़ों का जवाब देने के लिए लैक्चरों का सिलसिला शुरू कद दिया। इसके बाद लाहौर चले आए और स्वाध्याय करते रहे. इन दिनों उन्होंने मिर्ज़ा कादियाँ का एक इश-तिहार पढ़ा जिसमें उसने अपने आप को खुदा का पैग़म्बर सिद्ध करने की प्रतिज्ञा कीं थी. और एक वर्ष तक किसी भी आदमी को अगर वह अपना चमत्कार न दिखा सकें तो २४०० रुपया इनाम

देना किया था । पंडित जी ने १३—४—१८८५ अप्रैल को मिर्ज़ा को एक पत्र लिख दिया, फिर लेखराम जी खुद कादियां गये । और मिर्जा की जाय रिहाइश इस्लामी कोठे पर जाकर उस का नाक में दम कर दिया, और उसकी किताब बुरहाने एहमदिया की खूब कलई खोली और कादियां में आर्य समाज स्थापित कर दिया। सन् १८८६ तक लेखराम की विद्या की धूम मच गई । और उन्होंने मिर्ज़ा कादियानी की तहरीरों का जवाब देने के लिए कलम उठाई और कई किताबें लिख दीं । सन् १८८७ को पं० लेखराम जी आर्य गज़ट जो इन दिनों फ़िरोज़पुर से निकलता था के सम्पादक बन गये, और यह पत्र उनके हाथों में आकर खूब चमक उठा, १—७—१८८८ में पंडित जी को महर्षि दयानन्द जी की जीवन सामग्री इकट्ठी करने का काम सौंपा गया । और आर्य गज़ट का सम्पादन छोड़ कर अब लेखराम जी आर्य मुसाफ़िर बन गये । क्योंकि महर्षि के जीवन वृत्तान्त को इकट्ठा करने के लिए इन्हें सारे देश में भ्रमण करना था, राजपूताना में एक बार व्याख्यान देते हुए एक मुसलमान सूबेदार ने पंडित् जी की इस्लाम पर आलोचना सुन कर तलवार मियान से निकाल ली । पंडित जी ने गर्ज कर कहा तू मुझे तलवार की धमकी देता है । अगर पठान का बच्चा है तो तलवार निकाल कर मज़ा देख, यह सूबेदार शर्मिन्दा होकर चला गया । जब पंडित जी की आयु ३५ वर्ष की हुई तो उनका विवाह कुमारी लक्ष्मी देवी के साथ हो गया । श्री पंडित जी महर्षि के जीवन चरित्र की सामग्री इकट्ठी करते रहे । और साथ साथ अपनी पुस्तकें भी लिखते रहे । और प्रचार भी करते रहे । १८—५—८५ में उनके घर पुत्र ने जन्म लिया । जौलाई ३८९६ में शिमला आर्य समाज में व्याख्यान देते हुए एक मुसलमान नौजवान भभक उठा, और कहने लगा काटने वाली मुहम्मदी शमशीर को मत भूलो, तो पंडित जी ने उस तर्फ मुंह करके गरज् कर कहा, मुझे बुज़दिल मुहमदी तलवार

की धमकी देता है, मैं नहीं डरता, जानते हो मैं सिर हथैली पर लिए फिरता हूं। उनका बच्चा बीमार पड़ा था, और खबर आई कि पायल गांव में एक सिख मुसलमान होना चाहता है, बस फिर क्या था, अपने बीमार बच्चे को छोड़ कर होने वाले मुसलमान को बचाने के लिए गाड़ी पर सवार होकर चले गये। गाड़ी उस स्टेशन पर न ठहरी, तो आप चलती गाड़ी से कूद पड़े। कपड़े फट गये। शरीर ज़ख्मी हो गया, परन्तु वक्त पर उस जगह पहुंच गये और उस व्यक्ति से मिले और पूछा कि आप क्यों मुसलमान होते हैं, इस्लाम में क्या विशेषता है। तो उसने पूछा कि आपके कपड़े कैसे फट गये, और शरीर घायल क्यों है, तो उत्तर मिला आपको बचाने के लिए, तो उसी व्यक्ति ने पंडित जी के चरण छूए और कहा कि जिस धर्म को आप मानते हैं, मैं उस धर्म को कैसे त्याग सकता हूं। जाते वक्त उनका इकलोता बच्चा सख्त बीमार था और जिस तरह वाजश्रवस ऋषि ने नचिकेतासे कहा था कि 'मृत्यवेत्वा ददामीति' तुझे मृत्यु के यानि भगवान के हवाले करता हूं। वाजश्रवस ऋषि ने अपनी माक्ष कामना से सर्वमेध यज्ञ किया। परन्तु महर्षि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, और पण्डित लेखराम जी ने परोपकार के लिए ही यह यज्ञ किया था, पं० लेखराम जी भी अपने इकलौते बेटे को मृत्यु शय्या पर पड़े को "मृत्यवेत्वा ददामीति" कहकर धर्म प्रचार में डट रहे, और उनकी ग़ैर हाजरी में उनका इकलौता बच्चा मृत्यु का ग्रास हो गया इस तरह पंडित जी ने वाजश्रवस ऋषि के इन शब्दों का सार्थक कर दिया।

४. अन्त में फरवरी १८९७ को एक मज़बूत जिसम का मुसलमान नौजवान पंडित जी के पास आकर कहने लगा कि मैं पहले हिन्दू था, दो वर्ष से मुसलमान हो गया हूं। अब फिर हिन्दू धर्म में वापस आना चाहता हूं, आप मुझे शुद्ध कर लें। अतः पण्डित जी ने उसे आश्वासन दिलाया कि आप को शुद्ध कर लिया जावेगा। मिर्ज़ा कादियां की साज़श से ही पण्डित जी को क़त्ल करने का षड्यन्त्र रचा गया था, यह नौजवान इसी लिए मुकर्रर

किया गया था, ईद के दिन ४ मार्च को पण्डित जी के कत्ल की तारीख मुकर्रर हुई थी, उस दिन पण्डित लेखराम जी प्रचारार्थ लाहौर से बाहर थे, वह ६ मार्च को घर वापस आए तो वही नौजवान कम्बल ओढ़े पं० जी के निवास स्थान पर आ पहुंचा। शाम के ६ बजे, जब कि पण्डित जी चारपाई पर बैठ कर महर्षि के जीवन चरित्र सम्बन्धी सामग्री को इकट्ठा कर रहे थे, वह नौजवान उन की बाईं ओर कुर्सी पर बैठ गया। उनकी माता जो रसोई में थी, धर्म पत्नी दूसरे कमरे में थी, पंडित जी ने इस नौजवान को कहा कि अब देर हो गई है, आप आराम करें फिर आप की शुद्धि की जायेगी। परन्तु वह बैठा रहा। माता जी ने रसोई से आवाज़ दी, पुत्र लेखराम तेल नहीं है। पण्डित जी उस वक्त महर्षि की मृत्यु का अन्तिम दृश्य खींच रहे थे। पत्र वहीं रख दिये, और चारपाई से उस तर्फ़ को उठे जिस तर्फ़ वह नौजवान बैठा था, और चारपाई से उठ कर, आंखें बन्द कर दोनों बाजू ऊंचे उठाकर अंगड़ाई लो, और उस मुसलिम नौजवान ने जो मौका की ताड़ में था, अपने कम्बल में से छुपा हुआ छुरा निकाला और पण्डित जी के पेट में घोंप दिया, पण्डित जी की अंतड़ियां बाहर निकल पड़ीं, फिर भी उन्होंने कातल को पकड़ लिया, लड़ते झगड़ते सीढ़ी तक पहुंच गये, और उसके हाथ से छुरा छीन लिया। इतने में लक्ष्मी देवी बाहर निकल आई। और कातल को दूसरा वार करने से रोका। फिर उनकी माता जी भी बाहर आ गई, कातल ने बेलने से उनको भी दो चोटें लगाईं। और हाथ छुड़ा कर भाग गया। यदि पण्डित जी उस समय शोर मचा देते तो लोग इकट्ठे हो जाते और शायद कातल पकड़ लिया जाता। परन्तु पण्डित जी ने शोर तक न मचाया, फिर पण्डित जी को फ़ौरन हस्पताल पहुंचा दिया गया। और यह बात जंगल की आग की भान्ति लाहौर शहर में फैल गई। पण्डित जी हस्पताल में भी 'गायत्री' मन्त्र और 'विश्वानि देव' मन्त्र का जाप करते रहे रात के डेढ़ बजे,

तक सचेत पड़े रहे। और अन्त में आर्य समाज से लेख का काम बन्द न होना चाहिए। यह कह कर पण्डित जो सदा के लिए शान्ति की नींद सो गये।

धर्म प्रचार के खातिर जिन्होंने अपने बिमार पुत्र को भी "मृत्यवे त्वा ददामीति" कह कर प्रचार करने चल पड़े, और परोपकार से मुख न मोड़ा ऐसे वाजश्रवस ऋषि को प्रणाम। पण्डित जी ने महर्षि दयानन्द जी महाराज के जीवन चरित्र की जोसामग्री इकट्ठी की, जिस को बाद में स्वामी श्रद्धानन्द जी की प्रेरणा से मास्टर आत्मा राम जी अमृतसरी ने पुस्तकाकार में किया, और आर्य प्रतिनिधि सभा ने छपवाया। इस महाकार्य के अतिरिक्त पण्डित जी ने ३२ ग्रन्थ और रचे, जो कुलियात आर्य मुसाफ़िर के नाम से इकट्ठे छापे गए हैं, और वह हर जिज्ञासु को पढ़ने चाहिएं। पण्डित जी की अपार विद्या और विशाल स्वाध्याय का परिचय इन की पुस्तकों से भली भांत मिल रहा है।

२१. शुनाशेप ऋषि

ऐतरेय ब्राह्मण में एक कथा आती है इसके अनुसार अजीगर्त का पुत्र शनाशेप था। हरिश्चन्द्र ने अपने पुत्र रोहिताश्व की जगह शुनाशेप को यज्ञ के यूप में बान्ध कर वरुण की प्रसन्नता के लिए बलिदान करना चाहा। शुनाशेप को अवश्य होने वाली मृत्यु सामने नाचती हुई दिखाई पड़ी। आत्म-रक्षा का कोई उपाय उसकी समझ में न आया। तब वह अनन्य भाव से सत्यव्रतों का स्मर्ण करके वरुण की शरण में गया और प्रार्थना करने लगा। इस की स्तुति से वरुण प्रसन्न हुए, और शुनाशेप के सब बन्धन टूट गए, और वह मृत्यु के पंजे से छूट गया। वास्तव में यह एक अलंकारिक वर्णन है। और ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त २८ का ऋषि मन्त्र द्रष्टा शनाशेप है। शनाशेप का अर्थ है प्राणाधारी और हर एक प्राणाधारी जन्म के

साथ ही सृष्टि नियम में बन्ध जाता है। मनुष्य तीन गुणों यनि, सत, रज, तम के बन्धन में बंधा हुआ जन्म मरण के चक्र में पड़ा रहता है। इस जन्म मरण के चक्र से छूटने और मोक्ष प्राप्ति के लिए वरुण भगवान का ही आश्रय लेना चाहिए, ऐसा ऋग्वेद १. २४. १५ में उपदेश है कि जो प्राणी पाप रहित हो कर भगवान की शरण में आता है उस के सब बन्धन टूट जाते हैं और मोक्ष का अधिकारी बन जाता है। शुनाशेप की तो अलंकारिक कथा है, परन्तु स्वामी दयानन्द के जीवन में यह असलीयत का रूप धारण कर गई।

दयानन्द को बलिदान करने का यत्न

मेला चांदपुर पर महर्षि दयानन्द ने एक आप बीती कथा सुनाई थी कि' जिन दिनों मैं अकेला घूमता था, उन दिनों में मेरा एक ऐसे स्थान पर जाना हुआ जहां सभी शाक्तक लोग रहते थे। उन्होंने मेरी बड़ी सेवा की, जब कई दिन के निवास के अनन्तर मैं वहां से चलने लगा तो उन लोगों ने अति आग्रह से मुझे ठहरा लिया। मैं समझता रहा कि यह मुझे भक्ति भाव से ठहराते हैं। ऐसे ही बहुत दिन बीत जाने पर उनका पर्व दिन आ गया। उस दिन सारे शाक्तक देवी के मन्दिर में इकट्ठे हो कर गीत गाने लगे। उस दिन उन्होंने मुझे भी कहा कि आज उन का महोत्सव दिन है। आप वहां अवश्य चलिए। मैंने बहुतेरा समझाया कि मेरा देवी दर्शन में निश्चय नहीं है, परन्तु वह एक न सुनते थे। पांव पकड़ कर कहने लगे कि आज पर्व के दिन यदि आप मन्दिर में न पधारे तो हमारा सारा उत्साह भंग हो जावेगा। आप मूर्ति को नमस्कार आदि कुछ न करना, परन्तु हमारे लिएं चले तो चलें। वह मन्दिर नगर के बाहिर एक उजाड़ स्थान पर था। उन के विवश करने पर मुझे उस मन्दिर में जाना पड़ा, उस समय वहां आंगन में होम हो

रहा था। और लोग उत्सव मना रहे थे। मुझे वह दुर्गा की मूर्ति दिखाने के बहाने अन्दर ले गये, मुझे सहज स्वभाव से दुर्गा की मूर्ति के सामने ले जाकर खड़ा कर दिया। मूर्ति के पास ही एक बलवान आदमी तलवार लिए खड़ा था। वहां वे लोग मुझे कहने लगे महात्मा जी माता के आगे झुककर नमस्कार अवश्य कीजिए। मैंने उन को स्पष्ट कहा कि मुझसे ऐसी आशा रखनी दुराशा मात्र है। मेरे वचनों से पुजारी चिढ़ गया, और मेरे पास आ कर मेरी गर्दन पकड़ कर झुकाने लगा। इस के इस वर्ताव से मैं चकित हो गया। परन्तु ज्यों ही मैंने दृष्टि घुमाई तो क्या देखता हूं कि वह खड़गधारी मेरे पास आ गया है और मेरी गर्दन पर तलवार चलाना चाहता है। इस दृश्य को देख कर मैं सावधान हो गया, और मैंने झपट कर उसके हाथ से तलवार छीन ली। पुजारी तो मेरे बाएं हाथ के एक ही धक्के से दीवार से जा टकराया। मैं तलवार लिए मन्दिर के आंगन में आ गया। इस समय आंगन के सभी लोग कुल्हाड़े, छुरियां, ले कर मुझ पर टूट पड़े। मैंने दरवाज़े की ओर देखा तो उस में ताला लगा हुआ था। अपने आपको बलिदान से बचाने के लिए मैं उछल कर दीवार पर चढ़ गया। और परले पार कूद कर भाग निकला। दिन भर तो मैं वहीं छिप कर बैठा रहा, परन्तु जब रात हो गई तो रातों रात दूसरे ग्राम में चला गया। उस दिन से मैंने शाक्तक लोगों का कभी विश्वास न किया।

---

२२. महर्षि मारकंडे

१. सत्युग में महर्षि मारकंडे के यहां एक बालक पैदा हुआ। जब वह बारह वर्ष का हुआ तो उस के मन में मृत्यु को जीतने का विचार पैदा हुआ। अतः वह योग द्वारा मृत्यु पर विजय प्राप्त करने की इच्छा से घर बार त्याग कर बनों और पर्वतों की

ओर निकल पड़ा और योगियों के सतसंङ्ग से योग क्रियाओं को करता हुआ ब्रह्मचर्य पूर्वक अपने जीवन को व्यतीत कर के गृहस्थ आश्रम में प्रवेश कर लिया। उनकी स्त्री का नाम धूमावती था और उनके यहाँ वेदश्रवा नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ जो अपने समय के महान विद्वान थे।

और

महर्षि दयानन्द जी भी छोटी आयु में मृत्यु को विजय करने के लिए घर से निकल पड़े, और योगियों की संगति से योग क्रियाओं को करते हुए योग को सिद्ध कर लिया और ब्रह्मचय पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करने लगे। परन्तु जहाँ महर्षि मारकण्डे गृहस्थी बन गए वहां महर्षि आजन्म ब्रह्मचारी रहे। और सचमुच मृत्यु पर विजय प्राप्त कर ली अगर उनको तेरह चौदह बार ज़हर न दिया जाता तो वह निश्चय ही बहुत लम्बी आयु भोगते। परन्तु मृत्यु पर विजय करने को बात तो उनके मृत्यु समय के दृश्य से ही पूर्णतयः प्रकट होती है। जबकि उन्होंने मृत्यु का हंसते-हंसते स्वागत करते हुए, "ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो, तैंने अच्छी लीला को" कह कर प्राण छोड़ दिए थे। मृत्यु को जीतने का मतलब मृत्यु के भय को जीतना ही होता है, और वह सारी आयु कभी किसी बड़े से बड़े सङ्कट के आने पर भी भयभीत न हुए थे।

२३. महर्षि वेदव्यास जी

महर्षि वेदव्यास जो का असली नाम कृष्ण द्वैपायन था, परन्तु वेद वेत्ता और वेद प्रचारक होने से इनका नाम वेदव्यास पड़ गया था, उन्होंने महाभारत आदि कई ग्रन्थ लिखे हैं, अतः उन्हों ने अपने ग्रन्थ विष्णु धर्म सूत्र ४४—२५५—३ में लिखा है—

श्रुयताम् धर्म सर्वस्याम् श्रुयतामपि धार्यताम्।
आत्मना प्रतिकूलानि परेशाम न समाचरेत्॥

अथवा धर्म का तत्व सुनो, और सुनकर धारण करो, कि जो अपने प्रतिकूल हो, वैसा दूसरों से बर्ताव न करो—do as you wish to be done by.

हर चे वा खुद मापसन्दी बा दीगरां मपसन्द ॥

और

इसी तरह महर्षि दयानन्द जी ने अपने मन्तव्य में लिखा है कि मनुष्य उसी को कहना कि जो मननशील होकर स्वात्म वत अन्य मनुष्यों के दुख सुख हानि लाभ को समझे।

महर्षि ने मुलतान से दानापुर हिन्दु सत सभा के मन्त्री को आर्य समाज के नियम और उपनियमों की कापी भेजते हुए १ अप्रैल १८७८ को लिखा था।

जिसका कुछ अंश निम्नलिखित है।

"इन नियमों को ठीक ठीक समझ कर वेद की आज्ञा के अनुसार सब के हित में प्रवृत होना चाहिए। विशेष करके अपने आर्यावर्त के देश को सुधारने में अत्यन्त श्रद्धा, प्रेम और भक्ति सब के परस्पर सुख के अर्थ तथा उनके क्लेशों के मिटाने में सद्व्यवहार और उत्कण्ठा के साथ, अपने शरीर के सुख दुख के समान जानकर सर्वदा यत्न और उपाय करना चाहिए। सबके साथ हित करने का ही नाम परम धर्म है इस प्रकार वेद में बराबर आज्ञा पाई जाती है। अथवा मनुष्य को मनुष्य बनाने के लिए वैदिक धर्म का सार, दोनों महापुरुषों ने संसार के सामने रख दिया है।

२४. महर्षि दधीची

आप अथर्वऋषि और प्रजापति कर्दम की सुपुत्री शान्ती के सुपुत्र थे, आप की गिनती परम तपस्वियों में और निष्ठावान महापुरुषों में की जाती है, आपने ईश्वर उपासना के सिलसिले में अपने पिता से

असन्तोष प्रगट किया। और घर बार छोड़ कर जंगल में कुटिया बना कर घोर तपस्या की। देवासुर संग्राम में जब देवताओं को हार मिलने लगी, तब देव गुरु बृहस्पति ने उन से कहा—कि ऐसा शस्त्र बनाने की आवश्यकता है जिसमें दधीची ऋषि की रीढ़ की हड्डी फरे के तौर पर काम में लाई जाये। ऐसा शस्त्र ही देवताओं को विजय दिला सकता है। देवता दधीची ऋषि के पास गये, और अपने विजय की कामना से उनसे रीढ़ की हड्डी मांगने लगे।

देवताओं की विजय का अर्थ था, सत्य की विजय, इसलिए दधीची ने अपनी रीढ़ की हड्डी देना स्वीकार कर लिया। हड्डी कट जाने से इनके शरीर का अन्त हो गया, परन्तु परोपकारियों में उन का नाम ऊंचे दर्जे पर लिखा गया।।

और

महर्षि दयानन्द टंकारा निवासी कर्षण जी तिवाड़ी और यशोदा बाई के पुत्र थे, आपने ईश्वर उपासना के विषय में अपने पिता से इख़्तिलाफ़ प्रकट किया, और घर बार छोड़ कर जगलों वा पहाड़ों में घूमते तथा तपस्या करते रहे जब आप अजमेर में विराजमान थे, तो राजपूताने के कुछ भाई आपकी सेवा में आए। और राजपूतों में आकर प्रचार करने का निमन्त्रण दिया, महाराज ने स्वीकार कर लिया, परन्तु जब उनके भक्तों को पता लगा, तो उन सब ने आकर नम्र निवेदन किया, महाराज वह तो असुर भूमि है, वहां आप हरगिज़ न जाय, वह असुर लोग आप का अनिष्ट करेंगे। इस पर महाराज ने उत्तर दिया। "फिर तो मैं ज़रूर जाऊंगा। जहां ऐसा अन्धकार है, अगर मेरा पोर पोर जला कर भी वह असुर लोग रोशनी प्राप्त कर सकें तो ठीक है। और आप राजपूताना चले गये, हुआ वही कि उस असुर भूमि में उनके शरीर के अन्त करने की लीला रची गई। महर्षि के भक्तों ने कहा महाराज आपका स्मारक बनना चाहिए। इस पर उन्होंने कहा कि मेरी हड्डियां भी. खेतों में

फैंक देना, ताकि खाद का काम दे सकें, एक शायर ने इस पर यूं लिखा है—

जलाना मुझको मगर न मेरी समाधि हरगिज़ बनाना ।
ये बट्टा आर्यो हरगिज़ न मेरे नाम पर तुम लगाना ।।
वह ताके बेफ़ायदा न जाये, खाद के तौर काम आए ।
जो खाक हो मेरी हड्डियों की,
वह जाके खेतों में डाल आना ।।

सत्य के प्रचार और सत्य की जय के लिए दधीची ऋषि की तरह हड्डियां तक दे देने वाले महर्षि की जय।

२५. महर्षि चाणक्य

१. आज से तकरीबन २३०० साल पहले इस देश में महा पदमनन्द, राज्य करता था। उस समय देश की यह हालत थी कि भारत स्वतन्त्र था। यहां का व्यापार बढ़ा चढ़ा था। यहां के बने हुए माल से देश विदेश के बाज़ार पटे पड़े थे। यहां के कारीगरों के हाथ में कुछ ऐसी सफ़ाई थी, कुछ ऐसा जादू था, कि जिस चीज़ को वह बनाते थे वही लोगों के मन भाती थी। राजा भी यहाँ के व्यापार और कारीगरी का प्रोत्साहन करते थे। और इस तरह देश वासियों और राजा को खूब लाभ होता था। राजकोष भरा पड़ा था। राजा के पास महापदम रुपया होने के कारण ही इस का नाम महा- पदमनन्द पड़ गया था। महापदम रुपया भला कितना होता है, ज़रा हिसाब लगाएं, कि सारी दुनियाँ के आदमियों को पचास लाख रुपया प्रति मनुष्य को दिया जा सकता है और अगर सिरफ़ हिन्दुस्तान में ही तकसीम करना हो तो प्रति मनुष्य को पांच करोड़ रु० आवे। अहो! कितना धन धान्य से पूर्ण यह देश था। इस समय जितनी दौलत अमरीका में है इस से कई गुना अधिक धन उस समय भारत

में था। उस समय मगध राजा की राजधानी कुसुमपुर थी। जो बाद में पाटली पुत्र नाम से प्रसिद्ध हुआ। और अब पटना। (बिहार) नाम से विख्यात है। महापदमनन्दों के खानदान में राजा लोग अपने आप को प्रजा का सेवक ही समझते थे। पर इस खानदान का अन्तिम राजा धनानन्द बड़ा विलासी हो गया, राजकाज में इस का मन बिल्कुल न लगता था, यह अपना सारा समय नाच गाने और रंग रलियां मनाने में खर्च करने लगा। सौभाग्य से इस राजा का मन्त्री कात्यायन बहुत ही योग्य था। इस का उपनाम राक्षस पड़ गया था। वैसे वह बड़ा विद्वान ब्राह्मण था नीति कुशल था और राजा के विलासी होने के बावजूद भी राज्य को संभाले हुए था। परन्तु राजा के पूरे तौर पर राज्यकाज की ओर ध्यान न करने से जनता में राजा के विरुद्ध रोष पैदा होना कुदरती था। और पहले जैसा व्यापार और कारीगरी न रहने से धन की भी कमी होती जा रही थी, और राज्य भी छिन्न भिन्न होकर छोटे-छोटे राज्यों में तकसीम होने लगा था। जहां कहीं कोई राज्याधिकारी था राजा बन बैठा और केन्द्रीय सरकार कमज़ोर हो गई। ऐसे ही समय में सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण कर दिया।

२. और ऐसे ही वक्त में महर्षि चाणक्य का जन्म भी हुआ उन का जन्म नाम विष्णुगुप्त था, और वह तक्ष शिला विश्व विद्यालय का विद्यार्थी था। उस वक्त तक्षशिला का महाविद्यालय बहुत बड़ा था। उस में दस हज़ार विद्यार्थी विद्या ग्रहण करते थे। राजा नन्द का वज़ीर कात्यायन भी उसी विश्वविद्यालय का विद्यार्थी था, और विष्णुगुप्त का सह पाठी भी था। विष्णुगुप्त का रंग तो काला था परन्तु मेधा बुद्धि इस में भरपूर थी और यही विष्णुगुप्त बाद में चाणक्य और कौटल्य के नाम से प्रसिद्ध हुए। यह अपने को आर्य कहलाते थे। और इन के शिष्य भी इन को आर्य कह कर सम्बोधन

किया करते थे। जब इसको पता लगा कि सिकन्दर भारत के अन्दर घुस आया ही नहीं बल्कि उसने राजा पौरस से शिकस्त खाने के बाद इस से सन्धि कर ली है, और उसको भारत का महाराजा बनाने का लालच दे कर सारे भारत को फ़तह करना चाहता है। तो उस के मन में बड़ा खेद हुआ कि एक विदेशी भारत वर्ष की स्वतन्त्रता को मिटा कर अपने अधीन करना चाहता है। दैवयोग से चन्द्रगुप्त नाम का एक युवक जो राजा नन्द के जेलखाने से भाग आया था महर्षि चाणक्य को मिल गया। छन्द्रगुप्त मौर्य क्षत्री था। और राजा नन्द की फौज में बतौर सिपाही भर्ती हुआ था। लेकिन जब उसने भी यह सुना कि सिकन्दर ने भारत पर हमला कर दिया और फिर पोरस से सन्धि कर के अब वह सारे भारत पर अधिकार जमाना चाहता है तो उस ने अपने कुछ फौजी मित्रों से इस बात का ज़िकर किया, और यह गिला भी किया कि हमारा राजा तो रंग रलियों में मस्त है सिकन्दर का मुकाबला कैसे किया जावे। अतः इसी सलाह मश्वरा की भनक राजा के वजीर को मिल गई। और इसने उसको कैद कर दिया, जिस से वह किसी तरह छूट कर महर्षि चाणक्य से मिल गया। और अब जैसे कृष्ण और अर्जुन का मेल हो जाने से महाभारत जीता गया था। इस तरह महर्षि चाणक्य और चन्द्रगुप्त को मेल हो जाने से भारत की स्वतन्त्रता कायम रह सकी। चुनांचे दोनों ने मिलकर ऐसी-ऐसी योजनाएं बनाईं कि जिससे सिकन्दर को पंजाब से हो वापिस जाने पर मजबूर होना पड़ा, और जाते जाते सिकन्दर के जिसम पर ऐसी चोटें कीं जिससे वह अपने मुलक यूनान भी न पहुंच सका और रास्ता में बाबल में ही मर गया। इस के बाद सल्यूकस इस के कमांडर ने जिससे मरते वक्त सिकन्दर ने प्रतिज्ञा ले ली थी कि भारतफ़तह करना है। भारत पर हमला करने की तैयारी शुरू कर दी। इतने में महर्षि चाणक्य और चन्द्रगुप्त की मन्त्रणा से सब छोटे छोटे राजा चन्द्रगुप्त की कमान में

आ गए। और इस प्रकार चन्द्रगुप्त ने अपनी ताकत बढ़ा कर महर्षि चाणक्य की नीति के कारण मगध का राजा धनानन्द को जो विलासी होने से प्रजा का प्रेम खो चुका था, कत्ल कर दिया। और महर्षि चाणक्य नें इस को मगध का राजा बना दिया। अब इन को पता लगा कि भारत पर सैल्यूकस हमला करने की तैयारी कर चुका है, और हमला करना ही चाहता है। अतः महर्षि चाणक्य की आज्ञा के अनुसार सैल्यूकस का मुकाबला दरया जेहलम पर ही करने का निश्चय हुआ। सिकन्दर के वक्त ही महर्षि चाणक्य और चन्द्रगुप्त युनानियों की लड़ाई के ढंग और उन के हथियार और उन की चलाकियों से आगाह हो चुके थे इसलिए अब उनको सैल्यूकस का मुकाबला करने में बड़ी आसानी थी।

महर्षि चाणक्य ने सरहद पर ही सल्यूकस को पराजय देने का पूरा २ इन्तज़ाम कर रखा था, अतः जिस समय सैल्यूकस पिशावर के पास ही पहुंचा तो मुकाबला में कील कांटे से लेस फौज़ को देख कर हैरान रह गया, और फौज ने यह हाल देखा तो वह भी हैरान रह गई। क्योंकि सैल्यूकस ने सेना के अफ़सरों और सिपाहियों को यह सबज़बाग दिखा कर तैयार किया था कि अब तो मगध जा कर ही थोड़ा सा मुक़ाबला होगा, जिसको निश्चय ही जीत जाएंगे, वरना सारा रास्ता तो आप भारत को लूटते हुए ही जाएंगे। लेकिन फौज के अफसरों और सिपाहियों ने पिशावर से निकलते ही मुकाबला पर इतना बड़ा लश्कर मये साजों सामान और कील कांटे से लैस तैयार बर तैयार खड़ा देखा तो सिर मुंडाते ही ओले पड़े देखके सब दंग रह गये, और एक ही वार में पराजय मान-करके सैल्यूक्स ने चन्द्रगुप्त से सन्धि कर ली। और अपनी लड़की हेलन चन्द्र गुप्त से विवाह दी। और दहेज में अफ़ग़ानिस्तान, बाखतर तक का इलाका भी

देकर छुटकारा करवाया, ऐसा था नीति निपुण महर्षि चाणक्य, जो विदेशियों को अपने देश में देखना भी पसन्द न करता था। अतः सैल्यूक्स को विजय कर लेने के बाद अब महर्षि चाणक्य और चन्द्र गुप्त सारे भारत के राज्य को जोकि अब चन्द्रगुप्त के अधीन था। राम राज्य बनाने में लग गये, और पांच दस वर्ष के अन्दर ही अन्दर सारे भारत में राम राज्य स्थापित कर दिया, जिसके बिषय में मैगस्थनीज़ जो सैल्यूक्स की ओर से ऐलची के तौर पर चन्द्रगुप्त के दरबार में रहा, उसने लिखा कि भारत में कोई घर में ताला नहीं लगाता था, मतलब यह कि चोरी नहीं होती थी, और चोरी हो भी कैसे जब कि कानून यह था कि जिसकी चोरी होगी अगर चोर न पकड़ा जाय और माल बरामद न हो तो उसका नुकसान सरकारी खज़ाना से अदा किया जाय, ऐसी हालत में भला कोई चोरी करने की हिम्मत कर सकता था। पाटली पुत्र शहर की सुन्दरता वर्णन करते हुए लिखा है कि वह शहर नौ मील लम्बा, दो मील चौड़ा था, उसके ६४ दरवाजे थे, ६०० बुर्ज और चारों तर्फ ५०० फुट चौड़ी पानी की खाई थी। तजारत योरुप और चीन से बज़रिया जहाज़रानी होती थी, हर गांव में पंचायत होती थी जो उस गांव का सब प्रबन्ध करती थी। जोडीशरी और एग्ज़ेक्टिव अलग अलग थी। न्याय की दृष्टि में सब समान थे, यहां तक कि राज पुत्र भी दोषी होने पर सज़ा पाता था, अतः दक्षिण के एक छोटे से राजा ने इस बात की परीक्षा करने के लिए कि राज्य में चोरी होती है या नहीं, सोने की मोहरों से भरी हुई एक बोरी जंगल में चौरस्ते में रख दी, वह बोरी पांच वर्ष तक वहीं पड़ी रही किसी ने उठाई नहीं। एक दिन राजकुमार शिकार खेलने गया तो उसके घोड़े की पांव की ठोकर से वह बोरी फिट गई तो इस जुरम को सज़ा में राजकुमार को जिला वतनी की सज़ा मिली। उस समय मुल्क में दूध की नहरें बहती थी, पानी मांगने वाले को दूध मिलता था, और (आजकल दूध

मांगने वाले को सनरेटा मिलता है।

शिक्षा के प्रसार के लिए भी बहुत काम किया गया। गांव-गांव में विद्या परिषदें बनाई गईं और इस तरह न्याय करने के लिए भी गांव गांव में परिषदें होती थीं. समाजिक जीवन को उच्चतम करने के लिए राज्य की तर्फ से भी कुछ नियम थे, मसलन किसी के घर आग लग जाय, तो सब का कर्तव्य होता था, कि उसको बुझाने में सहायता दे, इस कर्तव्य की अवहेलना करने वाले को सख़्त सज़ा दी जाती थी। सड़कों और बाज़ारों मे कोई गन्दगी नहीं बखेर सकता था, सफ़ाई की तर्फ़ विशेष ध्यान रखा जाता था। मतलब यह कि महर्षि चाणक्य की नीति से चन्द्रगुप्त का राज्य वाक़ई रामराज्य बन गया था, और इसकी सारी तरकीब महर्षि ने अपनी चाणक्य नीति और कौटिल्य अर्थ शास्त्र में लिखी है, परन्तु हमारे आज कल के नेता ऐसे अपूर्व ग्रन्थों की ओर ध्यान न देकर मग़रब की तर्फ ही देखने के आदि हो चुके हैं। वरना जो राज्य पांच वर्ष के बीच में रामराज्य बन गया था, उस नीति का अनुकरण करते, तो स्वतन्त्रता के यह १७ वर्ष क्यों व्यर्थ जाते, फिर महर्षि चाणक्य जिसने इतना बड़ा साम्राज्य कायम कर दिया जो इस समय भारत सरकार के राज्य से दुगना था, वह ख़ुद एक फूस की झोंपड़ी में रहता था, और दो चार शिष्यों को पढ़ा कर ही निर्वाह करता था, चन्द्रगुप्त को तख़्त पर बिठा कर भी वह वज़ीर नहीं बना, बल्कि उसी कात्यायन को वज़ीर की गद्दी पर रहने दिया, और ख़ुद फ़क़ीर बना रहा। जिस तरह महर्षि चाणक्य के दिल में विदेशियों के लिए घृणा थी, और जिस तरह वह स्वराज्य की रक्षा करना चाहते थे। इसी तरह महर्षि दयानन्द के मन में भी विदेशियों के लिए तथा विदेशी राज्य के लिए घृणा थी, और यदि उनको भी मौका मिलता तो वह ज़रूर ही ऐसा यत्न करते, जिससे एक बहुत ही मज़बूत और अच्छा राज्य यहां कायम

हो सके, अतः अंग्रेजों के राज्यकाल में और अंग्रेजों की ऐसी सल्तनत के बरखिलाफ़ जिस पर उस वक्त सूर्य भी ग़रूब न होता था। महर्षि के दिल में कितने जबरदस्त जज़्बात थे, जो उनके जीवन के निम्नलिखित वाक्यात से पूर्ण रूप से सिद्ध होते हैं। और अपने ही देश के स्वराज्य की नहीं अपितु संसार भर में चक्रवर्ती आर्य राज्य की स्थापना करने की मन में कामना करते और परमात्मा से प्रार्थना करते थे।

१. सब से पहले तो सन् १८५७ की पहली जंग आज़ादी के ठीक १५ वर्ष बाद जबकि अंग्रेज शासक इस देश पर पूरी तरह अपना कन्ट्रोल जमा चुके थे, महर्षि प्रचार करते हुए कलकत्ता जो उस वक्त भारत की राजधानी थी, पहुंचे, वहां भी हर दूसरी जगह की तरह उनके व्याख्यानों की धूम मच गई, और उनके बाज लैक्चरों की सदारत कलकत्ता का कोई न कोई बड़ा पादरी करता था और यह पादरी महर्षि दयानन्द के वसीह ईलम और इस्लाम ईसायत की तालीमात पर उनकी तेज़ और सख़्त नुक्ता चीनो पर हैरान हो जाया करते थे, और विशेषतः इसलिए भी कि महर्षि जो अर्बी या अंग्रेजो नहीं जानते थे, कलकत्ता के किसी बड़े पादरी ने महर्षि की ग़ैर मामूली और खुदादाद लियाकत का जिक्र उस समय के वायसराय लार्ड नार्थब्रुक से किया। जिस की वजह से वायसराय ने महर्षि से मुलाक़ात को इच्छा प्रकट की, अतः वायसराय के निमन्त्रण पर महर्षि उनसे मिले, इस मौका पर उन के दरमियान एक तर्जमान के ज़रिये, निम्नलिखित वार्तालाप हुआ, जिससे स्पष्ट प्रतीत हो जाता है कि महर्षि के दिल में विदेशी राज्य के प्रति कितनी घृणा थी, और देश प्रेम की अग्नि उनके हृदय में कितनी प्रचण्ड थी।

वायसराय—मुझे बताया गया है कि दूसरे मज़ाहब पर आप के ज़बरदस्त हमले परेशानकुन हैं, और उनके परिणाम स्वरूप

हिन्दु-मुसलमान दोनों में आपकी मुखालफ़त पैदा हो गई है। क्या आप अपनी जान को अपने दुश्मनों से खतरा महसूस नहीं करते। क्या आपको हमारी गवर्नमैंट की तर्फ से किसी खास किसम की रक्षा की आवश्यकता है।

स्वामी—मुझे बर्तानवी राज्य में अपने अकीदा के प्रचार करने की पूरी आज़ादी है, और मैं अपनी जानके लिए कोई भय प्रतीत नहीं करता।

वायसराय—पंडित दयानन्द अगर ऐसा है, तो क्या आप भारत पर अंग्रेजी राज्य की वरकतों की सराहना करेंगे और आप अपने भाषणों से पहले जो प्रार्थना करते हैं, इस में यह प्रार्थना भी करेंगे कि भारत पर अंग्रेजी राज्य हमेशा कायम रहे।

दयानन्द—मैं इस तरह की कोई बात बिल्कुल नहीं मान सकता। क्योंकि मेरा यह पक्का विश्वास है कि मेरे हमवतनों की उन्नति के लिए और दुनियां की कौमों में मेरे मुल्क का लासानी दर्जा हासल करने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि भारत बर्ष पूर्ण स्वतन्त्रता और खुद मुख्तयारी प्राप्त करे, मैं प्रतिदिन सायं प्रातः परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ, कि वह मेरे देश को विदेशियों से शीघ्र आजाद कराये। महर्षि जी की यह बात सुन कर लार्ड नार्थ ब्रुक हैरान रह गये, क्योंकि उनको किसी भारतीय से ऐसी बात सुनने की बिल्कुल ही उमीद नहीं थी, अतः वायसराय ने इण्डिया आफ़िस लण्डन को महर्षि की सरगर्मियों के लिए आगाह कर दिया, और अपनी गवर्नमैंट को हदायत कर दी, कि वह इस बाग़ी फ़कीर पर कड़ी निगाह रखे। अतः उस दिन के बाद स्वामी जी के व्यवख्यानों में अंग्रेज अफ़सर बड़ी तादाद में आया करते थे, जो प्रार्थना महर्षि दयानन्द परमात्मा के हजूर में अंग्रेजो छोड़ जाओ की सन् १८७२ में प्रतिदिन सायं प्रातः किया करते थे, उसी का अनुरूप Quit India का प्रस्ताव पूरे ७० वर्ष बाद कांग्रेस को पास

करने को हिम्मत हुई थी, और जिस के पास करने का मैदान भी महर्षि की कृपा से ही भारत में तैयार हुआ था।

२. फिर सन् १८५७ से १८ वर्ष बाद महर्षि ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के आठवें समुल्लास में. स्वराज्य महिमा शीर्षक के अधीन जो शब्द लिखे थे, वह तो गोया अंग्रेजी राज्य पर बम बन कर गिरे। महर्षि से पहले तो किसी को क्या हिम्मत होनी थी कि विदेशी राज्य के विषय में कोई शब्द कहता या स्वराज्य शब्द का ही प्रयोग करते। परन्तु महर्षि के ऐसा लिखने और प्रचार करने के बाद भी कई वर्षों तक स्वराज्य शब्द भी किसी बड़े से बड़े नेता के मुँह से न निकला था, सब से पहले दादा भाई नारो जी ने इसे सत्यार्थ प्रकाश से पढ़ कर कलकत्ता कांग्रेस की प्रधानगी करते समय सन् १८६६ में स्वराज्य का शब्द अपने एडरेस में पढ़ा था, और फिर बाल गंगाधर तिलक ने स्वराज्य मेरा पैदायशी हक है Home rule is my birth right का नारा सन् १६०६ में लगाया था, जिसके लिए इन को ६ वर्ष को कैद की सजा हुई थो सत्यार्थ प्रकाश के वह शब्द पढ़ कर आप महर्षि के मन की अन्त-र्भावनाओं को जान सकेंगे कि वह स्वराज्य के कितने इच्छूक थे, वह शब्द निम्नलिखित हैं।

स्वराज्य की महिमा

"अब अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य प्रमाद परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की कथा ही क्या कहना, किन्तु आर्यावर्त में भी आर्यों का अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ भो है सो भो विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहा है, कुछ थोड़े राजा स्वतन्त्र हैं। दुर्दिन जब आता है तब देश वासियों को अनेक प्रकार के दुख भोगने पड़ने हैं। कोई कितना ही करे किन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम

होता है। अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित. अपने और पराष्ट का पक्षपात शून्य प्रजा पर माता पिता के समान, कृपा, न्यान और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है। परन्तु भिन्न भिन्न भाषा, पृथक पृथक शिक्षा, अलग अलग व्यवहार का विरोध छटना अति दुश्कर है। बिना इसके छूटे परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है। इसलिये वेद आदि शास्त्रों में जो व्यवस्था वा इतिहास लिखे हैं, उन्हीं का मान्य करना भद्र पुरुषों का काम है।"

यह विदेशियों के राज्य हटाकर, स्वराज्य प्राप्त करने का एक सार्वजनिक नियम महाराज ने लिखा है, विदेशियों और विदेशी राज्य के विषय में महर्षि चाणक्य और महर्षि दयानन्द के एक जैसे ही विचार और भावनायें थीं। महर्षि जी ने न केवल विदेशियो की पराधीनता को उखाड़ फैंकने का नुस्खा हो बताया, बल्कि उसका निदान भी बताया।

३. अमृतसर में व्याख्यान देते हुए महाराज ने कहा कि लोग कहते हैं कि अग्रेज़ दौलत मन्द होते जाते हैं और देसी आदमी गरीब होते जाते हैं, इस बात की चिन्ता न करनी चाहिए। जिस कदर अंग्रेज़ दौलत मन्द होंगे, आराम तलबी से सुस्ता, और सुस्ती से कमज़ोर हो जाएंगे, और देसी लोग ग़रीब होने की वजह से मेहनती होंगे, और मेहनती होने से ताकतवर होंगे। इससे देसी लोग फ़ायदा में रहेंगे। इस पर बिहारी लाल जी असिस्टेंट कमिश्नर ने कहा कि आम मौका पर ऐसा बात नहीं करनी चाहिए। परन्तु स्वामी जी ने कहा, सत्य कहने में मुझे कोई भय नहीं।

४. हकीम, डाक्कर, वैद्य सब से अच्छा वह गिना जाता है, जे न सिर्फ किसी रोग का इलाज करे या करना जानता हो, बल्कि रोग का निदान भी जानता हो। अतः महर्षि ने जहां सत्यार्थ प्रकाश के ८ वें समुल्लास में स्वराज्य प्राप्ति का नुसख़ा बताया। वहां

उन्होंने दसवें समुल्लास में विदेशी पराधीनता के कारण का निदान भी किया है, जो निम्नलिखिन है। इससे महर्षि का पूर्ण नीतिवान यानि Politition होना सिद्ध होता है।" विदेशियों का आर्यावर्त में राज्य होने के कारण, आपस की फूट, मतभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विद्या न पढ़ना पढ़ाना, बाल अवस्था में अस्वयंबर विवाह, विषया आसक्ती, मिथ्या भाषण आदि कुलक्षण वेद विद्या का प्रचार न होना आदि कुकर्म हैं। जब आपस में भाई भाई लड़ते हैं, तब तीसरा विदेशी आकर पंच वन बैठता है। क्या तुम लोग महाभारत की बातें जो पाँच सहस्र वर्ष पहले हुई थीं, उन को भूल गए। आपस की फूट से कौरवों पांडवों और यादवों का सत्यानाश हो गया, सो तो हो गया, परन्तु अब तक भी वही रोग पीछे लगा है। न जाने यह भयंकर राक्षस कभी छूटेगा या आर्यों को सब सुखों से छुड़ा कर दुख सागर में डुबो मारेगा।

"उस दुष्ट दुर्योधन गोत्र हत्यारे, स्वदेश विनाशक नीच के दुष्ट मार्ग में चलकर आर्य लोग अब तक भी दुख बढ़ा रहे हैं। परमेश्वर कृपा करे कि यह राज रोग हम आर्यों में से नष्ट हो जावे।

इन शब्दों में महर्षि जी ने अपना दिल खोलकर रख दिया है।

५. जालन्धर में एक दिन कहा कि आजकल के राजाओं की क्या हालत है। अंग्रेज लोग अपने आदमियों का बहुत लिहाज करते हैं। अगर कोई अंग्रेज किसी देसी को कत्ल कर दे तो उसको छोड़ देते है। इस तरह अगर यहां यह ज़्यादह ज़ुलम करेंगे तो इनका राज्य ज़्यादह देर न रहेगा। जैसा कि उन्होंने लखनऊ के बलवे में चन्द अंग्रेजों के बदले में सैंकड़ों देसी बेगुनाह मार डाले थे।

६. महर्षि जी ने राजपूताने में राजपूत राजाओं में विशेष प्रचार करने का प्रोग्राम भी इसी अभिप्राय से बनाया था कि इनको राजनीति में निपुण करके, और इनका संगठन बना कर देश को आज़ाद कराने का ढंग बनाया जावे; अतः जब महाराज

चित्तौड़ में थे, और गवर्नर जनरल भी चित्तौड़ आये हुए थे, तो गवर्नर जनरल ने महाराना सज्जन सिंह से कहा कि चित्तौड़ का किला आप सरकार को देदें। इस पर महाराना तो चुप रहे। परन्तु जब स्वामी जी को इस बात का पता लगा तोउन्होंने उदयपुर के सब सरदारों को जो वहां इकट्ठे हुए थे बुला कर समझाया कि आप बारी बारी जाकर गवर्नर जरनल से मिलें और कहें कि चित्तौड़ का किला केवल महाराना का ही नहीं है। इस पर सब राजपूतों का हक है, और सब की सम्मति के बिना महाराना को कोई हक नहीं है कि इसके विषय के कोई बात चीत करें। तब गवर्नर जनरल समझ गया कि यह हमारी मांग को नहीं मानेंगे तो उन्होंने कहा कि मैंने वैसे ही महाराना साहब से ज़िक्र किया था, हमने किला लेकर क्या करना है. इस तरह नीति कुशलता से उन्होंने चित्तौड़ का किला अंग्रेजों के अधीन जाने से बचा लिया।

७. स्वामी जी ने अपने प्रचार काल में देश के कोने कोने में देश हित की भावना को जाग्रत कर दिया था, मातृ भूमि या मातृ सभ्यता और मातृ भाषा के लिए देश वासियों को प्रेम करने का पाठ पढ़ा दिया था, अतः देशोन्नति के लिए महाराज ने देहली दर्बार के मौका पर इकट्ठे हुए, उस समय देश भर के प्रमुख नेताओं की एक सभा, अपने निवास स्थान पर की, जिसमें मुन्शी कन्हैया लाल, अलखधारी, बाबू नवीन चन्द राय, बाबू केशव चन्द्र सैन, मुंशी इन्द्र मन, सर सैयद अहमद खां, बाबू हरिश्चन्द चिन्तामणि आदि सम्मिलित हुए। स्वामी जी ने प्रस्ताव किया कि यदि हम सब एक ही रीति से देश का सुधार करें तो आशा है कि देश शीघ्र ही सुधर सकता है। परन्तु उस वक्त तो स्वामी जी को इस बात में सफलता न मिली, परन्तु कुछ सालों के बाद इण्डियन नैशनल कांग्रेस की बुनियाद डाली गई, जिसने धीरे धीरे बहुत से मरहले तय करने के बाद और दूसरे सहायक साधनों के कारण देश को आज़ाद करा

लिया। किसी ने ठीक कहा है—

अगर देश हितैशी हमें न जगाता
तोदेशोन्नति का किसे ध्यिान आता।

८. महर्षि ने जब आर्य समाज को स्थापित किया तो अंग्रेजों की आर्य समाज पर शुरू से ही तिरछी नज़र रही और आर्य समाज को बाग़ी जमायत समझा जाता रहा, परन्तु सन् १९०७ में आर्य समाज के लीडर ला० लाजपत राय जी और सरदार अजीत सिंह जी को अंग्रेज़ों ने बग़ावत के जुर्म में पकड़ कर मॉडले जेल में भेज दिया तब से आर्य समाज पर अंग्रेज़ों को खास नज़रें अनायत हो गईं, आर्या समाज़ियों को परेशान किया जाने लगा, सरकारी नौकरियों से जवाब मिल गया, बिना वारण्ट आर्य उपदेशक गिरफ़्तार किये जाने लगे, उस समय आर्य समाजी होना जुर्म समझा जाता था। जिस से यही साबत होता है कि महर्षि दयानन्द ने देश में कितनी पोलिटीकल जागृति भी पैदा कर दी थी, अतः इस विषय में भारत का सब से बड़ा दुश्मन सर वालटायन चिरोल ने अपनी किताब इण्डिया के सफ़ा नं० ६४ हिन्दुओं के विषय में लिखते हुए निम्नलिखित वाक्य लिखे हैं—They were to be stirred once more by a feircer spirit when Swami Dayanand Sarswati founded the Arya Smaj in 1875 having strong spirit of nationalism. अर्थात् जब सन १८७५ में स्वामी दयानन्द ने आर्यासमाज को ज़बरदस्त देश हित की भावना की भित्ति पर स्थापित किया तो एक बार हिन्दुओं में पहले से भी अधिक उत्साह पेदा हो गया।

९. लुईस ऐनू प्रोफेसर संस्कृत फ्रांस अपनी पुस्तक Religion of Ancient India के सफ़ा १०७ पर लिखते हैं—There was also Dayanand Saraswati Gujrati ascetic who founded the Arya Smaj· He was in favour of returning to an unqualified adherence to the Vedas and

claimed that explicit principles of pure monthism and of social and moral reform could be found in the hymns. As well as his work of religious reforms, he was active in urging the hinduism must establish within itself a church militant and should unceasingly work for political and social reform.

१०. अब अखीर में आपके सामने वह अचम्भे वाली बात लिखने लगे हैं जो महर्षि के मन के अन्दर थी और जिस को कैम्ब्रज यूनिवर्सिटी के प्रोफैसर आफ संस्कृत मिस्टर टोम्स ने देखा और अपनी किताब Hindu manners & Customs में लिखा है।

"Dyanand might have founded a mightiest empire for his followers had he been given a chance to live more."

अर्थात् दयानन्द को अगर अधिक जीने का मौका मिलता तो वह अपने श्रद्धालुओं के लिए एक निहायत ज़बरदस्त राज्य की स्थापना कर जाता।

यह थे महर्षि चाणक्य की तरह महर्षि दयानन्द के हृदय के उदगार जो अपने देश में विदेशी राज्य देख कर उनके मन में उठते थे, और जिस विदेशी राज्य को मिटाकर अपने देश में स्वराज्य लाने की उनकी जबरदस्त इच्छा को प्रकट करते रहे। राजनीति में महर्षि चाणक्य और महर्षि दयानन्द बिल्कुल मिलते जुलते हैं। जैसा शासन महर्षि चाणक्य ने चला कर इस देश को स्वर्ग बनाया था, यदि महर्षि दयानन्द को भी चाणक्य की तरह राज्य चलाने का मौका मिलता तो वैसा ही स्वर्ग वह भी इस देश को बना देते, आर्याभिविनय नामी अपनी लघु पुस्तिका में महर्षि ने प्रभु से बार बार यही प्रार्थना को है कि हे प्रभु मेरा देश विदेशियों के चुंगल से निकल जावे। यह विदेशियों के प्रति दोनों महर्षियों के एक जैसे विचार ही थे। अगर

महर्षि दयानन्द को भी चन्द्रगुप्त जैसा साथी मिल जाता तो महर्षि अपने जीवन काल में ही अंग्रेजों को भारत से निकाल बाहर करते।

११ सम्मत् १९३६ के हरिद्वार के कुम्भ मेले पर प्रचार करते समय एक दिन कुछ अंग्रेज़ महाराज के पास आए। महाराज ने उनसे कहा कि आप लोग भारत की अवनति और फूट के समय आये हैं, यदि इसकी उन्नति के समय में यहां आते तो देखते यहां कैसे कैसे शूरवीर और योद्धा विद्यमान है, और आप उनकी विद्या और बल की प्रशंसा करते, अंग्रेज़ शासकों के मन पर भारत का गौरव दर्शाने से महर्षि के हृदय के भाव मातृ भूमि के प्रति प्रगट हो हो रहे हैं।

१२. और एक दिन व्याख्यान देते हुए महाराज जी कहने लगे कि इस देश को वसुन्धरा बड़ी उपजाऊ है। स्वराज्य प्राप्त होने पर थोड़ी ही देर में धन धान्य से पूरित कर देगी।

१३. और महर्षि जी में एक ऐसा महान गुण था जो और किसी महापुरुष में शायद ही मिले कि वह न सिर्फ दूसरों के अवगुणों का खण्डन ही करते थे बल्कि अपने विपक्षियों के गुणों की तारीफ़ भी करते थे, चुनांचे ११ वें समुल्लास में ब्रह्म समाज और प्रार्थना समाज की समीक्षा करते हुए पूर्व पक्ष में यह प्रश्न रख कर "कि देखो योरूपोयन लोग मुण्डे, जूते, कोट, पतलून पहनते, होटलों में सब के हाथ का खाना खाते, इस लिए अपनो बढ़ती करते हैं। इसका उत्तर देते हुए महर्षि लिखते हैं। 'यह तुम्हारी भूल है, क्योंकि मुसलमान अन्त्यज लोग सब के हाथ का खाते हैं पुनः उनकी उन्नति क्यों नहीं होती, जो योरुपीयनों में बाल्यावस्था में विवाह न करना, लड़का लड़की को विद्या सुशिक्षा करना कराना, स्वयंवर विवाह होना, बुरे बुरे आदमियों का उपदेक्ष नहीं होता, वह विद्वान होकर जिस किसी के पाखण्ड में नहीं फंसते। जो कुछ करते हैं वह

सब परस्पर विचार करके सभा से निश्चय करा कर करते हैं। अपनी जाति की उन्नति के लिए तन मन धन खर्च करते हैं। आलस्य को छोड़ उद्योग किया करते हैं, देखो अपने देश के बने हुए जूते को आफ़िस और कचहरी में जाने देते हैं इस देसी जूते को नहीं। (याद रहे कि स्वामी जी के समय में अंग्रेजों ने ऐसा ही रिवाज़ कायम कर रखा था कि बूट चाहे दो रुपये का पहना हो, वह दफ्तर, कचहरी में चला जावे, और देशी जूती चाहे २००) रुपये की हो वह नहीं जा सकती। अतः राजा नवाब लोग भी अपनी कीमती से कीमती जूतियां साहब को मिलने के समय बाहर उतार कर जाया करते थे, इस रिवाज़ से अंग्रेजों का अभिप्राय बूट को यहां प्रचलित करना था, जो उन्होंने अपना अभिप्राय सिद्ध कर लिया)। इतने ही में समझ लो कि अपने देश के बने हुए जूते का भी कितना मान प्रतिष्ठा करते हैं, उतना अन्य देश वासियों का नहीं करते। देखो कुछ सौ वर्ष से ऊपर इस देश में यूरोपीयनों को आये हुए हो गए, आज तक यह लोग मोटे कपड़े आदि पहनते हैं, जैसे अपने देश में पहनते थे। उन्होंने अपने देश का चाल चलन नहीं छोड़ा। और तुम में से बहुत से लोगों ने उनका अनुकरण कर लिया। इसी से तुम निर्बुद्धि, और वह बुद्धिमान ठहरते हैं। अनुकरण करना किसी बुद्धिमान का काम नहीं)। और जो जिस काम पर रहता है, उस को यथोचित करता है। आज्ञानुवर्ती बराबर रहते हैं, अपने देश वालों को व्यापार आदि में सहायता देते हैं। इत्यादि गुणों और अच्छे अच्छे कर्मों से उनकी उन्नति है।"

"इस वचन से महर्षि जी ने ब्रह्म समाजियों को जिनका झुकाओ बाबू केशव चन्द्र की कृपा से ईसाईयत की तर्फ हो रहा था। चेतावनी देने के साथ साथ अपने देशवासियों को योरुपीयन लोगों के गुणों को भी जताना था ताकि अपना देश भी उन्नत हो।"

और

१४. फिर इसी ११वें समुल्लास में ही अपने देशी जनों में देश भक्ति का सूत्र पात करने के लिए कहते हैं—"इस लिए जा उन्नति करना चाहते हो तो आर्य समाज के साथ मिलकर उसके उद्देश्यानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिए। नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा। क्योंकि हम और आप को अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन पोषण होता है, आगे होगा, उसकी उन्नति तन मन धन से सब जने मिल कर प्रीति से करें। इसलिए जैसा आर्य समाज, आर्यावर्त, देश की उन्नति का कारण हो सकता है वैसा दूसरा नहीं हो सकता, यदि इस समाज को यथोचित सहायता देवें तो बहुत अच्छी बात है। क्योंकि समाज के सौभाग्य का बढ़ाना समुदाय का काम है, एक का नहीं"।

किसी शायर ने क्या खूब कहा है—

"ऐ मेहर मैंने अक्सर छाना है सब ज़माना,
अपने वतन से बेहतर कोई नहीं ठिकाना ॥

२६ महर्षि धनवन्तरी, २७. इंग्लैंड का लार्ड विलंगडन

महर्षि धनवन्तरी

1. जिन्होंने आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ चरक और शुश्रुत को बनाया यह बचपन में बहुत निर्धन घर में पैदा हुए थे। ऐसी निर्धनता थी कि घर में रोशनी के लिए भी सामान न मिलता था परन्तु महर्षि धनवन्तरी के मन में विद्या ग्रहण की तीव्र इच्छा थी। अतः रात को पढ़ने के लिए अपने पड़ोसी के घर की रोशनी को अपने घर में लाने के लिए अपने घर की दीवार में छेद कर लिया, और पड़ोसी के घर

से इस छिद्र के द्वारा आने वाली रोशनी से विद्या उपार्जन करते रहे और इतने विद्वान हुए कि ऋषि की पदवी को प्राप्त कर संसार का उपकार करने को आयुर्वेद का प्रसिद्ध ग्रन्थ बना गए।

2. इंग्लैंड में एक लड़का विलंगडन नाम का निर्धन घराने में पैदा हुआ। घर में रात को पढ़ने का कोई रोशनी का सामान न था वह रात को बाहर गली बाजार में कमेटी की जलती हुई लैम्पों की रोशनी में पढ़ता था। जब रात को पढ़ते वक्त घड़ियाल बजता और वह टन-टन करता तो बालक विलंगडन उस की सुर में सुर मिला कर कहा करते, टन, टन, टन, लार्ड विलंगडन, लार्ड मेयर आफ लण्डन। अत: वह बालक इतना विद्वान हुआ कि अन्त में लंडन का मेयर बन ही गया।

3. महर्षि दयानन्द ने पितृ गृह में पांच वर्ष की आयु से बाइस वर्ष की आयु तक जो विद्या पढ़ी, इस पर जिज्ञासु दयानन्द की प्यास न बूझी। माता पिता को बहुतेरा कहा कि काशी जी विद्या पढ़ने को भेज दो, वह न माने। अन्त में २२ वर्ष की भरपूर जवानी में विद्या की प्यास बुझाने को घर से निकल पड़े, और भयायक बनों और बर्फानी पर्वतों में पूरे १४ वर्ष तक घूम-घूम कर जहां भी कोई विद्वान या योगी मिला विद्या उपार्जन और योगाभ्यास करते रहे परन्तु अब भी उन की विद्या उपार्जन की प्यास न बुझ सकी थी। हिमालय पर्वत पर एक वार स्वामी जी के दिल में ख्याल आया कि इन्हीं बर्फ़ानी पर्वतों में अपने आप को समाप्त कर देना चाहिए। फिर एक दम ही उन के मन में ज्ञान उपार्जन की लालसा उत्पन्न हो गई। और उन्होंने शरीर त्यागने का संकल्प छोड़ दिया। इस से भी सिद्ध होता है कि उन को ज्ञान उपार्जन की कितनी जिज्ञासा थी। अतः अपनी इस इच्छा की पूर्ती के लिएं जब उन्होंने महर्षि विरजानन्द की ख्याति सुनी तो सन् 1860 में मथुरा उन की कुटिया में आ विराजे, परंन्तु यहाँ स्वामी विरजानन्द जी ने एक और समस्यां खड़ी

कर दी। बिरजानन्द जी कहने लगे कि मैं किसी सन्यासी को नहीं पढ़ाता, क्यों कि जिस के रहन सहन भोजन आदि का प्रबन्ध न हो वह दत्तचित्त हो कर विद्या ग्रहण नहीं कर सकता, इस लिए पहले तम अपने खाने-पीने, रहने-सहने का प्रबन्ध कर आओ और फिर मेरे पास आकर विद्याभ्यास करो। अब दयानन्द को बड़ी चिन्ता हुई। उधर विद्या उपार्जन का शौक और इधर कोई व्यवस्था न होने के कारण कूएं पर आ कर भी प्यासा मुड़ जाने की सम्भावना, परन्तु परमेश्वर को भी यही मंजूर था कि ऋषि विरजानन्द का शिष्य ऋषि दयानन्द विद्या उपार्जन करे। और संसार के क्लेशों को दूर करने वाली पवित्र वेदवाणी का प्रसार संसार में करे, सो प्रभु कृपा से सब प्रबन्ध हो गया। श्री अमृत लाल जोशी ने उन के खाने का भार अपने जिम्मे ले लिया और अमृत लाल दयानन्द की सहायता कर के अमर हो गया। मथुरा के विश्रांम घाट पर लक्ष्मी नारायण मन्दिर की निचली मंजिल की एक कोठरी इन को मिल गइ। गोबिन्द सराफ स्वामी जी को चार आना महीना तेल के लिए देते थे। जिस से वह रात को अपना पाठ याद कर लिया करते थे। और हरदेव पत्थर वाला उन को दो रु० मासिक दूध के लिए देता था। इस तरह सब प्रबन्ध ठीक कर के दयानन्द गुरु चरणों मे विद्या उपार्जन करने लगे। इतनी कठिनाइयों से उपार्जित की हुइ ब्रह्म विद्या को महर्षि ने अपनी स्वार्थ सिद्धि न कर के संसार के उपकार में लगा दिया। और महर्षि धनवन्तरी की तरह अमर हो गए।

पूर्ण फ़िलास्फ़र

सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांस तथा वेदांत भारतीय दार्शनिक सप्रदाय के मूर्धन्यग्रन्थ हैं। इनके रचयिता क्रमश: [28]कपिल [29]पतञ्जलि, [30]गौतम, [31]कणाद, [32]जैमिनी और [33]वादरायण थे। इन दर्शनों का प्रतिपाद्य विषय भिन्न होते हुये भी ये सब वेदप्रमाण्य को

कण्ठ से स्वीकार करते हैं और उसे ईश्वरीय ज्ञान भी मानते हैं। इन शास्त्रों में पृथक-पृथक विषयों का प्रतिपादन होने से यह अनुमान करना अनुचित होगा कि ये दर्शन एक दूसरे का विरोध या खण्डन करते हैं। यूरोपिय विद्वान तथा उनके भारतीय अनुयायी इन ग्रन्थों को परस्पर विरोधी मानते हैं। इसमें केवल उनका दोष नहीं, क्योंकि वे तो प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन करने के अनन्तर ही अपना मत निश्चित करते हैं।

वस्तुत: षट्दर्शनों को विरोधी रूप में प्रस्तुन करने के लिये मध्यकालीन आचार्य भी उतने ही दोषी हैं जितने आज के विद्वान। शंकराचार्य को ही लीजिये। उन्हों ने अपने ब्रह्म सूत्र भाष्य में सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांस आदि सभी दर्शनों का खण्डन किया और उन्हें आवैदिक सिद्ध करने का दुससाहस किया। यह परस्पर खण्ढन-मण्डन की परम्परा शंकर के परम गुरु गौडपाद से प्रारम्भ हुई। जब वेदांत के अनुयायी विद्वान लोग अन्य शास्त्रों का खण्डन करने लगे तो सांख्य, न्याय, आदि की विचारधाराओं के अनुयायी भी क्यों पीछे रहते। उन्हों ने भी नवीन वेदांत का निरास करने में अपनी सारी प्रतिभा और शक्ति को व्यय करना आरम्भ कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि एक ऐसी विकृत परम्परा उत्पन्न हो गई जिसके कारण षट्दर्शनों का समन्वयात्मक रूप लुप्त हो गया और लोग साधारणतःइन दर्शनों को परस्पर विरोधी समझने लगे।

ऋषि दयानन्द को ही इस का श्रेय दिया जाना चाहिए कि उन्होंने इन दर्शनों का समन्वयात्मक रूप सर्वप्रथम हमारे समक्ष प्रस्तुन किया। उन्होंने बलपूर्वक यह प्रतिपादित किया कि इन दर्शनों की रचना उच्चकोटि के प्रभावशाली और मेधावी ऋषियों के द्वारा हुई है जिन्होंने समाधि अवस्था में ईश्वर का साक्षात्कार किया था

और जिन्हें समस्त भौतिक और आध्यात्मिक विद्यायें हस्तकमल वत थीं ऋषियों के ग्रन्थों में परस्पर विरोध कुछ भी नहीं होता यह ऋषि दयानन्द का दृढ़ विश्वास था। दूसरी बात यह है कि समस्त दर्शन कार एकमत होकर वेद को प्रमाण ग्रन्थ स्वीकार करते हैं। अब यदि वह परस्पर विरुद्ध मत का प्रतिपादन करें तो उनका वेद को प्रामाणिक मानना कोई महत्व नहीं रखता। इसलिये ऋषि ने अपने ग्रन्थों में स्थान स्थान पर षटदर्शनों के समन्वयात्मक रूप को समझाने का प्रयत्न किया है। यह अवश्य है, कि ऋषि को अपने अत्यन्त व्यस्त कार्य क्रम के कारण इतना समय नहीं मिला कि इसका प्रतिपादन करने के लिये वे कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ लिख जाते। जब वे अपने वेद भाष्य को ही पूरा नहीं कर सके तो अन्य ग्रन्थों के विषय में तो कहा ही क्या जा सकता है ?

षटदर्शनों के सम्बन्ध में ऋषि के निम्न शब्द विचारणीय हैं "सृष्टि के भिन्न २ छः अवयवों का शास्त्रों में प्रतिपादन करने से इन में कुछ भी विरोध नहीं। जैसे घड़े के बनाने में कर्म, समय, मिट्टी विचार संयोगादि का पुरुषार्थ प्रकृति के गुण और कुम्हार कारण हैं, वैसे ही सृष्टि का जो कर्म कारण हैं उसकी व्याख्या मीमांसा में, समय की व्याख्या वैशैषिक में, उपादान कारण की व्याख्या न्याय में, पुरुषार्थ की व्याख्या योग में, तत्वों के अनुक्रम से परिगणन की व्याख्यान सांख्य में और निमित्त कारण जो परमेश्वर है उसकी व्याख्या वेदांत शास्त्र में है, उसमें कुछ भी विरोध नहीं।" ऋषि का अभिप्राय यह है कि छः दर्शनों के प्रतिपाद्य भिन्न २ हैं अतः विषय और उसके प्रतिपादन की दृष्टि से भिन्नता होने पर भी उन्हें परस्पर विरोधी मानबे का कोई कारण नहीं।

सप्तम समुल्लास में ऋषि सभी शास्त्रकारों को ईश्वरवादी बताता है। सांख्याचार्य कपिल और उनके दर्शन पर अनीश्वरवादी

होने का जो आरोप लगाया जाता है उसका खण्डन करते हुये वे लिखते हैं, 'जो कोई कपिलाचार्य को अनीश्वरवादी कहता है जानों वही अनीश्वरवादी है, कपिलाचार्य नहीं । तथा मीमांसा का धर्म धर्मी से ईश्वर। वैशेषिक और न्याय भी 'आत्मा' शब्द से अनीश्वर-वादी नहीं, क्योंकि सर्वज्ञत्वादी धर्म युक्त और "अतति सर्वत्र व्याप्नोतीत्यात्मा" जो सर्वज्ञ व्यापक और सर्वज्ञादि धर्म युक्त सब जीवों का आत्मा है उसी को मीमांसा, वैशेषिक और न्याय ईश्वर मानते हैं।"

सृष्टि उत्पत्ति का विषय ऋषि ने आठवें समुल्लास में लिखा है। यहां भी दर्शन समन्वय के महत्वपूर्ण कर्तव्य से वे च्युत नहीं हुये हैं। उन का कथन है, "छः शास्त्रों में अविरोध इस प्रकार है। मीमांसा में ऐसा कोई कार्य जगत में नहीं होता जिसके बनाने में कर्म चेष्टा न की जाए। वैशेषिक में समय न लगे बिना बने नहीं न्याय में उपादान कारण न होने से कुछ भी नहीं बन सकता, योग में विद्या, ज्ञान, विचार न किया जाय तो कुछ नहीं बन सकता, सांख्या में तत्वों के मेल न होने से नहीं बन सकता और वेदांत में बनाने वाला न बनावे तो कोई भी पदार्थ उत्पन्न न हो सके, इसलिये सृष्टि ६ कारणों से बनती है। उन ६ कारणों की व्याख्या एक-एक की एक-एक शास्त्र में है। इसलिये उन में विरोध कुछ भी नहीं है।'

ऋषि दयानन्द के उपर्युकत वचनों से यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि ऋषियों के मन्तव्यों और सिद्धान्तों में समन्वय देखने के लिये वे प्रबल प्रयत्न थे और इससे भी स्पष्ट होता है कि महर्षि को दर्शन शास्त्र अर्थात फ़िलासफ़ी पर पूर्ण अधिकार था।

———

६. भाष्य काण्ड

३३-४४ प्राचीन भाष्यकार

१. अस्य वा मयी भाष्य कर्ता स्वामी आत्मानन्द जी २. मन्यार्थ मंजरी के रचयिता श्री राघवेन्द्र यती । ३. ऋग्वेद के ४० सूक्तों के भाष्यकार श्री आनन्द तीर्थ ४. निरुक्त समुच्चय के कर्ता दुर्गा आचार्य ५. निरुक्तकार यास्क मुनि। ६. छलारी टीकाकार जैतीर्थ नृसिंहयति । ७. मन्त्रार्थ दीपिका के कर्ता शत्रुघ्न आचार्य । ८. निरुक्त भाष्यकार आचार्य स्कन्द स्वामी। ९. आचार्य वर्य रुचि—इन सभी प्राचीन भाण्यकारों ने जो कि सायना चार्य, महीधर, और उव्वट प्रभृति वाममार्गी भाष्यकारों से हजारों वर्ष पहले इस देश में विद्यमान होकर वेद भाष्य जिन सिद्धान्तों को दृष्टि में रखकर किये थे, और जिन वेद भाष्य के मूल भूत सिद्धान्तों को न जानते हुए, सायनाचार्य आदि ने वेदों को केवल यज्ञ पर्क समझ कर मन्त्रों के अर्थों के अनर्थ करके वेंदों को कलंकित किया था। इन्हीं प्राचीन ऋषि मुनियों के मूल भूत सिद्धान्तों को जिससे आने वाले, वेद को पढ़ने वाले, और वेद पर लेखनी उठाने वाले, सीधे और सरल मार्ग को अपना सकें। महर्षि ने निम्नलिखित रूप दे दिया है, जो वेद भाष्य करने का रूप जब तक सूरज चांद कायम है। वह संसार का पथ प्रदर्शन करके संसार को वेद के सम्बन्ध में हरेक किसम की ग़लतियाँ और ग़लतफ़हमियों से बचाता रहेगा।

१. लौकिक और वैदिक शब्दों का भेद।

२. त्रिविध प्रक्रिया यानि वेदों के तीन प्रकार के अर्थ—अधिदैविक, अध्यात्मक, अधि भौतिक (अधि यज्ञ)।

३. वेद में इतिहास नहीं है, अर्थात् वेद में जितने शब्दों से विशेष नामों का ज्ञान होता है इनमें कोई भी Proper Noun न हो कर सब Adjective यानि विशेषण हैं।

४. योगिक वाद—यानि वेद के हर शब्द का धातु अर्थ लिया जाना चाहिए।

५. धातुओं के अनेक अर्थ होते हैं। वेद के सब वाक्य बुद्धि पूर्वक हैं। ६. पद पाठ को समझ कर वेद भाष्य किया जावे, वेद में कोई बात प्रकृति नियम के विरुद्ध नहीं है।

७. वत्य।

८. देवता वाद—वेद के हर मन्त्र पर जो मन्त्र का देवता लिखा होता है वही इस मन्त्र का विषय होता है। ऐसा समझ कर वेद का अर्थ करे।

वेद के इन्हीं मूल भूत सिद्धान्तों को देख कर पाण्डीचरी के योगी अरविंद ने कहा था कि स्वामी दयानन्द वेदार्थ करने की कुञ्जी दे गया है।

महर्षि दयानन्द इन्हीं मूल भूत सिद्धान्तों पर जो उन्होंने प्राचीन भाष्यकारों के अनुकूल सिद्ध निश्चित किये थे। अपना वेद भाष्य करके साइन, महीधर, उव्वट और उनके विदेशी चेले चांटे मैक्स मूलर, ग्रिफ़थ मैकडाण्ड, टानी आदि के किये हुए अनर्थों को संसार के सामने खोल गये। ताकि संसार इन अल्प बुद्धि पुरुषों के के किये बेद भाष्यों को पढ कर वेदों के प्रति अश्रद्धा के कूप में न गिर जावें।

सायना चार्य, महीधर और उव्वट, के भाष्यों की, असंगता और अश्लीलता तो महर्षि ने अपने अमूल्य ग्रन्थ ऋग्वेदादि भाष्य

भूमिका, में बड़ी उत्तम रीति से दर्शाई है। और मैक्समूलर आदि की बुद्धि का अदना सा नमूना निम्न प्रकार है। मैक्समूलर "हिरण्य-गर्भ" शब्द का अर्थ सोने का अण्डा करता है। ग्रिफ्थ साहब "अज एकपाद्देवा" का अर्थ एक पांव वाला बकरा करता है। और टानी साहब तो अथर्व वेद को जादू टोना का वेद ही समझते रहे हैं। धन्य है उस महर्षि को जिसने हजारों वर्षों से लुप्त प्राय वेद भाष्य करने की कुंजी फिर से ढूंढ निकाल कर संसार के सामने बिना संकोच रख दी। जिससे अल्प बुद्धि पुरुष भी इन वाममार्गी भाष्य-कारों और उनके शिष्य विदेशी भाष्यकारों के फैलाये हुए जाल में फन्सने से बच गया है। और धन्य है उस महर्षि को जिसने वेदों पर लगाये इन वाममार्गियों के कलंकों को धो कर वेद का स्वच्छ और पवित्र स्वरूप संसार के सामने रख कर वेदों का अपौरषेय होना सिद्ध कर दिखाया। और परमपिता परमात्मा की इस अमृत वाणी रूपी हीरे को कीचड़ से निकाल कर संसार के विद्वानों का मुकुट शिरोमणि बना दिया। और अब सभी विद्वान् महर्षि के इस साहस की सराहना कर रहे हैं। और महर्षि के कट्टर विरोधी भी इसी रास्ते को अपनाने पर विवश हो रहे हैं।

"बोलो वेदोद्धारक महर्षि दयानन्द की जय"

———

७ रिफार्मर काण्ड

४५ भगवान बुद्ध

1. भगवान बुद्ध कपिलवस्तु के राजा शुद्धोधन के घर आज से 25 सौ वष पहले पैदा हुए, उनका जन्म नाम सिद्धार्थ था, उनका पालन क्षत्री राजकुमारों की भांति हुआ, और शस्त्र अस्त्र प्रयोग की पुरी शिक्षा दिलाई गई। परन्तु उनके मन में शुरू से ही उदासीनता सी छाई रहती थी, बीमार को देखते तो सोचते क्या मैं भी बीमार हो जाऊंगा, और दुख भोग करुंगा। एक दिन बाजार में से एक मृत देह को शमशान भूमि की ओर ले जाते हुए उसी मत के सम्बन्धियों को वरलाप करते देख कर इनके मन में फिर वही प्रश्न उठा कि क्या मैं भी मर जाऊंगा, और मौत से बचने के लिए कोई उपाय ढूंढना चाहिए। इस तरह वैराग की भावना उनके मन में तीव्र हो उठी। उनके पिता जी का जब पुत्र के ऐसे भाव पता लगे, तो उन्होंने उस को गृहस्थ के बन्धन में बांधना चाहा। अतः १८ वर्ष की छोटी आयु में ही उनका विवाह कर दिया गया। और इस तरह एक बार तो उनके उठते वैराग्य में बन्ध लगा दिया गया। परन्तु भिन्न भिन्न अवसरों पर वुढापा, रोग और मृत्यु के हृदय विदारक दृश्य उनको देखने को मिलते ही रहे, जो उनके वैराग्य को ताजा करते रहते थे। विवाह के दस वर्ष बाद उन के घर एक पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ जिस का नाम राहुल रखा गया, जब इन को पुत्र होने का समाचार मिला तो उन्होंने कहा "मेरे बन्धन और भी सुदृढ़ हो रहे हैं।" इस समय उन की आयु २८ वर्ष की थी। अतः रात के अन्धेरे में राजमहल से

निकल आए। और वनों को चले गये। बोद्ध लोग इस घटना को महा त्याग कहते हैं।

और

इसी तरह अपनी छोटी बहन और अपने चचा की मत्यु हो जाने पर वालक मूल शंकर के मन में भी मृत्यु से बचने का उपाय ढूंडने की तीव्र इच्छा जाग उठी। अतः इन दोनों घटनाओं का अपने स्वलिखित जोवन चरित्र में महर्षि ने जो वर्णन किया हैं वह निम्न प्रकार है। "एक दिन रात्रि के समय मैं अपने एक वन्धु के घर किसी उत्सव में सम्मिलित हुआ था कि इसो समय एक नौकर ने घर से आकर कहा-मेरी छोटो वहन जिस की आयु १४ वर्ष की थी हैजा रोग से वीमार हो गई है। मैं तुरन्त घर वापस आ गया, वहन की बीमारी की चिकित्सा की गई परन्तु वह दो तीन घंटों के अन्दर ही मृत्यका ग्रास वन गई। सव घर वाले वलाप करने लग गये। परन्तु मैं पत्थर की मूर्ति की भांति खड़ा रह कर चिन्ता स्रोत में डूब गया और सोचने लगा कि जव सव को ही इस प्रकार मृत्यु का ग्रास वननां है, तो मैं भी एक दिन मरूंगा, परन्तु कोई ऐसा उपाय भी है जिस से मृत्यु पर विजय पाई जा सके। अतः मैंने वहीं खड़े सकल्प कर लिया कि मृत्यु पर विजय पाने का मार्ग ज़रुर ही ढूंड निकालने का यत्न करूगा।" और इस घटना के थोड़े दिनों वाद उनके चचा की मृत्यु हो गई, यह चचा मुल जी को वहुत हो प्यार करते थे, तब वह वैराग्य जो वहन की मृत्यु पर पैदा हुआ था परिपकव हो गया। "कि जव संसार की सारी ही वस्तुएं अस्थिर और चंचल हैं तो ऐसी कौन वस्तु है कि जिस के लिए गहस्थ में रह कर संसारिक लोगों को भांति जीवन व्यतीत किया जावे।" उसी दिन से जो कोई भी इनसे मिलता उसी से यही पूछतें कि मृत्यु पर विजय प्राप्त करने का कोई उपाय है या नहीं। और जब सवने हो सर्व सम्मति से यह निश्चय करा दिया कि योग साधन से ही मृत्यु पर विजय प्राप्त की जा

सकती है, तब उन्होंने गृहस्थ त्याग कर योग साधन करना ही निश्चय कर लिया, और जब उन के पिता जी को अपने पुत्र के वैराग्य की बात मालूम हुई तो उन्होंने भी भगवान बुद्ध के पिता की भांति भगवान दयानन्द का विवाह कर देने का पक्का निश्चय कर लिया और उन के विवाह की तैयारियां जोर शोर से शुरु कर दी गई। मूल शंकर को भी यह बातें मालूम हो गई। और जहां बुद्ध विवाह के बन्धन में बांध दिये गये, वहां बालक मूल शंकर विवाह से एक माह पहले ही पूरे २३ वर्ष की भरी जवानी की आयु में सम्मत् १९४६ में एक रात को घर त्याग कर जंगल को निकल खड़े हुए, और यह भगवान दयानन्द का महा त्याग था।

२. घर से निकल कर सिद्धार्थ ज्ञान की खोज में सन्यासियों, विद्वानों और पंडितों के सत्संग करते रहे परन्तु उनकी शिक्षा से उनको आत्मक शान्ति न हुई, फिर उन्होंने ६ वर्ष गया नगर के पास उरु वेला नामक वन में कठिन तपस्या की और लगातार व्रतों के कारण उनका शरीर सूख कर कांटा हो गया, परन्तु उनके मन को फिर भी शान्ति हुई। फिर इन्होंने इस मार्ग का भी त्याग कर दिया, और गया के पास एक पीपल के पेड़ के नीचे समाधि लगा कर बैठ गये और ५० दिन इसी तरह समाधि में बैठे रहे। अन्त में इनको समाधि की हालत में सच्चे ज्ञान का प्रकाश मिला, उसी वृक्ष को बोधि वृक्ष कहते हैं, और उसी दिन से इन का नाम "बुद्ध" हो गया। और उन्होंने धर्म प्रचार आरम्भ कर दिया।

और

इसी तरह महर्षि दयानन्द भी घर से निकल कर सन्यासियों, विद्वानों, और पंडितों का सत्संग करते रहे और योगियों के सत्संग से योग क्रियाओं को करते पूरे १४ वर्ष तक तप करते रहे और अन्त में मथरा में गुरु विरजानन्द जी के पास आकर उन्हें आत्यिक शान्ति

हुई और विद्या की जो प्यास थी वह बुझ गई और गुरु की आज्ञानुसार उन्होंने धर्म प्रचार आरम्भ कर दिया।

३. अपने प्रचार काल में जब भगवान बुद्ध काशी में पधारे तो काशी के पंडितों ने उनको शास्त्रार्थ में जीतनें का और कोई उपाय न देखकर एक दुष्टा स्त्री उन का सत्य व्रत भंग करने को भेजी परन्तु काशी के पंडितों की यह चाल भी वृथा गई। और वह दुष्टा स्त्री भगवान बुद्ध के सत्संग से सचमुच देवी बन गई।

और

४. इसी तरह जब भगवान दयानन्द काशी में प्रचारार्थ पधारे और काशी में पंडित शास्त्रार्थ करके हार गये, और विद्या में अपने आप को महर्षि के तुल्य न पाकर उनका भी बदनाम करने के लिए एक दुष्ट स्त्री को उनके पास भेजा और वह दुष्ट स्त्री भी भगवान दयानन्द के सत्संग में आकर देवो वन गई, अपनी दुष्टता को बिल्कुल त्याग दिया।

५. एक जगह महात्मा बुद्ध प्रचारार्थ गये, तो उनके डेरे पर एक व्यक्ति आकर गालियां देने लगा, महात्मा गालियां सुनते रहे और मुस्कराते रहे, जव गालियां देकर थक गया, तब उसका प्रेम से अपने पास बिठा लिया, और उपदेश दिया, इस पर वह जन बहुत शर्मिदा हुआ और कहने लगा कि महाराज उस वक्त आपने मुझको गाली देने से राका क्यों नहीं, तब महात्मा बुद्ध ने कहा—कि जब तक तुम्हारे अन्दर गालियां भरी हुई थीं, तब तक उपदेश के लिए वहां स्थान भी न था, अब तुम्हारा अन्दर गालियों से खाली हो गया है, और अब उपदेश समाने को जगह बन गई है, इस लिए अब उपदेश दिया है।

और

महर्षि दयानन्द जी को भी लोग गालियां देते थे, वह भी मुस्करा कर टाल जाया करते थे। परन्तु कान पुर निवास के

समय एक गंगा पुत्र प्रतिदिन उनके डेरे पर आकर सामने खड़ा होकर गालियां दिया करता था। स्वामी जी के पास आने वाले सज्जन स्वामी जी के लिए फल मिठाई वग़ैरह लाया काया करते थे, और स्वामी जी सब आने वालों में बांट देते थे, एक दिन कुछ फल मिठाई बच रही, महाराज विचार करने लगे, कि यह किस को दें। तब उसी समय वह गंगा पुत्र आ गया। और गालियां देने लगा, जब वह गालियां देता रहा, महाराज मुस्कराते रहे जब गालियां देकर थक गया, तो महाराज ने बड़े प्रेम से उस को पास बुला कर मिठाई और फल दिये, और कहने लगे कि प्रतिदिन इसी समय यहां आ जाया करो, और मिठाई फल ले जाया करो, महर्षि के ऐसे व्यवहार से इसके अन्तर आत्मा में इतनी ग्लानि उत्पन्न हुई कि वह ज़ार ज़ार रोने लगा, श्री चरणों में गिर पड़ा और क्षमा प्रार्थना करने लगा, परन्तु महाराज ने कहा कि भाई जब हमने आपकी दी गाली स्वीकार ही नहीं की तो क्षमा किस बात की दें।

५. महात्मा बुद्ध ने अपने ग्रन्थ धम्म पद में अविद्या को सब से बड़ी मलीनता का नाम दिया है। (बोद्धों और जैनो के आदि ग्रन्थ संस्कृत में न होकर पाली ज़बान में यानि उस वक्त की प्रचलित भाषा में लिखे गये हैं) धम्म पद में लिखा है—

ततो मलामल तरं अवज्ञा परं मलं,

एतं मलं पलत्वा न नमल होथ भखुओ॥

अर्थात् जितनी मलीनताएं हैं, उन सब में से अविद्या परम मलीनता है, इसलिए ऐ भिक्षुओ इस मल को छोड़ कर पवित्र बनो।

और

आर्य समाज के ८ वें नियम में महाराज ने लिखा है कि विद्या की वृद्धि और अविद्या का नाश करना चाहिए।

महर्षि सारी आयु अविद्या अंधकार रूपी परम मलीनता का नाश करते रहे।

६. भगवान बुद्ध जन्म से वर्ण नहीं मानते थे, परन्तु कर्म से, ही मानते थे। धम्म पद में लिखा है—कोई पुरुष जटाधारी होने से, गोत्र से, ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होने से ब्राह्मण नहीं बन जाता. जिस मनुष्य में सत्य और धर्म पाये जाते हैं, पवित्र है, उसी को मैं ब्राह्मण कहता हूं।

और

महर्षि दयानन्द भी जन्म से वर्ण नहीं मानते थे वर्ण-व्यवस्था को गुण कर्म स्वभावानुसार ही मानते मनवाते और प्रचार करते थे, कि जन्म गत वर्ण व्यवस्था तो मर्ण व्यवस्था है इस ने देश का विनाश कर दिया है।

७. महात्मा बुद्ध ने जिन सिद्धान्तों का प्रचार किया, उनको चार महासत्य कहते हैं। १. यह जीवन दुखमय है। २. यह संसार दुख रूप है। ३. इस दुख का कारण वासनाएं हैं। ४. इन वासनाओं के मारने से दुख दूर हो सकते हैं। और निर्वाण की प्राप्ति होती है, इस प्रचार कार्य के लिए उन्होंने भिक्षुओं के संघ स्थापित किये। इन संघों में प्रवेश करते समय यह तीन वाक्य कहे जाते हैं। १. बुद्धं शरणं गच्छामि। २. धम्मं शरणं गच्छामि। ३. संघ शरणं गच्छामि। और पीले वस्त्र पहन कर प्रचार कार्य किया करते थे। परन्तु उस प्रचार से क्षात्र धर्म का ह्रास हो गया और आम लोग दुनियां को दुखों का घर समझ कर त्याग करके भिक्षु बनने लगे, स्त्रियां भिक्षुणियां बन गई। महाराज अशोक ने बुद्ध धर्म ग्रहण करके इसका बहुत प्रचार किया। उसने अपने लड़के और अपनी लड़की को भिक्षु और भिक्षुणि बना कर इस धर्म का प्रचार कराया, और इस धर्म का प्रचार पूर्व में ईरान, सीरिया, ईराक़, खुरासान। दक्षिण में लंका। उत्तर में बरमा, तिब्बत, चीन, जापान केरिया,

मंगोलिया, स्याम, कम्बोडिया आदि में हो गया था। परन्तु क्षात्र धर्म के ह्रास हो जाने से इस्लाम का एक भी हमला सहन न करके, ईरान, सीरिया ईराक, खुरासान, अफगानिस्तान सब मुसलमान बन गये। और भारत में भी सिन्ध जैसे प्रदेशों में जहां बुद्ध धर्म का प्रचार था, मुसलमानों का मुकाबला न हो सका, बुद्ध भगवान ८० वर्ष की आयु में गोरखपुर जिला के किशी नगर में निर्वाण प्राप्त कर गये।

और

महर्षि दयानन्द ने वेद के अनुसार यह सिद्धान्त सिद्ध किया कि इस जीवन को, इस संसार को सुखमय या दुखमय बनाना हमारे अपने वस की बात है परन्तु परमेश्वर तो स्वयं सुखस्वरूप है, उस सुखस्वरुप परमेश्वर का यह संसार भी सुखस्वरूप ही है। मनुष्य अपने कुकर्मों से इसे दुखमय वना लेता है इसलिए इस को सुखमय वनाया जा सकता है, और जहां बुद्ध भ वान ने वेदों को न पढ़ कर वेदों में वर्णित यज्ञों के स्वरूप को न जान कर उन की मान्यता न की वल्कि उन का खण्डन ही किया, वहाँ महर्षि ने वेदों को पढ़ कर इन का सत्य स्वरूप संसार के सामने रख कर वेदों में वर्णित यज्ञों से ही संसार का कल्याण प्रदर्शित किया, और महर्षि ५९ वर्ष की आयु में अजमेर नगर में निर्वाण प्राप्त कर गए। महर्षि ने छात्र धर्म का पुनः स्थापन किया। साधु और भिक्षु वनने की प्रवृति का पुरजोर खण्डन किया।

४६ भगवान महावीर

१. वर्धमान महावीर जैन मतके संस्थापक और २४वें, तीर्थंकर माने जाते हैं, इनका जन्म नाम वर्धमान था। वह क्षत्री राजा सिध्दार्थ के पुत्र थे। उनकी माता का नाम त्रिशला था, इनका जन्म आजसे २५६५ वर्ष पहले (गौतम वुध्द से २५ वर्ष पहले) वहार प्रान्तके कुण्ड ग्राम में हुआ। इनको भी बीमारी, बुढ़ापा, मौत देखकर दुख

हुआ। इन का विवाह बाल अवस्था में ही गया था। ३० वर्ष की आयु में गृहस्थ छोड़ कर बनों में तपस्या करने चले गये। इनके समय में वाम मार्ग का बहुत जोर था। और वाम मार्गी यज्ञों में पशुओं की बलि दिया करते। इससे उन के मन में घोर आन्दोलन जाग उठा। और पूरे बारह वर्ष तक तपस्या करके ४२ वर्ष की आयु में उन्होंने अपने सिध्दान्तों का प्रचार आरम्भ कर दिया। और वह महावीर अथवा जिन यानि महा विजेता कहलाने लगे। और उनके सम्प्रदाय का नाम जैन पड़ा, बाकी जीवन उन्होंने मगध और उसके आस पास के इलाका में जैन मत का प्रचार किया। ७४ वर्ष का आयु में ज़िला पटना के पावर नामी स्थान पर उनका दीवाली के दिन देहान्त हुआ। महा वीर स्वामी न तो परमात्मा को मानते थे। और न ही वेदों को ही ईश्वरीय ज्ञान मानते थे। वह तप त्याग और प्रायश्चित को शिक्षा दिया करते थे। जन्म से जात-पात छूत-छात के भी विरोधी थे। अहिंसा परमो धर्मा कह कर अहिंसा पर उन्होने बहुत बल दिया है। इस लिए जैन साधु नंगे पांव चलते हैं। और मुँह पर पट्टी बांधते हैं, हाथ में चंवर रखते हैं, उनके दो फ़िरके हैं। एक दिगम्बर और दूसरा श्वेताम्बर। दिगम्बर लोग तीर्थंकरों की नग्न मूर्तियों की पूजा करते हैं। दूसरे सफ़ेद कपड़े पहनते हैं, और अपनी मूर्तियों को भी सफेद कपड़े पहनाते हैं, और वह नंगे रहना बिल्कुल अनुचित समझते हैं। महावीर स्वामी के प्रचार से भी क्षात्र धर्म की बहुत हानि हुई थी।

और भगवान दयानन्द

महर्षि दयानन्द जी ने भी यज्ञों में पशु बलिदान को वेद विरुद्ध ठहरा कर उनका ज़बर्दस्त खण्डन किया। और जहां गौतम बुध्द और महावीर स्वामी ने वेदों को न पढ़ कर केवल अपने अनुभव से पशु बलि और जन्म की जात पात या छूत छात, का खण्डन किया, वहां

महर्षि जी ने वेदों को पढ़ कर और वेदों के ग़लत तरजमों के आधार पर चली हुई इन सब बातों का घोर खण्डन किया। और जहां महावीर स्वामी ने अहिंसा को परम धर्म अपनाया, वहां महर्षि जी ने वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म घोषित किया। जिन वेदों में अहिंसा आदि सब ही मुख्य मुख्य कर्तव्यों का विधान पूरी तरह मौजूद है। और सारे संसार के सामने अपने इस सिद्धान्त को अत्यन्त उत्तमता और दलेरी से रखने में कामयाब हो गये, और महावीर स्वामी को भान्ति महर्षि दयानन्द जो भी दीवाली के दिन निर्वाण प्राप्त कर गये। स्वामी जी ने वेदों के आधार पर क्षात्र धर्म को उच्च धर्म कह कर प्रचार किया और लोगों को विदेशी गुलामी से आजाद होने के लिए उत्साहित करते रहे। जिस से उत्साह प्राप्त करके देश की स्वतन्त्रता के लिए घोर प्रयत्न हुए और आज देश स्वतन्त्र हो चुका है।

४७. कुमारिल भट्ट

तकरीबन २३०० वर्ष हुए जब कि सारे भारत वर्ष में बुद्ध धर्म फैल चुका था। तमाम राजा महाराजा बुद्ध धर्म स्वीकार कर चुके थे। और बुद्ध धर्म के न मानने वालों पर तरह तरह की सख़तियां की जा रही थीं। और मामूली अपराधों के बदले ग़ैर बोधों को सख़्त सज़ाएं दी जाती थीं, जिस से आम जनता डर के मारे बोद्ध धर्म स्वीकार करती चली जा रही थी, कि कुमारिल भट्ट का जन्म हुआ। विद्या में निपुण हो कर एक दिन वह कोशम्बी के शहर में आए और गंगा स्नान के लिए प्रातः ही गंगा तट पर पहुंच गये, तो किसी स्त्रि की आवाज़ उनके कानों में पहुंची, "किं करोमि कुत्र गच्छामि को वेदानुद्धरिष्यति" क्या करूँ कहाँ जाऊँ कौन वेदों की रक्षा करेगा। कुमारिल भट्ट यह शब्द सुन कर

खड़े हो गये, इधर उधर देखा कोई नज़र न आया, तो ऊँची आवाज में कहने लगे "ऐ देवी तू मत समझ कि तेरी आवाज़ नष्ट हो गई है। तेरी आवाज़ ने मुझे घोर निद्रा से जाग्रत कर दिया है और मैं अब जो जान से वैदिक धर्म का प्रचार करूँगा। उस दिन से कुमारिल भट्ट मैदान में निकल खड़े हुए और बौद्ध सिद्धान्तों की धज्जियां उड़ाने लगे। बौद्ध पण्डितों को जब कुमारिल भट्ट की इन सरगर्मियों का पता चला, तो उन्होंने महाराजा हर्षवर्धन के पास उनकी शिकायत की, और कुमारिल भट्ट को गद्दार बना कर उन को संगीन सज़ा देने की मांग की। परन्तु महाराज हर्षवर्धन बड़े विद्वान थे, उन्होंने बहुत विचार कर यह फ़ैसला किया कि बात किसी शास्त्रार्थ के द्वारा ही तय होनी चाहिए। अतः महाराज के मन्शा के अनुकूल प्रागराज में एक बहुत बड़े शास्त्रार्थ का आयोजन किया गया। यह शास्त्रार्थ महाराज हर्षवर्धन का अध्यक्षता में हुआ। एक तर्फ़ कुमारिल भट्ट अकेले थे, और दूसरी तर्फ़ बौद्ध भिक्षु बहुत बड़ी संख्या में थे। बौद्ध भिक्षुओं ने बड़ा शोर गुल मचा दिया। और कुमारिल भट्ट की एक न चलने दी। उसकी दलीलों का हँसी मज़ाक उड़ा कर उसको शर्मिन्दा करते रहे। और अन्त में बौद्ध लोगों ने महाराजा हर्षवर्धन की मौजूदगी में कुमारिल भट्ट का पराजय की घोषणा कर दी। जिसको कुमारिल भट्ट ने अपना बहुत बड़ा अपमान समझा और वह इस अपमान के कारण Demorolise हो गया, और इस नित्य प्रति की अपकीर्ति से बचने के लिए दीवाली के रोज़ चिता बना कर ओं नाम का जाप करते हुए भस्म हो गये। अचानक उसी दिन स्वामी शंकराचार्य मौका पर पहुंच गये, और उन्होंने कुमारिल भट्ट को आत्म हत्या करने से मना भी किया। परन्तु कुमारिल भट्ट न माने, उन्होंने शंकर स्वामी से केवल यही कहा कि मुझे प्रसन्नता है कि मेरे बाद बौद्धों के पाखण्ड को समाप्त करने वाला कोई मनुष्य बाकी

है। जहां मुझे इस बात पर प्रसन्नता है, वहां मुझे इस बात का दुख भी है कि हमारे प्राचीन शास्त्रों में इस कदर मिलावट कर दी गई है कि झूठ और सत्य के मध्य अन्तर ही नहीं रहा। और इस के कारण सारे देश में फूट ही फूट है। हर कोई अपना डेढ़ ईंट का मन्दिर अलग बनाने में लगा हुआ है, इसलिए जब तक सारे देश में जागृति नहीं आती और ईश्वर विश्वास पैदा नहीं होता देश का भाग्य कदापि बदल नहीं सकता। मैंने लोगों को वैदिक धर्म का रास्ता दिखलाने का प्रयत्न किया, मगर अफसोस कि लोगों ने मुझे मिलवर्तन न दिया और अब मैं यही उत्तम समझता हूं कि नित्य प्रति की अपकीर्ति से मुक्ति प्राप्त करने के लिए स्वयं को समाप्त कर दूं। ताकि नित्य प्रति को परेशानी जाती रहे, यह कुमारिल के अन्तिम शब्द थे जो उन्होंने मायूसी की हालत में आत्म हत्या करते समय शंकर स्वामी से कहे थे।

और

कुमारिल भट्ट की तरह महर्षि दयानन्द जी को भी यह ज्ञान हो गया था कि हमारे प्राचीन शास्त्रों में इसकदर मिलावट हो चुकी है कि सत्य झूठ की पहचान ही नहीं हो सकती। और वह भी इसी परिणाम पर पहुंचे थे, कि इसी मिलावट के कारण देश में फूट पड़ी हुई थी। अतः उन्होंने एक ऐसा सिद्धान्त कायम कर लिया जिस से सत्य तथा झूठ की आसानी से परख हो सके, उन्होंने घोषणा कर दी कि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, और वेद ही स्वतः प्रमाण है, वेदानुकूल होने से ही इनका प्रमाण है, जहां और जिस स्थान पर उनमें वेद के प्रतिकूल कोई श्लोक या बात है वह प्रमाणित नहीं है। इसी सिद्धान्त की बिना पर उन्होंने दिग विजय प्राप्त की किसी को उनके सामने ठहरने की हिम्मत न हुई। और यह बात काशी शास्त्रार्थ में बिल्कुल सिद्ध हो गई कि जब काशी के राजा ने

काशी के पण्डितों को कहा कि एक दण्डी संन्यासी आए हैं, और वह मूर्ति पूजा का खण्डन करते हैं और आपसे शास्त्रार्थ करना चाहते हैं। तो सब पण्डितों ने एक जवां होकर राजा को कहा कि वह तो वेद को ही स्वतः प्रमाण मानते हैं, और हमने वेद को देखा ही नहीं, तो राजा बड़ा हैरान होकर उनसे कहने लगा कि फिर इतनी देर आप लोग हमें धोखे में ही रखते रहे कि मूर्ति पूजा वेदानुकूल है, तब राजा ने कहा कि शास्त्रार्थ तो अवश्य होना चाहिए और जिस तरह भी हो उसको शिकस्त देनी चाहिए। तो पंडितों ने कहा कि हमको १५ दिन की मोहलत मिल जाय। तो हम वेद को कुछ कुछ देख तो लें। महाराज ने महर्षि दयानन्द को कहा कि शास्त्रार्थ १५ दिन के बाद हो, परन्तु अवश्य हो, महाराज ने कहा अवश्य होगा। और फिर १५ दिन काशी के सब बड़े बड़े पंडितों ने खूब तैयारी की। उधर अकेला लंगोट बन्द संन्यासी, और इधर सारी काशी के स्मृद्ध पंडित। अतः १६ नवम्बर १८६९ मंगलवार सायं चार बजे शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। महाराजा हर्ष वर्धन की भांति महाराजा काशी इसके प्रधान बने, अनुमान से ५०००० मनुष्यों की हाज़री में शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ, और काशी के सभी प्रसिद्ध पण्डित जिन में स्वामी विशुद्धानन्द, बालशास्त्री, तारा चरण राज पंडित, पं० शिव सहाय, माधव आचार्य आदि प्रमुख थे। अकेले लंगोट बन्द दयानन्द के सामने आए, और दयानन्द के एक एक प्रश्न से निरुत्तर होकर बैठते गये, परन्तु महाराज काशी और सब पंडित येन केन प्रकारेण स्वामी दयानन्द की पराजय की घोषणा करना चाहते थे, इसलिए जब शास्त्रार्थ करते शाम के सात बज गये, और काफ़ी अन्धेरा हो गया, तो क़ाशी के पंडितों ने एक फटा पुराना पत्रा स्वामी जी के सम्मुख रख कर कहा—कि इस में पुराण पढ़ने की आज्ञा है। गोया अपने मुंह से मूर्ति पजा को

न सिद्ध कर सकने का इक़बाल करके अब पुराण की तर्फ आए। और जब स्वामी जी अभी वह पत्रा धीमी लालटैन की रोशनी में देखने ही लगे थे, कि स्वामी विशुद्धानन्द और महाराज काशी उठ कर खड़े हो गये, और ताली बजा दी, कि दयानन्द हार गये, बस फिर क्या था इतनी बड़ी भीड़ में जिसमें काशी के पंडित ही नहीं, बल्कि पंडितो के पालतू गुण्डे भी मौजूद थे. सब ने स्वामी जी पर ईंट, पत्थर, गोबर, जूते, फैंकने शुरू कर दिये, और भरपूर अपमान करने लगे, परन्तु कोतवाल जगन्नाथ ने महर्षि के सामने खड़ा होकर उनको बचा लिया, वरना पंडित और गुण्डे तो उनको ठिकाने लगाने की साज़श करके ही आए थे, कुमारिल भट्ट की तरह ऋषि दयानन्द जी को इस शास्त्रार्थ में घोर अपमान सहन करना पड़ा, परन्तु महर्षि कुमारिल भट्ट की तरह Demoralise न हुए। और इस दिल शकनी और बदनामी के कारण न सिर्फ यह कि कुमारिल भट्ट की तरह आत्म हत्या को न तैयार हुए बल्कि इस शास्त्रार्थ के बाद पूरे चार महीने उसी काशी नगर में रहकर लगातार ज़ोरदार खण्डन, मूर्ति पूजा का करते रहे। और बार बार पंडितों को शास्त्रार्थ के लिए ललकारते रहे, परन्तु किसी भी पंडित के अन्दर महर्षि के सामने आने की हिम्मत न हुई।

स्वामी जी ने अपने इस घोर अपमान को अपमान न समझा था, फिर भी स्वामी जी काशी में इसके बाद छः बार आए, और हर समय पंडितों को न सिर्फ ज़बानी बल्कि विज्ञापनों द्वारा जो उनके द्वारों पर लगा दिये जाते थे शास्त्रार्थ के लिए आह्वान करते रहे। परन्तु जब तक महर्षि जीते रहे किसी भी पंडित की जुर्रत न हुई कि उनके सामने बात भी कर सके। जिस अपमान को सहन न करके बदनामी के भय से कुमारिल भट्ट ने दिवाली के दिन चिता बना कर आत्म हत्या कर ली। उसी अपमान बल्कि उससे भी

अधिक अपमानों को सहन करते हुए महर्षि सारे भारत वर्ष में घूम घूम कर वैदिक धर्म का प्रचार करते रहे, और सन् १८८३ में दिवाली के दिन ही, "ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो तैंने अच्छी लीला की और ओं का जाप करते हुए प्राण त्याग दिये" अगर महर्षि भी कुमारिल भट्ट की तरह अपमान को सहन न कर पाते और आत्म-हत्या कर लेते, तो इतना महान कार्य जो महर्षि ने इस शास्त्रार्थ के बाद करके देश के अन्दर जागृति पैदा की और प्राचीन ग्रन्थों के अन्दर मिलावटों को देखकर जो यह सिद्ध सिद्धान्त कि वेद स्वतः प्रमाण हैं। कायम करके देश में एकता की लहर पैदा कर दी. यह कैसे हो सकता था। वैदिक धर्म का उद्धार करने का यत्न कुमारिल भट्ट ने भी किया, और महर्षि दयानन्द जी ने भी। परन्तु कुमारिल भट्ट अपमान न सहन कर असफल हुए। और महर्षि अपमान सहन कर अपने मिशन में पूरी तरह सफलता प्राप्त कर पाये। और शायर के शब्दों में इस प्रकार है—

पैग़ाम वेद पाक दे के, ख़ासो आम को।
दुनियां से भी गये तो दीवाली की शाम को॥

बोलो वेद उद्धारक महर्षि दयानन्द की जय।

४८ स्वामी शंकराचार्य

१. अनुमान से २३०० वर्ष का समय हुआ कि केरल प्रान्त के एक छोटे से गांव, कालड़ो में स्वामी शंकराचार्य का जन्म हुआ। उनके पिता का नाम शिब्बो गुरु जो और माता का नाम सुभद्रा था। उन के पिता शिव के मन्दिर के पुजारी थे। इसलिए उन का नाम शंकर रखा गया। चार पांच साल की आयु में उन के पिता जी स्वर्गवास हो गए। पांच वर्ष की आयु में उन का यज्ञोपवीत हुआ, और १२-१४ वष की आयु में उन्होंने वेद, शास्त्र, उपनिषद् वहुत से

पढ़ लिए और उन की विद्वता की धूम मच गई। १८-१६ वर्ष की आयु में माता ने उन की शादी करनी चाही। परन्तु उन्होंने माता जी से संन्यास धारण करने की आज्ञा मांगी। जिस पर मां राजी न हुई। एक दिन अपनी माता के साथ नदी स्नान को गए। नदी में उतरे तो मगरमच्छ ने उन का पांव पकड़ लिया। इस पर उन्होंने ज़ोर ज़ोर से चिल्लाना शुरु कर दिया मां किनारे पर बैठी ज़ारो ज़ार रो रही थी। और भगवान से प्रार्थना करने लगी कि अगर मेरा बेटा बच जावे तो मैं उसे संन्यासी बनने की आज्ञा दे दूंगी। देव कृपा से शंकर मगरमच्छ की पकड़ से छूट कर किनारे आ गए और माता ने संन्यासी बनने की आज्ञा दे दी। लेकिन जाते समय माता से प्रतिज्ञा की कि जब आप मुझे याद करेंगी मैं आ जाऊंगा। अतः जब उन की माता बहुत बिमार हुई और उस ने याद किया तो वह माता जी के पास पहुंच गए और उस का दाह कर्म संस्कार आदि अपने हाथ से कर दिया।

और

संवत् १८८१ तदानुसार १८२४ को गुजरात प्रान्त के टंकारा नगर में कर्षन जी तिवारी के घर एक बालक उत्पन्न हुआ जिस का नाम मलशंकर रखा गया। पांच वर्ष की आयु में विद्या आरम्भ की और ८वें वर्ष में यज्ञोपवीत हुआ। उनके पिता जी भी शैव भक्त थे और १४ वर्ष की आयु में मूल जी ने भी वेद, शास्त्र, उपनिषद आदि बहुत से ग्रन्थ पढ़ लिए थे। जब उन की भी आयु २२ वर्ष की हुई तो उन के विवाह का सब सामान तैयार होने लगा। और उन को गृहस्थ के बंधन में बांधने की पूरी तैयारी हो गई। परन्तु उन के

नोट—स्वामी शंकराचार्य जी का जन्म स्थान कालड़ी का ग्राम सारे का सारा ईसाई मत में प्रवेश कर चुका है। अतः उसे ग्राम के ईसाईयों ने स्वामी शंकरा चार्य की जन्म शताब्दी मनाने के उत्सव के लिए पंडाल लगाने की जगह देने से भी इन्कार कर दिया।

अन्दर वैराग की तीव्र अग्नि जग उठी। और पूरे २२ वर्ष की पूर्ण यौवन अवस्था में एक रात को घर से निकल खड़े हुए। और शंकर स्वामी की भांति ब्रह्मचर्य आश्रम से ही २४ वर्ष की आयु में सन्यासी दयानन्द बन गए। परन्तु जहां शंकर स्वामी माता के मोह में बंधे रह कर माता की बिमारी पर घर आ गए और उस का दाह कर्म संस्कार कराया वहां दयानन्द जी ने घर से निकलने के पश्चात् न केवल यह कि कभी अपने घर की ओर मुंह ही किया बल्कि किसी मनुष्य को भी अपने घर, अपने जन्म गांव का, अपने माता पिता का. नाम का भी पता न दिया था।

२. जब शंकर स्वामी मैदान में निकले उस समय सारे देश में बुद्ध मत का प्रचार हो चुका था। और कुमारिल भट्ट बुध्द मत का निराकर्ण करने में असफल हो कर आत्मघात कर के शरीर त्याग चुके थे, स्वामी शंकराचार्य व्याकरण आदि सब शास्त्रों को पढ़ कर सोचने लगे कि सत्य आस्तिक वेद मत का छूटना और जैन आदि नास्तिक मत का चलना वड़ी हानि की बात हुई है। इन को किसी तरह से हटाना चाहिए, तब उन्होंने विचारा कि उपदेश और शास्त्रार्थ से यह कार्य सिद्ध होगा, ऐसा विचार करके उज्जैन नगरी में आए। वहां उस समय सुधनवा राजा था। जो जैनियों के ग्रन्थ और कुछ संस्कृत भी पढ़ा था, वहां जा कर वेद का उपदेश करने लगे। और राजा से मिल कर कहा कि आप जैन मत को मानते हैं, इस लिए आप मेरा जैन पण्डितों से शास्त्रार्थ करवाइए। इस प्रतिज्ञा पर कि जो हारे सो जीतने वाले का मत स्वीकार करले। और आप भी जीतने वाले का मत स्वीकार करलें। यद्यपि सुधनवा राजा जैनमत स्वीकार कर चुका था फिर भी संस्कृत के ग्रन्थ पढ़ने से अभी उस के अन्दर पक्षपात पैदा न हुआ था। और वह सत्य ग्रहण की इच्छा वाला था। जब शंकराचार्य ने यह प्रस्ताव उन के सामने रखा तो सुधनवा ने कहा कि मैं अवश्य शास्त्रार्थ

कराऊंगा । अतः दूर दूर से जैनी पण्डितों को बुला कर शास्त्रार्थ कराया और इस शास्त्रार्थ में शंकर स्वामी विजयी हुए। तब सुधनवा राजा और जैनी पण्डितों ने प्रतिज्ञा के अनुसार शंकर स्वामी का मत स्वीकार कर लिया। और फिर सुधनवा राजा ने अपने मित्र राजाओं को कह कर स्थान-स्थान पर स्वामी शंकराचार्य के जैनियों से शास्त्रार्थ कराए और हर शास्त्रार्थ में जैनियों को पराजय का ही मुख देखना पड़ा, और इस प्रकार सुधनवा आदि राजाओं ने शंकर स्वामी को सर्वत्र आर्यवर्त देश में घमने का प्रबन्ध कर दिया। और उन की रक्षा के लिए नौकर चाकर भी रख दिए, उसी समय से लोगों के फिर से यज्ञोपवीत भी होने लगे, और वेदों का पठन पाठन भी आरम्भ हो गया। स्वामी शंकराचार्य ने दस वर्ष तक सारे आर्यवर्त में घूम कर जैन धर्म का खण्डन इस ज़ोर से किया कि अनुमानता सारे भारतवर्ष से इस को निकाल बाहर किया।

और

महर्षि दयानन्द ने भी छोटी आयु में ही संन्यास ले लिया था स्वामी शङ्कराचार्य जी को केवल बुद्ध जैन मत से ही शास्त्रार्थ करने पड़े थे, परन्तु महर्षि दयानन्द जी को बुध्द जैन, पौराणिक, मूर्तिपूजक, नवीनवेदान्ति, मुसलमान, ईसाई सब से ही शास्त्रार्थ करने पड़े और हर शास्त्रार्थ में शंकर स्वामी की भांति महर्षि जी भी विजय प्राप्त ही करते रहे। महर्षि जी ने भी काशी के राजा को मिल कर कहा था कि मेरा शास्त्रार्थ पण्डितों से करवाओ। लेकिन काशी का राजा मूर्ति पूजक था सुधनवा राजा की भांति सत्य का उत्सुक न हो कर पक्षपाती था। उसने अपने पण्डितों से स्वामी जी का शास्त्रार्थ कराया परन्तु येन केन प्रकारेण स्वामी जी की हार की घोषणा करने का ही इस राजा के मन में विचार रहा था, और उसी विचार से उसने शास्त्रर्थ में ताली बजा कर स्वामी जी की हार की घोपणा करके अपना पक्षपाती होना सिद्ध

कर दिखाया था। स्वामी जी इस शास्त्रार्थ के बाद भी तकरीबन ४ महीने काशी में रह कर पण्डितों को पुनः पुनः शात्राथ के लिए ललकारते रहे पर किसी पण्डित के अन्दर हिम्मत न हुई कि स्वामी जी के सामने आकर मूर्ति पूजा वेदानुकूल सिद्ध कर सके।

२. स्वामी शंकराचार्य का शास्त्रार्थ मंडन मिश्र के साथ हुआ जिसमें मंडन मिश्र की धर्म पत्नी भारती अध्यक्षता बनी। और कई दिन के शास्त्रार्थ के बाद मध्यस्त ने शंकर स्वामी की विजय की घोषणा कर दी थी, फिर भारती को भी विजय कर लिया। और दोनों बुध्द मत को छोड़ कर शंकराचार्य के वहुत बड़े सहायक बन गये।

और

१. इसी प्रकार ३१. ७. १८६६ कानपुर के स्थान पर महर्षि जी का शास्त्रार्थ पंडित हलधर ओझा और लक्ष्मण शास्त्री के साथ मूर्ति पूजा के विषय पर हुआ था, और कानपुर के अंग्रेज कलक्टर मिस्टर थेन इस के मध्यस्थ बने थे, इस शास्त्रार्थ में २४—२५ हजार मनुष्यों की संख्या थी। जब दोनों पंडित स्वामी जी के प्रश्नों का उत्तर न दे सके, तो थेन साहब मध्यस्थ उठ खड़े हुए, और महर्षि जी से पूछने लगे कि आप किस को मानते हैं, महर्षि ने कहा मैं केवल एक ईश्वर को मानता हूं। तब साहब ने पूछा फिर आप आग में हवन क्यों करते हैं। तो महर्षि ने उत्तर दिया, कि अग्नि सर्वत्र व्यापक है, और जो पदार्थ अग्नि में डाला जाता है, वह सूक्ष्म होकर सर्वत्र फैल जाता है। यह विज्ञान की बात है, हम आग की पूजा नहीं करते, और मध्यस्थ ने स्वामी दयानन्द जी की विजय की घोषणा कर दी।

२. स्वामी शंकराचार्य के पास दो जैनी, जो ऊपर से आचार्य का मत ग्रहण कर चुके थे, परन्तु भीतर से कट्टर जैन थे, अर्थात कपट मुनि थे, परन्तु शंकर स्वामी के विश्वस्त बने हुए थे, पास रहते थे,

इन दोनों ने मौका पाकर शंकराचार्य को कोई ऐसी विष युक्त वस्तु खिला दी, जिस से उनको भूख मन्द पड गई और शरीर पर फोड़ फुंसी होकर ६ महीने के भीतर उनका शरीर छट गया। उनकी आयु उस समय ३२ वर्ष की थी. और उनको केवल १० वर्ष ही प्रचार कार्य के लिए मिल सके थे।

और महर्षि दयानन्द

जी को भी इसी प्रकार उनके एक विश्वास पात्र रसोईये ने दूध में कांच पीस कर पिला दिया था, जिससे न केवल उनकी भूख ही मन्द पड़ गई, बल्कि बहुत बड़ी संख्या में दस्त भी आने लग गये। और उनके जिसम में भी ज़हर के असर से फोड़े फुंसी निकल आये थे, और तीन महीने के भीतर ही भीतर उनका शरीर भी छूट गया था। अहो ! कैसी अनोखी रचना है, कि दोनों महापुरुषों के शरीर त्याग का कारण बिल्कुल एक जैसा ही था। शंकर स्वामी और दयानन्द स्वामी दोनों ही आजन्म ब्रह्मचारी रहे। दोनों ही शास्त्रार्थों में विजयी रहे और दोनों के, शंकर दिग्विजय, और दयानन्द दिग्विजय के नाम के ग्रन्थ, प्रकाशित हुए। स्वामी शंकरा चार्य ने केवल गीता और वेदान्त दर्शन का ही भाष्य किया। परन्तु स्वामी दयानन्द जी ने वेदों का भाष्य किया। स्वामी शंकरा चार्य ने अपने ४ मठ स्थापित किये जो अब तक भी स्थापित हैं और इन मठों के गद्दी नशीन शंकराचार्य ही कहलाते हैं। परन्तु महर्षि दयानन्द जी ने अपने नाम से कोई मठ स्थापित न कर के एक सार्वजनिक संगठन आर्य समाज के नाम से स्थापित किया। जो सहूलियतें राजा सुधनवा और दूसरे राजाओं ने शंकर स्वामी का मत स्वीकार करके उनके प्रचार कार्य को सारे देश में फैलाने के लिए दीं, और हर तरह से मदद की और उनके प्रचार और रक्षा का प्रबन्ध किया और खच सहन किया। इन में से कोई भी सहूलियत स्वामी दया-

नन्द जी को प्राप्त न थी, बल्कि उनको सारी आयु अकेले अपने आत्म विश्वास पर ही प्रचार कार्य करना पड़ा था, यदि स्वामी दयानन्द जी को ऐसी सहूलियतें प्राप्त हो जातीं, जैसी शकर स्वामी को प्राप्त हुई थीं, तो महाराज इस से हज़ार गुना अधिक कार्य कर पाते जितना वह अब १९ वर्ष में कर पाये हैं।

४९. राजा राम मोहन राय

सन १७७४ में राजा राम मोहन राय का जन्म बंगाल के एक पुराने विचारों वाले ब्राह्मण परिवार में हुआ था, अभी आप १५ वर्ष के बालक थे, कि आपने सन १७७९ में मूर्ति पूजा के विरुद्ध एक पुस्तक लिखी इस पर इन्हें समाज से निकाल दिया गया। फिर उन्होंने अपने साथियों का एक जत्था काशी के पण्डितों के पास भेजा कि वेद के पुस्तक वहां से ले आवें, लेकिन काशी के पण्डितों ने इस जत्थे को वेद की बजाये उपनिषद ही दिये, क्यों कि वेद तो काशी के पण्डित स्वयं नहीं पढ़े थे, देते कहां से अतः जब वह जत्था वापस आया परन्तु वेद न ला सका तो राजा राम मोहन राय को बड़ा खेद हुआ। वह पुराने बुरे रीति रिवाज़ों के कट्टर विरोधी थे, इसलिए उन्होंने अपने विचारों का प्रचार करने के लिए कलकत्ता में सन् १८२८ में ब्रह्म समाज का संगठन कायम किया। आपने बड़ी हिम्मत से अपने विचारों का प्रचार करने का यत्न किया। देश वासियों को स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ाने के लिए उन्होंने शिक्षा प्रचार का पूरा प्रयत्न किया, और सामाजिक सुधारों के लिए भी पूरा यत्न किया, स्त्री शिक्षा के लिए भी वह यत्नशील रहे और ब्राह्मणों की मुख़ालफ़त के बावजूद उन्होंने हिम्मत न हारी। सन १८२९ में लार्ड विलियम बेंटिंग गवर्नर जनरल के समय में राजा राम मोहन राय के प्रचार और प्रयत्न से एक कानून पास कराया गया जिस से सती होने की प्रथा बन्द हो गई। सन १८३३ में इंगलैंड में ५९ साल

की उमर में इन की मृत्यु हो गई।

और

महर्षि दयानन्द जी भी गुजरात काठियावाड़ के एक पुराने विचार के ब्राह्मण वंश में उत्पन्न हुए थे। और उनको भी १४ वर्ष की आयु में शिवरात्री व्रत के वक्त मूर्तिपूजा से घृणा हो गई थी जिस कारण उन्होंने अपने प्रचार काल में मूर्ति पूजा के विरुद्ध ज़बरदस्त संग्राम जारी रखा और सारे देश में घूम-घूम कर और शास्त्रार्थ कर के मूर्ति पूजा को अवैदिक सिद्ध किया। स्त्री शिक्षा के महर्षि भी बहुत बड़े समर्थक थे और जहां राजा राम मोहन राय बंगाल के ब्राह्मणों के विरोध में भी बड़ी हिम्मत और दलेरी से अपनी रिफार्म के काम करते रहे। वहां महर्षि दयानन्द सारे भारत वर्ष के ब्राह्मणों के खिलाफ हिम्मत और दलेरी से अपना प्रचार कार्य करते रहे। राजा राम मोहन राय ने सन १८२८ में कलकत्ता में ब्रह्म समाज स्थापित की तो महर्षि दयानन्द ने सन् १८७५ में आर्य समाज की स्थापना की, स्त्री शिक्षा के प्रसार के लिए भी दोनों महापुरुषों ने यत्न किया और देश वासियों को स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ाया था। राजा राम मोहन राय जी को वेद न मिल सके थे, परन्तु महर्षि ने जर्मनी से वेद मंगवा कर वेदों का प्रचार पुनः बड़े जोर से किया। जिस की गूंज से भारत में ही नहीं अपितु सारा संसार गूंज उठा। आप ने भी ५९ साल की उमर में शरीर छोड़ा था।

---

५०. ईश्वर चन्द्र विद्यासागर

ईश्वर चन्द्र विद्या सागर ने सन् १८२० मंगलवार गांव वीर सिंह ज़िला मिदना पुर बंगाल में एक गरीब ब्राह्मण श्री ठाकुरदास बन्दोपाध्याय के घर जन्म लिया। इनकी माता जी का नाम भगवती

था, अपने गांव की पाठशाला में पढ़ते समय उनके गुरु उन की मेधा बुद्धि से बड़े प्रभावित हुए । नौ वर्ष की आयु में सन् १८२६ में कलकत्ता संस्कृत कालेज में प्रविष्ट हो गये, बंगाल में छोटी आयु में विवाह करने का रिवाज़ था, इसलिए उनका विवाह भी १४ वर्ष की आयु में ही हो गया, उनकी बाल्यकाल से ही मूर्ति पूजा में श्रद्धा न थी । वह अपने जीवित माता पिता की ही श्रद्धा से सेवा पूजा करना धर्म समझते थे, छोटी आयु में विवाह की रीति होने, और एक एक मनुष्य के बहुत से विवाह होने से, बगाल में विधवाओं की संख्या नित्य प्रति बढ़ती ही जा रही थी । और हिन्दुओं में विधवा विवाह न होने से, मुसलमान हिन्दु विधवाओं को बहका फुसला कर मुसलमान बना लेते थे, जिससे हिन्दुओं की संख्या दिन प्रतिदिन घट रही थी । और मुसलमानों की बढ़ रही थी (जिसका परिणाम) अब बंगाल का आधा हिस्सा पाकिस्तान बन जाना प्रत्यक्ष है) हिन्दु विधवाओं को देखकर विद्या सागर जी का मन व्याकुल हो उठा। २१ वर्ष की आयु में संस्कृत कालज के सर्वोच्च विद्या सागर की डिगरी प्राप्त कर ली । उन दिनों संस्कृत कालेज में केवल ब्राह्मणों और वैद्यों के बालक ही प्रवेश हो सकते थे । विद्यासागर जी ने सब से पहले इस प्रथा के विपरीत आन्दोलन किया । और कालज में दाखला सब के लिए खुल गया । फिर विद्यासागर जी के प्रयत्न से कई स्कूल खल गयें । स्त्री शिक्षा के लिए भी उन्होंने बहुत प्रयत्न किया, और लड़कियों के लिये भी कई स्कूल खुलवाये । और अब उनको स्पैशल एजूकेशन इन्सपैक्टर बना दिया गया । सन् १८५७ में यंग साहब डायरैक्टर तालीम से अन बन होने पर आपने इस्तीफ़ा दे दिया। फिर उन्होंने विधवा विवाह के हक़ में आन्दोलन उठाया, कट्टर पन्थी ब्राह्मणों ने उनका बहुत विरोध किया । परन्तु वह अपनी धुन के पक्के रहे । और उनके प्रचार से कई विधवाओं के विवाह होने शुरू हो गये । फिर उन्होंने ३० हज़ार पुरुषों के हस्ता-

क्षर करवा के एक मैमोरियल सरकार को पेश करके सन् १८५६ में विधवा विवाह का कानून पास करवा दिया। जिसका नाम था—

the hindu windows re-marrige Act 1856

विद्यासागर जी के परिश्रम से इस कानून के पास हो जाने पर लाखों विधवाएं मुसलमान होने से बच गई। यदि यह कानून न बनता तो शायद सारा बंगाल हा पाकिस्तान बन जाता, विद्यासागर जी के ज़ीवन में मनोरंजन भो बहुत था, और दूसरों के दुख में दुखी होते थे।

२. जब विद्यासागर जी स्पैशल इन्सपैक्टर थे तो इनको फ़स्ट क्लास का पास रेलवे का मिला करता था। एक बार दौरे पर जाने के लिए गाड़ी पर सवार हुए और फ़स्ट क्लास के डिब्बे में बैठे थे। रंग इनका ज़रा काला था, दो अंगरेज़ भी इस फ़स्ट क्लास के डिब्बे में आ गये। और विद्यासागर जो के दोनों वाज़ू की सीटों पर बैठ गये उन्होंने यह समझ कर के यह काला कलूटा आदमी अमीर तां है ज़ो फ़स्ट क्लास के डिब्बे में बैठा है, परन्तु पढ़ा लिखा नहीं। क्योंकि विद्या सागर जो बड़ा सादा लिबास पहना करते थे। इस पर एक अंग्रेज ने उनकी तर्फ ईशारा करके दूसरे अंग्रेज़ को कहा—Dog दूसरे ने जवाब दिया, Donkey इस पर विद्या सागर जी हंस पड़े, और एक ही फ़िकरे में एक का कुत्ता और दूसरे अंग्रेज़ को गधा बना दिया I am glad to know between whom I am sitting यानि मुझे यह जान कर बहुत खुशी हुई है। कि मैं किनके दरमियन बैठा हूं। इस हाज़र जवाबी पर दोनों अंग्रेज शर्मिंदा होकर कमरे से बाहर निकल गये।

और

महर्षि दयानन्द जी जब कलकत्ता गये, विद्या सागर जो भी महाराज से मिले थे, और महर्षि के प्रचार कार्य की बड़ी प्रशंसा की थी। विद्यासागर जी की भान्ति महर्षि जी ने भी शिक्षा के द्वार सब

के लिये खोल दिये थे, और स्त्री शिक्षा का बड़ा ज़ोर शोर से प्रचार किया था। महर्षि जी न केवल विधवा विवाह का समर्थन करते थे बल्कि विधवा बनाने के जो कारण थे, उन का भी घोर खण्डन करते थे। छोटी आयु में विवाह, अनमेल विवाह, बहुविवाह, विद्या सागर जी का कार्य क्षेत्र बंगाल तक ही सीमित था। परन्तु महर्षि ने सारे देश में घूम घूम कर इन सब कुरीतियों का खण्डन किया। और आप यह पढ़कर हैरान भी होंगे कि महर्षि जी के बाद आर्य समाज को विधवा विवाह और स्त्रा शिक्षा आरम्भ करने के लिए कितने ही शास्त्रार्थ करने पड़े थे, और सब से पहले जो कन्या महाविद्यालय जालन्धर में आर्य समाज ने कायम किया था, उसकी बड़े ज़ोर शोर से मुखालफ़त की गई थी। विद्यासागर जी की तरह महर्षि जी के वचनों में भी मनोरंजन बहुत बड़ी मात्रा में विद्यमान था और उन्होंने भी अ।ने इस स्वभाव से बड़े बड़े अंग्रेज़ों को शर्मिदा कर दिया था।

२. आगरा के लाट पादरी विशप साहब ने महर्षि को कहा कि वैदिक ऋषियों को तो यह भी पता न था कि किसकी पूजा करनी चाहिए। जैसा कि—

"कस्मै देवाय हविषा विधेम" से प्रकट होता है। तो महाराज ने हँस कर उत्तर दिया। विशप साहब अंग्रेज़ों को वेद विद्या का क्या पता है। यह गम्भीर विषय है। ब्रह्मचारी और योगी ही वेद ज्ञान को समझने में समर्थ हो सकते हैं। जिस बात को लेकर आप यह कह रहे हैं कि वैदिक ऋषियों को अपने पूज्य देवता का पता न था, इसी वाक्य में उसका जवाब भी है, कि हम सुख स्वरूप परमात्मा की पूजा करें। इस पर लाट पादरी साहिब शर्मिदा होकर चले गये।

विद्या सागर जी और महर्षि जी में स्त्री शिक्षा और स्त्री उद्धार की भावना प्रबल रूप में थी, और जिस प्रकार विद्या सागर

जो विधवाओं के दुख में दुखी थे, इसी प्रकार महर्षि भी अतः जब हरद्वार कुम्भ पर प्रचार कर रहे थे, तो एक दिन प्रचार करते करते लेट गये, और चन्द मिनटों के बाद उठ कर लम्बी सांस खैंच कर कर कहा—विधवाओं और गौओं की आह ने इस देश का सर्वनाश कर दिया है।

रिफ़ारमर काण्ड समाप्त

————

८. भक्त काण्ड

५१. भक्त प्रह्लाद

"बन्दे को खुदा मत कहो बन्दा खुदा नहीं,
लेकिन खुदा के नूर से बन्दा जुदा नहीं ।

प्रह्लाद भक्त का पिता हिरण्यकष्यप अपने आप को परमात्मा समझता था, और राजा होने के कारण प्रजा से परमात्मा रूप में अपनी पूजा करवाता था, प्रह्लाद भक्त जब बड़ा हुआ तो उसने अपने पुत्र को भी यही आज्ञा दी, परन्तु प्रह्लाद ने मनुष्य को परमात्मा मानने से इन्कार कर दिया । इस पर प्रहलाद भक्त को अपने पिता को यानि मनुष्य को परमात्मा न मानने के कारण पहाड़ी पर से गिराया गया, परन्तु वह ईश्वर की कृपा से बच गया ।

२. दूसरी वार उसको आग में जलाने का षड्यन्त्र रचा गया । अतः उसकी फूफी होलका ने अपने भाई को कहा कि मेरे पास एक कपड़ा है, जिसको यह वर्दान है कि जिस पर यह कपड़ा होगा, वह आग में नहीं जलेगा, अतः प्रह्लाद भक्त को होलका के साथ चिता बना कर बिठा दिया गया, परमात्मा का करना ऐसा हुआ कि वह कपड़ा होलका के ऊपर से उड़ कर प्रह्लाद के ऊपर आ गया और इस तरह होलका जल गई, और प्रह्लाद भक्त बच गया ।

और

प्रह्लाद भक्त की तरह महर्षि दयानन्द भी किसी मनुष्य

को परमात्मा नहीं मानते थे, और मनुष्य को परमात्मा न मानने का उपदेश भी करते थे, बल्कि मनुष्य के परमात्मा न होने का बल पूर्वक खण्डन करते थे, जिस कारण बहुत से वैरागी साधु जो राम को ईश्वर अवतार मानते हैं उनके बरखिलाफ़ हो गये, उनको जान से मार डालने के दरपे रहने लगे।

१. एक वार ५, ६ वैरागी साधू महर्षि को पहाड़ी पर से जब वह एक जगह गंगा के तट पर सो रहे थे, उठा कर नीचे गंगा में फैंकने के इरादे से पहाड़ी पर चढ़ने लगे, जब वह महर्षि के नजदीक पहुंचे तो उनके पांव की आहट पाकर महाराज जाग उठे और जोर से हुंकार लगाई तो साधू नीचे उतर आये, और वह इस तरह बच गये।

२. एक बार जब स्वामी जी एकाएकी घूमते थे तो एक स्थान पर जब वह अवतार बाद का खण्डन कर रहे थे, कि कुछ वैरागी साधू उनकी जान लेने के दर पै हो गये, रात पड़ने पर महर्षि एक खाली पड़ी हुई घास फूस की कुटिया में सो गये, वैरागियों ने मौका पाकर कुटिया के द्वार पर और घास फूस इकठ्ठा करके कुटिया को आग लगा दी, आग सारी कुटिया में बहुत जल्द फैल गई, महर्षि आग कीगर्मी से जाग पड़े और कुटिया का छप्पर जो अभी आग से बचा हुआ था उठा कर बाहर निकल आए। इस तरह वह ईश्वर की दया से बच गये, वरना शत्रुओं ने तो प्रहलाद भक्त को भांति उनको पहाड़ से गिराने और आग में जला देने में कोई कसरउठा न रखी थी।

जा को राखे साईंयां मार सके न कोय।
बाल न बांका कर सके जो सब जग वैरी होय॥

५२ भक्त कबीर

बनारस में भक्त कबीर का जन्म सन् १४०६ में हुआ, उनके

पिता का नाम नीरु था, और माता का नाम नेमा था। वह कपड़े बुनने का काम करते थे, संस्कारी पुरुष थे, छोटी आयु से ही ईश्वर भक्ति में रत रहते थे, स्वामी रामानन्द जी के चेले थे, बड़ें होकर दोहे बना कर ईश्वर भक्ति का प्रचार करते थे, मूर्ति पूजा, तीर्थ, जन्तर-मन्तर, आदि कुरीतियों का खण्डन करते रहे। मूर्ति पूजा के विषय में उनके दो दोहे गिम्नलिखित हैं :—

पत्थर घड़के मूरत कीनी देके छाती पाये,
जो यह मूर्त सांची होय तो वड़न हारे को खाये ॥
पत्थर पूजे हर मिलें तो हम पुजें पहाड़,
इस पत्थर से चक्की भली जो पीस खाये मंसार ॥

और

"न तस्य प्रतिमा अस्ति" यजुर्वेद और ऐसे ही दूसरे कई वेद मन्त्रों के आधार पर महर्षि दयानन्द जी महाराज ने अपने जीवन भर मूर्ति पूजा का बहुत ज़ोर शोर से खण्डन किया। वह तो मूर्ति पूजा को इस देश में फैली हुई सब बुराईयों का और देश के पतन का सब से बड़ा कारण समझते थे, उनके ९९ प्रतिशत शास्त्रार्थ मूर्ति पूजा विषय पर ही पण्डितों से हुए और एक भी पण्डित सारे भारत वर्ष में वेद से मूर्ति पूजा का विधान न दिखा सका। महर्षि के प्रचार के प्रभाव से लाखों व्यक्तियों ने मूर्ति पूजा छोड़ दी थी, और अब तक छोड़ते चले जा रहे हैं।

३. एक दिन भक्त कबीर जी बनारस के दश अश्वमेध घाट पर जा निकले उस समय एक पण्डित गंगा महात्म की कथा सुना रहे थे, कि गंगा स्नान करने वाला, गंगा जलपान करने वाला बल्कि चार सौ योजन से गंगा गंगा का नाम स्मरण करने वाले के सब पाप नष्ट हो जाते हैं, और वह शुद्ध पवित्र होकर मुक्ति का अधिकारी होकर स्वर्ग को जाता है। कथा की समाप्ति पर भक्त कबीर खड़े हो गये, और अपने पास का कमण्डल गंगा जलसे भरकर कथा वाचक

पण्डित जी की ओर बढ़ाया कि इस को पी लो, कथा वाचक पण्डित कहने लगा, कि आप से स्पर्श किया हुआ कमण्डल का गंगा जल तो भ्रष्ट हो गया, मैं कैसे पीलूं। इस पर भक्त जी कहने लगे कि फिर गंगा महात्मा की झूठी बातें सुना सुना कर ठग बाज़ी बना रखी है। अगर यह गंगा जल मेरा कमण्डल शुद्ध नहीं कर सकता बल्कि मेरे कमण्डल में आकर गंगा जल खुद अशुद्ध हो जाता है तो फिर यह किसी के पाप कैसे नष्ट कर सकता है। इस पर कथा वाचक शर्मिंदा हो गया। और श्रोता गणों पर गंगा महात्म के झूठ का पोल खुल गया।

और

करनवास में निवास के समय राव कर्ण सिंह ने गंगा के विषय में महर्षि जी से प्रश्नोत्तर किये थे।

१. प्रश्न—गंगा कैसी है। उत्तर— जैसी ये दिखाई दे रही है।

२. गंगा में पाप नाशनी शक्ति है या नहीं। उत्तर—जल प्यासे की प्यास बझा सकता है, इस में स्नान करने से शरीर को ठण्डक पहुंचाता है, इस पानी से खेत सींचा जाय, तो खेत हरा भरा हो सकता है। परन्तु किसी मनुष्य के किये हुए पापों के नष्ट करने की शक्ति गंगा जल में हरगिज़ नहीं है, और मनुस्मृति का निम्न श्लोक भी पढ़ कर सुना दिया।

> अद्भिर्गात्राणि शुद्धयन्ति, मनः सत्येन शुद्धयति।
> विद्या तपोभ्यां भूतात्मा, वुर्द्धिर्ज्ञानेन शुद्ध यति॥

अर्थात् पानी से शरीर शुद्ध होता है, सत्याचरन से मन, विद्या और तप से आत्मा, और बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है।

२. हरद्वार में कुम्भ प्रचार के समय आप हर की पौड़ी को हाड़ की पौड़ी कहा करते थे, क्योंकि लोग वहां मुर्दों की हड्डियां डालते हैं।

३. जन्त्र मन्त्र सब झूठ हैं मत भरमो जग कोय।
सार शब्द जाने बिना कागा हंस न होय।।

और

जन्त्र मन्त्र जादू टूने जिन्न, भूत आदि भरमों का महर्षि पूरे ज़ोर से खण्डन करते थे।

४. भक्त कबीर के जात पात, ऊंच नीच, और मूर्ति पूजा, तीर्थ महात्म के खण्डन से तंग आ कर काशी के पण्डितों ने एक दुष्टा स्त्री भेज कर इन पर लांछन लगाने की कोशिश की थी, जिस में असफल हुए।

और

इसी तरह महर्षि के सामने शास्त्रार्थ में पराजित होकर काशी के पण्डितों ने महर्षि के पास भी एक दुष्टा स्त्री इन पर कलंक लगाने को भेजी थी, जिस में इस बार भी पंडितों को सफलता न मिली।

५. भक्त कबीर और ऋषि दयानन्द दोनों ही अजर अमर निराकार परमात्मा के पुजारी थे और अवतार वाद का खण्डन करके उसी एक ईश्वर को पूजा का प्रचार करते थे, जहां महर्षि जी ने वेद मन्त्रों से परमेश्वर को अजर अमर निराकार सिद्ध किया, और सारे देश में वेदों के आधार पर इसका प्रचार किया। और इसके सम्बन्ध में बड़े बड़े पण्डितों से शास्त्रार्थ करके अपने इस सिद्धान्त को स्थापित किया। वहां भक्त कबीर का निम्नलिखित दोहा भी इस सिद्धान्त का समर्थन करता है।

कबीरा सब मुर्दन के ग्राम।
जो कोई आया रह न पाया किस किस का लीजे नाम।
सूर्य मरेगा, चन्द्र मरेगा, मरेगा धरत आकासा।
तेतीस करोड़ देवता मरेंगे, जिन की झूठी आसा।

राजा मरेंगे, रंक मरेंगे, मरेंगे वैद्य और रोगी।
योगी मरेंगे जंगम मरेंगे, मरेंगे विरक्त और भोगी।
नौं मरेंगे, ग्यारह मरेंगे, मरेंगे सिद्ध चौरासी,
कहत कबीर हम उस को पूजें जिसको काल न खासी।

फिर कहा—

कंकर पत्थर जोड़ के मसजिद लई बनाए,
इस पर मुलां वांग हे बहरा हुआ खुदाए।

और

ईश्वर के जिस स्वरूप की पूजा महर्षि खुद करते थे, और जिस स्वरूप की पूजा का जनता को उपदेश करते थे, वह आर्य समाज के दूसरे नियम में वर्णन है।

ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्व शक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्म, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, अन्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य पवित्र और सृष्टि कर्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

५३. भक्त रविदास

गुरु रविदास जी का जन्म काशी के पास एक छोटे से गाँव में हुआ था आप भक्त कबीर के समय ही पैदा हुए थे, तब हिन्दुस्तान में सिकन्दर लोधी की हकूमत थी। आपके पिता का नाम रघू था, और वह जूते बनाने में अपने पिता का हाथ बटाते थे परन्तु भक्त कबीर की तरह संस्कारी आत्मा थे, उन्हों ने भी रामानन्द जी को ही गुरु माना था, छूत-छात, ऊंच-नीच के भेद-भाव का घोर खंडन किया करते थे, इनका सिद्धान्त था कि—

जात पात पूछे न कोई, हर को भजे सो हर को होई ॥

परमात्मा की भक्ति करने का हरेक का एक जैसा हक है। भक्त रविदास ने इस ज़ोर शोर से प्रचार किया कि सिकन्दर लोधी बादशाह को इनको ऐसी सरगर्मियां अच्छी न लगीं और उसने उनको कैद कर लिया। लेकिन गुरु रविदास के प्रचार से बहुत जागृति पैदा हो चुकी थी और सिकन्दर लोधी ने यह समझ कर कि कहीं इन को कैद में रखने से देश में बग़ावत न हो जावे। इन को रिहा कर दिया, और फिर वह अपना प्रचार कार्य करते रहे कि सब मनुष्य आपस में भाई भाई हैं किसी से नफ़रत न करनी चाहिए।

और

इसी तरह महर्षि दयानन्द जी महाराज ने भी छूत-छात, ऊच नीच के भेद-भाव को मिटाने के लिए वेदों और शास्त्रों के आधार पर प्रचार किया। और देश में जागृति की एक लहर सी पैदा कर दी, और महर्षि ने—

:'अजेष्ठासो, अकनिष्ठास"

वाले वेद मन्त्र का खण्डा लेकर छूत-छात और ऊँच नीच का भूत जो मानवता को चिपटा हुआ था मार भगाया और देश में संगठन की दाग़, वेल डाली और हरेक स्त्री पुरुष को न सिर्फ ईश्वर पूजा का समान अधिकार दिया, बल्कि विद्या मन्दिर के द्वार जो सैकड़ों वर्षों से बन्द पडे थे और जिन पर "स्त्री शूद्रो न धीयताम्" का ताला लगा हुआ था। उसे तोड़ कर सब को विद्या का समान अधिकार देने की घोषणा कर दा, ताकि कोई भी विद्या के प्रकाश से वंचित न रह जाये, महर्षि की कृपा से छूत-छात नाशक कानून भी बन गया है, और विद्या के द्वार भी सब के लिए खोल दिये

गये हैं और सब लोग बेखटके हर किसम की विद्या ग्रहण कर रहे हैं।

५४. ईश्वर भक्त मीरांबाई

मीरांबाई का जन्म सन् १५७३ में राजपूताना के राजा रत्नसिंह के घर हुआ। राणा सांगा के सुपुत्र भोजराज से ब्याही गई। विवाह के सात वर्ष बाद विधवा हो गई। राणा विक्रमादित्य उस समय मेवाड़ के राणा थे और मीराबाई के देवर थे। मीराबाई के विधवा हो जाने पर उस के मन में ईश्वर भक्ति की लहर जाग उठी, वह अत्यन्त मस्ती में ईश्वर भजन गाया करती थी। उन के देवर को इनकी यह ईश्वर भक्ति अपने खानदान की बेइज्ज़ती मालूम हुई। पहले तो उन्होंने मीरांबाई को ज़बानी मना करना शुरू कर दिया। परन्तु इस के मन में सच्ची लगन थी, वह न मानी, फिर राणा विक्रमादित्य ने इस को ठिकाने लगाने के लिए पहले तो ज़हर का प्याला भेजा, जब वह इस से भी बच गई तो एक डिबिया में बन्द कर के एक ज़हरीला सांप उस के मारने को भेजा और कहला भेजा कि यह अंगूठी है, इस को पहन लो परन्तु जब उसने डिबिया खोली तो उस में से सांप निकल आया और वह फिर भी बच गई। फिर वह द्वारिका की ओर चली गई, और १६२० में देह त्याग दिया।

और

महर्षि दयानन्द जी भी ईश्वरभक्त थे, और संसार में विशुद्ध ईश्वरभक्ति का प्रचार करते थे। उन को भी जान से मार डालने के लिए कई बार जहर दिया गया परन्तु वह बचते ही रहे। अन्त में कांच पीस कर दूध में दिया गया। जिस से उन का देहान्त हुआ। ज़हर देने के इलावा एक बार एक बड़ा भारी कोबरा सांप भी

इन को मार डालने की नियत से फेंका गया। जिस का वर्णन मैडम ब्लोटसकी ने अपनी किताब में यों किया है।

बंगाल के एक ग्राम में स्वामी जी अमतवर्षा कर रहे थे। शैवमत के अनुयायी ने एक काला ज़हरीला सांप स्वामी जी की तरफ फेंक कर कहा—"अब यह देवता फ़ैसला कर देगा हम में से कौन सच्चा है?" सांप स्वामी जी की टांग पर लिपट गया। स्वामी जी ने यह कहते हुए—अच्छा तुम्हारा देवता ही मध्यस्थ ठहरा। एक झटके से सांप को अलग कर अपनी एड़ी से कुचल कर कहा—अरे! आओ देखो—तुम्हारा देवता तो बहुत कमज़ोर निकला। मैंने ही इसका फैसला कर दिया और फिर जनता को सम्बोधन कर के मरा साँप दिखला कर कहा "जाओ सब लोगों से कह दो—झूठे देवता आसानी से कुचले जा सकते है. (Erom the caves and jungles of Hindustan By Madam Blavatsky)

ईश्वर भक्त मीराबाई और ईश्वर भक्त दयानन्द जी को ज़हर देकर और सांप डसवाकर मारने डालने की एक जैसी कोशिशें कीं गई।

५५. समर्थ रामदास जी

१. समर्थ राम दास जी महाराष्ट्र में पैदा हुए थे, उन के पिता जी का नाम सूर्यदेव और उनकी माता जी का नाम रेणुका देवी था। आपका विवाह होने लगा, तो विवाह मण्डप में जब महाराष्ट्र की रीति अनुसार पण्डतों ने शुभ मंगल सावधान के श्लोक का उच्चारण किया। तब सचमुच रामदास जो सावधान हो गये, और वैराग्य जो उत्पन्न हो रहा था, परिपक्व हो गया। और विवाह मण्डप से सीधे बन को चले गये और संन्यास धारण कर लिया, इस समय भारतवर्ष में औरंगजेब का राज्य था, जिसके राज्य काल में हिन्दू मज़हबी तअस्सुब की ज़ुलम की चक्की में पिस रहे थे,

राम दास जी के मन में इस ज़ुल्म के ख़िलाफ़ तीव्र अग्नि जल उठी और उन्होंने नंगे पाँव महाराष्ट्र में फिर फिर कर इस ज़ुल्म के खिलाफ़ नौजवानों में विजली की सी लहर दौड़ा दी, वह रामायण की कथा किया करते थे और जहां से भगवान राम का महावीर से मिलन होता है, प्रायः वहीं से कथा सुनाया करते थे। और अंगद का मिलना, सीता जी की तलाश, सिंधु पर पुल बांधना, लंका पर चढ़ाई और रावण का परिवार समेत नाश। फिर समझाते थे, कि औरंग भी पापी है, इसका भी रावण की तरह नाश होगा। कथा सुनने वालों से कहा करते थे, कि राम की सेना में भर्ती हो जाओ, धर्म युद्ध होने वाला है। समर्थ रामदास जी महावीर के जीवन पर बहुत ज़ोर देते थे। और जब शिवा जी समर्थ रामदास जी के पास साधु बनने का दीक्षा लेने के लिए आया तो उसको भी साधु न बना कर धर्म युद्ध करने, और औरंगज़ेब के वरखिलाफ़ युद्ध करने के लिए तैयार कर दिया। और उनके प्रचार से जो नवयुवकों में जागृति पैदा हो गई थी, इस से शिवा जी को बहुत से नवयुवक सेना के लिए मिल गए और समर्थ रामदास जी की शिक्षा और प्रचार से शिवा जी ने औरंगजेब की नींद हराम कर दी। और बहुत सा इलाका भी मज़हबी तअस्सुब से होने वाले मुज़ालिम से बचा लिया। और बड़ी शक्तिशाली मरहट्टा सल्तनत कायम कर ली, जिसने अन्त में मुग़ल राज्य को समाप्त कर दिया।

और महर्षि दयानन्द

जी भी इसी प्रकार जब के उन के विवाह की तैयारियां पूर्ण हो गईं थीं, घर त्याग कर संन्यासी बन गये थे, महर्षि दयानन्द जी के मन में भी विदेशी राज्य और विदेशी शासकों के प्रति वही भाव थे। महाराज राजपुताना के राजाओं को खास कर मनु-स्मृति का राज्य प्रकर्ण ज़रूर पढ़ाया और समझाया करते थे और

अपने भावों को उन राजपूतों के ज़हन नशीन कराया करते थे। अतः राजपूताना के प्रचार काल में एक दिन एक मुसलमान ने महाराज से कहा कि यदि मुसलमानों का राज्य काल होता तो आप को अवश्य कत्ल करा दिया जाता, इस पर महर्षि जी ने कहा कि तब मैं भी (समर्थ रामदास की भान्ति) एक दो राजपूतों की पीठ पर थपकी देकर ऐसे ज़ालिम राज्य काल का विनाश कर देता ज़ुल्म के प्रति खड़े होकर ज़ालिमों के नाश करने की भावना दोनों महापुरुषों में समान ही थी, और महर्षि जी को भी यदि शिवा जी जैसा शिष्य मिल जाता, तो वह भी एक शक्तिशाली राज्य कायम कर जाते। जैसा कि महर्षि चाणक्य वाले लेख में आप एक अंग्रेज़ का लेख पढ़ेंगे।

५६. महाराष्ट्र के सन्त तुकाराम

सन्त तुकाराम महाराष्ट्र के देहू नामी गांव में सन् १६६५ को पैदा हुए। उन के पिता जी का नाम बोबो जी और माता जी का नाम कनक बाई था, तुकाराम जी का जन्म शूद्र कुल में हुआ था। परन्तु जन्म से ही भक्ति की उनकी रुचि थी, विद्वानों के सत्संग से पढ़ लिख गये, और वेद मन्त्र भी उच्चारण करने लगे। इस पर ब्राह्मणों को ईर्षा हुई कि शूद्र हो कर वेद मन्त्र उच्चारण करता है, परन्तु उन्होंने कुछ परवा न की।

महाराष्ट्र के सन्त तुकाराम प्रतिदिन अपने गाँव से पैदल चल पण्ढरपुर तीर्थ में जाकर पण्ढ़ीनाथ की मूर्ति के दर्शन किए बिना भोजन भी नहीं किया करते थे; किन्तु प्रभु-प्रेरणा से ऐसा समय भी आया जब वही तुका राम जो पण्ढपुर तीर्थ में पण्ढ़ीनाथ के सम्मुख नाच-नाच कर उनको रिझाते नहीं अघाते थे, वही स्वयं अपने मुखारविन्द से कहने लगे—

तीर्थों आहे ढोंडा पानी, व्यर्थ हिंडे मूर्ख प्राणी।

अर्थात् तीर्थ में तो सिवाए पत्थर और पानी के कुछ भी नहीं है, किन्तु यह मूर्ख प्राणी व्यर्थ में ही वहां जा कर धक्के खाता फिरता है।

और

जो तथ्य सन्त तुकाराम जी ने तीर्थों और मूर्ति पुजा के विषय में अपवे निजी अनुभव से प्राप्त किया, वही प्रचार महर्षि दयानन्द जी महाराज ने अपने विद्या बल और योग बल से समस्त भारत वर्ष में घूम घूम कर किया। कि यह तीर्थ महातम और मूर्ति पूजा वेद विरुद्ध है। अतः तीर्थ के विषय में महर्षि ने सत्यार्थ प्रकाश के अन्त में अपने मन्तव्यों में यूं लिखा है।

तीर्थ जिससे दुख सागर से पार उतरें जो कि सत्य भाषण, सत्संग, विद्या यम आदि शुभ कर्म हैं, इन्हीं को तीर्थ समझता हूँ। इसके विपरीत जल स्थलआदि कोई तीर्थ नहीं हैं। तीर्थों के विषय में अपने भाषणों में महर्षि महाभारत का यह श्लोक भी उद्दहरण किया करते थे। जिससे तीर्थों के विषय से उनकी राय का पूर्णतया समर्थन होता है।

"सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं, तीर्थं इन्द्रिय निग्रह,
ब्रह्मचर्यं परम तीर्थं, अहिंसा तीर्थ उच्यते।
सर्व भूत दया तीर्थं तीर्थं आर्जव्येव च,
तीर्थानाम् उत्तमं तीर्थं, विशुद्ध मनसः पुनः॥

अर्थात सत्य तीर्थ है, इन्द्रियों को वश में करना तीर्थ है, ब्रह्मचर्य सब से बड़ा तीर्थ है। अहिंसा तीर्थ है, सब पर दया करनी तीर्थ है, और सबसे उत्तम तीर्थ मन की शुद्धी है, विचारों को शिव संकल्प बनाना ही सबसे बड़ा तीर्थ है, इसी तरह महर्षि सारी आयु स्वयं आचरण करते रहे और संसार को आचरण करने का उपदेश और आदेश देते रहे।

५७ सन्त दादूदयाल

सन्त दादूदयाल जी का अहमदाबाद गुजरात काठियावाड़ में सन् १५४४ में जन्म हुआ। और महर्षि जी का भी गुजरात काठिया वाड़ प्रान्त मौरवी राज्य टंकारा में जन्म हुआ। सन्त दादूदयाल जी भी निराकार निरंजन परमात्मा को मानते मनवाते थे, और महर्षि जी भी निरञ्जन पर ब्रह्म को मानते मनवाते थे। सन्त दादूदयाल जी २१ साल की आयु में अहमदाबाद अपने घर से राजस्थान की तर्फ अपना प्रचार करने निकल खड़े हुए, और महर्षि जी भी २१ वर्ष की आयु में अपने घर से सत्य की खोज और मौत का दारु ढूंढने के लिए निकल खड़े हुए। सन्त दादूदयाल जो भी मूर्ति पूजा जिसमें कबर प्रस्ती आदि भी शामिल हैं खण्डन करते थे, अतः एक दोहा बड़ा मशहूर है—

दादू दुनियां बावरी मढ़ियां पूजन ऊत।
जो मौत के मारे मर गये, तिनसे मांगे पूत॥

और

महर्षि दयादन्द जी महाराज से बढ़ कर मूर्ति पूजा (जिस में कब्रर प्रस्ती भी शामिल है)—का दुश्मन संसार ने आज तक नहीं देखा उनकी सारी आयु ही पाखण्ड खण्डन में लगी रही. हरद्वार के संम्वत १९३६ के कुम्भ में एक मुसलमान उमोद खां नामो ने मूला मिस्त्री के पुत्र दुर्गादत्त से कहा कि तुम वुत प्रस्त हो। तो महर्षि जो ने इस पर उससे कहा कि यह छोटा बुत प्रस्त है. प्रन्तु तुम तो बड़े बुत प्रस्त हो, जो तूर के पहाड को, आदम के चरनवाले पहाड़ को पूजते हो, संग असवद को चूमते हो, (मालूम हो कि जब मुसलमान हज़ करने मक्का शरीफ़ जाते हैं। तो वहां मक्का की मसजिद में रखे हुए काले पत्थर को, जिसको संग असवद कहते हैं वोसा देते हैं) ताज़िये को मानते हो और कबरों से मुरादें मांगते हो।

५८. बंगाल के गोरांग देव

बंगाल प्रान्त के प्रांचल विभाग में गोरांग देव जी का जन्म हुआ था, आप ने भक्ति की भावना उत्पन्न करने के लिए नाम जपन और संकीर्तन को लहर चला दो, बंगाल प्रदेश में वाममार्ग जिस को शाक्तक मत भी कहते हैं का बड़ा ज़ोर हैं। जगन्नाथ का मन्दिर वाममार्गियों का हैडक्वाटर है। और जगन्नाथ के मन्दिर के ऊपर नगन स्त्री पुरुषों की मूर्तियां अब तक भी बनी हुई हैं। गोरांग देव के भक्ति भाव के प्रचार से सैंकड़ों व्यक्ति वाममार्गी होने से बच गये और कई जो वाममार्गी बन चुके थे, वापस सीधे मार्ग पर आ गये। इस प्रकार गोरांग देवजी ने अपनी इस नाम जपन और संकीर्तन के प्रचार की शैली से सैंकड़ों मनुष्यों को वाममार्ग के गढ़े में गिरने से बचा लिया, यह उनका बड़ा उपकार हुआ। गोरांग देव ने जगन्नाथ में ही प्राण त्यागे थे।

और

इसी भान्ति महर्षि दयानन्द जी महाराज ने अपने मौखिक तथा लिखित प्रचार से तन्त्रोक्त वाममार्ग और शाक्तक विचार धारा का पुरज़ोर खण्डन किया, जिससे लाखों मनुष्य वाममार्ग के पापमय गढ़े में गिरने से बच गये। और हमेशा ही महर्षि के इस उपकार से बचते रहेंगे। गोरांग देव जी ने तो ज़बानी प्रचार का ही काम किया। परन्तु महर्षि ने सत्यार्थ प्रकाश के ११ वें समुल्लास में वाममार्ग को पूरी पूरी कलई खोल कर रख दी है। जो हमेशा के लिए लाईट हौस का काम देकर गुमराहों को सीधा मार्ग दिखलाती रहेगी, वाममार्ग वालों के ६४ तन्त्र ग्रन्थ हैं। जो महर्षि को उस समय देखने और पढ़ने का मौका मिला जब वह योगियों की तलाश में हिमालय के पहाड़ों पर घूम रहे थे, अतः अपने स्वयं लिखित जीवन चरित्र में महर्षि लिखते हैं।

"कि जब मैं टीहरी पहुंचा तो मैंने एक पण्डित से कुछ ग्रन्थ पढ़ने का विचार प्रकट किया । वह पण्डित शाक्तक था, उसने मुझे कुछ तन्त्र ग्रन्थ लाकर दिये । जब मैंने देखा कि इन ग्रन्थों में मातृ गमन, कन्या गमन भगिनी गमन, चाण्डाली गमन, चमारी गमन, तक का समर्थन किया गया है । नंगी स्त्रियों की पूजा करनी लिखी है, सब प्राणियों के माँसाहार मत्स्य आहार और मद्य पान, आदि आदि क्रियाओं को ग्रहण की आज्ञा है । एक शब्द में पंच मकार अन्तर्गत सारे पैशाचक अनुष्ठानों को ब्राह्मण से लेकर चमार तक के लिए व्यवस्था की गई है । और सब से बढ़ कर इन पैशाचक अनुष्ठानों को मुक्ति का साधन बताया गया है । यह सब कुछ पढ़ कर मुझ को इतना विस्मय हुआ कि जिसकी कोई सीमा नहीं । इन तन्त्र ग्रन्थों को पढ़कर मैंने उज्वल रूप से मान लिया कि ऐसे घृणित ग्रन्थों को लिख कर धूर्त और दुष्ट लोगों ने इन्हें धर्म शास्त्र के नाम से प्रचारित किया है ।"

२. फिर जब महर्षि प्रचार क्षेत्र में निकले तो उन्होंने जगह जगह वाममार्ग का खण्डन शुरू कर दिया । जिससे प्रभावित होकर हज़ारों मनुष्य वाममार्गी होने से बच गये । परन्तु संसार को निश्चित रूप से इस अन्धेरे गढ़ में गिरने से बचाने के लिए अपने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में लिखा कि वाम मार्गी "म" अक्षर से शुरू होने वाले, पांच कर्म मुक्ति दायक मानते हैं । जिनको पांच मकार कहते हैं । १. मदिरा, २. मांस, ३. मतस्य, ४. मुद्रा, ५. मैथुन । परन्तु आम जनता को धोखा देने की गर्ज़ से, मदरा का नाम तीर्थ, मांस का नाम, शुद्धि, मदिरा पात्र का नाम-पद्मया प्याज़ का नाम व्यास, लहसन का नाम शुकदेव, शराब बेचने वाले कलाल का नाम ब्राह्मण, व्यभिचारिनी स्त्री का नाम योगिनी, व्यभिचारी मनुष्य को योगी, मुदरा का नाम चतुर्थी, मैथुन का नाम पचमी । जो वाममार्गी नहीं, उनको कनटक, विमुख, शुशक पशु आदि

नाम रखते हैं । यह इन का खुफ़िया कोड है । यह वाम मार्गी, मारन, उच्चाटन आदि जादू टूना के मन्त्र जन्त्र भी करते कराते हैं। इन वाममार्गी लोगों की ही कृपा से यज्ञ में पशु-नर बलो आदि का रिवाज पड़ गया था, जिस से यज्ञ बदनाम हो गया। और आज तक भी इन वाम मार्गियों के किये हुए वेद अर्थों में भी ऐसे ही अनर्थ विद्यमान हैं, जिससे वेद भी उनके कलंक से न बच सके। अतः रावण, सायन महीधर, उव्वट ये सब वाम मार्गी विचारों के थे, जिन्होंने वेदों में से भी यही अनर्थ निकालने की कुचेष्टा करके वेदों को कलंकित किया, महर्षि दयानन्द जी महाराज ने इन वाम मार्गियों की सब लीलाओं का अत्यन्त बल पूर्वक खंडन करके संसार का बड़ा उपकार किया है। वाम मार्ग का कैसी अद्भुत रीति से महाराज ने खण्डन किया है। इसको अच्छी प्रकार समझने के लिए सत्यार्थ प्रकाश को पढ़ना आवश्यक है। महर्षि दयानन्द जी का इतना तेज था कि सारे भारत वर्ष में एक भी पंडित वाममार्ग का पक्ष लेकर उनके सामने खड़ा होने का साहस न कर सका। वाम मार्ग से आम जनता को बचाने में जहां गोराँग देव का काम केवल बँगाल तक ही सीमित रहा, वहां महर्षि ने सारे संसार को इस अन्धे कूएं में गिरने से बचाने के लिए भरपूर यत्न किया।

३. अनूप शहर से स्वामी जी चासी ज़िला बुलन्द शहर के जंगल में जा विराजे। चासी जाने का विशेष कारण था। करनवास में उन्होंने सुना था कि चासी में नन्दराम नामक ब्राह्मण चक्रांकित सम्प्रदाय में सम्मिलित होने की प्रेरणा करता है। उसने खण्डोई ग्राम परगना आहार के कुछ जाटों को उक्त सम्प्रदाय में प्रवेश करने के लिए पक्का कर लिया था, चक्रान्कित मत के स्वामी जी पहले ही विरोधी थे और यथा अवसर उस का खंडन करते रहते थे। अतः उन्होंने उन लोगों को चक्रान्कित बनने से रोकना अपना

कर्तव्य समझा। जब वह चासी पहुंचे और लोगों को उनके आने का समाचार विदित हुआ तो २०—२५ ब्राह्मण और कुछ जाट नन्दराम को साथ लेकर स्वामी जी की सेवा में आए। परन्तु अभी एक बात भी न होने पाई थी कि नन्दराम चुपके से खसक गया और गंगा के परले पार चला गया, उसे बहुतेरा बुलाया गया, वह न आया और आहार चला गया, इस पर उसकी सारी पोल खुल गई और सब लोग चक्रांकित होने से बच गये।

५६. परमहंस रामकृष्ण

स्वामी राम कृष्ण परम हंस का जन्म ८ फर्वरी १८३६ मौज़ा कामारपुरसो ज़िला हुगली बंगाल में हुआ, उनके पिता श्री खुदी राम चटोपाध्याय श्रद्धालु ब्राह्मण थे। राम कृष्ण बड़े होकर बहुत से मरहलों से गुज़र कर जब उन्होंने संन्यास धारण किया, परम हँस की पदवी प्राप्त कर ली तो बहुत से मनुष्य उनके जीवन से प्रभावित हुए। उनके सत्संग में आने वालों में से बंगाल का अंग्रेज़ी तालीम याफता, नौजवान नरेन्द्र ख़ास तौर पर कावले ज़िकर है, जो अंग्रजी तालीम के असर से नास्तिक पन की ओर झुक रहा था और परम हंस जी के सत्संग में आकर आस्तक बन गया संन्यास धारण करके स्वामी विवेकानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुआ और अमरीका आदि विदेशों में जाकर प्रचार की धूम मचा दी।

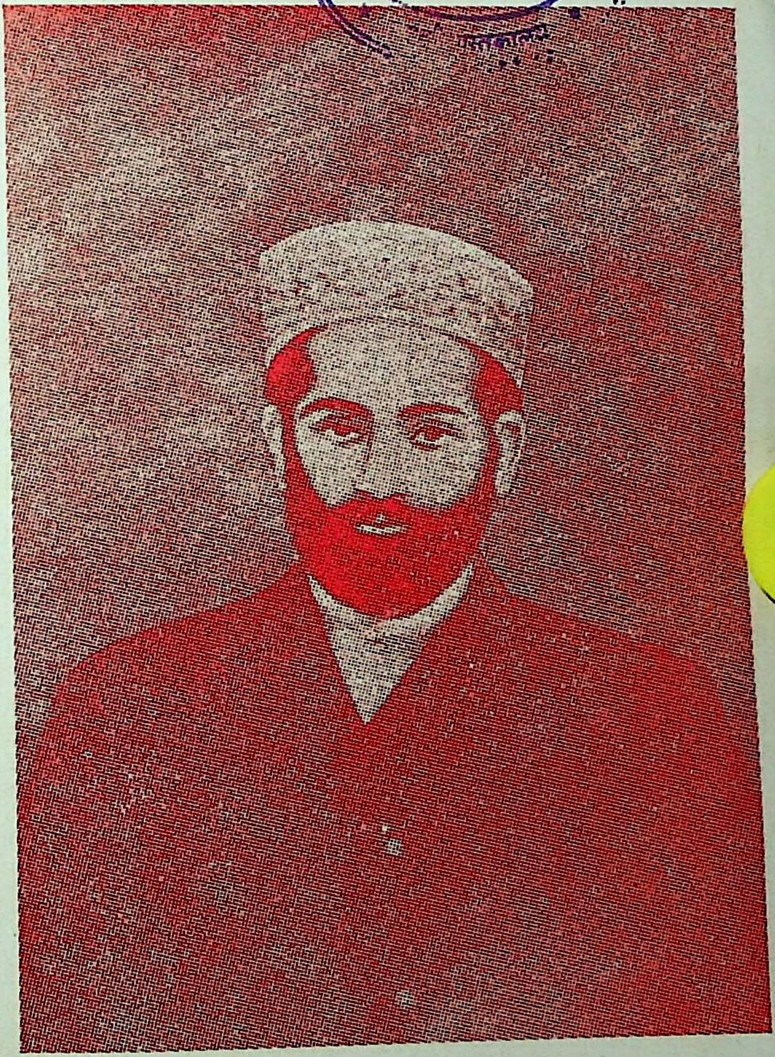
और

इसी तरह महर्षि दयानन्द जी को भी मुंगेर स्टेशन पर जब एक अंग्रेज़ ने केवल एक कौपीन में देख कर नफरत की थी और महाराज के नाम का पता लगने पर क्षमा मांग कर श्रद्धा पूर्वक उन को मान दिया था।

2. महर्षि दयानन्द ज़ी के संसर्ग में आकर भी कई नास्तिक

आस्तिक बन गए थे, नरेन्द्र के जीवन में परमहँस जी के संसर्ग से जो तबदोली आई थी, वही तबदीली पं० गुरुदत्त जी में आई उन का जन्म २६ अप्रैल १८६४ को मुलतान शहर में हुआ था, उनके पिता श्री राम कृष्ण जी फ़ारसी के प्रसिद्ध विद्वान थे। ८ वर्ष की आयु में दाखल हुए। विद्यार्थी जीवन में उन को स्वाध्या की बड़ी लग्न थी, मन को एकाग्र करने के लिए प्राणायाम का अभ्यास भी कर लिया और इससे शक्ति प्राप्त करके वह बड़ी बड़ी किताबों को शीघ्र याद कर लेते थे।

पं० गुरुदत्त जी २० जून १८८० में आर्य समाज में प्रविष्ट हो गये, सत्यार्थ प्रकाश ने उनके जीवन को ही पलट दिया, गुरुदत्त जी के जीवन में आरम्भ से ही एक आकर्षण था। जो उनको मिलता मित्र बन जाता था, आर्य समाज में उनका बड़ा मान था। उन को लोग yong phillosopher. कह कर याद किया करते थे, अब उन्होंने योगाभ्यास करना भी आरम्भ कर दिया था और उन्होंने फ्री डिबेटिंग क्लब बना डाली। सन् १८८१ में लाहौर गवर्नमैंट कालेज में आकर दाखल हुए, उस समय सारे पंजाब में सिर्फ यही एक कालज था, डिवेटिंग क्लब के ज़रिये गुरुदत्त जी ने कितने ही नवयुवक विद्यार्थियों को आर्य समाज की ओर आकृष्ट किया। फिर गुरुदत्त जी, महात्मा हसराज जी, लाला लाजपतराय जी ने मिल कर अंग्रेजी में The Regenarator of Arya varta अख़बार निकाला १८८३ में अंग्रेजी की बदुत सी किताबें पढ़ने से उनका झुकाओ नास्तिकता की ओर होने लग गया। परन्तु इसी साल अचानक सूचना मिली कि महर्षि जी अजमेर में बोमार पड़े हैं। तो लाहौर समाज की ओर से श्री जीवनदास जी वा पं० गुरुदत्त जी को स्वामी जी की सेवा के लिए भेजा गया। महर्षि जी का इलाज होता रहा परन्तु आराम न आया, सारा शरीर छालों से भरा पड़ा



पण्डित गुरु दत्त
1864 – 1890

थे। और शरीर बहुत दुर्बल हो चुका था, हरेक सांस के साथ लाखत दर्द भी होता था, इतना भारी कष्ट होने पर भी महर्षि के मुंह से आह तक नहीं निकलती थी, सचमुच आश्चर्य ही तो था रुदत्त जी हैरान हो रहे थे, बड़े ध्यान से महर्षि की ओर देखते थे, र उनकी समझ में न आता था कि यह अद्भुत महा व्यक्ति स प्रकार शान्त है। इतना कष्ट है फिर भी शान्त है, परन्तु र्षि के प्राण त्यागते समय जो दृश्य गुरुदत्त जी ने देखा वह उन नास्तिकता की मैल को धो कर उनको दृढ़ आस्तिक बना गया। जब महर्षि ने प्राण त्यागते समय यह शब्द कहे-"हे दयामय, हे सर्वशक्तिमान ईश्वर तेरी यही इच्छा है,"तेरी इच्छा पूर्ण हो"अहा! ने अच्छी लीला की"। बस महर्षि के ये अन्तिम शब्द सुनकर पं० रुदत्त जी मन्त्र मुग्ध हो गये और उनका ईश्वर पर दृढ़ विश्वास हो गया। बी.ए. की परीक्षा में पं०गुरुदत्त जी अव्वल आए और महात्मा सराज जीदोयम रहे। सन् १८८६ में पंडित जी ने एम.ए. की परीक्षा जिक्स के मज़मून में पास करके रिकार्ड कायम किया। इस के साथ थ वह वैदिक धर्म का प्रचार और डी.ए. वी. कालेज के लिए काम रते रहे, एम. ए. पास करने के बाद पंडित गुरुदत्त जी गवर्नमैंट लिज लाहौर में साइंस के प्रोफ़ैसर बनाये गये। तीन वर्ष प्रोफ़ेसर हने के बाद जब उन्होंने देखा कि इस काम से आर्य समाज के चार और योगाभ्यास में रुकावट पड़ती है तो यह भी छोड़ या। गवर्नमैंट कालेज से इस्तीफा देने के बाद समाज के सदस्यों गुरुदत्त जी के निर्वाह के लिए प्रबन्ध करना चाहा, परन्तु उन्होंने फ़ इन्कार कर दिया. क्योंकि वह अपने उपदेश को बेचना नहीं हते थे। फिर महर्षि का वेद भाष्य पढ़ना आरम्भ कर दिया, र उन्होंने अपने घर पर ही एक उपदेषक श्रेणी खोल दी, त से नौजवान इस में आकर पढ़ने लगे। पंडित गुरुदत्त जी बड़े

सफल वक्ता थे, केवल अंग्रेजी और हिन्दी के नहीं अपितु संस्कृत के भी सफल वक्ता थे, फिर उन्होंने वैदिक मैगज़ीन नाम का अंग्रेजी अखबार निकालना शुरू कर दिया और पंडित जी के युक्त लेखों से इस पत्र की धूम न सिर्फ़ भारत वर्ष में विदेशों में भी मच गई। आर्य समाज के काम और वैदिक धर्म के प्रचार की लग्न में उन्होंने अपने शरीर की परवाह न की और बीमार पड़ गये, वह इतना काम करते थे कि ४८ तक एक मिनट भी न सोते थे, अतः उन को टी. बी. हो गया, के मित्रों ने बहुत इलाज कराया, पहाड़ों पर भी ले गये, दुर्बल होने पर भी आप पिशावर आर्य समाज के जलसे पर चले परिणाम यह हुआ कि लाहौर पहुँच कर चारपाई पर लेट और बहुत ईलाज कराने पर भी १९ मार्च १८९० को इस शरीर को त्याग दिया। केवल ३६ वर्ष की भरपूर जवानी में असार संसार से चल दिये। उन्होंने अंग्रेज़ी में बड़े मार्के की पु लिखीं, जिनको पढ़ कर अंग्रेजी पढ़े लिखे अपने धर्म पर दृढ़ पाये। उनकी सब किताबों को इकट्ठा करके छपवा कर उनका रखा गया "Works of pt. Guru Datt"।

२. परम हंस राम कृष्ण जी ईश्वर भक्त अवश्य थे, किसी विद्या के विद्वान न थे, बल्कि यहां तक कि वह अपना भी नहीं लिख सकते थे, जैसा के स्वयं उनके परम शिष्य विवेकानन्द जी ने एक जगह लिखा है—"He Was without any book learning whatsoever with his g Itellect never Could he write his own Name"

और

महर्षि दयानन्द जी जहाँ परमहंस की तरह ईश्वर भक्त थे, उसके साथ ही पूर्ण विद्वान भी थे और संसार भर के विद्वानों

लिज करते रहे। क्या संस्कृत में, क्या फ़िलासफी में क्या साईंस का संसार में किसी भी पुरुष को उनका चैलिंज स्वीकार करने की हिम्मत न हुई। अगर किसी ने किया भी तो मुँह की खाई। वर्ष जब कलकत्ता गये थे, तो परमहंस रामकृष्ण जी और नरेन्द्र ने महर्षि का सत्सँग भी किया था, नरेन्द्र जी महर्षि के न और सत्संग से भी बहुत प्रभावित हुए थे, और उनको महर्षि दर्शनों से ही संन्यास धारण करने की प्रेरणा मिली थी।

६०. गुरु नानक देव जी

तकरीबन ५०० वर्ष हुए तलवण्डी नाम के छोटे से ग्राम में (जिसका नाम अब ननकाना साहब है जो इस वक्त पाकिस्तान के जिला शेखूपुरा में है) मेहता कालूराम वेदी के घर गुरु नानक देव का जन्म हुआ। जिस समय नानक देव जी पैदा हुए, उस वक्त देश में मुग़ल राज्य स्थापित हो चुका था। और बाबर का समय काल था। उस समय पंजाब के हिन्दुओं की क्या हालत थी, उसका ज़िकर नानक प्रकाश नामी पुस्तक में निम्नलिखित शब्दों में वर्णन है।

"सैयद, शेख, मुग़ल, पठान वगैरह जितने भी मुसलमान थे। वह हकूमत के ज़ोर पर ज़ालिम बन चुके थे। वह सब लोग हिन्दुओं पर बड़े बड़े जुल्म ढाते थे। उनको बहुत दुख देते थे, मन्दिरों को गिराते थे। घोर नाथ जैसे औघड़ साधू और पं० दत्त जैसे विद्वान् पंडितों को मरवा डाला गया। और उन का माँस चीलों के आगे फेंक दिया गया। हिन्दुओं को दीवारों के साथ कील ठोक कर लटका दिया जाता। और ऐसी हालत में उनका खून माँस सब सूख जाता। कइयों को कच्चे चमड़े में मढ़ दिया गया। अनेकों को कुत्तों से नुचवा दिया गया। जिन्होंने मुसलमान बनना स्वीकार न किया उनको असह्य दुख दिये। और मरवा डाला गया। यज्ञ हवन करने

की मनाही कर दी गई। जो फिर भी हवन यज्ञ करता उसको कड़ी सज़ा दी जाती। जिसकी लड़की या औरत सुन्दर नज़र आती, मुसलमान उसको पकड़ ले जाते और जबरदस्ती उससे विवाह कर लेते थे काज़ी लोग जिनके हाथ में न्याय की बाग डोर थी। वह रिश्वत लेकर सच को झूठ और झूठ को सच बना डालते थे।"

ऐसे समय गुरु नानक देव जी का जन्म हुआ। और गुरु नानक देव जी ने वैदिक धर्म का प्रचार ही अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया। इस लिए भाई गुरदास जी ने गुरु साहब के जीवन का उद्देश्य लिखते हुए कहा है, गुरु जी का जन्म पूर्ण मासी को हुआ था।

सत् गुरु नानक प्रगटया, मिटी धुन्ध जग चानन होया।
ज्यों कर सूरज निकलया, तारे छिपे अन्धरा खोया॥

गुरु नानक जी ने बाला और मरदाना दो रवाबियों को साथ लेकर पद यात्रा करते हुए अपना प्रचार आरम्भ किया। और दूर दूर तक प्रचारार्थ गये। गुरु नानक देव जी और दूसरे गुरु साहबान ने जिन सिद्धान्तों का प्रचार किया वह निम्नलिखित हैं। पहला सिद्धान्त वेद ईश्वरकृत हैं और वेद सत्य ज्ञान का भण्डार है।

१. ओंकार वेद निर्मये। अर्थात् ओं नाम वाले परमात्मा ने वेदों का निर्माण किया।

(२) असंख्य ग्रन्थ मुख वेद पाठ। (जपजी साहब)
(३) पातालां पाताल लख आगासां अगास।
ओड़क ओड़क भाल थके वेद कहन इक बात।

अर्थात् प्रभु की रचना अनन्त है। बेशुमार ब्राह्माण्ड आकाश और पाताल हैं। ईश्वर की रचना का पार पाने के लिए दुनियां ने बड़ा ज़ोर लगाया। तलाश कर कर के थक गये, परन्तु उस अनन्त का पता न लगा सके। अतः वेद ही एक बात कहते हैं। (जिससे अनन्त का ज्ञान हो सकता है)

(४) गावन् तुध नूं पंडित पढ़न रखेश्वर जुग जुग वेदा नाले।
(जपजी साहब)

अर्थात् हे प्रभु बड़े बड़े विद्वान पंडित ज्ञानी और योगी तेरी महिमा का गान करते हैं, और बड़े बड़े ऋषि मुनि हर युग और हर ज़माने में वेदों द्वारा तेरी सत्यविद्या का गान करते हैं।

६१. गुरु अर्जुन देव जो पांचवें गुरु फ़रमाते हैं—

वेद व्याख्यान करत साधु जन,
भाग हीन समझत नहीं खल।

अर्थात् संसार के महापुरुष सन्त महात्मा साधु जन वेद का व्याख्यान करते हैं। और संसार के कल्याण के लिए वेदोपदेश करते हैं। परन्तु अभागे मूर्ख लोग अपनी मूर्खता के कारण कुछ समझ नहीं पाते।

६२. भाई गुरुदास जी जिन्होंने ग्रन्थ साहब लिखा था, उसने अपनी वारों में बड़े बड़े सुन्दर शब्दों में कहा—

युग गर्दी जब होय है, उल्टे जग का होय वरतारा।
उठे ग्लानि जगत विच, वरते पाप भ्रष्ट संसारा॥
वर्ण आवर्ण न भावनी, खै खै जलन बांस अँगयारा।
निन्दया चाले वेद की, समझन नहीं अज्ञान गुबारा॥
वेद ज्ञान गुरु हट है, जिस लग भवजल पार उतारा॥

अर्थात जब उल्टे दिन आते हैं, जब ज़माना बदलता है, जब देश और जाति में गिरावट शुरू होती है तो उस समय लोगों की बुद्धि उल्टी हो जाया करती है, समाज में नफ़रत फैल जाया करती है। फूट घर घर में डेरा जमा लिया करती है, मन में पाप और खोट भर जाया करते हैं। संसार आचार भ्रष्ट हो जाया करता है

दुनियां सत्य मार्ग से भटक कर कुमारग में चलने लग जाया करती है। वर्णाश्रम मर्यादा टूट जाया करती है। लोगों की धर्म भावना मिट जाया करती है। आपस में ईर्षा द्वेष इतना बढ़ जाता है कि लोग आपस में बाँसों की तरह एक दूसरे के साथ रगड़ कर जलने लग जाया करते हैं। द्वेष की आग में जल कर कोयला हो जाते हैं। फिर ईश्वर ज्ञान वेद की निन्दा शुरू हो जाती है। अज्ञानी लोग अविद्या और अन्धकार में पड़ कर बुद्धिहीन हो जाते हैं। वरना वेद ज्ञान तो गुरू हट या ईश्वर का सत् ज्ञान है। जिस को प्राप्त कर जिस के अनुकूल आचरण बना कर मनुष्य भवसागर से पार हो जाया करते हैं।

दूसरा सिद्धान्त ईश्वर का स्वरूप और उसका ओ३म् नाम्

१. जन्मे न मरे आवे न जाए, नानक का प्रभु रहा समाय।

२. एको सिमरो नानका जो जल थल रहा समाय।
दूजा काहे सिमरिए, जो जम्मे ते मर जाए

जप जी साहिब की पहली पौढ़ी

एक ओंकार सत्नाम कर्ता पुरख निर्भो, निर्वैर, अकाल
अमूर्त अजूनी सेभंग, गुर प्रसाद आद सच्च,
जुगाद सच्च, है वो सच्च, नानक होसी वी सच्च।

६३. गरू अमरदास जी, तीसरे गुरू का कथन—

१. वेदों में नाम उत्तम सो सुने नाहिं,
फिरे जियों वेतालया, कहे नानक जिन सचचा तजया।
कूढ़ लगे तिन जनम जूए हारिया।

(आनन्द वाणी महल्ला ३)

अर्थात् वेदों में प्रभू नाम की महिमा उत्तम प्रकार से कही

गई है। उस को तो ध्यान से कोई सुनता नहीं। वेतालों और पागलों की तरह इधर उधर भटक रहा है। जो सच्च को त्याग कर झूठे सिद्धान्तों को मान रहे हैं उनका जन्म मानो जूए में हार गया।

२—दीवा बले अंधेरा जाए, वेद पाठ मत पापां खाए।
उगवे सूर न जावे चंद, जेहा ज्ञान अज्ञान मिटन्त ॥

(राग सोनो महल्ला ३)

अर्थात जिस तरह दीपक जलने से अंधेरा दूर हो जाता है, इसी तरह वेद का पढ़ना पढ़ाना, सुनना सुनाना, बुद्धि के पापों को नष्ट कर देता है। सूर्य का प्रकाश होने से जैसे चन्द्रमा दिखाई नहीं देता ऐसे ही जहां वेद ज्ञान का प्रकाश होता है वहाँ से अज्ञान अंधकार नष्ट हो जाता है।

गुरु नानक देव जी एक बार भ्रमण करते हुए हरद्वार पहुंचे तब गंगा में नहाते हुए लोगों को देखा कि वह हाथों में पानी ले कर सूर्य को दिखा कर फिर पानी में फैंक रहे हैं। तब गुरु साहब ने गंगा में से जल उठा-उठा बाहर फैंकना शुरु कर दिया। तब लोग हैरान हो कर पूछने लगे आप यह क्या करते हैं, तब गुरु जी ने उत्तर दिया--कि करतारपुर में मेरे खेत हैं, मैं यह पानी वहाँ पहुंचा रहा हूँ। तब सब लोग हंस कर कहने लगे महाराज यह कैसें हो सकता है कि यहाँ का फैंका हुआ पानी करतारपुर पहुंच जावे। तब गुरु जी ने कहा—यदि मेरा डाला हुआ पानी करतारपुर नहीं पहुच सकता तो आप का यहाँ डाला हुआ पानी आप के पित्रों को परलोक में कैसे पहुंच सकता है। इस पर सब लोग शर्मिन्दा हो गए।

और महर्षि दयानन्द

जी भी गंगा के किनारे विचरते हुए जब सौरों ठहरे हुए थे तो एक दिन उन्होंने ये देखा कि लोग चुल्लू भर-भर कर पानो

उठाते हैं और फिर गंगा में फैंक देते हैं। तो उन्होंने लोगों से पूछा— कि यह कौतुक तुम क्या करते हो तो उन्हींने कहा परलोक गत पित्रों को पानी देते हैं। महाराज ने हंस कर कहा कि मूर्खो यदि यही पानी किसी पेड़ की जड़ में डालो तो वह हरा हो जाए। पानी में पानी फैंकने से क्या लाभ, और फिर यह परलोक गत पित्रों को न पहुंच कर गंगा में ही मिल रहा है।

इन उपरोक्त प्रमाणों से स्पष्ट हो गया कि वैदिक धर्म के जिन सिद्धान्तों का, अर्थात एक ईश्वर वाद, ईश्वर का ओं नाम, ईश्वर का जन्म मरण से रहित होना और वेद का अपौरषेय और सर्वश्रेष्ठ ज्ञान होने का मान्य और प्रचार, गुरु नानक देव जी, गुरु अमरदास जी, गुरु रामदास जी, गुरु अर्जुन देव जी और गुरु ग्रन्थ साहिब के लेखक भाई गुरदास जी ने किया था इन्हीं वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार वेद के आधार पर महर्षि दयानन्द जी महाराज ने अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया था और सैंकड़ों मुसीबतें और कष्ट सहन करते हुए एकाएकी निर्भय हो कर सारी आयु प्रचार करते रहे जो इस पुस्तक के पाठक भली प्रकार पढ़ेंगे।

६४. गुरु तेग बहादुर

औरंगज़ेब बादशाह के ज़माने में खुले आम गौ घात होता जब हिन्दुओं को जबरदस्ती मुसलमान बनाया जाता और उनके तिलक और ज़ंजु यानि यज्ञोपवीत ज़बरदस्ती उतरवाये जाते थे। उस वक्त बहुत बड़ी तादाद में हिन्दु इकठ्ठे होकर गुरु तेग़ बहादुर साहिब क पास आनन्द पुर साहिब म गये। और प्रार्थना की कि आप धर्म की रक्षा करें।

"और फिर गुरु तेग़ बहादुर जी ने देहली जाकर धर्म की खातिर सीस दे दिया।"

गुर गोबिन्द सिंह जी ने विचित्र नाटक में कहा है—

तिलक जंजू राखा प्रभु ताका,

कीन्हेउ बड़ो कलू में साका ।

अर्थात् परमात्मा ने, गुरु तेग़ बहादुर जी के तिलक और जंज की रक्षर की, इस तरह सब हिन्दुओं का और अपना यज्ञोपवीत जो वेदिक धर्म का प्रसिद्ध चिन्ह है, उसको बचाने के लिए गुरु तेग़ बहादुर जो को बलिदान होना पड़ा ।

स्वामी दयानन्द जी महाराज जब कलकत्ता गये, तो वहां उनके व्याख्यान आरम्भ होने से हल चल सी मच गई और शहर के सब मान्यवर और प्रतिष्ठित सज्जन पढ़े लिखे विद्वान उनके व्याख्यानों को सुनने आते थे । ब्रह्म समाज का कलकत्ता शहर में काफ़ी ज़ोर था और उन दिनों ब्रह्म समाज के नेता श्री केशव चन्द्र सेन अंग्रेज़ी के बड़े विद्वान् और वक्ता थे । लेकिन उनका झुकाव बहुधा ईसाई मत की ओर था । और वह ब्रह्म समाज के मैम्बरों की ईसाईयत की तर्फ़ झुकाने के लिए बड़ा प्रयत्न कर रहे थे ।

औरंङ्गजेब के ज़माने में तो मज़हबी तअस्सुब के बाईस ज़बरदस्ती यज्ञोपवीत उतारे जाते थे । लेकिन अंग्रज़ी राज काल में तो युक्ति के बल से यज्ञोपवीत उतरवाने का आन्दोलन चल रहा था । अतः उन्होंने उन दिनों यज्ञोपवीत के ख़िलाफ़ बड़ा भारी आन्दोलन जारी कर रखा था । और उनके ज़ेर असर कई लोग यज्ञोपवीत उतारने की बातें सोच ही रहे थे, कि स्वामी जी कलकत्ता, जा पहुचे और उनके व्याख्यानों को सुनकर कलकत्ता के बड़े प्रसिद्ध विद्वान चक्रवर्ती बाबू ने स्वामी जी से पूछा कि यज्ञोपवीत पहनना चाहिए या उतार देना चाहिए जैसा कि केशब बाबू कहते है । तो स्वामी जी ने कहा कि हरगिज़ नहीं उतारना चाहिए । यज्ञोपवीत अवश्य ही पहना चाहिए । अतः स्वामी जी महाराज के ऐसे उपदेशों से

सैंकड़ों लोगों के यज्ञोपवीत उतरने से बच गये । इस तरह महर्षि भी अपनी ज़िन्दगी में यज्ञोपवीत की रक्षा करते रहे । बल्कि जो लोग यज्ञोपवीत नहीं पहनते थे । ऐसे हज़ारों लोगों को उन्होंने यज्ञोपवीत पहना दिये, यू. पी. के वड़े बड़े ज़मीदारों और ठाकरों को भी जिन के पहले यज्ञोपवीत न थे उनके यज्ञोपवीत संस्कार कराते रहे। जिस तरह गुरु तेग बहादुर जी ने यज्ञोपवीत की रक्षा की । ऐसे ही महर्षि जी ने भी यज्ञोपवीत की रक्षा की।

भक्त काण्ड समाप्त

———

९. राज काण्ड

६५. राजा हरिश्चन्द्र

सत्युग में रघुकुल में राजा हरिश्चन्द्र जी हुए हैं, जिन्होंने अपने प्रतिज्ञा पालन रूपी धर्म पर अपना सर्वस्व दान कर दिया। राज पाट दान करने के बाद अपने आप और अपनी महारानी तारा को भी संकट में डाल दिया। परन्तु धर्म से मुख न मोड़ा। इस लिए लाखों वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी इनका नाम सूरज की तरह चमक रहा है। किसी शायर ने भी कहा है—

राजा हरिश्चन्द्र दानी, धर्म जिन बड़ी चीज़ जानी।

और

दान की महिमा करते हुए मनु भगवान—मनुस्मृति में लिखते हैं—

सर्वेषाम् एव दानानाम् ब्रह्म दानं विशिष्यते।

अर्थात्—अन्न, जल, गौ, भूमि, कपड़ा तिल, सोना, घी, इन सब दानों से बढ़ कर ब्रह्म का दान है और उपनिषद्कार कहते हैं—

"सत्य नाम ब्रह्म" अर्थात सत्य का नाम ही ब्रह्म है। अर्बी जबान में भी सत्य का वाचक 'हक' शब्द परमेश्वर के लिए इस्तेमाल किया गया है। सत्य को पाने के लिए कितनी मेहनत करनी पड़ती है, और उस को पाने का क्या तरीका है। यह यजुर्वेद के मन्त्र में बताया गया है—

"व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षामाप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणया श्रद्धयामाप्नोति, श्रद्धया सत्यमवाप्नुयात् ।।

अर्थात्—सत्य को प्राप्त करने के लिए पहले व्रत धारण करना पड़ता है, तब वह इस मार्ग में दीक्षित होता है । दीक्षित होने पर जिज्ञासु के अन्दर श्रद्धा उत्पन्न होती है और श्रद्धा से फिर सत्य का दर्शन होता है । फिर यजुर्वेद ४०वां अध्याय का मन्त्र सत्य के जिज्ञासु के लिए एक मार्ग और बताता है—

"हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत्वं पूषण आवर्णू सत्य धर्माये दृष्टये ।।

अर्थात सत्य सुनहरी पात्र में ढका हुआ है, इस सुनहरी पात्र के ढकने को उठाने से सत्य के दर्शन होते हैं । ऐसे ही शब्दों में मशहूर फिलास्फर रसकन कहता है—"बगैर मेहनत से सत्य का ज्ञान नहीं हो सकता । न ही सत्य का विषय पुस्तकों में लिखा जा सकता है । सत्य कहीं बिकता भी नहीं । सत्य को पाने के लिए प्रत्येक मनुष्य को स्वयं परिश्रम तथा तप करके इसको कूट कर छिलकों से निकालना चाहिए बिना स्वय तप तथा परिश्रम किये सत्य नहीं मिलता ।

रसकन से सैंकड़ों वर्ष पहले यूनान के मशहूर फ़िलास्फ़र अफ़लातून ने कहा था । "सत्य को सीखने के लिए मनुष्य को सात वर्ष चुप चाप अन्बेशन में खर्च करने चाहिए । परन्तु १४ वर्ष यह बात सीखने की आवश्यकता है । कि वह सत्य किस प्रकार अत्यन्त ही सुन्दरता से भली भांति दूसरों के मस्तिष्क बिठाया जा सकता है । सत्य की खोज अत्यन्त कठिन है । वह कठिन तपस्या और परिश्रम चाहता है । मनुष्य स्वाभाविक आराम पसन्द है, और आसानी पसन्द है । इस लिए सत्य को तलाश करने की मेहनत से

कतराता है और मनुष्य के अन्दर सत्य को पाने की ज़बरदस्त इच्छा भी रहती है। क्योंकि यह इन्सानियत का धर्म हो हैं।

किसी अंगरेज फ़िलास्फ़र ने भी कहा है– Search after truth is the moblest Profession of mankind its Puplication a duty.

और

महर्षि दयानन्द जी महाराज ने जिस सत्य को १४ वर्ष कठिन तपस्या करके योग साधन करके फिर तीन वर्ष तक गुरु विरजानन्द जी के चरणों में बैठ कर प्राप्त किया। और फिर एक वर्ष उसी सत्य के प्रचार के लिए अपने आप को तयार करते रहे। अफ़लातून के हिसाब से भी अधिक समय २६ वर्ष तक मेहनत करके जिस सत्य को पाया। उस सत्य को सर्व साधारण को बिना संकोच निष्पक्ष और निष्कपट हो कर दिन रात दान करते रहे। ऐसे महान सत्य को जिस कठिनता से प्राप्त किया था। इससे बढ़ कर तकलीफें, मुसीबतें, उठा कर ईंट पत्थर खाकर, ज़हर पीकर, अपमानित होकर भी संसार के प्राणी मात्र के लिए दान करके भर्त्री हरि के इस श्लोक को चरित्रार्थ कर गये।

निन्दन्तु नीति निपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्यायत्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

अर्थात् कोई निन्दा करे या स्तुति, लक्ष्मी आवे या चली जावे, आज हो मौत आ जावे, या युगान्तर की आयु मिल जावे, धीर पुरुष का कदम सत्य पथ से विचलित नहीं हाता।

६६. महाराज कुमार कौत्स

हमारे प्राचीन इतिहास में एक कथा आती है, कि वरतन्तु

वह सब उनके विचार धरे के धरे रह गये, और एक क्षण में के आदेश से इनका जीवन लक्ष सदा के लिये स्थिर हो गया।

३, दक्षिणा देने वाला निकला था घर से सच्चे शिव तालाश और मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के लिये गुरु दक्षिणा अपना तन मन देकर इसने अपने कर्त्तव्य से बता दिया कि उ मत्यु को पछाड़ कर सच्चे शिव को पा लिया है। अथवा स शिव को प्राप्त कर मृत्यु पर विजय प्राप्त कर ली है। अपने आ को भुलायो, सच्चे शिव को पाया। ज्ञानी गुरु के चरणों में ह जीवन अर्पण कर सकता है, निश्चय ही वह संसार सागर पार कर सदा शिव के पास पहुंच जाता है।

जब गुरु आज्ञा पाकर दयानन्द ने पाखण्ड खंडन कर आरम्भ किया, तो उनके सहपाठी पंडित युगल किशोर जी ने गु विरजानन्द जो से उनकी शिकायत की। अतः जब दण्डी जो ने सुना कि दयानन्द अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर रहा है तो वह प्रसन्न हुए, और युगल किशोर से कहा कि दयानन्द ठीक क रहा है। इस पर युगल किशोर ने कहा कि क्या आप दयान के कार्य का समर्थन करते हैं, तो गुरु जी ने कहा—हां, मैं इस समर्थन करता हूं और उसको आशीर्वाद देता हूं। अतः युग किशोर जी ने भी कण्ठी उतार दी और तिलक माथे से पोंछ दिया और विनय पूर्वक कहने लगा, महाराज गुरुदेव। हमें यह उपदे आपने क्यों नहीं दिया—तो गुरुदेव कहने लगे—

"तुम इस बोझ के धारण करने में समर्थ नहीं हो"

गुरु विरजानन्द की बाहर की आंखें न थीं परन्तु उन्हों अपनी अन्तरंग आंखों से दयानन्द को देखा और समझा था। तभी इससे जीवन दान मांगा था, जो तुरन्त मिल गया।

अपूर्व गुरु दक्षिणा मांगने वाले गुरु की जय। बिना विलम्ब अपूर्व दक्षिणा देने वाले शिष्य की जय।

महाराणा राजसिंह, शिवाजी, गुरु गोबिन्द, बन्दाबहादर

१. महर्षि दयानन्द जी ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश ११ वें समुल्लास में एक राजनीतिक सत्य का भी प्रकाश किया आप लिखते हैं— "इस परमात्मा की सृष्टि में अभिमानी, अन्यायकारी, अविद्वान लोगों का राज्य बहुत दिन नहीं चलता और यह संसार की स्वाभाविक प्रवृति है कि जब बहुत सा धन असंख्य प्रयोजन से अधिक होता है, तब आलस्य पुरुषार्थ रहितता। ईर्षा, द्वेष, विषयासक्ति और प्रमाद बढ़ता है, इस से देश में विद्या, सुशिक्षा नष्ट हो कर दुर्गुण, दुर्व्यसन बढ़ जाते हैं। जैसे कि मद्य मांस सेवन, बाल अवस्था में विवाह और स्वेच्छाचार आदि और जब युद्ध विभाग में युद्ध विद्या कौशल और सेना इतनी बढ़े कि जिस का सामना करने वाला भूगोल में दूसरा न हो, तब इन लोगों में पक्षपात अभिमान बढ़ कर अन्याय बढ़ जाता है। जब यह दोष आ जाते हैं तब आपस में विरोध हो कर अथवा उन से अधिक कोई ऐसा समर्थ पुरुष खड़ा हो जाता है, कि उनका पराजय करने में समर्थ हो जाता है। जैसे--मुसलमानों की बादशाही के सामने शिवा जी और गुरु गोबिन्द सिंह जी ने खड़े हो कर मुसलमानों के राज्य को छिन्न भिन्न कर दिया।"

२. आठवीं सदी के शुरू में मुहम्मद बिन कासम के हमले से लेकर औरंगज़ेब तक मुसलमान भारत पर हकूमत करते रहे। और इस लम्बे अर्से में उन्होंने हिन्दुओं पर बेगनाह ज़ुल्म किये। गौ हत्या, हिन्दुओं को जबरदस्ती मुसलमान बनाना, हिन्दु औरतों को जबरदस्ती अपने घरों में डाल लेना और हिन्दुओं पर जज़िया लगाना, यह तकरीबन तमाम ही मुसलमानों के राज्य में यहां

चलता रहा। दरमियान में अकबर ने आकर गौ हत्या बन्द कर दी थी और जज़िया भी हटा दिया था। परन्तु इस के बाद इसके जानशीन फिर पुरानी चाल पर चलने लग पड़े थे। और औरंगजेब ने तो अपने राज्यकाल में ख़ुल्म करने की हद कर दी थी। भला जो मनुष्य अपने बाप को कैद कर सकता है, अपने सब सगे भाईयों के खून से अपने हाथ रंग सकता है और जो अपने ही हम मज़हबों पर केवल अकीदा के भेद से अत्याचार करने में पसोपेश नहीं करता। उसने हिन्दुओं पर जिनको वह काफ़र समझता था, कितने भयंकर अत्याचार किये होंगे, यह बात आसानी से समझ में आ सकती है। औरंगजेब कट्टर सुन्नी मुसलमान था। वह दूसरे धर्मों से न केवल घृणा ही करता था। बल्कि उनको समाप्त कर देना चाहता था, हिन्दु तो ख़ास कर उस की धर्मान्धता का निशाना बने हुए थे। उनको ज़बरदस्ती मुसलमान बनाया जाता था। इन पर जज़िया लगाया जाता था, (मजहब इस्लाम में जज़िया उस टैक्स को कहते हैं, जो ना मुसलमनों पर लगाया जाता है और मुसलमान होने पर माफ़ कर दिया जाता है) हिन्दुओं को सरकारी नौकरियों से निकाल दिया गया, उनके मन्दिर गिराये जाने लगे और गौ घात ज़ोरों पर होने लगा, दक्षिण में तीनों मुसलमान राज्य अहमद नगर, बीजापुर और गोलकण्डा, यह तीनों ही शीया थे। इस लिए औरंगज़ेब सुन्नी होने के कारण उनको भी बरदाश्त करने को तैयार न था। अतः इसने तीनों राज्यों को समाप्त कर दिया। चूंकि हर क्रिया की प्रति क्रिया होतो है, इसलिए औरंगज़ेब के इस हद से बढ़े हुए ज़ुल्म को मिटाने के लिए इस देश में तीन शक्तियां जाग उठीं, जिन्होंने इस देश से मुगल राज्य का ख़ातमा कर दिया।

६७. मेवाड़ का राणा राजसिंह

महाराणा प्रताप का पोता महाराणा राजसिंह इन दिनों मेवाड़ की गद्दी पर था, जब कि औरंगज़ेब अपने सब खानदान का सफ़ाया करके दिल्ली के तख़्त पर बैठा। जब औरंगज़ेब ने फिर जज़िया टैक्स लगाया, तो महाराणा राजसिंह ने औरंगज़ेब को एक खत लिखा, जिसमें उसने लिखा कि अगर परमात्मा को रब्बुल आलमीन यानी सब दुनियां का रब मानते हो तो जज़िया लगाने का कोई प्रयोजन नहीं और अगर तुम रब को रब्बुल मुसलमीन मानते हो यानि ख़ुदा मुसलमानों का ही है, और जज़िया लगाया है, तो फिर आम जनता विचारी से जज़िया वसूल न करके यदि हिम्मत है, तो पहले मुझसे जज़िया वसूल करो। इससे औरंगज़ेब बहुत चिढ़ गया, और इस के बाद एक और वाक्य हुआ जिससे औरंगज़ेब ख़ुद अपनी कमान में फ़ौज लेकर आया और मेवाड़ पर चढ़ाई कर दी, परन्तु नाकाम और ना मुराद वापस चला गया। वह वाक्य टाड राजस्थान में इस प्रकार लिखा है :—

"बून्दी रियासत को राजकन्या, जो अत्यन्त सुन्दर और युवा थी, अपने महल के बाग में अपनी सहेलियों के साथ सैर कर रही थी कि एक बूढ़ी मुसलमान औरत कुछ तस्वीरें हाथ में लिए हुए वहां आई और सब लड़कियां वह तस्वीरें देखने लग गईं, इन तस्वीरों में महाराणा राजसिंह को तस्वीर राज कन्या के मन लगी, और उसने मन ही मन में राणा राज सिंह को अपना पति मान लिया। फिर इस औरत ने औरंगज़ेब की तस्वीर दिखाई। जिस पर राजकन्या ने नाखुशी का इजहार करते हुए. इस तस्वीर पर जूता मारा, वह मुसलमान औरत वहां से सीधी औरंगज़ेब के महल में आई और उसने औरङ्गजेब की बेगम और उसकी लड़की को यह वाक्य सुनाया, तब औरङ्गजेब को भड़काया,

कि इस लड़की को फौरन गिरफ्तार करके यहां मंगवाया जावे। बेगम ने कहा मैं इस से मुट्ठी चापी कराऊंगी, और लड़की ने कहा कि मैं इससे हुक्का को चिलम भरवाऊंगी। अतः उस लड़की को लाने के लिए औरङ्गज़ेब ने अपनी कुछ फौज भेजी, बून्दी के राजा को हुक्म दिया कि लड़की को फौरन दरबार में हाजर करने के लिए फौज के हवाले कर दो। बन्दी का राजा छोटा सा था, वह डर गया। उसने अपनी लड़की फौज के हवाले कर दी। इस लड़की को कहीं से पता लग गया कि महाराना राजसिंह नज़दीक ही कहीं शिकार खेलने आया हुआ है। है। उसने एक पत्र महाराना राजसिंह को लिख कर भेज दिया कि मैं अपने मन से आप को पति बना चुकी हूं। अतः मेरा पिता चूंकि औरगज़ेब का मुकाबला नहीं कर सकता मुझ को उसने औरंगज़ेब के पास जाने के लिए उसकी फौज के हवाले कर दिया है। और मैं आपको अपना पति बना चुकी हूं इसलिए आप का धर्म है कि आप मुझे बचावें। अतः महाराना राजसिंह को जब पत्र मिला। उसने उसी दम औरंगज़ेब की फौज पर हमला करके लड़की को छुड़ा लिया और अपनी पत्नी बना लिया। औरगज़ेब को जब इस बात का पता लगा तो वह और भी ग़ज़बनाक हो गया। महाराना के ऊपर लिखे ख्वत से तो वह पहले ही अपनी हत्तक इज्ज़त समझ रहा था अब इस वाक्य से तो उसको आग सी लग गई और वह बज़ाते ख़ुद एक बड़ी फौज़ लेकर महाराना राजसिंह पर चढ़ दौड़ा। परन्तु महाराना भी कोई कच्ची गोलियां न खेले थे। उन्होंने भी औरंगज़ेब को खूब चने चबाए और खुद औरंगज़ेब के कैम्प पर हमला करके औरंगज़ेब की उसी बेगम और लड़की को गिरफ़्तार करके अपने महल में ले आया। बून्दी की राजकन्या को जो अब मेवाड़ की रानी बन चुकी थी, इन दोनों मां बेटियों की प्रतिज्ञा याद थी, अतः उसने औरङ्गज़ेब की बेगम से कहा-कि मेरी

मुट्ठी चापी करो। और उसकी लड़की को कहा—कि हुक्का की चिलम भर लाओ, और यह दोनों काम करवाने के बाद महाराना को कहा कि इनको कैम्प में पहुँचा दो। अतः इन दोनों को कैम्प में भेज दिया गया। यही नहीं बल्कि मुग़लों का सारा लड़ाई का सामान यहां तक कि शाही झण्डा भी जो राजपूतों ने छीन लिया था वह भी वापस भेज दिया। अतः औरङ्गज़ेब ने छः सात महीने मेवाड़ का मुहासरा करके पड़े रहने के बाद और बहुत सा नुकसान उठाने पर राना राज सिंह से गिड़गिड़ा कर माफ़ी मांग कर अपनी जान बचाई। मुग़ल साम्राज्य पर मेवाड़ की ओर से यह एक ज़बरदस्त चोट थी।

६८. छत्रपति शिवा जी महाराज

औरंगज़ेब के बरख़िलाफ खड़ी होने वाली दूसरी ताकत थी छत्रपति शिवा जी महाराज की। शिवा जी का जन्म सन् १६२७ में हुआ। उनके पिता जी का नाम शाह जी भौंसला और उनकी माता जी का नाम जीजा बाई था। इनकी माता इनको बचपन से ही हिन्दू वीरों की प्राचीन गाथाएं सुनाया करती थी, उनके गुरु दादा जी कौन्डे देव ने इन्हें शस्त्र विद्या और घोड़ा सवारी में निपुण कर दिया था। शिवा जी की बचपन से धार्मिक प्रवृत्ति थी और वह साधू सन्तों की बहुत सेवा किया करते थे। इस समय महाराष्ट्र में दो सन्त बहुत प्रसिद्ध थे। एक सन्त तुकाराम थे, और दूसरे समर्थ रामदास जी, शिवा जी सन्त तुकाराम जी के पास अकसर जाया करते थे। एक दिन उन्होंने सन्त तुकाराम जी से कहा—कि मैं भी साधू बनना चाहता हूं। तब उन्होंने शिवा जी को समर्थ रामदास जी के पास जाने को कहा—समर्थ रामदास जी औरंगज़ेब के ज़ुल्म देखकर किसी ऐसे वीर की तालाश में थे जो प्रतिकार कर सके। जब शिवा जी समर्थ रामदास जी के पास गये।

और उन्होंने अपना अभिप्राय प्रकट किया, तो समर्थ रामदास जी को शिवा जी के रूप में वह वार मिल गया। जिसको वह तालाश कर रहे थे। तब उन्होंने औरंगज़ेब को ओर से किये जाने वाले अत्याचारों का इतना मार्मिक चित्र शिवा जी के सामने रखा कि शिवा जी ने समर्थ रामदास जी से पूछा कि फिर मेरा क्या कर्त्तव्य है तब समर्थ रामदास जी ने कहा--कि तुम वीर हो और वीरों की भान्ति इस ज़ुल्म के बरखिलाफ खड़े हो जाओ। अतः शिवा जी ने समर्थ राम दास जी के उपदेश से महाराष्ट्र की बिखरी हुई मरहट्टों की शक्ति को इकट्ठा करना आरम्भ कर दिया और अपने युवक साथियों का एक संघ बना कर सन १६४७ यानि २० वर्ष की आयु में ही इन्होंने तोरान के अहमद शाही किला पर कब्ज़ा कर लिया। फिर राजगढ़, पोरन्धर और रायगढ़ के किलों पर अपना प्रभुत्व जमा लिया। इस तरह उन्होंने मरहट्टां की बिखरी हुई शक्ति को इकट्ठा करके एक विशाल राज्य की स्थापना कर दी, और १८७४ में अपना राज्याभिषेक करके छत्रपति शिवा जी बन गये। और औरंगज़ेब के लिए तो दक्षिण में शिवा जी बहुत बड़े दुश्मन के रूप में दिखाई देने लगे। अतः मुग़ल राज्य के कफ़न में शिवा जी ने दूसरी कील गाड़ दी, शिवा जी एक कुशल, योग्य और सफल सेनापति थे। उन्होंने मराठा जाति का जो रेत के कन के समान बिखरी पड़ी थी एक संयुक्त जाति बना दिया। राजनीति के दाव पेचों में तो चालाक और कपटी मुग़ल भी उनसे पाठ पढ़ते थे। भय तो इन्हें छू तक न गया था। बड़ी से बड़ी मुसीबत में भी उन्होंने हारी हुई बाज़ियां जीतकर दिखाई थीं निजी जीवन में वह अत्यन्त सदाचारी और पवित्र आत्मा व्यक्ति थे। इन्हें अपने धर्म से बड़ा प्रेम था। परन्तु दूसरे धर्मों का भी वह आदर करते थे। विद्वानों का बहुत आदर मान करते थे। महाराना राज सिंह की भान्ति शिवा जी के पास भी उसके कुछ

फौजी औरंगज़ेब की लड़की को जो एक फौज के साथ खज़ाना ले जा रहे थे, पकड़ कर ले आये थे । परन्तु जब शिवा जी के हजूर में इस लड़की को पेश किया गया, तो शिवा जी ने अपने सैनिकों को आज्ञा दी कि इस लड़की को बहुत ही आदर के साथ मुग़ल फौज में जो उनके साथ लडाई करने आई हुई है पहुँचा दिया जावे । अतः शिवा जी की आज्ञा की तामील की गई । और औरंगज़ेब की लड़की को बहुत ही आदर के साथ मुग़ल फ़ौज में पहुँचा दिया गया । यह है अन्तर हमारी सभ्यता में और दूसरी सभ्यता में । जिससे हमें मुकाबला करना पड़ता रहा है । मुग़ल राज्य को समाप्त करने की महाराष्ट्र में यह सफल योजना थी । १४—४—१६८० को शिवा जी का देहान्त हो गया ।

६६. गुरु गोबिन्दसिंह

गुरु गोबिन्द सिंह जी का जन्म दिसम्बर १६६६, मुकाम पटना में हुआ था । इनके पिता जी का नाम गुरु तेग़ बहादुर था । इस समय औरङ्गज़ेब का ज़ुल्मोसितम हद तक पहुँच चुका था । "होनहार बिरवा के होते चिकने पात" की लोकोक्ति के अनुसार बचपन से ही इनकी धर्म भावना और ज़ुल्मोसितम के ख़िलाफ़ लड़ने की स्प्रिट का पता लग गया था । जब वह नौ वर्ष के ही थे । तो एक बार कशमीर के कुछ ब्राह्मण आनन्दपुर साहब में गुरु तेग़ बहादुर के पास आए और मुसलमानों की ओर से किये जाने वाले जुल्मों की कहानियां सुनाईं । तब गुरु तेग़ बहादुर जी इनकी दुख भरी कहानियां सुन कर विचार में निमग्न हो गये । पिता जी को चुप देख कर गोबिन्द राय जी (इन का जन्म नाम यही था) "बाद में इन्होंने खालसा पन्थ की बुनियाद रखने पर अपना नाम गोबिन्दसिंह रख लिया था" पूछने लगे पिता जी क्या कारण है कि आप चुप हैं । तब उन्होंने अपने सुपुत्र को बतलाया कि बेटा ऐसे बड़े अत्या-

चार को हटाने के लिए किसी महापुरुष के बलिदान की आवश्यकता है। तब नन्हें से गोबिन्द राय जी ने पिता जी को सम्बोधन करके कहा—"महाराज इस समय आप से बड़ा महापुरुष कौन है, यह दुखी लोग आप की शरण में आए हैं, इनके दुख को दूर कीजिए।" तब उन्होंने अपने नन्हें पुत्र के परामर्श से प्रसन्न हो कर इन ब्राह्मणों को हौंसला दिया और उनको कहा कि जाओ औरंगज़ेब से कह दो कि हम गुरु तेग़ बहादुर की आज्ञा मानेंगे। इस लिए आप ने जो बात करनी हो उन से करें। अतः गुरु तेग़बहादुर देहली गये और औरंगज़ेब की आज्ञा से इन का सिर कलम कर दिया गया। इस जगह अब चांदनी चौक देहली में गुरुद्वारा सीस गंज मौजूद खड़ा गुरु जी की कुर्बानी और औरंगजेब के ज़ुल्म की दास्तान सुना रहा है। गुरु गोविन्दसिंह जी १३ वर्ष की आयु में गुरु गद्दी पर विराजमान हुए। अस्त्र शस्त्र विद्या के साथ साथ संस्कृत, फ़ारसी में भी कमाल हासल कर लिया था। उन्होंने चण्डी देवी के मन्दिर पर एक बड़ा भारी यज्ञ भी इसी मतलब से किया था कि सब को एक जगह इकट्ठा करके ज़ालम के ज़ुल्म को बन्द किया जावे। अतः इस हवन यज्ञ में सैंकड़ों मन घी और हजारों मन सामग्री डाली गई थी। फिर उन्होंने १६९९ प्रथम बैशाख को आनन्द पुर साहब में खालसा पन्थ की बुनियाद रख कर सिखों को सिंह बना दिया, गुरु जी महाराज पूर्ण सन्त, आलम, फ़ाज़ल, शायर सिपहसालार और मातृ-भूमि के भक्त थे। देश और धर्म के लिए उन्होंने अपना सर्वस्व वार दिया था और अपने रचित विचित्र नाटक में अपने जन्म का कारण वही बतलाया जो भगवान कृष्ण ने गीता में अपने जन्म का कारण बतलाया था। अतः गुरु जी लिखते हैं—

गुरुदेव परमात्मा ने धर्म की स्थापना के लिए हमको इस जगत् में भेजा है और आज्ञा दी कि जाकर धर्म फैलाओ।

जो दुष्ट धर्म के दोखी हैं उनको पकड़ कर पछाड़ दो। ऐ सन्त सज्जनों अपने मन में समझ लो कि इस महान कार्य को पूरा कर देने के लिए हमारा जन्म हुआ है। हमारे जन्म का एक ही उद्देश्य है कि धर्म को चलाओ, सन्त जनों की रक्षा और दुष्टों का जड़ बुनियाद से उखाड़ देना, लोगों की इस प्रवृत्ति को देख कर कि हर महांपुरुष को लोग जल्दी परमेश्वर का अवतार मान लेते हैं। उन्होंने कहा—

हम है परम पुरुष के दासा, देखन आए जगत तमाशा।
जो हम को परमेश्वर उचरें, सो नर नरक कुण्ड में परिहें॥

यानि हम तो भगवान के दास हैं, जो हम को परमेश्वर कहेगा, वह नरक गामो होगा, जिस तरह महाराष्ट्र में मरहटों की बिखरी हुई शक्ति को छत्रपति शिवा जी ने इकट्ठा करके एक नई शक्ति को जन्म दिया था। इसी तरह बल्कि उससे भी अधिक परिश्रम करके गुरु गोबिन्द सिंह जी ने पंजाब के हिन्दुओं को जिनके अन्दर सदियों से मुसलमानों के जोरा जुल्म बरदाश्त करते करते हीनता के भाव पैदा हो चुके थे, फिर से सिंह बना कर यह नारा लगाया कि—

"चिड़ियों से बाज़ मरवाऊं,
सवा - लाख से एक लड़ाऊ,
तब गोबिन्द सिंह नाम धराऊँ॥

और कमज़ोर व बुज़दिल हिन्दुओं को जो क्षात्र धर्म को भूल चुके थे, फिर से क्षात्र धर्म का पाठ पढ़ा कर ज़ालम दुश्मन के सामने शेर बना कर खड़ा कर दिया, गुरु गोबिन्द सिंह जी ने अपने चारों सुपुत्र भी धर्म और देश की बलिवेदी पर बलिदान कर दिये। सारी आयु औरंगज़ेब के जुल्म के बरखिलाफ मर्दानावार लड़ते रहे।

गुरु जी ने कई पुस्तकें भी लिखीं, जिस में विचित्र नाटक और दसम ग्रन्थ, बहुत प्रसिद्ध हैं। इनके धार्मिक विचार भी परमात्मा को निराकार मान कर मूर्ति पूजा आदि से विरुद्ध थे। अतः इनका एक सर्वेया निम्नलिखित है :—

काहू ले पाहन पूज धर्यो सिर, काहू ले लिंग गले लटकायो।
काहू लख्यो हरी आवरची दिशा माहीं,
काहू पछाह को सीस नवायो ॥
काहू बुतान को पूजत है पशु,कोई मरतान को पूजन धायो।
क्रूर क्रिया में उरझयो सभी जग,
श्री भगवान का भेद न पायो ॥

गुरु जी महाराज का चण्डी पाठ और दशम ग्रन्थ ठेठ हिन्दी में लिखे हैं, जिस से उनकी हिन्दी शायरी का परिचय मिलता है। आप फ़ारसी के भी शायर थे। अतः जो खत उन्होंने औरंगज़ेब को लिखा था, जिस में उस को द्वन्द युद्ध के लिए अल्टीमेटम दिया था वह ज़फ़र नामा के नाम से प्रसिद्ध है। इसके फारसी शेर न देकर केवल हिन्दी तर्जमा दिया जाता है। यानि गुरु महाराज औरंगजेब जैसे जालम और ताकतवर बादशाह को इस तरह मुखातब करके लिख रहे हैं, जिस प्रकार महाराना राजसिंह ने इसको पत्र लिख कर बुलाया था कि आओ मुझ से ज़जिया वसूल करो। गुरु जी कह रहे हैं कि बे फ़ायदा सिपाहियों को लड़ाने से क्या मतलब आओ मेरे साथ बल मुकाबिल युद्ध करो। वह इन का पत्र इस प्रकार है :—

(१) खुदाबन्द तेग़ोतब्र और मालिक तीर व सना के नाम से।

(२) खुदाबन्द जो जँग आज़मा सूरमाओं और हवा जैसे तेज़ रफ्तार घोड़ों का मालक है।

(३) वह कि जिसने तुझ को बादशाही दी और मुझ को दीन पनाही दी, यानि धर्म रक्षा का उत्साह दिया।

(४) जिसने तुझ को मकर दिया और तर्क नाज़ो दी और मुझ को सिदको सफ़ा की चाल साज़ो बख्शी।

(५) औरंगज़ेब का नाम तुझे ज़ेब नहीं देता। क्योंकि तख्त को ज़ीनत देने वाले फ़रेबकारी को नज़दीक नहीं आने देते।

(६) तेरी यह तसबीह दानों और धागों के सिवा कुछ भी नहीं है और यह वह जाल है जिस के ऊपर दाने बिखरे होते हैं। (औरंगज़ेब हर वक्त तसवीह (माला) फेरता रहता था)।

(७) तू वह है जिसने अपने बुरे कर्म से बाप की मिट्टी को भाई के ख़ून से गून्धा।

(औरंगजेब ने अपने बड़े भाई दारा शिकोह को क़त्ल कर के उस का सिर अपने बाप शाहजहां को जो उसने कैद कर रखा था, पेश किया था)।

(८) और तूने इससे अपने मिट जाने वाले कच्चे घर की बुनियाद रखी।

(९) मैं अकाल पुरुष की कृपा से वर्षा की तरह लोंहा बरसाऊंगा।

(१०) और इस पवित्र ज़मीन पर वह दीवारें न रह सकेंगी जो तूने बनाई हैं।

(११) तू दक्षिण के पहाड़ों से ना काम आया और मेवाड़ से भी तुझे कड़वा प्याला पीना पड़ा। (यह छत्रपति शिवा जी और महाराना राजसिंह थे जिन्होंने औरंगज़ेब को दुर्गति बनाई थी इस तरफ़ ईशारा है)।

(१२) अब जबकि तूने अपनी नज़र इधर की है, यकीनी तौर पर तेरी तलखी और प्यास मिट जायेगी।

(१३) मैं तेरे पांव के नीचे वह आग रखूंगा कि तुझे पंजाब का पानी पीना भी नसीब न होगा।

(१४) क्या हुआ गीदड़ ने अगर मक्रो फ़रेब से शेर के दो बच्चे मार दिये। (यह गुरु जी अपने दो सपुत्रों अजीत सिंह और जुझार सिंह की तर्फ ईशारा कर रहे हैं, जो जंग में काम आ चुके थे)।

(१५) जब के वह बब्बर शेर तुझसे बदला लेने के लिए ज़िन्दा सलामत है। (यानि मैं मौजूद हूं)।

(१६) मैं तेरा झूठी कस्मों पर इतबार नहीं कर सकता। क्योंकि मैंने देख लिया है, कि तू ख़ुदा और ख़ुदा के नाम की कसमें खाकर भी फिर सकता है।

(१७) तेरी सौगन्ध पर अब मुझे विश्वास नहीं रहा है और मैं देखता हूँ कि तलवार उठाने के सिवा अब मुझे कोई चारा नहीं है।

(१८) अगर तू चालाक भेड़िया है तो मैं भी तुझसे निपटने के लिए एक तेज़ शेर को रिहा कर रहा हूं।

(१९) अगर तूने एक बार फिर मुझसे बात चीत की तो विश्वास रख तुझे सीधी और पाक राह अवश्य मिल जावेगी।

(२०) मैदान में दो सेनाएं युद्ध के लिए तैयार हों। और फिर वह बहुत जल्द एक दूसरे के आमने सामने हो जावें।

(२१)मेरे और तेरे दोनों के मध्य दो फर्लांग का फासला रहे।

(२२) इस के बाद लड़ाई के मैदान में मैं अकेला आऊँगा और तू दो सवारों के साथ आ सकता है।

(२३) तूने ऐशो इशरत के तो फल खाए हैं परन्तु तुझे जँगी बहादर सूरमाओं का सामना कभी न करना पड़ा।

(२४) इस तरह तू ख़ुद तलवार व हथियार ले कर मैदान में

आ, खुदा की खलक़त को मरवाने की बजाये जंग का फैसला हम आपस में कर लें।

देखिये कितनी वे खौफ़ी और बहादुरी से औरंगजेब जैसे ज़ालम और जाबर शहन्शाह हिन्द को मैदान में आने के लिए ललकारा गया है। इसी बीच में औरंगज़ेब मर गया और उसका बेटा बहादुर शाह तख्त पर बैठा और उस ने गुरु जी को राज़ी नामा के लिए आगरा बुलाया। बहादुर शाह को अपने भाई काम बख्श की बग़ावत को दबाने के लिए दक्षिण की ओर जाना पड़ा। गुरु जी भी दक्षिण को ओर चले गये।

गुरु गोविन्दसिंह पर आघात

हमें आश्चर्य होता है कि गुरुगोबिन्दसिंह जैसे राजनीति कुशल महापुरुष भी उन शत्रुपक्ष के लोगों को नहीं पहचान सके और उन्हें अपने पास बनाये रहे, जिन्होंने अन्त में उनके साथ विश्वास घात किया, जो उनकी मृत्यु का कारण बना। कैसे ? सुनिये।

जब गुरुगोविन्दसिंह जी के पुत्र अजीतसिंह और जुझारसिंह युद्धक्षेत्र में मारे गये और उनके छोटे पुत्र ज़ोरावरसिंह और फ़तहसिंह को सरहिन्द के सूबेदार वाज़िदखाँ ने जीवित दीवार में चुनवा दिया तो गुरु गोविन्दसिंह पंजाब छोड़कर दक्षिण की ओर चले गये और गोदावरी के तट पर पंचवटी में तप करने लगे। यहाँ उनके साथ अताउल्लाखाँ और गुलखाँ नामक दो पठान रहते थे। वे कई पीढ़ियों से गुरु जी के घराने का नमक खाते आ रहे थे। एक दिन वे दोनों पठान पंचवटी के हाकिम फ़ीरोज़खाँ के घर भोजन करने गये। वहाँ एक मुसलमान ने उनसे कहा कि "तुम्हें शर्म नहीं आती जो काफ़िरों की नौकरी करते हो और फिर भी मुसलमानों के खून का बदला उनसे नहीं लेते ?" इस बात को सुनकर अताउल्लाखां और गुलखाँ का चित्त पलट गया। उन्होंने गुरु साहब को मारने का पक्का

इरादा कर लिया। एक रात सोते समय गुरु साहब के पेट में गुलखाँ ने कटार भोंक दी। गुरु साहब ने झट उठकर तलवार का एक हाथ ऐसा मारा कि नमकहराम गुलखां का सिर धड़ से अलग हो गया। अताउलाखाँ भाग निकला, किन्तु सिक्खों ने उसे भी पकड़ कर काट डाला। गुरु का घाव अच्छा होने लगा, तब तक बादशाह बहादुरशाह ने दो कमानें, जो किसी से नहीं चढ़ती थीं, चिल्ला चढ़ाने को भेजीं। गुरु साहब ने उन्हें खींचकर जो चिल्ला चढ़ाया तो उनके पेट का कच्चा घाव फिर फट गया और उसी से कार्तिक सुधि ५ संवत् १७६५ को गुरु गोविन्दसिंह का स्वर्गवास हो गया। कुछ लोग कहते हैं कि बादशाह बहादुरशाह ने कमानें जानबूझ कर गुरु के पास भेजी थीं, क्योंकि वह जानता था कि गुरु साहब जोश में आकर जरूर उन पर चिल्ला चढ़ायेंगे, जिससे उनका कच्चा घाव फट जायगा। पाठको आपने देखा है कि गुरु गोविन्दसिंह जैसे राजनीति कुशल भी अपने सरल स्वभाव और घाव कच्चा होते हुए भी झूठी शान में आकर शत्रुओं के विश्वासघात और कपट के शिकार बन गये। इसलिये शास्त्र कहता है कि शत्रु का कभी विश्वास नहीं करना चाहिये और उस को कपट चालों से सदा सावधान रहना चाहिये।

७०. वीर बंदा वैरागी

इसका बचपन का नाम लक्ष्मणदेव था। बचपन से ही अस्त्र शस्त्र चलाने में निपुण हो गया। एक दिन शिकार में तीर से घायल एक हिरनी और उसके तड़पते हुए बच्चों की करुण दशा देखकर उसने वैराग्य ले लिया और फिर माधोदास नाम रखकर पंजाब से दक्षिण पंचवटी में तप करने चला गया।

कुछ दिन बाद गुरु गोविन्दसिंह ने पंजाब से वहां जाकर मुस-

लमानों के अत्याचारों की कथा उसको सुनाई, जिसको सुनकर वह गुरु का बन्दा (शिष्य) वैरागी बन गया और फिर उसने सेना इकट्ठी करके मुसलमानों से बदला लेने की ठानी। पंजाब में पहुंच कर सामरना नगर पर चढ़ाई कर दी। गुरु तेग़बहादुर का क़ातिल जलालुद्दीन इसी नगर में रहने वाला था। बन्दा ने नगर को खूब लूटा। उसके बाद पंजाब के अनेक मुसलमानी नगरों को लूटकर मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं और सिक्खों पर किये गये अत्याचारों का खूब बदला लिया। एक ग्राम में मुसलमान गोहत्या किया करते थे, वैरागी ने उस ग्राम को नष्ट कर दिया। उसी को छोड़ा जिसने चोटी और जनेऊ दिखाये। वैरागी की धाक चारों ओर जम गई। मुसलमान उसके नाम से कांपने लगे। बहुत से मुसलमान उसको धोखा देने के लिए उसके शिष्य बन गये। वे उसके साथ विश्वासघात करना चाहते थे। उन्होंने सरहिन्द के नवाब को गुप्त पत्र लिखा कि "हमने इसको हाथों पर डाल लिया है अब यह कपट से मारा जायगा" वैरागी की नीतिकुशलता ने उस पत्र को रास्ते में ही पकड़वा लिया और फिर उन सब कपटियों को क़त्ल करा दिया। उस स्थान का नाम क़त्लगढ़ी रक्खा। इसके बाद उसने मुसलमानों का कभी विश्वास नहीं किया। यह है व्यवहारिक नीति कुशलता, जिसकी कमी हमारे राजपूत राजाओं में हमें पग-पग पर खटकती है।

एक बार बलौड़ ग्राम के ब्राह्मणों ने आकर वैरागी से कहा, "महाराज! मुसलमान हमें रहने नहीं देते। हमारी बहू बेटियां ज़बरदस्ती छीन लेते हैं। गौ को मार कर उसका रुधिर हमारे कूओं में डाल देते हैं"। वैरागी उठा और उसने उस गांव के सारे मुसलमानों को नरकधाम पहुंचा दिया।

सन् १७०७ में सरहिन्द का घोर युद्ध हुआ। सरहिन्द का

सूबेदार वज़ीदखाँ पकड़ा गया और ज़िन्दा जला दिया गया। दीवान सुच्चानन्द, जो हिन्दू होकर भी देशद्रोही और जाति का दुश्मन था और मुसलमानों से मिल गया था, इस युद्ध में पकड़ा गया और मार डाला गया। वैरागी ने नगर की ईंट से ईंट बजा दी और क़िले को दीवार में से गुरु गोविन्दसिंह के दोनों बच्चों, ज़ोरावरसिंह और फ़तहसिंह, को हड्डियाँ निकलवा कर विधिवत् संस्कार करके उन पर समाधि बनवा दी। इस प्रकार अपने गुरु के बच्चों के ज़िन्दा दीवार में चुने जाने का बदला वैरागी ने सरहिन्द नगर से खूब दिल खोल कर लिया। इसके बाद वैरागी ने और अनेक नगरों को जीता। इतिहास लेखक मोहम्मद लतीफ अपनी "History of the Punjab" में लिखता है, "वैरागी ने सहस्रों मुसलमानों का वध किया, मस्जिदें और खानक़ाहें मिट्टी में मिला दीं। लुधियाना से लेकर सरहिन्द तक सारा देश साफ़ कर दिया। मुर्दों को क़ब्रों से निकाल कर कौवों को खिलाया, इसीलिये मुसलमान इसको "मलकुलमौत" कहने लगे।"

दिल्ली के बादशाह औरंगज़ेब मरने के पर बहादुरशाह बादशाह हुआ। वह भी वैरागी से डरता था। उसके भी मर जाने पर बादशाह फरुखसीयर ने वैरागी की शक्ति को कम करने के लिए सिक्खों में फूट डालने की चाल चली। उसने हिन्दू मन्त्री रामदयाल को गुरु गोविन्दसिंह की पत्नी (माता सुन्दरी) के पास भेंट देकर कहला भेजा, हम गुरु भक्त हैं। उन्हीं के वरदान से हमें राज्य मिला है। 'वैरागी प्रजा को दुःख देता है, हम सिक्खों की जागीरें देंगे"। माताजो इस चाल में आ गईं। उन्होंने सिक्खों को कहला भेजा कि वैरागी सिक्ख नहीं है। उसका साथ कोई न दे। सिक्खों पर इसका प्रभाव पड़ा और सब ने वैरागी का साथ छोड़ दिया। बादशाह ने खालसा पंथ से अलग सन्धि की। फल यह हुआ कि लाहौर के पास शालामार बाग के युद्ध में ५००० खालसा सिक्ख वैरागी के विरुद्ध

तलवार लेकर आगए । वैरागी को यह देखकर बड़ा दुःख हुआ। उसने तलवार म्यान में कर ली और सोचने लगा कि गुरु के बच्चों का बदला लेने के लिए और जिन सिक्खों के लिए मैं लड़ रहा हूं, जब वही मेरे दुश्मन हो गए तो मैं अब किसके लिए लड़ूं ? वैरागी ने कुछ दिन बाद एक बार फिर तलवार उठाई और स्यालकोट, गुजरात आदि को विजय कर लिया। अन्त में ३०,००० शाही सेना ने उसे गरदासपुर में घेर लिया। उसकी सेना की रसद बंद करदी गई। सिक्ख मुसलमानों से जा मिले। वैरागी ने विवश होकर आत्म समर्पण कर दिया। वह अकेला क्या करता ? वह दिल्ली में ले जाया गया जहां गरम चिमटों से उसका माँस नोचा गया । उसके बेटे का कलेजा निकाल कर उसके मुंह पर मारा गया। उसकी मृत्यु के बाद सिक्खों की आंखें खुलीं कि मुसलमानों पर विश्वास करके और वैरागी का साथ न देकर उन्होंने कितनी भारी भूल की है। सिक्खों के सिरों पर इनाम लगाए गए अर्थात् जो कोई उनका सिर काट कर लाएगा उसे इनाम मिलेगा। भाई तारूसिंह चरखी पर चढ़ाकर कपास की तरह ओट दिए गए। अनेक अत्याचार हिन्दुओं और सिक्खों पर फिर होने लगे। यह सब किसका फल था ? आपस की फूट और शत्रुओं पर विश्वास करके उनके जाल में फंस जाने का। इस अभागिन फूट ने ही हमारे देश का और जाति का सत्यानाश किया है। धन्य है वीर बन्दा वैरागी को ? जिसने अपनी जाति और धर्म की रक्षा के लिये संन्यास छोड़कर तलवार उठाई और क्षात्र धर्म का पालन करते हुए बड़ी वीरता से हिन्दु जाति की रक्षा के लिए अपना बलिदान किया।

धन्य वीर बन्दा बैरागी, तेरा था अनुपम बलिदान।
आर्य जाति की रक्षा के हित, तूने करतब किये महान ॥

और

मुसलमानों के राजकाल में जहां हकूमत के ज़ोर से हिन्दुओं को ज़बरदस्ती मुसलमान बनाया जाता था, वहां इस के साथ ही कुछ मुसलमान फकीरों ने भी हिन्दुओं को मुसलमान बनाने का काम किया। अतः इनमें से इसमाईल बुखारी। नूरुलदीन शेख़, महीउददीन चिश्ती (जिसकी मज़ार अजमेर में है)। शेख सलीम नज़ामउद्दीन, (जिसकी मजार देहली में है) बाबा फ़रीद के नाम बड़े प्रसिद्ध हैं। इसके इलावा इस इसमायली फिर्का के पीर सदरदीन जिनके गद्दी नशीन आज कल आगा खां कहलाते हैं) ने बड़े ज़ोर शोर से प्रचार किया। उन्होंने संस्कृत, फ़ारसी, अरबी की मिली हुई किताबें लिखीं। जिनमें पीर सदर दीन को हिन्दुओं का दसवां अवतार सिद्ध किया गया। अतः इनका एक श्लोक निम्नलिखित देखिये।

जीरे भाई रे आज कलजुग मां ईश्वर आदम नाम भनाया।
गुरु ब्रह्मा नें रची मुहम्मद कहालया हो जीरे भाई।
जीरे भाई रे पुरुष उत्तम विष्णु जी अलीरूप नाम भनाया।
केते नाम रिखी सरे ध्यायां हो जीरे भाई ।।
कलजुग मध्ये अनन्त करोड़ो पीर सदरदीन बरालया।
अवतार दशमों दिलमां धरी, घट कश रुपे सहजा थापया ।।

अर्थात्—कलयुग में परमेश्वर ने अपना नाम आदम रखाया। ब्रह्मा मुहम्मद कहलाए और विष्णु अली नाम से प्रसिद्ध हुए और कलयुग में दसवां अवतार पीर सदर दीन ही हैं। इसके इलावा मुसलमानों ने इस तरह का एक अल्लाह उपनिषद् भी बना डाला, जिसका खण्डन महर्षि जी ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में कर दिया है। मुसलमानों के राजकाल में जहां ज़बरदस्ती और

प्रचार के ज़रिये हिन्दुओं को मुसलमान बनाया जाता था वहां संस्कृत साहित्य की लाखों पुस्तकों को जला कर सोलह साल तक मुसलमान बादशाहों के हमाम गर्म होते रहे और अवन्ता पुरी के नौ नौ मँजिला ऊँचे पुस्तकालय जलाकर खाक कर दिये। मुसलमानों के इस तरह साहित्य को जलाने का एक बड़ा कारण रहा है, जो निम्नलिखित वाक्य से प्रगट होता है। जिस वक्त मुसलमानों ने मिश्र विजय किया तो इसकिन्दरिया में बहुत बड़ा साहित्य का भण्डार था। मुसलमान फौज का सब से बड़ा जरनैल एक मिश्री अमीर का दोस्त बन गया था उसने अपनी दोस्ती के भरोसे इस जरनैल से यह प्रार्थना की कि इसकिन्दरिया का जो पुस्तकालय है, जिसमें हमारे हजारों बुजुर्गों की वर्षों की मेहनत से लिखी हुई पुस्तकें पड़ी हैं आप तो पढ़ नहीं सकते, वह पुस्तकालय हमें दे दिया जावे। ताकि हम लोग वह पुस्तकें पढ़ लिया करें। तब उस जरनैल ने कहा कि मैं आप की यह प्रार्थना स्वयं स्वीकार नहीं कर सकता। अपने खलीफा साहब को अपने मिश्री दोस्त की प्रार्थना की बाबत लिखा। (तब खलीफा साहब ने जो जवाब दिया वही जवाब ही हमारे संस्कृत ग्रन्थों के जलाने का कारण बना उसने जवाब दिया कि अगर तो यह पुस्तकें कुरान के अनुकूल हैं तब तो कुरान की मौजूदगी में इन की आवश्यकता नहीं। क्योंकि एक कुरान ही काफ़ी है और अगर यह पुस्तकें कुरान के खिलाफ़ हैं, तब इनकी वैसे ही जरूरत नहीं। इस लिए दोनों सूरतों में यही हुक्म दिया जाता है कि इसकिन्दरिया के पुस्तकालय की सब पुस्तकों को जला दिया जावे।

महर्षि दयानन्द

जी महाराज जब कार्य क्षेत्र में उतरे उस समय मुसलमानों का राज्य समाप्त हो चुका था और अंगरेजों का राज्य सारे भारत पर पूर्ण रूप से ही स्थापित हो चुका था और इस तरह अब हिन्दुओं को ज़बरदस्ती मुसलमान बनाने का तो कोई सवाल न था, अंगरेज

शासकों के साथ साथ ईसाई पादरी भी देश में फैल कर अपना प्रचार तहरीर और तकरीर द्वारा कर रहे थे। तब मुसलमानों ने भी यही ढंग अपनाना शुरू कर दिया। गोया अब तीर तलवार की जंग न रह कर तहरीर और तकरीर की जंग शुरू हो गई थी, और हिन्दुओं पर अब दो तर्फा हमले हो रहे थे। ईसाईयों की तर्फ से भी और मुसलमानों की तर्फ से भी और दोनों ही अपने अपने विचारों के प्रचार से हिन्दुओं को अपनी अपनी तर्फ खींचने में पूरा-पूरा ज़ोर लगा रहे थे। हथियारों की जंग से विचारों की जंग बहुत अधिक भयानक होती है। क्योंकि बम्ब से भी विचार शक्ति अत्यन्त प्रबल होती है, इस का एक उदाहरण अभी दूसरी बड़ी जंग में मिलता है। सन् १९४५ में जापान के दो शहरों नागासाकी और हिरोशेमा में अमरीका ने एक एक एटम बम्ब मारा था, जिस से दोनों शहर तबाह हो गये, इस में बसने वाले तकरीबन तीन लाख आदमी मारे गये, परन्तु अब १९६४ है इस १९ वर्ष के अर्से में वही दोनों शहर अब पहले से भी ज़्यादा शानदार इमारतों से भरपूर हो गये हैं और उन की आबादी भी पहले से ड्योढी हो गई है, अथवा केवल १९ वर्ष के समय में एटम बम्ब का असर बिल्कुल समाप्त हो गया, परन्तु हज़ारों वर्षों से दिये हुए महात्मा बुद्ध, हज़रत ईसा, हज़रत मुहम्मद, के विचार अभी तक संसार में अपना काम बराबर करते जा रहे हैं। इससे स्पष्ट होता है कि विचार शक्ति एटम बम्ब से भी बहुत अधिक शक्तिशाली है। महर्षि बाल्मीकि जी ने भी कहा है—"क्षात्र बलम धिग् बलम् ब्रह्म बलम् बलम्" यानि विचार शक्ति के सामने क्षात्र शक्ति अति हीन दरजे की है।

कहा भी है—Ideas are more Powerful than bombs.

हथियारों की जंग हमारे वीर योद्धाओं छत्रपति शिवा जी, महाराणा राज सिंह, श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी और बन्दा

बहादुर ने लड़ कर मुसलमान सलतनत को समाप्त कर दिया। अब विचारों को जंग में एक वीर योद्धा की कमी को महर्षि दयानन्द जी ने पूरा किया। जहां मुसलमानों ने एक अल्लाह उपनिषद् ही बनाया था। वहां ईसाई पादरियों ने एक यजुर्वेद बना डाला। अतः सन् १७६१ में राबर्ट डी. नौवली नामी पादरी ने एक द्रावड पंडित को रुपया दे कर पुरानों और ईजील से कुछ बातें मिला कर एक संस्कृत पुस्तक लिखवाई और उसका नाम यजुर्वेद रखा और उस समय यह पुस्तक वेद के नाम से लोगों को सुनाया जाता था। इसका फ्रैंच भाषा में अनुवाद भी हुआ और बड़ी धूमधाम से पैरिस के पुस्तकालय में रखा गया। सन् १७७८ में इस पर बड़े बड़े लेख लिखे गये। अन्त में मैक्स मूलर ने जब इस पुस्तक का बाबत यह लिखा—"In plain English the whole book is childishly derived."

अर्थात्—यह समग्र पुस्तक बच्चों का खेल है। इस प्रकार ईसाई पादरियों ने हमारे साहित्य को बिगाड़ना शुरु कर दिया था और हमारे बरखिलाफ़ बहुत बड़ा आन्दोलन खड़ा कर दिया था अपने इस साहित्य प्रचार के ज़ोर पर ईसाई पादरी यह ऐलान करने लग गये थे कि पचास वर्ष के अन्दर सारे भारत को ईसाई बना लेंगे। इसके लिए उन्होंने योजनाएँ भी बना ली थीं।

स्कूल, कालिज, हस्पताल यतीम खाने आदि महज़ ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए खोले गए थे। गली बाजारों शहरों गावों में तहरीरी और तकरीरी प्रचार का एक ज़ोरदार चक्कर सा चला दिया। ईसाईयों ने जब देखा कि हिन्दु भगवे कपड़े वाले साधुओं का बहुत मान करते हैं तो उन्होंने एक सालवेशन आरमो, नाम की संस्था बनाई। जिसके प्रचारक और प्रचारकाएं बिल्कुल हिन्दु साधुओं का भेष धारण करके हिन्दुओं को ईसाई बनाने का काम करते थे। और मुसलमान भी ज़ोर शोर से तहरीर और तकरीर के द्वारा प्रचार कर रहे थे। परन्तु हिन्दुओं के अन्दर किसी की जुर्रत

न पड़ती थी कि मुसलमान वा ईसाईयों की तरफ से किये गये अपने धर्म पर हमलों का कोई उत्तर दे सके। ईसाई पादरी तो बड़ भरोसे के साथ यह कहने लग गये थे कि हम ५० वर्षों में समस्त भारत के हिन्दुओं को ईसाई बना लेंगे। परन्तु परमात्मा को यह मन्जूर न था क्योंकि किसी कवि ने कहा भी है—

यूनानो मिश्र रूमा सब मिट गये जहाँ से।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी॥

और अंग्रेजी की एक लोकोक्ति के अनुसार—

man proposes and god disposes"

प्रभु की कृपा से ऐसे समय में पूर्ण ब्रह्मचारी पूर्ण योगी, और पूर्ण विद्वान महर्षि दयानन्द ने मैदान में आकर सब विरोधियों को ललकारा। ईसाई मुसलमान सब हैरानी के साथ इसकी तर्फ देखने लग गये। महर्षि ने जहां अपने धर्म का अति उत्तम रीति से मण्डन करके उसको सर्वश्रेष्ठ सिद्ध किया। वहां ईसाई और मुसलमानों के मन्तव्यों का पूरे जोर से खण्डन करके हमलावरों का न सिफ मुंह मोड़ दिया। बल्कि उनको अपना घर संभालना कठिन हो गया। और जहां महर्षि के आने से पहले हिन्दुओं में घबराहट फैली हुई थी, महर्षि के आने के बाद ईसाई और मुसलमानों में भगदड़ मच गई, कोई बड़े से बड़ा पादरी और बड़ से बड़ा मौलवी महर्षि के सामने दम मारने की जुर्रत न कर सकता था। जिसका उदाहरण मेला चाँदापुर का प्रसिद्ध शास्त्रार्थ है। चांदा पुर यू. पा. में यह शास्त्रार्थ १९ मार्च सन् १८७७ से २३ मार्च १८७७ तक होना निश्चित हुआ था। और इसके लिये विज्ञापन छपा कर सब मजहबों के बड़े बड़ विद्वानों को निमन्त्रण दिया था। अतः महर्षि दयानन्द जी, मौलवी मुहम्मद कासम जो मुसलमानों के दोनो मदरसा देवबन्द के सब से बड़े उस्ताद थे, (देव बन्द का मदरसा मुसलमानों के लिए वैसा ही है जैसा हिन्दुओं के लिये काशी) और पादरी नवल साहब और सकाट साहब जो ईसाई मजहब के प्रसिद्ध प्रचारक थे वहां पहुंचे

थे। अतः २० मार्च प्रातः ७॥ बजे शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ और शास्त्रार्थ के लिए पांच विषय रखे गये।

(१) परमेश्वर ने जगत को किस वस्तु से बनाया, किस समय और किस उद्देश्य से रचा।

(२) ईश्वर सर्व व्यापक है या नहीं,

(३) ईश्वर न्यायकारी वा दयालु किस प्रकार है।

(४) वेद बाईबल कुरान के ईश्वर का वाक्य होने में क्या प्रमाण है?

(५) मुक्ति क्या पदार्थ है, और वह किस प्रकार प्राप्त हो सकती है।

विषय पांच थे दिन चार मुकर्रर थे, परन्तु पहले विषय पर ही महर्षि दयानन्द की अलौकिक प्रतिभा ने विरोधियों के छक्के छुड़ा दिये। एक दिन भी इस पूर्ण विद्वान के सामने ठहर न सके। और भाग गये हालांके मेले के लिए पांच दिन का समय मुकर्रर हो चुका था। और विज्ञापन भी पांच दिन को शास्त्रार्थ के लिए छपे और बांटे गये थे, महर्षि के सामने सारे भारतवर्ष में जिस तरह कोई पण्डित न ठहर सका। इसी तरह कोई मुसलमान मौलवी और न कोई बड़े से बड़ा ईसाई पादरी ही ठहर सका। और महर्षि हर मैदान में दिग विजयी ही रहे।

१. रावलपिंडी में महर्षि विराजमान थे तो एक दिन एक ईसाई पादरी ने कहा कि महाराज! कृष्ण महाराज तो गोपियों के कपड़े उतार कर वृक्ष पर चढ गये थे, यह कैसी अश्लील बात है। महर्षि जी ने कहा कि जिन पुराण ग्रन्थों में ऐसा लिखा है, वह हम नहीं मानते। कृष्ण जी का जो जीवन चरित्र महाभारत में है, उसमें कृष्ण जी को कोई दोष नहीं लगाया गया। परन्तु आपकी इंजील में तो हज़रत लूत का अपनी सगी दोनों बेटियों से शराब पीकर ज़ना करना दिखलाया गया है, क्या यह अश्लील नहीं हैं। इस पर वह पादरी कहने लगे कि इंजील में ऐसा कहीं नहीं लिखा महर्षि ने

अपनी इंजील दिखाई तो वह कहने लगा, हम आपको इंजील नहीं मानते। महाराज ने कहा आपके घर पर जो इंजील है उसमें देख लेना। जब इस पादरी ने घर पर जाकर देखा तो वैसा ही लिखा पाया, जैसा कि महाराज ने कहा था तो शर्मिंदा होकर महर्षि के पास न आया।

२. कुरान की तो महाराज ने बिस्मिल्लाह ही ग़लत कर दी, और उस दिन से यह एक लोकोक्ति बन गई है। जब किसी का कहना हो कि आपने तो पहले ही ग़लत बात कह दी, या कर दी तो लोग कहते हैं कि आपने तो बिस्मिल्ला ही ग़लत कर दी।

३. महर्षि के प्रचार क्षेत्र में आने से पहले आम हिन्दुओं की तो क्या कथा बड़े बड़े पढ़े लिखे पंडित किस तरह ईसाई होते थे, इसका एक ही दृष्टान्त प्रर्याप्त है, जब महर्षि बम्बई में प्रचार कर रहे थे, तो नील कण्ठ शास्त्री नामी एक ईसाई महाराज से मिलने आया, यह वही नीलकण्ठ था जिसने ईसाई होकर इंजील का संस्कृत में अनुवाद किया था। महाराज के साथ वार्तालाप करता करता रोने लग पड़ा। महाराज ने कारण पूछा तो कहने लगा—महाराज आप जैसे सदोपदेशक हमें पहले मिल जाते तो हम अपना धर्म क्यों त्यागते तब महाराज ने कहा—कि अब क्या बिगड़ा है, वापस आजाओ। तब वह कहने लगा, महाराज अब वापस नहीं आ सकता, क्योंकि बाल बच्चे बड़े हो चुके हैं। और उनके विवाह ईसाई परिवारों में हो चुके हैं, मुझ को भी और उनको भी काफ़ी तन्ख हें मिल रही हैं। परन्तु यह मैं अवश्य कहूंगा कि यदि आप जैसे उपदेशक पहले होते तो ईसाई इतना प्रचार न कर पाते।

४. महाराज ने जहां हिन्दु कौम को लुटेरों की लूट से बचाया, वहां पहला लुटा हुआ माल भी वापस लेने का ढग बताया। यानि शुद्धि का द्वार जो हज़ारों वर्षों से बन्द पड़ा था, खोल दिया। और सब को वैदिक धर्म की शरण में आने का आवाहन किया।

५. जहां हमारे वीर योधाओं ने हथियारों की जंग लड़ कर विरोधियों के छक्के छुड़ाए, वहां महर्षि दयानन्द जी ने विचारों की जंग लड़कर विरोधियों के धुर्रें उड़ा दिये। और फिर अपना अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश लिख कर विचारों का एक ऐसा शक्तिशाली मेगज़ीन छोड़ गए, कि जब तक संसार स्थित है, कोई विरोधी सामने न ठहर सकेगा, इसलिए जहां गुरु गोविन्दसिंह जी के लिए किसी कवि ने कहा था।

जो न तीर छूटते गोविन्दसिंह जवान के।
नाम का निशान रहते, आज हिन्दुआन के॥

पंजाब के हिन्दुओं के लिए तो बिल्कुल सत्य ही था। इसी तरह महर्षि के लिए भी कवि कह गया है, और वह सारे भारत के लिए है—

देखो स्वामी दयानन्द क्या कर गया।
गुलशने हिन्द को फिर हरा कर गया॥
तर्क के तीर बरसाये इस ज़ोर से।
होश पाखण्डियों के हवा कर गया॥

७१ सम्राट् रणजीत सिंह

शेरे पंजाब महाराजा रणजीत सिंह सैर को जा रहे थे, नौकर चाकर साथ थे, कुछ लड़के बेर के पेड़ पर ईंट, रोड़े, कंकर फैंक रहे थे। ताकि पके हुए बेर खा सकें, अचानक एक लड़के का फैंका हुआ कंकर महाराजा रणजीत सिंह को लग गया, महाराजा खड़े हो गये, नौकरों को आज्ञा दी कि लड़कों को पकड़ कर पेश करो, 'महाराज के कंकर लगते ही लड़के तो डर के मारे सिर पर पाँव रखकर नज़दीकी अपने गांव में भाग गये। नौकर गये और उन

को पकड़ कर ले आये लड़के जार ज़ार रो रहे थे, उनके मां बाप रिश्तेदार भी घबराये और मन में डर रहे थे कि पता नहीं महाराजा साहिब लड़कों को क्या सजा देंगे। जब वह लड़के महाराजा के पेश हुए तो महाराजा साहब ने पूछा कि तुम बेरी पर ईंट पत्थर क्यों फेंक रहे थे, एक लड़के ने जवाब दिया, बेरी से पके हुए बेर प्राप्त करने के लिए। तब महाराजा साहब ने अपने सेवकों को आज्ञा दी, कि जल्दी बाजार से जाकर मिठाई ले आओ, और इन लड़कों को बांट दो। और पुरस्कार भी दिया। कहने लगे क्या मैं बेरी के पेड़ से भी गया गुज़रा हूं। जो लड़कों को पत्थर मारने के बदले पक्के बेर देती है। महाराजा की यह आज्ञा सुनकर सब बच्चे प्रसन्न हुए और उनके माता पिता आदि को भी प्रसन्नता हुई।

२. सन् १८७७ में महर्षि दयानन्द जी अमृतसर पधारे और व्याख्यान आरम्भ किये, तो शहर भर में तीव्र आन्दोलन शुरू हो गया, जैसा कि हर जगह महाराज के प्रचार से हो जाता था। एक दिन एक बाल पाठशाला के अध्यापक ने अपने छात्रों से कहा—कि आज सब कथा में चलेंगे। तुम सब अपनी अपनी झालियाँ ईंट, रोड़े, कंकर आदि से भरकर मेरे साथ चलना, और जब मैं संकेत करूं तो कथा करने वाले पर ईंट, रोड़ कंकर फैंक देना, मैं तुम्हें लड्डू दूँगा। अबोध बालकों ने अपनी अपनी झोलियां, अपने अध्यापक के आदेशनुसार भर लीं, और अपने इस दुष्ट अध्यापक के साथ स्वामी जी के व्याख्यान में पहुंच गये, व्याख्यान रात्रि के आठ बजे समाप्त हुआ करता था। जब कुछ कुछ अन्धेरा होने लगा तो अध्यापक का संकेत पाकर बालक महर्षि पर ईंट, रोड़े और कंकर फैंकने लग गये, सभा में हलचल मच गई, परन्तु महाराज शान्त रहे। वह दुष्ट अध्यापक तो भाग गया, परन्तु पौलीस जो मौका पर मौजूद थी, कुछ बालकों को पकड़ कर महाराज के सामने ले

आई। बालक विचारे फूट फूट कर रो रहे थे, महाराज ने बालकों को ढारस बंधाई और पूछा कि तुमने ऐसा काम क्यों किया। तो बालकों ने सारा वृत्तान्त सच सच सुना दिना। तब महाराज ने कहा तुम्हारा अध्यापक तो शायद तुमको लड्डू न देवे परन्तु हम तुमको लड्डू खिलाते हैं और बाजार से लड्डू मंगवा कर बच्चों को बाँट दिये। जिससे बच्चे प्रसन्न हो गये।

अबोध बालकों के प्रति सम्राट् रणजीत सिंह और परिव्राट महर्षि दयानन्द के एक ही समान भाव थे।

७२. प्रसिद्ध जरनैल हरीसिंह नलुआ

महाराजा रणजीत सिंह का यह प्रसिद्ध जरनैल जिस के विषय में अंग्रेज़ो अखबार में लिखा था कि वह दुनिया का सब से अधिक कामयाब जरनैल था। और जिस के भय से सरहद के पठान काँपते थे और जिस की दहशत का इतना सिक्का सरहद पर जमा हुआ था कि पठान माताएं अपने रोते हुए बच्चों को चुप कराने के लिए "हरिया आया" का मन्त्र पढ़ती थी। तो रोते हुए बच्चे चुप हो जाया करते थे। और इसी का बिगड़ा हुआ रूप पंजाब में "हौआ आया" बन गया है। वह जरनैल पंजाब के गुजरांवाला शहर में सन् १७७६ में पैदा हुआ था। काश्मीर में उस समय मुसलमानों का राज्य था। और उस राज्य में हिन्दुओं को पगड़ी बाधने और जूता पहनने की मनाही थी। जो इस आज्ञा का विरोध करता था उस को रस्सों से बाँध कर डल झील में डुबो दिया जाता था। हरी सिंह नलुआ ने कशमीर को विजय कर लिया और हिन्दुओं को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। दुष्टों के साथ दया करना इस के नियम के विपरीत था। वह "शठे शाठ्यं समाचरेत्" के नियम पर अमल करके अपराधियों को खूब सजा देता था। एक बार उसे मालूम हुआ कि पठानों ने कुछ हिन्दु लड़कियां पकड़ कर अपने घरों में डाल

रखी हैं उसने उन के घरों में पहुंच कर एक हज़ार पठान स्त्रियां पकड़वा लीं । यह देख कर पठान घबरा गए । और उन्होंने सब हिन्दु लडकियां वापिस कर दीं । तब नलुआ ने भी सब पठान स्त्रियां वापिस कर दीं । फिर पठानों को किसी हिन्दु लड़की पर बलात्कार करने की हिम्मत न रही ।

और

सन् १८८१ में महर्षि दयानन्द जी महाराज जब राजपूताना की रियासत मसौदा पहुंचे । तो उन को मालूम हुआ कि मसौदा में कुछ हिन्दु राजपूत मुसलमान राजपूतों से अपनी लडकियों की शादियां कर दिया करते थे । महर्षि ने ये यकतरफ़ा ट्रैफ़िक देख कर उन हिन्दु राजपूतों को बुलाया और उन को समझाया कि तुम ऐसा अनर्थ क्यों करते हो । महाराज के सदउपदेशों से उन्होंने ऐसा न करने का प्रण लिया । और यह कुप्रथा बन्द हो गई । और हिन्दु लड़कियां मुसलमान घरों में आबाद होकर मुसलमान पैदा करने से बच गईं । क्षात्र धर्म का सहारा लेकर हरीसिंह नलुआ ने हिन्दु स्त्रियों की रक्षा की और ब्रह्मधर्म का सहारा लेकर महर्षि ने भी वैसा ही किया । परन्तु क्षात्र बल का असर उस समय के लिए ही होता है और ब्रह्म बल का असर स्थायी होता है । इस लिए जब से महर्षि जी के सदोपदेश से यह अनिष्ट करने वाली कुप्रथा बन्द हुई हज़ारां हिन्दु लड़कियां मुसलमानों का घर बसाने से बच गईं । और जब तक यह संसार रहेगा बचती रहेंगी ।

७३ अकबर आज़म

जब हम तारीख़ पढ़ा करते थे उसमें अकबर बादशाह के विषय में लिखा था कि—मुग़लेआज़म अकबर एक दिन में ४० मील

का सफ़र पैदल कर सकता था।

और

महर्षि दयानन्द जब गुरु विरजानन्द जी से समावर्तन के बाद विदा हुए तो दो वर्ष आगरा में रहे, आगरा और मथरा का २० मील का फ़ासला है अतः जब कभी उनके मन में कोई शंका उत्पन्न होती तो वह शंका निवारणार्थ आगरा से मथरा आते और शंका निवारण करके उसी दिन वापस आगरा आ जाते यानि एक दिन में ४० मील का सफ़र करते थे. वैसे भी आम तौर पर ८/१० मील की सैर करते वक्त इतना तेज़ चलते थे कि आम आदमो दौड़ कर ही उन के बराबर चल सकता था।

अतः महात्मा मुन्शी राम जो ने अपना बरेली का वृतान्त लिखा है कि एक दिन मैं स्वामी जी के साथ सैर करने की इच्छा से घर से जल्दी प्रातः ४ बजे के करीब उनके निवास स्थान पर आ गया और उनके साथ सैर करने चल पड़ा, परन्तु वह इतना तेज़ चलते थे, कि मैं दौड़ कर भी उनके साथ न मिल सकता था. आखिर में हार थक कर बैठ गया। महात्मा मुन्शी राम कहते हैं, कि उस समय मैं भरपूर जवानो अवस्था में था और व्यायाम करने से मेरा शरीर भी काफी हृष्ट पुष्ट था।

राज काण्ड समाप्त

———

१०. बदेष काण्ड

७४. हज़रत आदम

३ अक्तूबर सन् १८७२ मुंगेर को जाने के लिए बेगमपुर से गाड़ी पर सवार हुए जब गाड़ी जमालपुर स्टेशन पर पहुंची तो मुंगेर जाने वाली गाड़ी में एक घंटे की देर थी। स्वामी जी कौपीन पहने हुए रेलवे स्टेशन के प्लेट फ़ार्म पर टहलने लगे। एक अंग्रेज़ इंजीनियर और उसकी मेम प्लेट फ़ार्म पर खड़े थे। मेम साहब को नंगे साधू का इस तरह स्टेशन पर टहलना बुरा लगा। साहब बहादुर ने स्टेशन मास्टर को कहा कि वह इस साधू को इस तरह टहलने से रोक दे। स्टेशन मास्टर स्वामी जी को जानता था वह डरता-डरता स्वामी जी के पास गया और कहा कि महाराज आप मेरे कमरे में आकर कुर्सी पर विराजिये, गाड़ी छूटने में अभी काफ़ी देर है। स्वामी जी महाराज समझ गये कि उसे गोरे साहब ने भेजा है कि हमें टहलने से रोक दे। स्वामी जी ने स्टेशन मास्टर से कहा—कि साहब को जाकर कह दो कि हम उस युग के लोग हैं कि जब बाबा आदम और बीबी हव्वा अदन के बाग में नंगे रहने में तनिक भी लज्जा नहीं करते थे और स्वामी जी ने टहलना जारी रखा। स्टेशन मास्टर ने साहब बहादुर से जा कर कहा—कि महाराज वह कोई मामूली साधू नहीं है, कि जिसे मैं प्लेट फार्म से निकाल सकूं। वह एक महान आत्मा और स्वतन्त्र सन्यासी है जो मुझ को या आपको तुच्छ जानता है, नाम पूछने पर जब स्टेशन

मास्टर ने महाराज का नाम बताया, तो साहब बहादुर कहने लग, Is he Dayanand, the Great, तब साहब ने स्वामी जो के पास आकर टोपी उतार कर सलाम किया और जब तक गाड़ी न चली स्वामी जी से बातें करता रहा।

७५. हज़रत ज़रदुश्त

वैदिक धर्म का ह्रास होने पर आज से पांच हज़ार वर्ष पहले सबसे पहला मनुष्य ईरान का रहने वाला ज़रदुश्त था, जिस ने पारसी मज़हब चलाया और उसके साथ महर्षि वेद व्यास जो ने शास्त्रार्थ किया था, अतः ज़रदुश्त नामा के मुसन्नफ़ सामन ने लिखा है कि दाराय लाल शहन्शाह ईरान के ज़माना में बलख के मुकाम पर ज़रदुश्त का भारत के एक विद्वान व्यास जी से शास्त्रार्थ हुआ था, हज़रत ज़रदुश्त की ज़न्दावस्था पुस्तक में वेदों के मन्त्रों के मन्त्र मिलते हैं। हवन करना इस के चलाये पारसी मज़हब में इतना जरूरी है कि हवन कुण्ड में जिस को आतशकदा कहते हैं, हर समय आग जलती रहती है और खुश्बूएं जलाते रहते हैं। इसी कारण पारसियों को आतश प्रस्त कहा जाता है। हज़रत ज़रदुश्त ने "एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति" का सही तर्जमा करके अपना मुख्य मन्त्र ठहराया है। वह तर्जमा है—"नेस्त एज़द दिगर यजदां, यानि परमात्मा के सिवाय और कोई परमात्मा नहीं है और अर्बी में इसका तर्जमा "ला इला इल् लिल्लाह" किया गया है। जिस को हमारे नवीन वेदान्ती भाई न समझ कर यह कहते हैं। कि एक परमात्मा ही है और दूसरा कुछ नहीं है। जो कि बिल्कुल उन शब्दों के विरुद्ध प्रतीत हो रहा है। ऐसा ग़लत प्रचार करने से संसार कितना अनर्थ हुआ है।

और

महर्षि दयानन्द महाराज भो इन शब्दों का यही अर्थ करते

थे, कि परमात्या एक है दूसरा कोई परमात्मा नहीं है और इस तरह इन भ्रम उत्पादक शब्दों का दोनों महापुरुष समान अर्थ करते थे।

२. हज़रत जरदुश्त भी गोमेध को, गोमेज़ कह कर इनका अर्थ भी खेती बाड़ी सम्बन्धी ही करते थे, अतः पारसी मज़हब के इस गोमेज़ के सम्बन्ध में डाक्टर हाग साहब लिखते हैं—

The Parsi religion enjoins agriculture as religious duty and this is the whole meanings of "Gomez" (Essays on the sacred Language, writings and religions)

महर्षि दयानन्द जी महाराज ने भी शतपथ ब्राह्मण के हवाले से लिखा—"अन्नम बै गौ" यानि अन्न ही गौ है। अतः अन्न के विषय में जो विद्या है, यानि खेती बाड़ी की विद्या का नाम ही गोमेध यज्ञ है और इसी तरह दोनों महापुरुष गौ मेध यज्ञ के विषय में एक ही विचार रखते थे, जो बुद्धि पूर्वक हैं और जो लोग गौमेध का अर्थ गौ को मारना कहते हैं। वह महा अनर्थ करते हैं। क्योंकि गौ के लिए तो वेद में अघ्न्या शब्द आया है। जिस का अर्थ न मारने योग्य है। इस एक ही शब्द ने गौमेध यज्ञ का सही रूप दुनिया के सामने रख दिया, जैसा कि ज़रदुश्त और महर्षि दयानन्द ने ठीक समझ कर प्रचार किया।

७६. हज़रत मूसा

कोई ३५०० वर्ष हुए फ़िलिस्तीन देश में हज़रत मूसा का जन्म हुआ था हज़रत मूसा को मुक्ति दाता मानने वाले यहूदी कहलाते हैं, हज़रत मूसा जंगल में भेड़ बकरियां चराया करते थे। एक दिन बकरियां चराते चराते तूर पर्वत पर आग जलती देखी और

ऊपर चढ़ कर आग लेने के लिये गये। तो ऐसा इनका सिद्धान्त है कि पहाड़ पर आग में से परमात्मा ने इनसे बात चीत की और उन को अपना पैग़म्बर नियत किया। इस बात को एक शेर में इस प्रकार ब्यान किया है—

ख़ुदा की देन का मूसा से पूछिये अहवाल।
आग लेने जायें और पैग़म्बरी मिल जाय॥

हज़रत मूसा ने पहाड़ से उतर कर लोगों में प्रचार आरम्भ कर दिया कि ईश्वर ने इन को दस सिद्धान्तों के प्रचार करने की आज्ञा दी है। जो निम्न लिखित हैं और इन्हीं को मूसा के दस हुक्म कहा जाता है—

१. ख़ुदा ने यह सब बातें फ़रमाईं कि ख़ुदावन्द तेरा ख़ुदा मैं हूँ मेरे हज़ूर तू ग़ैर को पूजनीय न मानना।

२. तूने अपने लिये कोई तराशी हुई मूरत न बनाना, तू उनके आगे सजदा न करना और न उन की इबादत करना।

३. तू ख़ुदावन्द अपने ख़ुदा का नाम बेफ़ायदा न लेना।

४. याद करके तू सबत का दिन पाक मानना।

५. तू अपने बाप और मां की इज़्ज़त करना।

६. तू ख़ून न करना।

७. तू ज़ना ना करना।

८. तू चोरी ना करना।

९. तू अपने पड़ोसी के ख़िलाफ़ झूठी गवाही न देना।

१०. तू लालच न करना। (क्योंकि लालच मूर्ति पूजा के बराबर है)

वास्तव में बात यह है कि पांच हज़ार वर्ष से पहले सारे संसार में वैदिक धर्म का प्रचार था, परन्तु जब वैदिक धर्म का प्रचार महाभारत के युद्ध के बाद बन्द हो गया, तब मनुष्यकृत पन्थ

चलने आरम्भ हो गए। वैदिक धर्म के जो सिद्धान्त थे वह किसी न किसी शकल में फिर भी कायम रहे। अतः यही बात कि आग में से परमात्मा ने मूसा से बात की। इस बात को सिद्ध कर रही है। क्योंकि वैदिक साहित्य में अग्नि परमात्मा का भी नाम है। अतः ऋगवेद का पहला मन्त्र "अग्नि मीढ़े पुरोहितं" इत्यादि।

इस का ज्वलन्त उदाहरण है और फिर जो कुछ भी मूसा को प्रचार करने की आज्ञा अग्नि रूप परमात्मा ने दी वह भी सही वेदानुकूल ही है और शायद आप यह जानकर हैरान भी हों कि यहूदी लोग भी बकायदा हवनकुण्ड और वेदी बना कर हवन करते हैं। यद्यपि वाममार्गियों की तरह ख़ुशबूएं जलाने के साथ-साथ पशु मार कर भी हवनकुण्ड में डालते हैं। क्योंकि जब हज़रत मूसा का जन्म हुआ तब भारत में वाममार्ग का प्रचार ज़ोरों पर था और इसी प्रचार का प्रभाव हज़रत मूसा पर पड़ा होगा। तभी वाममार्गियों की तरह हवन मे पशुबली यहूदियों से प्रचलित हुई हज़रत मूसा ने दस नियमों का प्रचार ईश्वर आज्ञा मान कर किया।

और.

महर्षि दयानन्द जो ने भी आर्य समाज के दस नियम ईश्वर आज्ञानुकूल ही बनाए और उनका प्रचार किया जो निम्नलिखित हैं।

आर्य समाज के नियम

१—सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करना योग्य है।

३—वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्य्यों का परम धर्म है।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

५—सब काम धर्मानुसार, अर्थात् सत्य और असत्य को विचार कर करने चाहिये।

६—संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७—सब से प्रीति पूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये।

८. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

७७. हज़रत ईसा

हज़रत ईसा बाल ब्रह्मचारी थे, मती की अंजील में उन्होंने कहा कि जो मुझे प्रभु कहता है, वह स्वर्ग के राज्य में प्रवेश नहीं करेगा। फिर अंजील में कहा कि हरेक को उसके कर्म के अनुसार फल मिलेगा। परन्तु योहनना की अंजील में अपने आप को परमात्मा का पुत्र भी कहा है, फिर लिखा है कि ईश्वर अद्वैत है, लूका की अंज़ील में लिखा है, तुम मुझको उत्तम क्यों कहते हो, सिवा परमात्मा के कोई उत्तम नहीं।

और

१. महर्षि दयानन्द जी भी बाल ब्रह्मचारी थे, उन्होंने भी

मनुष्य के ईश्वर होने का खण्डन किया और हरेक को कर्मानुसार फल मिलने का ही सिद्धान्त प्रचारित किया था। परन्तु हज़रत ईसा की तरह सिर्फ अपने आप को ही ईश्वर का पुत्र न कह कर महर्षि जी ने वेद द्वारा यह सिद्ध किया था कि सब मनुष्य परमात्मा के पुत्र हैं।

हज़रत ईसा मसीह ने भूत प्रेत को माना, और जिन लोगों को भूत चिमटे हुए कहे जाते थे, उनको निकालते फिरे, और उनके शर्गिद भी और यह ईसाई मत के इस सिद्धान्त के प्रचार का ही फल है कि यूरोप अमरीका आदि बड़े बड़े समृद्ध और विद्वता पूर्ण देशों में अब तक भी बड़े बड़े पढ़े लिखे लोग भूत प्रेत को मानते हैं। साईंस की इन देशों में इतना उन्नति हो जाने पर भी मज़हब के नाम से बचपन में जो भ्रम बच्चों को डाला जाता है, यह कितनी भी विद्या पढ़ जाने पर भी नहीं निकल सकता। मार्टन लूथर जैसे मशहूर रिफ़ार्मर भी इस भ्रम जाल से न निकल सके। दूसरों की तो क्या कथा। आज कल यूरोप अमेरिका आदि देशों में स्प्रीचूलीज़म का नाम रख कर भूत प्रेत का प्रचार बड़ी तेज़ी से किया जा रहा है। उनके अख़बार निकलते हैं। सभायें होती हैं, और शत प्रतिशत पढ़े हुए करोड़ों आदमी इस भ्रम जाल में पड़ कर अपना जीवन दुखी बना रहे हैं। और यह केवल हज़रत ईसा को मानने और अंजील के कारण ही फैल रहा है।

और

महर्षि दयानन्द जी महाराज ने इस भ्रम जाल को एक दम तोड़ कर रख दिया। और स्पष्ट घोषणा की कि भूत प्रेत कोई विशेष योनि नहीं हैं। बल्कि जो आदमी मर जाता है, उसको भूत कहते हैं। और मरे हुए की लाश का नाम प्रेत है। और महाराज के इस

प्रचार ने लाखों करोड़ों आदमियों को इस भ्रम जाल से निकाल कर उनके जीवन सुखी बना दिये हैं।

३. जहां हज़रत ईसा मसीह के सब से बड़े शगिर्द यहूदा अस्करयुति ने ३० रुपये के लालच में फंसकर अपने गुरु को दुश्मनों के हाथ गिरफ़तार करा दिया। वहाँ महर्षि दयानन्द जी के रसोईये बलदेव को जीवन जी गोसाईं ने एक हज़ार रुपया का लालच दिया कि स्वामी जी को ज़हर दे दो। परन्तु उसने लालच में फसने से इन्कार कर दिया। जहां हज़रत ईसा का फ़ांसी पर चढ़ कर ईश्वर विश्वास डांवा डोल हो गया। और उससे कहा है कि ऐ मेरे ईश्वर तुमने मुझको क्यों त्याग दिया। वहां आख़री सांस तक महर्षि का ईश्वर पर अटल विश्वास रहा और महर्षि ने ईश्वर तैने अच्छी लीला की, तेरी इच्छा पूर्ण हो कह अपना श्वास त्याग दिया।

७८. हज़रत मुहम्मद

१. हज़रत मुहम्मद साहब का जन्म सन् ६७१ सोमवार के दिन प्रातः मुकाम मक्का कुरैश कबीला में हुआ, पिता का नाम अबदुल्ला और माता का नाम आमना था। पिता उनकी पैदायश से छः माह पहिले वफ़ात पा गया, और माता उनको ६ वर्ष का छोड़ कर चली गई। दादा अब्दुल मतलब ने उनका परवरिश की, हज़रत का खानदान पक्का मूर्ति पूजक था, और वह मक्का के मन्दिर के पुजारी भी थे।

और

महर्षि दयानन्द जी भी जिस कुल में उत्पन्न हुए वह पक्का मूर्ति पूजक कुल था, और उनके पिता श्री कर्षन जी तिवारी ने अपने खर्च से टंकारा के बाहर एक शिवालय बनाया हुआ था, जहां वह मूर्ति पूजा किया करते थे।

२. हज़रत मुहम्मद ने भी जब प्रचार शुरू किया तो मूर्ति

पूजा का ज़बरदस्त खण्डन करने लगे, न सिर्फ मूर्ति पूजा का बल्कि मूर्तियों को भी खण्डन करने का आदेश देते थे।

और

महर्षि दयानन्द जी ने भी जब प्रचार शुरू किया तो मूर्ति पूजा का बहुत ज़ोर शोर से खण्डन करने लगे, उनके ९९ प्रतिशत शास्त्रार्थ मूर्ति पूजा के विषय पर ही हुए, अपनी सारी ज़िन्दगी में मूर्ति पूजा के खण्डन को उन्होंने सब से अधिक श्रेय दिया, और सब प्रकार के प्रलोभनों से बच कर इसका खण्डन करते रहे। महर्षि दयानन्द जैसा मूर्ति पूजा का शत्रु संसार ने न कभी देखा होगा न सुना। परन्तु उन्होंने मूर्ति खण्डन न कभी ख़ुद किया न कभी किसी को आदेश किया। अतः सन् १८७९ में जब महाराज फ़र्रुखाबाद में प्रचार कर रहे थे, उन दिनों बाजार की नाप हो रही थी, बीच में एक मढ़िया थी, जहां लोग धूप दीप जलाते थे, बाबू मदन मोहन लाल ने स्वामी जी से कहा—कि स्काट साहब जो फर्रुखाबाद के कलक्टर हैं, आप को बहुत मान देते हैं उनको कह कर मढ़िया को हटवा दीजिए। स्वामी जी ने कहा कि मेरा काम लोगों के मन मन्दिरों से मूर्ति पूजा को निकालना है। ईंट पत्थर के मन्दिरों को तोड़ना फोड़ना नहीं।

३. हजरत मुहम्मद साहिब ने ईश्वर की एकता का प्रचार किया और कलमा में "ला इला इल्लाह" यानि परमात्मा के सिवा और कोई परमात्मा नहीं, ऐसा कहा—परन्तु उसके साथ "मुहम्मद रसूल अल्लाह" भी जोड़ दिया।

इसके साथ ही यह सिद्धान्त भी कायम कर दिया, कि मैं अन्तिम नबी हूं। यानि मेरे बाद कोई ख़ुदा का पैग़म्बर न आवेगा, और यह कि मेरी सिफ़ारिश के बिना कोई बहिशत में प्रवेश न कर सकेगा। इस सिद्धान्त के कायम होने के परिणाम स्वरूप परमात्मा की पूजा की जगह हज़रत मुहम्मद साहब की पूजा जारी

हो गई, अतः इस विचार को एक मुसलमान शायर ने साफ़ बयान किया है ।

ख़ुदा के पास सिवाये वहदत के रखा ही क्या है ।
हमने जो कुछ भी लेना होगा ले लेंगे मुहम्मद से ।।

और इस सिद्धान्त से फिर मुहम्मद प्रस्ती के स्थान पर कबर प्रस्ती भी आरम्भ हो गई । और भी कई बातें जो ख़ुदा की वहदानियत पर बादल बन कर छा गईं, पैदा हो गई जिसका वर्णन मशहूर मुसलमान शायर मौलाना अलताफ़ हुसैन हाली पानी पती ने एक नज़म में किया जो इस तरह है—

करे ग़ैर गर बुत की पूजा तो काफ़र ।
जो ठहराये बेटा ख़ुदा का तो काफ़र ।
झुके आग पर बहरे सजदा तो काफ़र ।
सितारों में माने करश्मा तो काफ़र ।
मगर मोमनों पर कुशादह हैं राहें ।
परसतिश करें शौक से जिसकी चाहें ।
नबी को जो चाहें ख़ुदा कर दिखायें ।
अमामो का रुतबा नबी से बढ़ायें ।
शहीदों पर दिन रात नज़रें चढ़ायें ।
और कबरों से जा जा के मांगें दुआयें ।
न तोहीद में कुछ ख़लल इससे आये ।
न इसलाम बिगड़े न ईमान जाये ।

इस्लाम के इस अकीदे के मुतल्लिक एक बड़ा ज्वलन्त उदाहरण हमारे सामने है, जब मौलाना मुहम्मद अली महात्मा गांधी

की कृपा से काँग्रेस के प्रधान बनाये गये, तो उन्होंने कहा कि—"एक फ़ासक और फाजर मुसलमान भी महात्मा गांधी से अच्छा है"।

क्या मतलब कि चाहे कितने भी गिरे हुए करैक्टर का आदमी हो। अगर वह हज़रत मुहम्मद साहब को पैगम्बर मानता है तो वह बहिश्त में दाख़िल हो जावेगा और महात्मा गांधी जैसा नेक मर्द ख़ुदा प्रस्त भी क्योंकि हज़रत मुहम्मद साहब पर ईमान नहीं लाता, इसलिए बहिश्त में दाख़िल न हो सकेगा।

और

४. महर्षि दयानन्द जी महाराज ने भी परमात्मा की एकता का प्रचार किया, परन्तु परमात्मा के साथ न अपना न किसी और पुरुष का नाम जोड़ा, वेद के मन्त्रों द्वारा परमात्मा की विशुद्ध एकता का प्रचार ही वह सारी आयु करते रहे, क्योंकि जिस परमात्मा की विशुद्ध एकता का वेदों में वर्णन है, किसी दूसरे स्थान पर दीपक लेकर ढूंढने से भी न मिल सकेगा।

वेदोद्धारक, महर्षि दयानन्द जी सरस्वती लिखते हैं कि :—

"(प्रश्न) वेद में ईश्वर अनेक हैं इस बात को तुम मानते हो वा नहीं ?

(उत्तर) नहीं मानते, क्योंकि चारों वेदों में ऐसा कहीं नहीं लिखा जिससे अनेक ईश्वर सिद्ध हों किन्तु यह तो लिखा है कि ईश्वर एक हैं।"

(सत्यार्थ प्रकाश)

महर्षि जी के उपर्युक्त लेख से स्पष्ट हो गया कि वेदों में एकेश्वरवाद है। अनेक पाश्चात्य विद्वान् वेदों में 'बहुदेवतावाद' मानते हैं जो उन का भ्रम है। vedic Age P. P. 379

वेदों के प्रमाण

"इद्र मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो
दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्नि

यमं मतारिश्वानमाहुः ।,"

(ऋ० म. १. सूक्त १६४, मंत्र ४६ अथर्व० ९।१०।२८)

इस मन्त्र में स्पष्ट बताया गया है कि "एक सत्स्वरूप परमात्मा को बुद्धिमान् ज्ञानी-जन अनेक प्रकार से पुकारते हैं । उसी को वे अग्नि, यम, मातरिवा, इन्द्र. मित्र, वरुण, दिव्य, सुपर्ण, गुरुत्मान् इत्यादि नामों को स्मरण करते हैं।"

आत्मानन्द का भाष्य :—एकैव देवता परमात्मा। सर्वदेवता एकस्यैव नाना नाम...।"

(पं० भगवद्दत जी बी० ए० कृत 'वैदिक वाङ्मय का इतिहास' भाग प्रथम, खण्ड द्वितीय, प्रथम संस्करण पृष्ठ ५२)

यो देवानां नामधा एक एव ।

(ऋ० १०।८२। ३०, अथर्व० २।१।३. यजु० १७।२७)

अर्थात् "...जो सब देवों (इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, यम आदि के नामों को प्रधानतया धारण करने वाला एक ही देव है ।"

जनमन् देव एकः ।

(ऋ० १०।८१।३; अथर्व० १३।२।२६. यजु० १७।१९)

इस मन्त्र में परमात्मा को 'देवः एकः' एक देव, सर्व प्रकाशकः, सर्वानन्दप्रदाता कहा है ।

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो

स एष एक एक वृद एक एव ।

(अथर्व० १३।४ मन्त्र १६ से २१ तक) अर्थात् 'वह यह परमात्मा एक है, एक होकर सबको व्याप्ने वाला सर्वव्यापक है, वह एक ही है । उसे दूसरा, तीसरा, चौथा, पाचवां, छठा, सातवां, आठवाँ, नौवां वा दसवां नहीं कहा जाता । वह एक है और एक हो

है । एक हो कर वह सर्वव्यापक और प्राणी अप्राणी सब को वह विशेष रूप से पूर्णतया देखने वाला है ।

एकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति ।

(ऋ० १०।११४।५)

अर्थात्—एक होते हुए भी अनेक रूपों में गुणसूचक अनेक नामों के द्वारा वर्णित है ।'

कतिपय पाश्चात्य विद्वान् भी वेदों में एकेश्वर वाद मानते हैं ।

श्री एच० एच० विल्सन लिखते हैं—इस में कोई सन्देह नहीं कि वेदों का मूल सिद्धान्त एकेश्वर प्रतिपादन है । स्वत: श्रुति कहती कि वास्तव में सत्य यह है कि केवल एक देव है, वही महान् आत्मा है ।

(Works by H. H. Wilson, Vol. II, P. P.51-52)

कौन्ट वियोर्न्सटीर्ना लिखते हैं :—"These truly sublime ideas cannot fail to convince us that the Vedas recognise only one God who is almighty, infinite, eternal, self-existent, the light and lord of the universe' (Thogony of the Hindus P. P. 53.)

अर्थात् "हम इस परिणाम पर पहुंचे बिना नहीं रह सकते कि वेद केवल एक ईश्वर का ही प्रतिपादन करते हैं जो सर्वशक्तिमान, अनन्त, नित्य, स्वयम्भू और भूमण्डल का प्रकाशक तथा अध्यक्ष है ।"

श्री अर्नेस्टवुड ने "एकंसद्विप्रा" मन्त्र का अनुवाद करते हुए यह टिप्पणी की थी :—"In the eyes of the Hındus. there is but one supreme God. This was stated long ago in the Rigveda in the follwing words :—

Ekam sad vipra bahudha vadanti, which may be translated : The sages name the one being verio-

sly.'' (An Englishman defends Mothor India. P. P. 128)

अर्थात्—हिन्दुओं की दृष्टि में एक ही महान परमात्मा है। यह ऋग्वेद में निम्नांकित शब्दों में बहुत पहले ही कहा गया था—

"एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' जिसका अनुवाद किया जा सकता है—बुद्धिमान नाना नामों से बताते हैं ।:—

वेदों का प्रसिद्ध जर्मन विदान् श्री मैक्समूलर लिखता है :—

I add only one more hymn (Rig 10. 121) in which the idea of one God is expressed with such power and decision, that it will make us hesitate before we deny to the Aryans an instinctive Monothe'sm. (History of Ancient Sanskrit Literature, P. P. 578.)

अर्थात्—'मैं एक और सूक्त ऋ० १०।१२१ को जोड़ना चाहता हूं जिसमें एक ईश्वर का विचार इतनी प्रबलता और निश्चय के साथ प्रकट किया गया है कि हमें आर्यों के नैसर्गिक एकेश्वरवादी होने से अस्वीकार करते हुए अधिक संकोच करना पड़ेगा।

अतः शहज़ादा दाराशिकोह जो शाहजहां बादशाह का सब से बड़ा लड़का था वह खुद अर्बी फारसी का बड़ा विद्वान था और विद्वानों का कदरदान भी था, इसके अन्दर सत्यज्ञान की जिज्ञासा थी, अतः जब इसकी कुरान शरीफ़ और दूसरे इस्लामी ग्रन्थ पढ़ने से तसल्ली न हुई उसने संस्कृत पढ़े हुए विद्वानों से उपनिषदों का फ़ारसी में तरजमा करवाया और जब इसने वह पढ़े जिन में आत्मा और परमात्मा के विषय तथा वेदों के व्याख्यान किये गये थे तो इस की पूरी पूरी तसल्ली हो गई। अतः वह कहता है कि हिन्दुओं की पुरानी किताबों को परमात्मा की एकता से इन्कार नहीं

है और न ही एकता मानने वालों पर कोई सन्देह है बल्कि परमात्मा की एकता का इन ग्रंथों में पूरे विश्वास के साथ समर्थन किया गया है । इसके विपरीत आज कल के मूर्ख लोग जिन्होंने स्वयं उपदेश घड़ लिये है एकता मानने वालों को सताने और दुख देने की चिन्ता में हैं और एकता के सारे व्याख्यानों का खण्डन करते हैं ।

उपनिषदों के अनुवाद पढ़ कर उसने अपनी दिनचर्या भी संवार ली थी, मांस शराब सब कुछ छोड़ कर पूरा परहेज़गार बन कर एक प्रभु का पुजारी हो गया था, अतः उसके फारसी के शेर इस के मन की हालत का वर्णन करते हैं । जिन के अर्थ निम्न लिखित हैं ।

अर्थात्—'अपने दिल का ख़ून पियो इससे बेहतर कोई शराब नहीं, अपने जिगर पर दान्त मारो इससे बढ़ कर कोई कबाब नहीं है । कुरान शरीफ़ में ख़ुदा को नहीं पा सकते, अपने दिल में निगाह मारो इस से बेहतर कोई किताब नहीं है ।''

यदि शाहजहां के बाद दाराशिकोह जो कि उसका बड़ा लड़का होने से तख़्त ताज का हकदार था, हिन्दुस्तान का बादशाह बन जाता तो हिन्दुस्तान की तारीख़ ही बदल जाती, लेकिन औरंगज़ेब मुतअस्सब मुसलमान था इस ने जहां अपने ज़िन्दा बाप को कैद किया, वहां अपने सब भाईयों को भी कत्ल करवा दिया ।

४. एक युद्ध के समय मुहम्मद साहब के एक साथी ने कहा — कि महाराज दुश्मन संख्या में अधिक है और हम कम हैं, तो मुहम्मद साहब ने कहा कि ख़ुदा हमारे साथ है, फिर हम कम किस तरह हैं ।

और

महर्षि दयानन्द जी महाराज का जब काशी के पंडितों से

शास्त्रार्थ होने वाला था, तो उनके सेवक बलदेव ने कहा कि महा-राज काशी के पंडितों की इतनी भारी संख्या के साथ आप अकेले कैसे शास्त्रार्थ कर सकेंगे। महाराज ने कहा कि जब परमेश्वर मेरे साथ है तो मैं अकेला कैसे।

५. मुहम्मद साहब के एक श्रद्धालु बीमार हो गये, वह उस की बीमार पुरसी को गये और बीमार श्रद्धालु का सिर दबाने लगे, श्रद्धालु भक्त ने कहा कि महाराज आप रसूल अल्लाह होकर मेरा सिर दबाते हैं यह ठीक नहीं, इस पर हज़रत ने कहा कि इन्सान का इन्सान दारू है, दुख के समय सेवा करने के लिए बड़ाई छोटाई नही देखनी चाहिए।

और

पंडित कृष्ण राम को स्वामी जो ने लेखक के तौर पर रखा हुआ था, उस को एक दिन बुख़ार आ गया। महर्षि दयानन्द स्वयं उसका सिर दबाने लगे। पंडित जी ने कहा—महाराज आप क्या करते हैं, मैं आप से कैसे सेवा करा सकता हूँ। महाराज बोले : इस में कोई हानि नहीं, दूसरों को सेवा करना मनुष्य का धर्म है। यदि बड़े छोटों की सेवा न करेंगे, तो छोटों में भी सेवा करने का भाव नहीं आएगा।

६. मुहम्मद साहब के पास एक उन का श्रद्धालु आया और कहने लगा—महाराज मैंने दो स्त्रियां की हैं, परन्तु मैं बेकार हूँ, तो मुहम्मद साहब ने हँस कर कहा—एक तीसरी शादी और कर लो बेकारी दूर हो जायेगी।

और

दाना पुर के ठाकर दास ने अपनी एक विवाहिता स्त्री की मौजूदगी में दूसरा विवाह कर लिया था। एक दिन उसने महर्षि जी से कहा कि मुझे भी योग की विधि बतला दें, तो हंसते हंसते महाराज ने कहा—तुम एक विवाह और कर लो तुम्हारा योग ठीक

हो जायगा।

७. सीरतुल नवी किताब में लिखा है कि हज़रत ज़ेनब मुहम्मद साहब के मुंह बोले बेटे आज़ाद करदा ग़ुलाम ज़ैद की बीबी थी, एक वर्ष के बाद ज़ैद ने उसे तलाक दे दिया, इस तलाक शुदा जेनब से मुहम्मद साहब ने ख़ुद निकाह कर लिया, इससे पहले अरब में मुंह बोले बेटे की औरत से चाहे वह तलाक़ याफ़ता हो, उसका बाप जिसने उसको मुंह बोला बेटा बनाया हो शादी नहीं कर सकता था। यह ज़माना जहालत की रसम थी, इसलिए मुहम्मद साहब ने अपने मुंह बोले बेटे की तलाक शुदा औरत के साथ शादी करके बड़ी दलेरी के साथ इस रसम की धज्जियां उड़ा दीं।

और

इसी तरह यहां भारत देश में भी एक रसम थी, कि संन्यासियों के मृतक शरीरों को जलाने की बजाये ज़मीन में गाड़ देते थे। ये भी ज़माना जहालत की रसम थी। महर्षि ने इस रसम का भी घोर खण्डन किया और आदेश कर दिया कि मेरे मृतक शरीर को हरग़िज़ दबाया न जावे, बल्कि संस्कार विधि के अनुसार जलाया जावे, अतः ३० अक्तूबर १८८३ को महर्षि ने शरीर त्याग दिया तो दो संन्यासी आ गये और महर्षि के शरीर को दबाने का आग्रह करने लगे, परन्तु महर्षि की आज्ञानुसार उनके मृतक शरीर को विधिपूर्वक जलाया गया। वह संन्यासी कहते थे कि हम दो थे और आप लोग यानि महर्षि के श्रद्धालु अधिक हैं इस लिए हम ज़बरदस्ती नहीं कर सकते। यदि हम अधिक होते तो हम ज़बरदस्ती महर्षि के शरीर को छीन कर ले जाते और संन्यासियों के नियमानुसार दबाते।

किसी ने ठीक कहा है—

लीके लीके गाड़ी चलें, लीके चलें कपूत।
लीक पुरानी परहरें शायर सिंह सपूत॥

८. मुसलमानों का यह मन्तव्य है कि मुहम्मद साहब अनपढ़ थे और उस पर मुसलमान फ़ख्र करते हैं कि अगर वह पढ़े होते तो लोग यह समझते कि कुरान शरीफ़ उनका बनाया है। क्योंकि वह अनपढ़ थे, इसलिए यह ख़ुदा की तरफ़ से ही दिया गया है।

और

महर्षि दयानन्द जी सिर्फ एक संस्कृत के विद्वान थे। जिस पर आर्य समाजी गर्व करते हैं। यदि वह अंग्रेज़ी पढ़े होते तो लोग यह ही समझते कि जो रिफ़ार्म का काम वह कर रहे हैं अंग्रेज़ों की देन है।

७९. चीन का महापुरुष कनफ़्यूशस

करीबन ३००० हज़ार वर्ष हुए कि कनफयूशन नाम का एक महापुरुष चीन में पैदा हुआ। उसने उपदेश किया कि बाप से अधिक मान्यता माता की है, और माता से बढ़कर सन्तान का कोई हितैषी नहीं है। जो लोग माता पिता के दिल को ठेस पहुंचाते हैं। वह लोग दरिन्दों और कातलों से भी बढ़कर हैं। और जो बज़ुर्गों की इज़्ज़त नहीं करते वह भी ऐसे ही हैं। अतः इस उपदेश के असर से चीन के देश में मां बाप की इज़्ज़त न करने वालों के लिए मौत की सज़ा निश्चित कर दी गई थी।

और

महर्षि दयानन्द सरस्वती अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश ११ वें समुल्लास में पंचायतन पूजा का यथार्थ स्वरूप वर्णन करते हुए लिखते हैं। "प्रथम माता मूर्ति मती पूजनीय देवी, अर्थात् सन्तानों को तन मन धन से सेवा करके माता को प्रसन्न रखना, हिंसा तथा ताड़ना कभी न करना। दूसरा पिता सत्य कर्तव्य देव उसकी भी माता के समान सेवा करनी। तीसरा आचार्य—जो विद्या का देने

वाला है उसकी तन मन धन से सेवा करनी । चौथा—अतिथि जो विद्वान् धार्मिक निष्कपटी सब की उन्नति चाहने वाला, जगत में भ्रमण करता हुआ सत्योपदेश से सबको सुखी करता है उसकी सेवा करें। पांचवां स्त्री के लिए पती, और पुरुष के लिए पत्नी पूजनीय है। जिनके संग से मनुष्य देह की उत्पत्ति, पालन, सत्यशिक्षा, विद्या और सत्योपदेश की प्राप्ति होती है, ये ही परमेश्वर को प्राप्त होने की सीढ़ियां हैं। इनकी सेवा न करके जो पाषाणादि मूर्ति पूजते हैं, वह अतीव वेद विरोधी हैं।

२. एक राजा कनफ्यूशस के पास आकर कहने लगा कि मेरे राज्य में जिस प्रकार सुख हो, वह उपाय बतलाईये, तो उन्होंने कहा अपने नाम दरुस्त करो।

और

पूना में व्याख्यान देते हुए महर्षि दयानन्द जी ने एक बड़े मार्मिक शब्दों में एक दिन कहा था, ऐ भाईयो पथ भ्रष्ट तो हुए ही थे नाम भ्रष्ट भी हो गये हो। तुम्हारा नाम तो आर्य है जो वेदोक्त है, हिन्दु नाम विदेशियों ने तुम को दिया है, जिसके अर्थ काला, चोर आदि होते हैं। परन्तु तुम इस नाम से चिपटे बैठे हो, इसलिए आपको अपना नाम दरुस्त करना चाहिए। अहो! महर्षि की कितनी कृपा हुई जो उन्होंने हमारा दरुस्त नाम हमें बताया। जो सदियों की गुलामी से हम भूल चुके थे। बजाय आर्य यानि श्रेष्ट कहलाने के हिन्दू यानि काला और चोर कहलाये जाने में ही फ़ख़र महसूस करते थे।

३. कन्फ़यूशस पुरुषार्थ का प्रचारक था, अत: उसका उपदेश था कि—

God gives every bird its food, but does not threw it into the nest.

अर्थात् परमात्मा सब परिन्दों को ख़ुराक देता है, परन्तु उनके घोंसले में नहीं फैंकता यानि परिन्दों को भी अपनी ख़ुराक पुरुषार्थ से ही हासिल करनी पड़ती है।

और

महर्षि दयानन्द जी भी पुरुषार्थ का पूर्ण रूप से समर्थन और उपदेश करते थे। अतः एक दिन एक साधू महर्षि के पास आया, और प्रश्न किया कि पुरुषार्थ और प्रारध में कौन बड़ा है, महाराज ने उत्तर दिया कि प्रारब्ध पिछले कर्म और भोग का नाम है। पुरुषार्थ इस जन्म में कार्य करने का नाम है, इस लिए इस जन्म में पुरुषार्थ ही करना चाहिए, मगर साधू यह कहता हुआ उठ खड़ा हुआ कि पुरुषार्थ करना तो बेकार ही है। इस पर महाराज ने अपने पास बैठे हुए एक सेवक को कहा—कि इस साधु की लोई उतार कर सड़क पर फैंक दो। जब वह सेवक लोई उतारने लगा तो साधू जी महाराज इससे गुत्थम-गुत्था होकर संग्राम करने लग गये, और इस खींचा तानी में पुरुषार्थ की जीत हुई। साधू ने महर्षि के चरण पकड़ लिए, कहने लगा महाराज आपने सिद्ध कर दिया है कि इस जन्म में पुरुषार्थ करना अत्यन्त आवश्यक है।" और महर्षि तो यही उपदेश देते थे।

पुरुषार्थ ही इस दुनियां में हरकामना पूरी करता है।

मन चाहा सुख उसने पाया,
जो आलसी बनके पड़ा न रहा ॥

महाराज स्वयं भी सारी आयु पुरुषार्थ के मूर्तिमान ही बने रहे।

८०. लुकमान

लुकमान यूनान देश का एक मशहूर फ़िलासफ़र हुआ है।

और यह मिसल आम मशहूर है कि बहम की दवा तो लुकमान के पास भी नहीं थी। इस से यह बात तो सिद्ध हो जाती है कि वहम कोई ऐसी भयंकर बीमारी है कि जिस का इलाज लुकमान जैसे बड़े हकीम के पास भी न था और यह बात है भी सच्ची। बहम निश्चय ही सब से भयंकर बीमारी है, जो कि न सिर्फ व्यक्ति गत जीवन पर ही असर डालती है बल्कि समष्टि गत जीवन पर भी, नहीं नहीं देश और जातियों के इतिहास पर भी इसका बड़ा असर पड़ा हुआ संसार में दीखता है। इस लिए सब से पहले हमें वहम की विवेचना करनी है कि वहम क्या वस्तु है। किसी चीज़ की हस्ती तो न हो लेकिन इस को फर्ज़ कर लिया जावे कि वह है "यही बहम है" और जब कोई किसी किसम का वहम आदमी पर या जातियों पर सवार हो जावे तो वह उस वक्त तक निकलने का नाम नहीं लेता, जब तक उस आदमी या उस जाति व देश का सत्यानाश नहीं कर देता। बहम तो स्वयं ही बड़ा बलवान है परन्तु यदि इस के प्रचारक हज़रत ईसा और मार्टन लथर जैसे मज़हबों के बानी भी हो जावें "फिर तो एक करेला दूसरे नीम चढ़ा" की मिसाल इस पर आयद होती है, अतः हज़रत ईसा मसीह भी अपनी जिन्दगी में लोगों के भूत निकालते रहे और मार्टन लथर भी भूतों और बद रूहों का बड़ा कायल था। वह इस बात का पूण रूप से समर्थन करता था कि संसार में जितनी बिमारियां या तकलीफें पैदा होती हैं शैतान और बदरूहें ही इन को पैदा करती हैं। ऐसे विचारों के असर से योरूप के तमाम मुलकों में और फिर जहां जहां ईसाईयों का राज्य हुआ और ईसाई प्रचारक गये भूतों बदरूहों की मौजूदगी और इन के तकलीफ़ देने का बहम सब साथ ही गया, चुनांचे १६वीं सदी में सिर्फ जर्मनी के मुल्क में जहां के मार्टन लूथर मशहूर रिफार्मर जिस ने ईसाईयों के प्रोटेस्टेंट फिर्का की बुनियाद रखी थी। पैदा हुआ था,

एक लाख मर्द, औरतें और बच्चे इस शक में जिन्दा जला दिये गये वह प्लेग फैलाते हैं। वहम यह पैदा हो गया था कि जो लोग किसी दीवार के साथ हाथ लगाते हैं, वह उस मकान में प्लेग फैलाते हैं। ईसाईयत के प्रचार ने भूतों और बदरूहों के वहम को बहुत फैलाया सारे संसार में ईसाईयों का राज्य रहा है इसलिए यह वहम सारे संसार में ही फैल चुका है। और आज भी साईंस की इतनी तरक्की हो जाने के बावजूद यूरोप, अमरीका के बड़े बड़े पढ़ लिखे लोग भूत प्रेतों को मानते हैं। बल्कि यूरोप के मुल्कों में तो बाकाइदा इस बात का प्रचार करने के लिए अखबार भी निकलते हैं। बड़ी बड़ी किताबें लिखी जाती हैं कि मरने के बाद आदमी भूत बन जाते हैं और आकाश में यत्र तत्र घूमते रहते हैं और वह ज़मीन पर रहने वाले ज़िन्दा लोगों से बात चीत भी करते हैं। यही नहीं बल्कि थ्योसोफ़ीकल सोसाईटी वाले तो इस को सिद्धान्त मानकर इसका खुले बन्दों प्रचार करते हैं। कुछ साल हुए पंजाब में भी रूहों से बात चीत करवाने का ढोंग खूब चल गया था। कुछ लोग तिरपाईयों के इर्द गिर्द बैठ जाते थे और कहा जाता था कि इस तरह जिस रूह को चाहे बुला कर उससे बात चीत कराई जा सकती है। हमारे शहर चुनियां में भी एक ऐसा शख्स आ गया था, जो रूहों से बात चीत कराने का दावेदार था, लेकिन हमारे सामने तो वह किसी रूह को न बुला सका, क्यों कि पंजाब में आर्य समाज का प्रचार बहुत अधिक था, इसलिए यह रूहों के साथ बात चीत करवाने का ढोंग ज़्यादा देर न चल सका और खतम हो गया। वहम के कारण देशों और जातियों के इतिहास ही बदल गये। अपने देश के इतिहास पर वहमों की कितनी छाप लगी और इन वहमों के कारण देश का कितना विनाश हुआ, निम्नलिखित दृष्टान्तों से आप को भली भांति ज्ञात हो जावेगा।

१. सिकन्दर के बाद सबसे पहले इस देश पर मुहम्मद बिन कासम ने हमला किया और राजा दाहर वालिये सिंध के साथ इस की मुठ भेड़ हुई। कितने ही दिन लड़ाई चलती रही, और मुहम्मद बिन कासिम विजय प्राप्त करने की आशा छोड़ चुका था, निराश हो कर, थक हार कर वापस अपने देश को जाने की तैयारियां कर रहा था कि दो देश द्रोहियों ने मुहम्मद बिन कासिम को आ कर कहा कि अगर हम तुम्हारी जीत करा देवें तो आप हमको क्या इनाम देंगे। उसने कहा आप को मुंह मांगा इनाम दिया जायगा। तब उन्होंने कहा कि हमारे राज्य में जो फलां मन्दिर है, उस पर झण्डा चढ़ा हुआ है, हमारा यह विश्वास है कि जिस दिन हमारा यह झण्डा गिर पड़ेगा, हमारी पराजय ही जायेगी, यदि आप किसी तरह इस झण्डे को गिरा देवें। तो फौजों में बेदिली फैल जायेगी और आपकी जीत हो जायेगी। चुनांचे मुहम्मद बिन कासिम ने किसी न किसी तरह वह झण्डा गिरा दिया बस फिर क्या था, इस वहम के ज़ेरे असर फौज दिल छोड़ बैठी, और राजा दाहर की जीत हार में और मुहम्मद बिन कासिम की हार जीत में तबदील हो गई राजा दाहर मारा गया। मुहम्मद बिन कासिम ने एक दिन में ही राजधानी में 64000 आदमी कतल करा दिये। इसके इलावा सैकड़ों हज़ारों को गुलाम बना लिया। हजारों नौजवान ख़ूबसूरत, लड़कियां मुसलमान फ़ौजियों में तकसीम कर दीं और राजा दाहर की दो नौजवान ख़ूबसूरत लड़कियों को अपने साथ उस वक्त के ख़लीफ़ा को भेंट करने के लिए ले गया। जब ख़लीफ़ा के पास पहुंचा और अपनी जीत की कहानी और इन लड़कियों के मुतल्लिक खलीफ़ा साहब को उसने सब कुछ बताया तो खलीफ़ा साहब बड़े ख़ुश हुए और उसको इनाम देने की सोचने लगे। उधर इन दोनों लड़कियों ने अपने सतित्व की रक्षा का निश्चय कर लिया अतः जब दोनों लड़-

कियां खलीफ़ा को पेश की गईं, तो खलीफ़ा साहब उनकी जवानी और खूबसूरती पर लट्टू हो गये, परन्तु दोनों बहनों ने जार जार रोना शुरू कर दिया, खलोफा ने जब रोने का कारण पूछा तो कहने लगीं कि हम आप के काम की नहीं रही हैं मुहम्मद बिन कासिम ने रास्ते में हमारी इज्जत लूट ली है। इस पर खलीफ़ा को बहुत क्रोध आया और उसने मुहम्मद बिन कासिम को उसी वक्त कतल करवा दिया। जिस वक्त इन कन्याओं ने देखा कि कासिम तो अब कत्ल हो चुका, तब दोनों ने अपने निश्चय के मुताबिक एक दूसरे को कटार मार कर प्राण दे दिये। अब विचारिये कि एक छोटे से बहम ने हमारे देश के इतिहास को किस तरह बदल दिया।

२. जिस वक्त सुबुक्तगीन ने हमारे देश पंजाब पर हमला किया, उस वक्त लाहौर पर राजा जैपाल राज्य करता था, जब दुश्मन के हमले की खबर राजा और जनता को पहुंची तारीख बताती है, कि अपने देश की रक्षा के लिए स्त्रियों ने अपने गहने तक उतार कर दे दिये। और दुश्मन का मुकाबला करने की खूब तैयारियां की गईं। देश के जवानों में जोश ठाठें मार रहा था, कि दुश्मन सिर पर आ पहुंचा, जब हमारी फ़ौज कील कांटे से लैस होकर दुश्मन का मुंह तोड़ने को तैयार थीं कि ज्योतिषियों ने राजा को कहा कि जिस तर्फ से दुश्मन की फ़ौज आ रही है, उस तर्फ को अगर हमारी फौजें जायेंगी तो इस तर्फ डाकनी और योगनी है, हमें निश्चय ही पराजय होगी, बस फिर क्या था फौजों का दिल टूट गया और हमारे फौजी दुश्मन का मुकाबला न कर सके। जबरदस्त शिकस्त उठाना पड़ी। राजा जैपाल मारा गया, और देश पंजाब दुश्मन की फ़ौज़ों के पांवों तले रौंदा गया। इस पराजय से दुश्मनों के हौंसले बहुत बढ़ गये हमारे देश के अन्दर हीनता की भावना पैदा हो गई। और इसके बाद सुबुक्तगीन का लड़का महमूद गज़नवी

इस देश पर लगातार सतत्र हमले कर के अनगिनत धन लूट कर ले गया, लाखों विधवाएं बना दी गई। लाखों बच्चे यतीम हो गये और हज़ारों लाखों को कैदी बना कर गज़नी ले गया, जहां दो दो रुपये में हिन्दु स्त्री पुरुष ग़ुलाम बना कर बेचे गये। अगर राजा जैपाल के वक्त ही यह डाकनी शाकनी का वहम फौजों में न पैदा किया जाता तो राजा जैपाल को कभी पराजय न होती और अगर राजा जैपाल जीत जाता तो दुश्मन हार कर वापस चला जाता और फिर किसी की हिम्मत न होती कि हमारे देश को तर्फ़ मुंह भी करता, लेकिन इस ज़रा से वहम ने भारत की तारीख़ की धारा हो बदल दी। और यह देश एक हज़ार साल तक गैरों की गुलामी की जंजीरों में जकड़ा रह कर कराहता रहा। महमूद गज़नी इस देश से अपने १७ हमलों में कितना धन ले गया होगा। वह निम्नलिखित दो उदाहरणों से ज़ाहिर है"।

१. तारीख़ फ़रिश्ता में लिखा है कि महमूद गज़नवी सन् १००६ में कांगड़ा की देवी के मन्दिर से सात लाख सोने की मोहरें ७००० मन सोना चाँदी की ईटें, २०० मन खालस सोना, दो हज़ार मन चाँदी, २० बीस मन जवाहरात जिन में लाल हीरे और याकूत शामिल था ले गया था।

२. जब महमूद ने आख़िरी हमला सोमनाथ के मन्दिर पर किया तो उस वक्त सोमनाथ की रक्षा के लिए सतरह राजपूत राजे अपनी फौजों सहित इकट्ठे हुए थे। परन्तु पुजारियों ने इनको मुका-बला न करने दिया और आख़िर तक यही कहते रहे कि देवता स्वयं इस को मार देगा, आप बेफ़िक्र होकर बैठे रहें। जिसका नतीजा यह हुआ कि सारे राजे और उनकी फ़ौज सब मारी गई, सोमनाथ का मंदिर लूटा गया, मूर्ति तोड़ी गई और अठारह करोड़ रुपये के जवाहरात सिर्फ़ सोमनाथ की मूर्ति के पेट से महमूद को मिले थे,

और सैंकड़ों स्त्री पुरुषों को ग़ुलाम बना कर अपने साथ ग़ज़नी ले गया।

(मालूम ऐसा होता है कि उस वक्त लोग मंदिरों को बैंक और सेफ़ वाल्ट समझा करते थे, और अपनी कीमती चीजें मन्दिरों में रखा करते थे, यह बात महमूद को मालूम हो गई थी, और इसने जितने हमले किये मन्दिरों को ही लूटा, जिससे इसको बेशुमार दौलत हाथ लगी। जिस वक्त वह मरने लगा तो उसने कहा कि जितनी दौलत मैं हिन्दुस्तान से लूटकर लाया हूं वह मुझे दिखाई जावे, तो कहा जाता है कि दो मील के दायरे के अन्दर सोना, चाँदी, हीरे, जवाहरात का ढेर लगाया गया था, जो हिन्दुस्तान से लूट कर ले जाई गई थी, यह सिर्फ़ तभी हो सका कि राजा जैपाल के वक्त फ़ौजों के अन्दर डाकनी, शाकनी का वहम डाल कर, इनको बेदिल कर दिया गया। और राजा जैपाल को शिकस्त उठानी पड़ी सुबुक्तगीन और महमूद गज़नवी के हौसले बढ़े और वह हिन्दुस्तान को पद दलित करके बेशुमार दौलत लूट कर ले गये। और इस देश के वासियों को गैरों की ग़ुलामी की जंजीरों में जकड़ दिया गया। जिससे पूरा एक हज़ार साल इस देश पर गैरों की हकूमत रही, यह सिर्फ़ एक मामूली से वहम का करिश्मा है। इस तरह के कितने ही वहम न सिर्फ़ इस देश के अन्दर बल्कि सारे संसार के अन्दर फैले हुए थे और महर्षि दयानन्द जी ने जब प्रचार क्षेत्र में कदम रखा, तो उन्होंने न सिर्फ़ एक वहम को बल्कि दुनियाँ भर के अन्दर फैले हुए तमाम वहमों का पुरज़ोर खण्डन करके संसार को वहमों से छुटकारा दिलाने का ज़बरदस्त प्रयत्न किया, और जहां लुकमान के पास एक भी वहम की दवा न थी, वहां महर्षि ने सारे ही वहमों की अचूक दवाई बताई, चुनांचे अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के दूसरे समुल्लास में महर्षि फ़रमाते हैं।

१. "माता पिता और गुरु अपने बच्चों और शिष्यों को बचपन से ही ऐसी शिक्षा दें जिससे सन्तान किसी धूरत के बहकाने में न आवे, और जो जो विद्या धर्म विरुद्ध भ्रान्ति जाल में गिराने वाले व्यवहार हैं उन का भी उपदेश करे, जिससे भूत प्रेत आदि मिथ्या बातों का विश्वास न हो । क्योंकि जब आदमी मर जाता है तो इसकी लाश को प्रेत कहते हैं, और जब इसके शरीर का दाह हो चुकता है तब इस का नाम भूत होता है (जैसे आजकल कहा भी जाता है कि फलां आदमी गुज़र गया) यानि गुज़रे हुए काल का नाम भूत होता है । जितने उत्पन्न हों और वर्तमान में आकर न रहें वह भूतस्थ होने से इनका नाम भूत होता है । ऐसा ब्रह्मा से लेकर आज पर्यन्त के विद्वानों का सिदान्त है । परन्तु जिसको शंका कुसंग का संस्कार होता है, उसको भय और शंका रूप भूत-प्रेत डाकनी शाकनी आदि अनेक भ्रम जाल दुखदायक होते हैं । देखो जब कोई प्राणी मरता है है तब इसका जीव पाप पुण्य के वश होकर परमेश्वर की व्यवस्था में सुख दुख के फल भोगने के अर्थ जन्मान्तर धारण करता है । क्या उस अविनाशी परमेश्वर की व्यवस्था का कोई भी नाश कर सकता है । अज्ञानी लोग वैद्यक शास्त्र वा पदार्थ विद्या के पढ़ने सुनने और विचार से रहित होकर सन्निपात ज्वर आदि शरीरिक रोगों और उन्माद आदि मानसिक रोगों का नाम भूत-प्रेत आदि धरते हैं । इनका औषध सेवन और पथ्यादि उचित व्यवहार न करके, धूर्त, पाखण्डी, महा मूर्ख, स्वार्थी, भंगी, चमार, शूद्र, म्लेच्छ पर भी विश्वासी होकर अनेक प्रकार के ढोंग, छल कपट और उच्छिष्ट भोजन, डोरा, धागा, तवीज़ आदि मिथ्या मन्त्र जन्त्र बांधते बंधवाते फिरते हैं । अपने धन का नाश, सन्तान आदि की

दुर्दशा और रोगों को बढ़ा कर दुख देते फिरते हैं।"

२. फिर महाराज इसी दूसरे समुल्लास में लिखते हैं "कि इसी तरह मौजूदा ज्योतिषयों का भी पाखण्ड ही है कि जब कोई उनके पास जाता है और कहता है कि महाराज मुझको यह कष्ट है तो वह ज्योतिषी जी कह देते हैं कि इस पर सूर्य, शनिश्चर, मंगल आदि क्रूर ग्रह आए हुए हैं, तुम इनके लिए शान्ति पाठ पूजा दान कराओ तो ठीक हो जाएगा। ता उनसे कहना चाहिए कि जैसे के यह पृथ्वी जड़ है, ऐसे ही सूर्य, शनिश्चर आदि ग्रह भो जड़ नहीं है। क्या यह चैतन्य है? जो क्रोधित होकर दुख शान्ति या सुख देवें। यह तो ताप और प्रकाश के भिन्न और कुछ नहीं दे सकते और संसार में जो राजा प्रजा सुखी दुखी है, वह इन ग्रहों का फल नहीं, अपितु यह सब हर एक के पाप पुण्य का फल होता है, जो सब को सुख दुख के रूप में मिलता है। स्वामी जी लिखते हैं कि ज्योतिष शास्त्र में जो अंक बीज, रेखागणित विद्या है वह तो ठीक है, परन्तु जो फल का लीला है वह झूठी है।"

३. आजकल एक भृगु संहिता का ढोंग चला हुआ है। कई आदमी कहते हैं कि हमारे पास भृगुसंहिता है और फिर लुत्फ़ यह है कि हर एक भृगुसंहिता वाला अपनी भृगुसंहिता को सच्चा और बाकी सब की भृगुसंहिता को झूठी बतलाती है। भला सोचो तो सही कि यह ज्योतिषी लोग अपनी कन्याओं का पूरा ज्योतिष लगा कर, लग्न, मुहूर्त ठीक विचार कर विवाह करते हैं फिर भी कई कन्याएं विधवा हो जाती हैं, तब इनका ज्योतिष कहां चला जाता है। यह तो आम प्रसिद्ध कहावत है कि ब्रह्मा जी के पुत्र वशिष्ठ मुनि जो राजा दशरथ के परोहित थे, उसने रामचन्द्र जी के राजतिलक का मुहूर्त निकाला था, परन्तु हुआ उसके विपरीत।

ब्रह्मा के पुत्र वशिष्ठ महामुनि, गिन गिन लगन धरे।
दशरथ का मरना, सिया का हरना, वन वन राम फिरे।
कर्मगत टारे नांहि टरे।

मुहूर्त विचार

महर्षि दयानन्द महाराज की कृपा से जो थोड़ा बहुत ज्ञान प्राप्त हुआ है, इससे मुहूर्त के विषय में भों कुछ विचार उपस्थित करना पाठकों के लिए लाभदायक ही सिद्ध होगा हमारे पूर्व पुरुषाओं ने जो समय विभाग किया था वह निम्न प्रकार है, एक बार आंख की पलक झपकने का निमेष उनमेष है, साठ निमेष उनमेष का एक क्षण, साठ क्षण का एक पल, साठ पल की एक धड़ी और साठ घड़ी का एक दिन रात। कैसा विचित्र समय का विभाग किया गया, कि साठ के शब्द को ही लगातार अपनाया गया है। जहां सब संसार के लोगों ने समस्त दूसरी विद्याएं यहां से सीखी हैं।, वहां समय विभाग का प्रकार भी यहीं से लिया गया है। संसार भर के प्राणी कोई भी बात अपने आप न कर पाये। यह स्वतः सिद्ध ही है, इसलिये तो महर्षि जी ने कहा कि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। इस वक्त जो समय विभाग सारे संसार में योरुपीयन लोगों की तर्फ से प्रचलित है, इस में पहले तो साठ का हिन्दसा ही अपनाया। यानि साठ सैकिंड का एक मिन्ट और साठ मिनट का एक घण्टा, आगे चलकर इन को इस से हटना पड़ा। क्योंकि हमारे वैदिक ऋषियों का समय विभाग प्राकृतिक था यानि उन्होंने आंख झपकने को सन्मुख रखकर यह क्रम चलाया था परन्तु योरुपीयन लोगों ने अटकल पच्चू १ सैकिंड बनाकर इस साठ सैकिण्ड का मिनट बना लिया फिर साठ मिनट का घण्टा बना कर आगे इस हिन्दसे के साथ न चल सके। खैर अब मुहूर्त की बात भी सुनिये। मुहुर्त दो घडी का होता है, और मौजूदा हिसाब से घड़ी २४ मिनट की होती है और मुहुर्त ४८ मिनट के अन्तर का नाम हुआ। इसके बिना मुहुर्त का न कोई और अर्थ है, न कोई महातम है। और इस हिसाब से सारे दिन रात में ३० मुहुर्त

आते हैं। और आजकल दिन रात में २४ घण्टे होते हैं। जिस तरह आजकल हम सब जब कोई काम करते हैं या विशेष जगह जाना होता है या किसी विशेष पुरुष से मिलना होता है तो कहते या लिख देते हैं कि इतने बजे या इतने वक्त पर मैं यह काम करूंगा या इस जगह जाऊंगा या उस पुरुष को मिलूंगा इसी तरह प्राचीन काल में लोग कहा करते थे कि इस मुहूर्त में यह काम करूंगा, इस मुहूर्त में वहां जाऊंगा। गोया मुहूर्त वक्त का एक ऐसा हिस्सा है जो ४८ मिनट का होता है। बस इससे ज़्यादा मुहूर्त का कोई अर्थ नहीं है। अब लगे हाथों यह भी सुन लें कि आजकल जो वक्त बताने वाले यन्त्र को घड़ी का नाम दिया गया है, वह भी इस घड़ी शब्द को सन्मुख रख कर दिया गया है. प्राचीन काल में समय विभाग को जानने के लिए जो यन्त्र बनाये जाते थे वह अमूमन मट्टी के ऐसे बर्तन बना कर पानी या रेत डाल कर इसके पैंदे में छेद करके बनाए जाते थे। चूंकि समय विभाग में घड़ी का शब्द आता था। इसलिए इस समय बताने वाले यन्त्र का नाम भी घड़ी मशहूर हो गया। जो अब तक भी मिटटी के छोटे से बर्तन को घड़ी और बड़े बर्तन को घड़ा कहा जाता है। और फिर जब यह लोहे के पुरजों से समय बताने वाला यन्त्र बनाया गया और भारत में आया तो इसका नाम भी घड़ी मशहूर हो गया। ऊपर लिखे समय विभाग के क्रम से यह सिद्ध हो गया है कि मुहूर्त ४८ मिनट का है। सो अब जो विवाह शादी या दूसरे संस्कारों पर लोगों को यह कहते सुना जाता है या पंडित लोग बताते हैं कि विवाह का मुहूर्त इस वक्त का है, या फलां संस्कार का यह मुहूर्त है तो इसका भी यही अर्थ होता है जो ऊपर वर्णन किया गया है न इससे ज्यादा न इससे कम। परन्तु हमारे समाज में इस मुहूर्त शब्द के ठीक अर्थ न जानकर कितना भ्रम और वहम फैला हुआ है। यह आप भाई अच्छी तरह जानते ही हैं।

यह तो भला दूर की बात है, १९४७ में देश का बटवारा हुआ। इससे पहले क्या किसी ज्योतिषी ने कभी कहा था कि देश का बटवारा होगा। और फिर इस बटवारे में लाखों आदमी मारे गये, खुद ज्योतिषी जो मारे गये, लूटे गये। अगर यह फलित जिस को गलत तौर पर ज्योतिष कहा जाता है, सच्चा होता जितना नुकसान जान और माल का इस विभाजन में हुआ कभी न हो सकता, इस से भी बढ़कर जब अंग्रेज़ यहां से चले गये तो यहां तकरीबन ६०० राजे थे और रियासतों के मालिक थे और हर एक राजा के पास ज्योतिषी भी थे। किसी ज्योतिषी ने किसी राजा को यह न बताया, कि महाराज आपका राज अब नहीं रहेगा, अपना अपना बन्दोबस्त कर लो, इससे बढ़कर भी और सबूत इस फलत ज्योतिष के ग़लत होने का मिल सकता है।

(४)

अब रह गया मन्त्र जन्त्र जादू होना का वहम भी ढोंग है। महर्षि लिखते हैं कि ऐसे सब लोगों को यह सवाल करना चाहिए कि क्या आप परमेश्वर के नियम और कर्म फल से भी बचा सकोगे ? क्या तुम्हारे इस प्रकार करने से भी कितने ही लड़के मर जाते हैं तुम्हारे घर में भी मरते हैं। और क्या तुम खुद मौत से बच सकोगे, तब वह कुछ भी नहीं कह सकते और ऐसे धूर्त लोग जान लेते हैं कि हमारी दाल यहां नहीं गल सकती। और इन सब मिथ्या व्यवहारों को छोड़ कर धार्मिक, सब देश के उपकार करता, निष्कपटता से सब को विद्या पढ़ाने वाले, उत्तम विद्वान लोगों के प्रति उपकार करना हैं, इस काम का भी न छोड़ना चाहिए। और जितनी यह लाला रसायन, मारन, मोहन, उच्चाटन, वशीकरन आदि करना कहते हैं, उनको भी महापामर समझना चाहिए। इत्यादि मिथ्या बातों का उपदेश बाल्यावस्था में ही सन्तानों के हृदय में डाल देना चाहिए, ताकि अपनी सन्तान किसी के धोखे में

पढ़कर दुख न उठावे ।

५. अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में नवग्रह पूजा के बहम का खण्डन करते हुए महर्षि कहते हैं। जिन जिन मन्त्रों मे हिन्दू लोग नवग्रहों की पूजा करते हैं, इन वेद मन्त्रों के अर्थों में कहीं नवग्रह पूजा की गन्ध भी नहीं है। यह सब लोगों को ठगने के लिए स्वार्थी लोगों ने चला रखी है वर्ना यह ग्रह उप-ग्रह यानि सूर्य चाँद वगैरह की किरणों द्वारा गर्मी सर्दी और मौसमों की तबदीली का तो सम्बन्ध है, इस के सिवा किसी को किसी और तरह सुख दुख नहीं पहुंचा सकते और हरेक मनुष्य अपनी अपनी प्रकृति के अनुकूल या प्रतिकूल होने से गर्मी सर्दी मौसम की तबदीली में सुख दुख अनुभव करता है। यह नहीं कि जिस तरह आज कल पोप लाला वाले कहते हैं कि चन्द्रमा आठवें है, सूर्य बारहवें है, शनिश्चर फलां घर में है, तुमको बड़ा कष्ट होगा, इस के लिए इनका कोई उपाय करो और वह पोप लोला वाले उन को दान पुण्य-पूजा पाठ आदि उपाय बताते हैं। यह सब बातें मिथ्या हैं। लोगों को पूरे तौर पर अपने जाल में फंसाने के लिए इन लोगों ने एक मन्त्र बना रखा है, जिसका अर्थ है, देवताओं के अधीन सब जगत, मन्त्रों के अधीन सब देवता और मन्त्र ब्राह्मणों के अधीन है, इसलिये ब्राह्मण देवता कहलाते हैं। क्योंकि जब चाहें मन्त्र से देवता का बुला और प्रसन्न करके काम सिद्ध कर लेवें। तब स्वामी जी कहते हैं कि उनसे कहना चाहिए कि अगर आप देवता को बस में कर सकते हो और जो चाहो करा सकते हो तो फिर नगर नगर क्यों मांगते हो, किसी राजा का खज़ाना उठवा कर अपने घर मंगवा लो और मौज करो। और जिसको तुम कुबेर मानते हो, उसको वश में करके जितना चाहो धन ले लो, हम गरीबों को क्यों लूटते हो, तुमको दान देने से वह प्रसन्न या अप्रसन्न होते हैं तो प्रत्यक्ष दिखलाओ। जिसको आठवां सूर्य चन्द्र और दूसरे को

तीसरा हो, तो दोनों को जेठ के महीने में बिना जूता पहने तपती हुई भूमि पर चलाओ जिस पर यह प्रसन्न होवें उनके शरीर पग न जलें और जिस पर क्रोधित होवें, जल जाने चाहिएं। और पोह के महीने में रात के वक्त दोनों को नंगा रखा जावे तब एक को सर्दी लगे और दूसरे को न लगें, तब तो जानें के ग्रह क्रूर और सोम होते हैं।

नवग्रह यह हैं—सूर्य, चांद, मंगल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनिश्चर, राहु और केतु। महर्षि जी ने कैसी स्पष्ट भाषा में ऐसे ऐसे बहमों का खण्डन किया है और इस खण्डन से सकल संसार का कितना उपकार किया है। किसी शायर ने ठीक कहा है—

दयानन्द स्वामी न हम को बचाते,
तो बछिया के बाबा हमें को लूट खाते।

६. इन ग्रहों के वहम ने सन १९६२ में इस सारे देश में कितना आन्दोलन खड़ा कर दिया था, जब कि यह मशहूर कर दिया गया था कि अष्टग्रही योग होगा तो संसार का बड़ा अनिष्ट होगा। सारे भारत वष देश में जगह जगह अनिष्ट रुकावट के लिए, जैसे जैसे इन पोपों ने उपाय बताये लोग करते रहे। एक महीना तो इस देश में इतना उपद्रम मचा रहा जिसका कोई ठिकाना नहीं करोड़ों रुपये देश भर में इस वहम की भेंट हो गये, अगर इतनी बड़ी रकम से देश हित की कोई बात की जाती, तो देश का कितना भला हो गया होता। वहम के अन्दर मुब्तिला होकर अपने देश और जाति का कितना अनिष्ट हुआ है यह इन चन्द वाक्यात से आपको भली भांति विदित हो गया होगा और फिर इस तरह से सैंकड़ों प्रकार के फैले हुए वहमों का महर्षि ने ज़ोर शोर से खण्डन किया।

७—महर्षि जी जब एकाएक पर्यटन करते थे तो एक बार

चार पाँच दिन भोजन न मिलने से बहुत भूख लगी थी, इनका यह नियम था कि वह भोजन के लिए किसी सेयाचना नहीं करते थे। वह इसी तरह भूखे थे कि एक मनुष्य ने आकर भोजन का प्रस्ताव किया। स्वामी जी इसके साथ इसके घर गये और इसके दिये हुए सतू को खाकर तृप्त हुए तत्पश्चात् इस पुरुष ने स्वामी जी से कहा कि मेरी पुत्र वधू को भूत ने ग्रस लिया हुआ है, आप अनुग्रह करके उसका भूत उतार देवें। स्वामी जी इसके साथ इसके घर के भीतर चले गये, और उसकी पुत्र वधू को अपनी लाठी दिखलाई, तब इस मनुष्य ने कहा कि और कुछ भी कीजिए। महाराज ने कहा कि हमारी लाठी देख कर भूत भाग जायेगा और सचमुच ऐसा ही हुआ और उसकी पुत्र वधू निरोग हो गई। वह मनुष्य स्वामी जी का बड़ा अनुग्रहीत हुआ और कई दिन तक स्वामी जी ने उसको समझाया कि तुम्हारी पुत्र वधू को भूत प्रेत कुछ भी नहीं था, किसी ने उसको वहम डाल दिया था जो हमारे लाठी दिखलाने के भय से दूर हो गया वरना भूत प्रेत कोई चीज़ नहीं होते।

३. एक बार महाराज पर्यटन करते हुए एक ऐसी जगह आए जहां एक मकान के मुतल्लिक लोगों के अन्दर यह भ्रम फैला हुआ कि इस मकान में भूत प्रेत निवास करते हैं। और भय से उस मकान में कोई रहता न था। स्वामी जी को भी किसी ने कह दिया कि इस मकान में भूत हैं। स्वामी जी ने कहा—फिर तो हम इस मकान में अवश्य ठहरेंगे और इस मकान में रात्रि बिताने के लिये ठहर गये। स्वामी जी की देखा देखी एक और मनुष्य भी इस मकान में रात को ठहर गया। रात्रि में वह मनुष्य किसी कार्य वश उठकर जाना चाहता था कि किसी ने उसे ज़बरदस्ती पकड़ लिया तब वह चिल्ला उठा, स्वामी जी भी उठे तब लोग कहने लग गये कि स्वामी महात्मा हैं, इसलिए भूत उनको कुछ न कह सके, परन्तु दूसरा

साधारण मनुष्य था इसलिए भूत ने उसको पकड़ लिया, तब महर्षि ने सब मनुष्यों को उपदेश किया कि भूत प्रेत कोई योनि विशेष नहीं होती है, यह तो वहम ही वहम हैं, जिन लोगों को ऐसे वहम होते हैं वही डरते हैं और जो वहम त्याग देते हैं उनको कोई भय नहीं होता है ।

८. स्वामी जी महाराज सन् १८०९ में जब बदायूं पधारे तो श्रावणी के दिन जो लोग स्वामी जी से मिलने को आये थे उन में एक वैद्य भी थे, वह अपने साथ एक नवयुवक को ले आए थे, इस के विषय में वैद्य जी ने कहा कि इस में भूत का आवेश है। बहुत चिकित्सा की है परन्तु आराम नहीं आता है । महाराज कहने लगे—आप वैद्य हो कर ऐसे अज्ञानी हो रहे हों और ऐसी असत्य बात को मानते हो। भूत-भविष्यत, वर्तमान तीन काल हैं। भूत योनि कोई नहीं है वैद्यक ग्रन्थों में ऐसे कई रोगों का वर्णन है जिन के कारण मनुष्य उल्टी चेष्टा करने लगते हैं और अण्ड सण्ड बकने लगते हों, इसने कोई मादक वस्तु खा ली है, अन्त को यह बात सत्य निकली, इसने भांग बहुत पी ली थी, उसी का सारा विकार था। महर्षि ने इस के लिए एक औषध भी बतलाई थी।

९. एक जगह महर्षि के पास एक आदमी पुत्र का जन्म पत्रा ले आया और कहने लगा कि महाराज इस जन्म पत्रा को देखें कि मेरे पुत्र की किस्मत में क्या लिखा है। महर्षि जी ने हँसते हुए कहा—भाई जन्म पत्रा न देखो, कर्म पत्रा देखो कि तुम्हारा पुत्र क्या करता है फल तो कर्म करने का ही मिलता है, जैसा कोई कर्म करेगा, वैसा उसको फल अवश्य मिलेगा।

अवश्यमेव भोक्तव्यम् कृत कर्म शुभाशुभम् ।

शुभ और अशुभ कर्म का फल अवश्य भोगना होता है।

१०. सन् १८७९ में जब महाराज पुष्कर तीर्थ पर गये तो

वहां कुछ वाममार्गी साधू रहते थे. जिनके विषय में प्रसिद्ध था कि इन्हें मन्त्र सिद्ध हैं और मन्त्र शक्ति द्वारा वह अलौकिक कार्य कर सकते हैं। यहाँ तक कि मनुष्य का प्राण हरन भी कर सकते हैं। अजमेर के पास के एक ग्राम के नवयुवक अजमेर के गवर्नमैंट कालज में पढ़ते थे, एक बार उन्होंने इन साधुओं के पास जा कर कहा कि तुम्हारी मन्त्र सिद्धि सब मिथ्या है, साधुओं ने कहा कि हम मन्त्र शक्ति दिखा सकते हैं, जब उन विद्यार्थियों ने कहा कि दिखाओ तो साधुओं ने पूछा—तुम्हारा गुरु कौन है, उन्होंने कहा स्वामी दयानन्द सरस्वती। इस पर साधू बोले—हम उसी को दिखा देंगे। जब वह आवे उसे हमसे मिलाना। अतः जब स्वामी आए तो उन में से कुछ छात्र, एक ठाकुर, एक साधू और मुन्शी समर्थ दान ने एक दिन कहा—कि यहाँ कुछ साधू रहते हैं, जो कहते हैं कि हम मन्त्र शक्ति से मनुष्य को मार सकते हैं। यदि आज्ञा हो तो अपनी परीक्षार्थ आप के पास लावें। महाराज ने कहा कि ले आओ। हम तो आप लोगों को निश्चय कराने के लिए ऐसी बातों में उत्साह पूर्वक तत्पर रहते हैं। फिर लोगों ने पूछा कि आप उन साधुओं की परीक्षा कैसे करेंगे। तो महाराज ने कहा कि हम एक मक्खी को एक बोतल में जिस में वायु आने जाने का मार्ग हो, बन्द करके इन्हें कहेंगे कि इस मक्खी को मारो और यदि वह मन्त्र को मनुष्य पर ही चलाना चाहेंगे तो हम कहेंगे कि मुझ पर मन्त्र चलाओ। इसके पश्चात् वह लोग उन साधुओं के पास गये और कहा कि तुम कहा करते थे कि हम अपनी मन्त्र शक्ति स्वामी दयानन्द को दिखा देंगे, सो वह आज यहाँ आये हुए हैं उन्हें अपनी मन्त्र शक्ति दिखलाइये, साधू लोग यह बात सुन कर आग बबूला हो गये और कहा कि जाओ जाओ यहां मन्त्र कहां रखे हैं। मन्त्र क्या ऐसे दिखलाये जाते हैं। उन लोगों ने आ कर महाराज से सब वृत्तान्त कह सुनाया। तो महाराज ने कहा कि

साधुओं ने आप लोगों को बहकाने के लिए यह प्रपंच रच रखा है। परन्तु हमारा आना हो गया और उनकी कलई खुल गई। अन्यथा आप लोग धोखा खा जाते। हम तो ऐसे बहुत लोगों से मिल चुके हैं। जहां जाते हैं ऐसे ही भ्रमजाल बिछे हुए देखते हैं।

११. दाना पुर निवास के समय एक दिन ठाकुर दास सुनार ने पूछा कि महाराज मेरी सन्तान जीवित नहीं रहती और मेरा विश्वास है कि इन की मृत्यु भूतों के कारण होती है। आप कोई ऐसा उपाय बताइये, जिस से मैं भूतों के भय से सुरक्षित हो जाऊँ। महाराज ने कहा भूत का वहम बिल्कुल झूठा है। तू नित्य प्रति दोनों काल संध्या, हवन किया कर और हवन करते समय अपनी धर्म पत्नी को भी साथ बैठा लिया कर। फिर जो सन्तान होगी, जीवित रहेगी उस ने ऐसा ही आचरण करना आरम्भ कर दिया। फिर जो उस की सन्तान हुई वह जीवित रही।

बोलो वहम निवार्क महाराज की जै

८१. यूनान का फ़िलासफ़र सुकरात

१ करीबन २४०० वर्ष हुए कि यूनान के ईथन्ज़ शहर में सुकरात का जन्म हुआ। इसका पिता बुत तराश था, और इसकी माता दाई का काम करती थी, सुकरात बुत प्रस्ती नहीं करता था और आत्मा के नित्य और अमर होने का प्रचार करता था। सुकरात निर्भय और स्पष्ट वक्ता था। सर्दी और गर्मी में नंगे पांव ईथन्ज़ के गली बाजारों में अपने विचारों का प्रचार करता रहता था। जो उस वक्त के यूनान के विचारों से विपरीत थे, क्योंकि एक तो वहां बुतपरस्ती ज़ोरों पर थी और दूसरे वहां के लोग आत्मा को अमर नहीं मानते थे, तब उस समय के हाकमों ने इस पर दो इल्ज़ाम लगा कर उस पर मुकद्दमा चलाया, एक तो यह कि सुकरात ईथन्ज़ के देवताओं में विश्वास नहीं रखता और दूसरा यह कि वह शहर के

नौजवानों को गुमराह करता है। सुकरात की घोषणा यह थी कि Know thyself यनि अपने आप को जानो और पहचानो कि तुम शरीर ही नहीं हो बल्कि अमर आत्मा हो। और यही बात उस वक्त ईथंज़ के हाकमों को चुभती थी। क्योंकि यह विश्वास उस समय के विचारों के विरुद्ध थे, जब वह अपने इल्ज़ाम का ज़वाब देने के लिए जजों के सामने पेश हुआ तो इसने जो तकरीर की वह इसके ईश्वर विश्वास और आत्म विश्वास को प्रकट करती है। अतः उसने परमात्मा की तर्फ से प्रेरित होकर सत्य का प्रकाश किया। वह कहने लगा—

"मेरी दानाई यह है कि मैं जानता हूं कि मैं दाना नहीं हूं और दूसरे लोग अपनी मूर्खता और ग़रूर को ज़ाहिर करते हैं और यह स्पष्ट प्रचार ही मेरी ग़ैर हरदिल अज़ीज़ी का कारण है, उसने कहा कि मैं तो लोगों को नेकी और खुशी की ज़िन्दगी बसर करने का उपदेश देता हू नौजवानों को गुमराह करने की बजाय मैं उनको शरीफ़ और नेक बनाना चाहता हूं। और मैं यह परमात्मा के आदेशानुसार करता हूं जो कि आप जैसे जजों से महान हैं, फ़िर इस बात की परवाह किये बग़ैर कि कौन खुश होता है या नाखुश। सुकरात ने कहा—यदि आप मुझे इस शर्त पर छोड़ने को तैयार हो कि मैं सत्य की खोज न करूँ तो ईथंज़ के निवासियो मैं आपका धन्यवाद करता हूं। परन्तु मैं आपकी बजाय परमात्मा की आज्ञा का पालन करूंगा। जिसने मुझे इस काम पर लगाया है, और जब तक मेरे प्राण हैं मैं इससे पीछे नहीं हटूंगा में नहीं जानता कि मौत क्या चीज़ है। वह अच्छी होगी, मैं उससे डरती नहीं हूं। परन्तु मैं यह जानता हूं कि अपने कर्तव्य कर्म से पीछे कदम हटाना यह बुरा है। और आख़िर उसने निहायत दलेरी से कहा कि आप जानते हैं कि मैं अपने विश्वास पर पक्का हूं और मैं इस को छोड़ नहीं सकता, चाहे मुझे सौ दफा भी मरना पड़े"। सुकरात की यह तकरीर सुनकर

जजों ने इसको मौत की सज़ा सुना दी ।

सुकरात ने मौत की सज़ा का हुक्म बड़ी शान्ति से सुना, तब उसने कहा कि अब हमारे अलग होने का समय आ गया है, मुझे मरने के लिए और आपको ज़िन्दा रहने के लिए लेकिन परमात्मा के सिवाय और कोई नहीं जानता कि हम में किस की हालत बेहतर है। (सो सुकरात को मौत की सज़ा देने वाले जजों को कोई नहीं जानता परन्तु सुकरात को सारा संसार जानता है) ।

अतः सुकरात को जब जेल भेजा गया तो सुकरात को एक अत्यन्त वफ़ादार शिष्य ग्रेट ने आकर कहा कि जेल से आपको भगा ले जाने का सब इन्तज़ाम हो चुका है, परन्तु सुकरात ने कहा कि मैं मुलक के कानून की ख़िलाफ़वर्ज़ी करने से मरना बेहतर समझता हूं। अफ़लातून सुकरात का बड़ा वफ़ादार शिष्य था, उसने सुकरात की मौत का बहुत ही खूबसूरती से वर्ण किया है। वह लिखता है कि उस दिन सुक़रात की जंजीरें खोल दी गईं। इसकी औरत और बच्चे जेल में इसको मिलने आए और ज़ार ज़ार रोने लगे तब इसने क्रेटू से कहा—इसको घर छोड़ आओ, जब वह चली गई तो सुकरात ने अपने शिष्यों के सामने दुख सुख की असलीयत पर उपदेश दिया और आत्मा के अमर पन पर बातें करता रहा, फिर जब उसकी मौत का समय आया तो एक आफ़िसर ने ज़हर का प्याला लेकर सुक़रात के हाथ में पकड़ा दिया परन्तु वह रोने लग पड़ा। फिर सुकरात ने एक ही सांस में ज़हर का प्याला पी लिया, सुकरात बिल्कुल शान्त रहा, लेकिन इस के श्रद्धालु इसको बरदाश़्त न कर सके और वह छमाछम आँसू बहाने लगे, और ज़ार ज़ार रोने लग पड़े तब इसने सब को कहा कि शान्त हो जाओ और परमात्मा की इच्छा के सामने सिर झुकाओ ।

और

महर्षि दयानन्द भी बड़े स्पष्ट वक्ता थे, और अपनी विद्या

पर उन्होंने भी कभी घमण्ड नहीं किया था, जहां सुकरात सिर्फ ईथंज़ शहर में ही प्रचार करता रहा, वहां महर्षि सारे भारत वर्ष में फिर कर प्रचार करते रहे और जिस तरह सुकरात ने उस वक़्त के ईथंज़ के विश्वासों के खिलाफ़ मूर्ति पूजा का खण्डन किया और आत्मा के अमर पन का प्रचार भी किया था ठीक इसी तरह महर्षि भी किया करते थे जब महर्षि को सहारन पुर पहुँचने पर किसी ने कहा कि सत्यार्थ प्रकाश में जैनमत का खण्डन करने पर जैनी लोग आप पर मुक़द्दमा बनाने की सलाह कर रहे हैं तो महाराज ने उत्तर दिया था कि तोप के मुंह के आगे बांधकर भी कोई मुझ से पूछेगा तो सत्य ही मेरे मुँह से निकलेगा। सुकरात की तरह सत्य अनुरागी और सत्य के प्रचारक थे और सत्य कहने में कभी डरते न थे अतः एक लैक्चर में भारत के कमाण्डर इन्चीफ़ जनरल राबर्टस भी तशरीफ़ लाए, उस समय महर्षि इन्जील का खण्डन कर रहे थे। जनरल साहब सुनते रहे। जब व्याख्यान समाप्त हुआ तो महाराज को टोपी उतार कर सलाम किया और कहने लगे आप जैसा निर्भय मनुष्य हमने नहीं देखा कि हमारी मौजूदगी में ही आप इन्जील पर नुक्ताचीनी करते रहे हैं महाराज के जीवन में कई ऐसी घटनाएं होती रहीं।

१. सुकरात की तरह महर्षि के भी स्पष्ट प्रचार से लोग दुश्मन बन गये थे। और अख़ीर में महाराजा जोधपुर को उनके कुकर्म पर स्पष्ट उपदेश करने पर ही उनको भी ज़हर पीना पड़ा था। कई बार श्रद्धालु भक्तों ने प्रार्थना की कि आप पालसी से काम लिया करे, परन्तु महाराज न मानते थे। लाहौर में एक दिन किसी सज्जन ने कहा कि अगर आप मूर्ति पूजा का खण्डन न करें तो महाराजा जम्मू वा कशमीर आप पर बहुत प्रसन्न होंगे। महर्षि जी ने सुकरात की तरह उत्तर दिया कि मैं परमात्मा की आज्ञा पालन करता हूं और उसके आदेशानुसार यह काम कर रहा हूं

और वह महाराजा जम्मू वा कशमीर से महान है। इसी तरह आगरा में राजाओं की सभा में महर्षि शैव मत का खण्डन कर रहे थे। एक शैव मत को मानने वाला राजा तलवार खैंचकर महाराज पर लपका, तब महाराज ने उनकी ओर देखा और कहा कि मैं सत्य का प्रचार करना अपना कर्तव्य समझता हू, मैं अपना कर्तव्य निभाता हूं। तुम अपना निभाओ, अतः वह क्षत्री राजा तलवार म्यान में डालकर सभा मण्डप से उठकर चला गया। परन्तु सुकरात की तरह महाराज भी अपने सत्योपदेश के कर्तव्य से पीछे न हटे। एक बार एक पादरी ने महाराज से कहा—कि आप मूर्ति पूजा का खण्डन करते हैं, लोग आपको मार डालेंगे। तो महर्षि ने भी सुकरात की तरह बहुत दलेरी से उत्तर दिया था कि चाहे सौ दफा भी मुझ को मरना पड़े, मेरा जो विश्वास है मैं उसको नहीं छोड़ सकता। और आख़री समय भी दोनों महापुरुषों का एक जैसा ही आया। सुकरात को भी ज़हर का प्याला दिया गया और महर्षि को ज़हर पिलाया गया। और सुकरात ने भी कहा कि ईश्वर की इच्छा पर सिर झुकाओ। और महर्षि दयानन्द जी ने भी यही कहा—"ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो" मरते दम तक ईश्वर विश्वास पर दोनों महापुरुष अटल रहे और मौत के भय को दोनों महापुरुषों ने जीत लिया था परन्तु संसार का यह अजीब दस्तूर है जैसा कि कवि ने कहा है—

यह दुनियां का इन्साफ नहीं बल्कि कहर है।
अमृत पिलाने वालों के हिस्से में ज़हर है॥

सुकरात और महर्षि दयानन्द अपने अपने समय में अपने सत्योपदेश से संसार को अमृत पिला गये, परन्तु संसार में उन दोनों महापुरुषों को ज़हर पिलाया।

८२. जर्मन का मार्टन लूथर

ईसाई मत में इस समय दो बड़े दल हैं, एक रोमन कैथोलिक कहलाते हैं जो मूर्ति पूजक हैं और दूसरे प्रोटैस्टैंट हैं जो मूर्तिपूजा

नहीं करते । मार्टन लूथर प्रोटेस्टेंट दल का बाणी हुआ । और यह जर्मन देश में सन् १५२५ में पैदा हुआ था, और ईसाई मत में मूर्ति पूजा का पुरज़ोर खण्डन किया था ।

इसी तरह महर्षि दयानन्द जी ने भी भारतवर्ष में मूर्तिपूजा का बलपूर्वक खण्डन किया, और इस श में भी दो दल हो गये हैं। एक वह जो मूर्तिपूजक हैं, दूसरे वह जो निराकार परमात्मा के उपासक है । फिर महर्षि दयानन्द जी और मार्टन लूथर का मुकाबला करते हुए जर्मन के रहने वाले हैम्बर्ग यूनिवर्सिटी के संस्कृत के प्रोफैसर लिखते हैं ।

१. लूथर किसी हद तक झुकने बाला (कायर) और अपनी बात (सिद्धान्त) पर स्थिर न रहने वाला था । कहीं कहीं डगमगा जाता था । परन्तु महर्षि दयानन्द बेधड़क, निर्भय और अपने सिद्धान्त का पक्का था । वह जो कुछ मुंह से कहता था कर दिखलाता था, अर्थात आलम वा अमल था । और अपने सिद्धान्त से कभी डगमगाता न था ।

२. लूथर को केवल ईसाई मत के फ़िर्का से लड़ना पड़ा, उसे किसी और मज़हब से वास्ता न पड़ा था, इसकी सारी जद्दोजहद ईसाईयों के कैथोलिक फ़िर्का तक महदूद थी, परन्तु दयानन्द ने दुनियां भर के मतमतान्तरों का मुकाबला किया । योग्यता और युक्तियों से उनका प्रबल खण्डन किया । और निर्भय होकर मर्द मदान बनकर उनके वरख़िलाफ़ बलपूर्वक लड़ा और किसी से भी भयभीत न हुआ ।

३. लूथर मानसिक शक्ति में दुर्बल था यदि अपने विरोधियों को परास्त न कर सकता तो उन्हें नास्तिक कह कह कर भगा देता था और इन्हें घृणा की दृष्टि से देखता था । परन्तु स्वामी दयानन्द अपने विरोधियों के साथ युक्ति और प्रेम का बर्ताव करता था, और उन्हें कायल करके छोड़ता था, अपने विरोधियों के साथ आदर और

सत्कार से पेश आता था, और उनसे प्रेमपूर्वक व्यवहार करता था।

४. लूथर ने अपने विचारों से यूरोप की सभ्यता में क्रान्ति उत्पन्न की परन्तु स्वामी दयानन्द ने संसार भर के धार्मिक पुस्तकों और धार्मिक संस्थाओं में भारी परिवर्तन पैदा कर दिया। अन्य मतमतान्तरों के लोग अब अपनी अपनी पुस्तकों के अर्थों में तबदीलियां कर रहे हैं।

५. लूथर दुबला पतला और नाज़ुक अन्दाम था, हमेशा बीमार और तकलीफ़ में रहता था। परन्तु स्वामी दयानन्द स्वस्थ हृष्ट पुष्ट और पूर्ण ब्रह्मचारी था। वह सडौल जिसम, लम्बे कद और रोब दाब वाला था।

६. लूथर का सहायक और संरक्षक टिसकनी का रईस था और भी कई साहूकार चोरी छिपे उसकी सहायता करते थे। परन्तु स्वामी दयानन्द का न राजा न रईस कोई भी संरक्षक न था। उसने इतना महान कार्य आत्मविश्वास पर अकेले मर्द मैदान बन कर किया।

७. लूथर साईंसदानों और फ़िलासफ़रों को लूमड़, मक्कार छिपकिली, मैंडक, पागल नाबकार आदि बुरे शब्दों से सम्बोधन करता था। परन्तु महर्षि दयान्नद सब विद्वानों का आदर पूर्वक नाम लेता था और महानुभाव आदि शब्दों से सत्कार करता और इन्हें आदरणीय समझता था।

८ लूथर बाईबल को अन्ध विश्वास की दृष्टि से मानता था। वह ईसाईयों के तवाहमात और पोप के मुज़ालिम और उसकी डिक्टेटिराना हकूमत का विरोधी था। परन्तु दयानन्द धर्म (वेद को) युक्ति की कस टी पर परखने की आज्ञा देता था।

९. लूथर अपने अनुयायियों से प्रेम करता था, दूसरे विचार के लोगों से इसका कोई सम्बन्ध न था। परन्तु स्वामी दयानन्द प्रेम का प्रचारक और सार्वभौमिक भ्रातृभाव का प्रचारक था।

१०. स्वामी दयानन्द सब को एकता की लड़ी में परोना चाहता था, और तमाम महज़बों को सचाई के एक प्लेटफ़ार्म पर लाना चाहता था। मगर लूथर केवल प्रोटैस्ट फ़िर्का प्रस्ती का ही समर्थक था।

ये विचार प्रोफैसर फामेशी की निर्भयता, स्पष्टता, योग्यता, और महर्षि दयानन्द के प्रति भक्ति की भावना को प्रकट करते हैं।

८३. नैपोलियन बौनापार्ट

नैपोलियन बौनापार्ट एक मामूली सिपाही के घर पैदा होकर फ्रांस का शहनशाह बन गया, और उसने अपनी शक्ति से आधा यूरोप विजय कर लिया था। रूस की राजधानी मास्को तक पहुच गया था, एक बार जब वह जंगी मुहम पर जाने लगा तो रास्ता में एलप्स पहाड़ आता था। किसी जरनैल ने कह दिया कि एलप्स को पार करना तो असम्भव है। तो नैपोलियन कहने लगा, असम्भव का शब्द मूर्खों की डिक्शनरी में है मर्दों की में नहीं Impossible is the word found in the dictionary of foods और उसने अपने आत्म विश्वास पर सैना सहित एलेप्स पर्वत पार करके दूसरे देश को विजय कर लिया।

और

इसी तरह काशी के पण्डित अपनी विद्या के घमण्ड में थे, जब महर्षि ने नंगे बदन एक लंगोटी पहने हुए उनको शास्त्रार्थ के मैदान में ललकारा ता पंडितों ने कहा कि यह अनहोनी बात है। काशी में आकर कोई पडितों को ललकारे यह कैसे हो सकता है। परन्तु महर्षि ने इस अनहोनी बात को होनहार बना दिया। और और पंडितों को शास्त्रार्थ का चैलेंज देकर, शास्त्रार्थ के मैदान में उन सब को ज़बरदस्त पराजय दे दी। और काशी की विद्या का

घमण्ड तोड़ कर काशी को विजय कर लिया । आत्म विश्वास के बल पर ही महर्षि दयानन्द ने भी असम्भव को सम्भव बना दिया।

२—नैपोलियन बौनापार्ट एक दिन लायब्रेरी में कोई किताब तलाश कर रहे थे, अन्त में उनको वह पुस्तक सबसे ऊंचे शैल्फ़ में रखी हुई दिखाई दी, जहां पहुंचना उनके लिए कठिन था। जनरल मौसी ने जो सैना में सब से लम्बा आदमी था बाहर से झांकते हुए कहा—मुझे आज्ञा दीजिए श्री मान जो मैं आपसे ऊंचा हूं। तुम मुझसे ऊचे नहीं हो मार्शल, नैपोलियन ने मुस्कराते हुए कहा—"लम्बे हो"।

और

सन् १८७३ में जब महर्षि दयानन्द अलीगढ़ आये तो एक दिन एक पंडित आया और शिवाले के चबूतरे पर बैठ कर स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने लगा, उस समय स्वामी जी चबूतरे के नीचे फ़र्श पर बैठे थे। और अनुमान से उनके पास २०० मनुष्य बैठे हुए थे। लोगों ने बहुतेरा कहा कि यदि आप को शास्त्रार्थ करना हो तो नीचे आ जावें, और सभ्यता पूर्वक शास्त्रार्थ कोजिए। परन्तु वह अपने स्थान से न हिला, स्वामी जी ने कहा कुछ चिंता नहीं है, ऊपर नीचे बैठने से कोई बड़ा छोटा नहीं होता। देखो वह कौआ जो वक्ष पर बैठा है पंडित जी से भी ऊंचा है।

३. अमृतसर में जब महाराज पधारे तो व्याख्यानों की झड़ी लगा दी, व्याख्यान स्थल में महाराज एक कुर्सी अपने सामने रखवा दिया करते थे, ताकि व्याख्यान समाप्त होने पर जिसे कोई शंका करनी हो तो इस पर बैठ कर करे, एक दिन एक पंडित आया, उसे कुर्सी पर बैठने को कहा गया पर वह न बैठा, और स्वामी जी को सम्बोधन करके कहने लगा, कि आप ने मुझे नीचा आसन दिया है। मुझे भी आपके समान ही कुर्सी मिलनी चाहिए

महाराज ने उत्तर दिया कि मैं तो व्याख्यान देता था। आप यदि कुर्सी पर बैठने में अपमान समझते हों, तो कुर्सी को मेज़ पर रखकर बैठ जाइये। आश्चर्य है कि विद्वान होकर बैठने में आसन को ऊंचा नीचा होने का विचार करते हैं, क्या किसी चक्रवर्ती राजा के मुकुट पर मक्खी मच्छर बैठने से बड़े हो सकते हैं।

४—नैपोलियन बौनापार्ट का भी यह विश्वास था कि माताएं ही बच्चों और कौमों को जैसा बनाना चाहें बना सकती हैं। उसका कहना है—

Nations are what mothers make them क्योंकि नेपोलियन बौनापार्ट को उसकी माता ने ही जो कुछ वह बन सका, बनाया था, एक मामूली सिपाही से फ्रांस का शहनशाह बन जाने पर भी वह माता के उपकार को न भूल सका, और इसी लिए यह इस विश्वास का बन चुका था।

और

महर्षि दयानन्द जी महाराज ने भी सत्यार्थ प्रकाश के दूसरे समुलास में बच्चों की शिक्षा के सम्बन्ध में लिखते हुए सब से पहले शतपथ ब्रह्मण का यह वाक्य "मातृमान् पितृमान् आचार्यमान् पुरुषो वेद' लिखा है। अत: स्वामी जी लिखते हैं—के धन्य वह माता जो गर्भाधान से लेकर जब तक पूरी विद्या न हो तब तक सुशीलता का उपदेश करें। माता अपने बच्चे को जैसा चाहे बना सकती है।

५. नैपालियन बौनापार्ट ने निद्रा अपने बस में की हुई थी, युद्ध के मैदान में वह घोड़े की पीठ पर ही जितना चाहता था सो लिया करता था।

और

इसी तरह महर्षि जी ने भी" निद्रा बस में की हुई थी, जितना चाहते थे सो लेते थे, और फिर पूरे समय पर स्वयं ही जाग पड़ते थे।

१. सन् ५८७१ में महाराज मेरठ पधारे, एक दिन एक ज्योतिषी गौरी शंकर नाम का स्वामी जी की सेवा में उपस्थिति हुआ, और कुछ वार्तालाप करना चाहा, स्वामी जी ने कहा कि १५ मिनट तक निद्रा लूंगा उसके पश्चात् बात चीत होगी, अभी २५ मिनट बीते थे कि एक तहसीलदार स्वामी जी के दर्शनार्थ आ गया। उनसे पं० गौरीशंकर जी ने कहा कि स्वामी जी सो रहे हैं १० मिनट बाद जागेंगे, आप प्रतीक्षा कीजिए, अतः पूरे १० मिनट बाद स्वामी जी जाग पड़े।

२. महाराज का यह नियम था कि भोजन के पश्चात् ग्रीष्म काल में १६ मिनट और शीत काल में १४ मिनट निद्रा लिया करते थे, जब पलंग पर लेटते थे, उसी समय सो जाते थे। सन् १८८३ में राजपूताना में शाहपुरा रियासत में विचरते थे, नौकर स्वामी जी के इस नियम को जानते थे, इसलिए जब स्वामी जी सो जाते तो नौकर जागने के समय से पहले पानी हाथ मुंह धोने को तैयार कर लेते थे, ठीक रात के दस बजे सो जाते थे, और लेटते ही गहरी नींद में सो जाते थे, निद्रा पर उनको भी नैपोलियन की तरह अधिकार था।

३—राजपूतान निवास में रात्रि के दस का पहला घंटा बजते ही पलंग पर लेट जाते थे। और लेटते ही गहरी नींद में सो जाते थे, महाराज का निद्रा पर यह अधिकार देख कर सबको आश्चर्य होता था।

८४. जार्ज वाशिंगटन

१. पहले अमरीका पर भी अंग्रेजों का राज्य था। अंग्रेजों की गुलामी से स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए अमरीका को अंग्रेजों से बहुत बड़ा युद्ध करना पड़ा इस युद्ध में अमरीका को विजय प्राप्त हुई और अमरीका अंग्रेजों की पराधीनता से मुक्त हो

गया। इस जीत का सेहरा जार्जवाशिंगटन के सर रहा। क्योंकि वही अमरीका की सेना का सेनापति था। जार्जवाशिंगटन १७३२ में पैदा हुआ और १७५६ तक जीता रहा। जारज वाशिंगटन सेना में बड़ा मान्यवर लीडर था और सारी फौज़ इस का बहुत आदर सन्मान करती थी। अमरीकी सेना के अफ़सर और सिपाही इस पर प्राण निछावर करते थे। इन के प्रति इस प्रेम और भक्ति का यह परिणाम हुआ कि फौजी अफ़सरों ने चुपके चुपके इस बात की तैयारियां शुरू कर दीं कि जारज वाशिंगटन को अमरीका का शाहन्शाह बना दिया जावे और इस प्रकार एक नये राज्य वंश की दाग़ बेल डाल दी जाय। अतः उनके राज्याभिषेक की तैयारियां मुकम्मल कर ली गईं। तो इसके विषय में करनल निकोला ने जारज वाशिंगटन को राज्याभिषेक के लिए तैयार रहने को पत्र लिखा। इस पत्र के मिलने पर वाशिंगटन ने जवाब में जो पत्र लिखा वह उनके महान त्याग का परिचय देता है, उन्हों ने लिखा—

"श्री मान जी मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि सारे युद्ध में मुझ को किसी बात से कभी इतना दुख न हुआ था, जितना यह मालूम करके हुआ कि सेना में इस प्रकार की विचार धारा चल रही है, जैसा कि आप के पत्र से प्रकट होता है, मैं ऐसे विचार से घृणा करता हूँ। मैं नही जान पाया कि मेरे किस विचार से आप को मुझे ऐसा पत्र लिखने का साहस हुआ है। अगर आप को अपने देश और आने वाली भावी सन्तान का कुछ भी ध्यान है तो आप इस विचार को मन से निकाल दीजिए।

प्रणाम। आप का आज्ञाकारी—

जारज वाशिंगगटन

अहो : कितना त्याग है ।

और

१. महर्षि दयानन्द जी महाराज ! काशी पधारे और मूर्ति पूजा, अवतार वाद का जोरदार खण्डन करने के अतिरिक्त काशी के समस्त विद्वानों को मूर्ति पूजा विषय पर शास्त्रार्थ करने का आवाहन करने लगे। काशी के पंडित अपने आप को महर्षि के साथ शास्त्रार्थ करने में असमर्थ पाते थे, तब उन्होंने महर्षि के सामने सब से बड़ा प्रलोभन रखने का यत्न किया और विश्वस्त मनुष्यों के हाथ महर्षि को कहला भेजा कि यदि आप मूर्ति पूजा आदि का खण्डन न करें तो हम आप को ईश्वर का ग्यारहवां अवतार "निष्कलंक अवतार" मान कर आप की हाथी पर सवारी निकाल आप की जै जै कार करेंगे। परन्तु महर्षि जी ने भी जारज वाशिंगटन की भान्ति इस प्रलोभन में आने से इन्कार करते हुए कहा कि मैं ईश्वर की आज्ञानुसार जो काम कर रहा हुं इससे परांगमुख कदाचित भी नहीं हो सकता और उन्होंने भी काशी के पंडितों का यह प्रस्ताव न माना। जिससे उन की अवतारों में गणना हो जाती। जारज वाशिंगटन का त्याग भी महान था, परन्तु फिर भी वह बादशाही का त्याग था, बादशाह तो लाखों करोड़ों संसार के अन्दर हो चुके हैं किसी का कोई नाम भी नहीं जानता। परन्तु रामकृष्ण, बुद्ध आदि अवतार। ईसा, मूसा, मुहम्मदादि परमात्मा के बेटे और पैगम्बर आज तक भी करोड़ों इन्सानों के दिलों पर हकूमत कर रहे हैं। किसी ने ठीक कहा है—

दारा रहा न जम न सिकन्दर सा बादशाह।
तख्ते जमीं पै सैंकड़ों आर्य चले गये ॥

फिर भी त्याग की भावना की तुलना दोनों महापुरुषों में एक सी ही थी।

२. जारज वाशिंगनट अमरीका के बादशाह तो न बने, परन्त

उन को सबसे पहला प्रधान बनाया गया। एक दिन जारज वाशिंगटन जब अपने दफ़्तर में गये तो ऊनका सैक्टरी ५ मिनट लेट पहुँचा। जारज वाशिंगटन समय के बड़े पुजारी थे, सैक्टरी साहब से पूछने लगे कि आप ५ मिनट लेट क्यों आये हैं, तो सैक्टरी ने तुरन्त उत्तर दिया कि मेरी घड़ी के अनुसार मैं ठीक समय पर आ गया हूँ। इस पर वाशिंगटन साहब बोले कि या तो कल आप अपनी घड़ी बदल लें। या मैं अपना सैक्टरी बदल लूंगा। इस के बाद इनके किसी भी कर्मचारी को समय के बाद आने का साहस न हुआ।

और

२. इसी प्रकार महर्षि दयानन्द जो भी समय को बहुमूल्य समझते थे, लाहौर निवास के समय पंजाब के लाट साहब के साथ महर्षि के मिलने का समय निश्चित हो गया। महाराज गाड़ी में बैठकर निश्चित समय पर लाट साहब की कोठी पर पहुँच गये। द्वारपाल को कहा गया कि लाट साहब को पता देवें कि स्वामी जी आ गये हैं। लाट साहब उस समय स्नान कर रहे थे, द्वारपाल से उन्हों ने कहा कि स्वामो जी को आदर से बिठाओ मैं अभी कपड़े पहन कर आता हूं। जब द्वारपाल नें स्वामी जी को लाट साहब का सन्देशा दिया। तब स्वामी जी ने गाड़ी वापस ले चलने की आज्ञा दी। द्वारपाल फिर लाट साहब के पास गया और स्वामी जी के वापस जाने की बात बताई। तब लाट लाहब जो कपड़े पहन रहे थे। आधे कपड़े पहने बाहर भाग कर आ गये। परन्तु स्वामी जी वापस हो चुके थे। फिर लाट साहब के बुलाने पर भी नहीं गये।

३. एक दिन बुलन्द शहर के कलक्टर महाराज की कुटिया पर आये, महाराज कुटिया के भीतर थे, कलक्टर साहिब ने

अपने आने का समाचार अन्दर भेजा तो महाराज ने कहा कि इस समय हमें अवकाश नहीं है। फिर उन्होंने पुछवाया कि आप को कब अवकाश होगा। महाराज ने इस का उत्तर तो न दिया उल्टा कलक्टर साहिब से पुछवाया कि आप को कब अवकाश होगा। तो कलक्टर साहिब ने कहा कि चार घंटे के बाद मुझे अवकाश ही अवकाश है। यह सुन कर महाराज कुटिया से बाहिर आ गए और कलक्टर को आसन देने के पश्चात उस को राज धर्म का उपदेश दिया और कहा कि जिस मनुष्य पर एक परिवार का भार होता है उसे सर खुजलाने की फ़ुरसत नहीं मिलती आप के ऊपर तो सहस्रों मनुष्यों के संकट निवारण का भार है। मुझे यह सुन कर आश्चय हुआ है कि आप को ४ घटे के पश्चात् अवकाश ही अवकाश है। समय बहुत अमूल्य वस्तु है। इस की कदर करनी चाहिए।

४. ज़ब महाराज लखनऊ में थे तो एक दिन कर्मचारी आध घंटा पीछे काम पर आए। महाराज ने इन्हे उपदेश दिया कि हमारे देश निवासी समय का मूल्य नहीं जानते, इसे व्यर्थ खोते हैं, यही उन की दुरावस्था का कारण है, समय का मूल्य उस समय ज्ञात होता है जब एक मृत्यु शैया पर पड़े हुए रोगी को देख कर वैद्य कहता है कि यदि मुझे पांच मिनट पहले बुलाते तो यह न मरता। अब हजारों रु० खर्च करने पर भी नहीं बच सकता।

५. कसूर बच्चों के बच्चों का है।

बरेली में महाराज जब व्याख्यानों का दरिया बहा रहें थे तो एक दिन कुछ श्रद्धालुओं ने महाराज से प्रार्थना की कि कल रविवार का दिन है यदि व्याख्यान एक घण्टा पहले आरम्भ कर दिया जावे तो उत्तम है। महाराज ने यह बात स्वीकार कर ली परन्तु कहा कि मैं तो एक घण्टा पहले आ जाऊंगा। गाड़ी भी तो एक घण्टा पहले पहुंच जानी चाहिए। क्यों कि मैं व्याख्यान स्थल में आने के लिए ठीक उस समय तैयार होता हूं जब व्याख्यान के

आरम्भ में १५ मिनट रह जाते हैं। लाला लक्ष्मी नारायण ख़ज़ानची जी ने कहा कि गाड़ी नियत समय से एक घण्टा पहले पहुंच जाएगी। अगले दिन अन्य दिनों की अपेक्षा श्रोतागण एक घण्टा पहिले ही इकट्ठे हो गए नियत समय बीत गया परन्तु स्वामी जी न पहुंचे। पूरा पौन घण्टा पीछे महाराज पधारे और आते ही कहा कि मैं तो नियत समय पर आने को तैयार था परन्तु गाड़ी न पहुंची, तब मैं प्रतीक्षा कर के पैदल ही चल पड़ा मार्ग में गाड़ी मिली। यही देर का कारण है। सभ्य जनों इस में मेरा दोष नहीं है। दोष बच्चों के बच्चों का है, जिन को न तो समय की कदर है और न ही प्रतिज्ञा पालन ही जानते हैं। लाला लक्ष्मी नारायण नारायण बैठे हुए थे, बहुत लज्जित हुए और गर्दन झुका कर सुनते रहे।

६. रूढ़की में व्याख्यान का समय पांच बजे निश्चित था। महाराज को व्याख्यान स्थल पर लाने के लिए बग्घी साढ़े चार बजे ही आ गई। उन्हों ने घड़ी देख कहा कि मार्ग १५ मिनट का है, आध घंटा पहिले जाने में क्या लाभ। मैं समय से ५ मिनट पहले पहुँचना चाहता हूँ सो उन्हों ने ऐसा ही किया।

७. स्वामी जी नियत समय पर काम करने के सिद्धान्त का बड़ी कड़ाई के साथ पालन करते थे। रूढ़की में ही एक दिन जब आप व्याख्यान स्थल में पहुंचे तो वहां दो ही श्रोता बैठे थे। आप ने अन्य श्रोताओं की प्रतीक्षा न करते हुए व्याख्यान आरम्भ कर दिया।

८. एक बार महाराज वेद भाषय के कार्य में बहुत संलग्न थे उन्हों ने विज्ञापन दे रखा था कि वह प्रातः काल के सात बजे से सायं काल के ५ बजे तक किसी सें न मिलेंगे। ५ बजे शाम से रात्री पर्यन्त मिलेंगे। एक दिन श्री मान् गोबिन्द महादेव रानाडे (जो महाराज के बड़े श्रद्धालु शिष्य थे और उच्चपदाधिकारी भी

थे) महाराज से मिलने आए और एक घंटा तक प्रतीक्षा करते रहे, महाराज ने उन को कहला भेजा कि आप क्षमा करें, इस समय मैं आप से बातें नहीं कर सकूंगा। उस समय वह चले गए और फिर शाम को पाँच बजे आ कर ही महाराज को मिल सके।

९. उदयपुर निवास के समय महाराणा उदयपुर महाराज से वार्तालाप कर रहे थे। जब घड़ी ने रात के दस बजाए तो महर्षि जी ने महाराज को कहा कि अब मेरे सोने का समय हो गया है। आप तशरीफ़ ले जाएं। महाराणा साहिब चले गए और स्वामी जी पलंग पर लेटते हो सो गए।

१०. समय का मूल्य जानने के कारण ही महर्षि १९ वर्ष के थोड़े समय में एकाएकी इतना महान् कार्य कर गए। जो उन के बाद ६१ वर्ष ने एक करोड़ आर्यसमाजी जिन के पास अरबों रुपये की जायदाद भी है न कर पाए, इसी से आप महर्षि के महान् कार्य का अनुमान लगा सकते हैं। जब महाराज कार्य क्षेत्र में उतरे तो सत्य सनातन वेद मार्ग पर मूर्ति पूजा, अवतार वाद, शून्य वाद आदि कई पाखण्ड रूपी झाड़ झंकार और विशाल कटीले वृक्ष हजारों वर्षों से पैदा हो हो कर उस मार्ग को लुप्त प्राय कर चुके थे और मनुष्य ने अलग अलग पन्थों के पन्थाई बन कर आपस में लड़ाई फसाद शुरू कर रखे थे, तब अकेले महर्षि ने अपने ब्रह्मचर्य और योगबल से समय का मूल्य आंकते हुए हर किसम की कठिनाइयों और विरोधों का मुकाबला करते हुए पाखण्ड के सब कटीले वृक्षों को जड़ मूल से काटकर सत्य सनातन वेद मार्ग को साफ़ कर के मनुष्यों के चलने योग्य बना कर सब संसार को इस पर चलने का आवाहन किया था।

११. एक दिन जारज वाशिंगटन प्रेजीडेंट अमरीका अपने मातहत अफ़सरों और दोस्तों के साथ बाहर सैर करने जा रहे

थे, कि सामने से आते हुए एक नीग्रो ने (अमरीका के असली रहने वालों को नीग्रो कहते हैं) टोपी उतार कर वाशिंगटन को अभिवादन किया। और वाशिंगटन ने भी उसी तरह टोपी उतार कर जवाब दिया। जब वह नीग्रो चला गया तो एक दोस्त ने पूछा कि आपने एक तुच्छ नीग्रो का टोपी उतार कर उसका अभिवाहन क्यों किया, यह तो आपने बड़ी अनुचित बात की है, इससे इन लोगों का हौसला बढ़ेगा, तब वाशिंगटन महोदय ने उत्तर दिया कि परमात्मा की सृष्टि में कोई ऊँच नीच नहीं है। सब मनुष्य बराबर हैं। फिर दूसरी बात यह कि जब एक नीग्रो ने शिष्टता पूर्वक मेरा अभिवादन किया, तो क्या मैं उस से भी गया गुज़रा हूँ कि उसके अभिवादन का उत्तर तक न दूं। ऐसी अशिष्टता को मैं स्वीकार नहीं करता।

और

१२. रूड़की में प्रचार करते समय एक फ़ौजी मुलाज़म मज़हबी सिक्ख बड़ी श्रद्धा से आकर महर्षि दयानन्द जी महाराज के व्याख्यान स्थल में बैठ कर व्याख्यान सुना करता था। एक दिन एक चिट्ठी रसान मुसलमान ने जो स्वामी जी को पत्र देने आया, इस मज़हबी सिक्ख को व्याख्यान स्थल पर बैठे देख कर इस को बहुत डांट बताई कि इतने बड़े महापुरुष की सभा में तुम्हारे जैसे तुच्छ आदमी को आतें शर्म नहीं आती। इस पर महाराज ने इस मुसलमान चिट्ठी रसान को कहा—कि भाई ईश्वर की सृष्टि में कोई ऊँच नीच नहीं है, अगर यह सज्जन व्याख्यान स्थल में बैठ कर व्याख्यान सुनता है तो इसका अधिकार है, किसी को इसके अधिकार से वंचित नहीं करना चाहिए। हमें किसी से घृणा नहीं करनी चाहिए। सब मनुष्य परमात्मा के अमृत पुत्र है और फिर उस मज़हबी सिख को प्रेम पूर्वक कहा कि तुम बेशक रोज़ आया करो और व्याख्यान सुनो तुम को कोई रुकावट नहीं है। इस पर वह मज़हबी सिक्ख बहुत प्रोत्साहित हुआ

और महर्षि के पूर्वोक्त व्यवहार से महर्षि पर उस की श्रद्धा पहले से कई गुणा बढ़ गई।

ऊँच नीच के भेद भाव को न समझ कर मनुष्य मात्र को प्रेम का पात्र समझने में भी दोनों महापुरुषों के एक जैसे ही भाव थे।

८५. अबराहाम लिंकन

अबराहाम लिंकन १२—२—१८०९ में पैदा हुआ, फ़रवरी १८६१ में अमरीका का प्रेज़ीडैंट बन गया।

अबराहाम लिंकन अमरीका का १६ वां प्रेज़ीडेंट था, अमरीका के असल निवासियों को नीग्रो या रैड इण्डियन कहा जाता है। अमरीका में उन को ग़ुलामों के तौर पर बेचा जाता था। जब लिंकन १९ वर्ष की आयु में दरयाये मिसिसपि पर मल्लाह का काम करता था। तो उसने देखा कि अमरीका के असल निवासियों को जंजीरों से जकड़ कर लाया जाता है और उनको नीलाम किया जाता है। सब से अधिक बोली देने वाला उनको खरीद लेता है और मनमाने अत्याचार उन पर करता है। यह दृश्य देख कर उसके मन में बहुत चोट लगी और उसने अपने मन में पक्का इरादा कर लिया कि अगर ताकत मेरे हाथ में आ गई तो मैं इस ग़ुलामी की प्रथा को कानून बना कर हटा दूंगा। अतः वह देव योग से अमरीका का १६ वां प्रधान चुना गया। "देव योग में इसलिए कि इसके प्रधान बनने की किसी को भी आशा न थी, "लेकिन इसको ऐसा चान्स मिल गया कि वह प्रधान चुन लिया गया। अतः इसने अपनी मनोकामना को पूर्ण करने के लिए ग़ुलामी की प्रथा को हटाने का कानून पास करा दिया जिसका नाम Emancipation proclamation रखकर जनवरी १८६३ को इसने हस्ताक्षर करके ४० लाख ग़ुलामों को आज़ाद करा

दिया । लेकिन इस कानून के पास कराने पर उसको किसी ने बन्दूक की गोली मार कर कत्ल कर दिया । लिंकन का सिद्धान्त था कि परमात्मा ने ही सब मनुष्यों को बनाया है और वह अपने मनुष्यों में रंग नसल का भेद न रखकर सबसे प्यार करता है ।

और

जिस तरह लिंकन के मन में ग़ुलामों के प्रति दया का भाव था, इसी तरह महर्षि के मन में भी भारत में अछूत कहे जाने वाले करोड़ों आदमियों के प्रति दया का भाव था । अतः महर्षि जी ने अपने प्रचार से नफ़रत के ख़िलाफ़ बड़े ज़ोर शोर से आन्दोलन उठाया और महर्षि जी ने वेद के उस मन्त्र को जिसमें लिखा है कि सब लोग भाई भाई हैं और परमात्मा सब का पिता है, कोई बड़ा छोटा नहीं है, सुना सुना कर सब को आपस में प्रेम प्यार करने का सन्देश सुनाया । और महर्षि जी के बाद भी आर्य समाज ने छूतछात के बखेड़े का दूर करने के लिए बलिदान दिये । अतः महर्षि के चलाये हुए इस आन्दोलन को महात्मा गांधी जी ने स्वराज्य प्राप्ति के सिद्धान्तों में रखा और स्वराज्य प्राप्त होने पर छूतछात नाशक कानून भो बनाया गया है, जिससे भारतवर्ष के ६ करोड़ मनुष्यों को जिनको अछूत समझा जाता था, बराबरी के अधिकार मिले हैं । अमरीका का ग़ुलामी नाशक कानून लिंकन ने बनाया और भारत का छूतछात नाशक कानून महर्षि दयानन्द ने बनवाया । महर्षि के इस गुण की सराहना करते हुए फ्रांस का मशहूर लेखक रोमन रोलेंड़ लिखता है—

"महर्षि दयानन्द ने अस्पृश्यता वा अछूत पन का अन्याय सहन नहीं किया । और उनसे अधिक उन के उपयुक्त अधिकारों का उत्साही समर्थक दूसरा कोई नहीं हुआ । भारत में स्त्रियों को शोचनीय दशा को सुधारने में भी दयानन्द ने बड़ी उदारता और साहस से काम लिया । वास्तव में राष्ट्रीय भावना और जन जागृति

के विचार को क्रियात्मक रूप देने में सब से अधिक प्रबल शक्ति ऋषि की थी। वह पुनर्निर्माण और राष्ट्रीय संगठन के उत्साही पैग़म्बरों में से थे।"

२. अमरीका के गुलामी नाशक कानून बनने से पहले नीग्रो लोगों के लिए पढ़ना जुर्म था, और कोई नीग्रो विद्या नहीं पढ़ सकता था, न किसी स्कूल या कालेज में किसी नीग्रो लड़के या लड़की को दाखिल किया जाता था। अर्थात् विद्या प्राप्त करने के दरवाज़े उनके लिए बन्द थे। और लिंकन ने यह कानून बना कर तालीम के दरवाज़े भी उनके लिए खोल दिये।

और

महर्षि दयानन्द जी महाराज से पहले यहां भारत में भी "स्त्री शूद्रो न धीयताम्' की श्रुति बनाकर शूद्रों और अछूतों तथा स्त्री जाति को विद्या से वंचित रखा हुआ था, अतः महर्षि ने इसका खूब खण्डन किया और सबके लिए विद्या के शताब्दियों से बन्द दरवाज़े खोल दिये। इस काम में भी दोनों महापुरुषों का उत्साह एक जैसा ही प्रतीत होता है।

३. एक दिन प्रेज़ीडेंट की गाड़ी पर बैठ कर अपने दफ्तर को जा रहे थे, कि रास्ते में क्या देखते हैं कि एक सूअर का बच्चा कीचड़ में फंसा हुआ है, और निकलने का यत्न करते हुए भी निकल नहीं रहा, लिंकन गाड़ी से उतर पड़े और कीचड़ में दाखिल होकर सूअर के बच्चे को बाहर निकाल लाए। नौकर जो साथ था उसने कहा कि आपने अपना लिबास खराब कर लिया है। अगर यही काम करना था तो मुझको हुकम देते मैं कर देता। लिंकन ने जवाब दिया—भाई इस सूअर के बच्चे की तकलीफ़ को देख कर मुझे खुद तकलीफ़ होने लग गई थी। और मैं ने अपनी तकलीफ़ दूर करने के लिए यह काम किया है। यदि तुम करते तो सूअर के बच्चे को तो

बाहर निकाल लाते परन्तु मेरे दिल का दर्द कैसे दूर होता और फिर दर्द इतना अधिक था कि मैं बेक़रार होकर कीचड़ में चला गया।

और

एक दिन महर्षि दयानन्द जब काशी में विराजमान थे, नित्य की तरह सैर करने को बाहर गये, क्या देखते हैं एक माल से लदी हुई बैलगाड़ी कीचड़ में फंसी खड़ी है और गाड़ीवान ज़ोर ज़ोर से बैलों को डन्डे मार रहा है, परन्तु दोनों बैल अपना पूरा जोर लगाने पर भी गाडी को कीचड़ से बाहर निकालने में असमर्थ थे। दयालु दयानन्द से यह दशा देखी न गई, महर्षि ने गाड़ीवान से कहा कि बैलों को खोल दो, और ख़ुद नीचे उतर आओ। गाड़ीवान ने कहा बाबा गाड़ी कीचड़ से बाहर निकालनी है। बैलों को कैसे खोल दूं। महाराज ने कहा गाड़ी बाहर निकालनी है, तुम बैलों को अब मत मारो और उनको खोल दो। इतना कर ख़ुद लिंकन की तरह कीचड़ में उतर पड़े और बैलों को खोल दिया, गाड़ीवान को गाड़ी से उतार दिया और महर्षि ने अपने कंधों का ज़ोर लगा कर गाड़ी कीचड़ से बाहर निकाल कर सड़क पर रख दी और आगे सैर को चल दिये।

४—अबराहाम लिंकन प्रेज़ीडैंट की हैसियत में एक दिन घोडे पर सवार होकर अकेला ही सैर को निकल पड़ा, क्या देखता है कि रेलवे लाईन पर दो मज़दूर एक शहतीरी को उठा रहे हैं, परन्तु पूरा ज़ोर लगाने पर भी उठा नहीं सकते, इनका मेट पास खड़ा उनको ज़ोर लगाने का उपदेश तो कर रहा था, परन्तु उनकी सहायता नहीं करता था, लिंकन ने जब यह देखा तो घोड़े से नीचे उतर आये और मज़दूरों के साथ ज़ोर लगा कर शहतीरी को उठा कर अपने ठिकाने रख दिया। मेट यह देखता रहा, जब यह काम समाप्त करके लिंकन अपने घोड़े पर सवार हुआ तो मेट ने इनका

नाम धाम पूछा ताकि उनका धन्यवाद करे। जब लिंकन ने अपना सब कुछ बताया तो मेट बहुत शर्मिंदा होकर क्षमा मांगने लगा, तो लिंकन ने कहा भाई आदमी का आदमी दारु है अगर फिर कभी मेरी आवश्यकता हो तो बुला भेजना।

और

एक जगह महर्षि दयानन्द का व्याख्यान एक ऐसे अहाता में हो रहा था, जिसको फाटक लगा हुआ था, जब व्याख्यान समाप्त हुआ और लोग जाने लगें तो फाटक बन्द हो गया था, बहुत से लोगों ने ज़ोर लगा कर फाटक खोलना चाहा परन्तु वह न खुला। लोग बड़े दुखी होकर घबरा रहे थे, महर्षि ने उनके दुख को देखा और खुद आगे बढ़ कर पूरा ज़ोर लगा कर फाटक खोल दिया। फिर लोग जा सके। किसी ने ऐसे ही महापुरुषों की निस्बत सच कहा है—

दर्दे दिल के वास्ते पैदा किया इन्सान को,
वरना तायत के लिए कुछ कम न थे करोंबयां ॥

५. अबराहाम लिंकन भी प्रभु भक्त था, और महर्षि दयानन्द भी प्रभु भक्त थे, और दोनों ही महापुरुषों के अन्दर दूसरों के दुख दूर करने की शक्ति प्रभु भक्ति से ही आई थी, दोनों में ही न अहंकार था, न कोई लालच, केवल सत्य और न्याय ही दोनों के जीवन का आधार था। लिंकन का कद ६½ फुट था, और महर्षि का कद भी ६½ फुट ही था, प्राणी मात्र के दुखों को अपना दुख समझने वाले दोनों महापुरुषों में समानता थी।

८६. गोइटे ८७. सिसरो

योरुप में गोइटे और सिसरो अपने वक्त के बहुत बड़े व्याख्याता हुए हैं। इनकी वाणी में बल था, ओज था और वह बड़ी बड़ी जनसंख्या में व्याख्यान देकर श्रोतागणों को मुग्ध कर देते थे।

और

महर्षि दयानन्द अपूर्व वक्ता होने के साथ साथ सत्य वक्ता और स्पष्ट वक्ता भी थे। इनका कथन था कि एक बार मेरी बात कोई सुन ले फिर वह सूई की तरह उसके हृदय में खुब जाएगी। और निकाले से भी न निकल सकेगी। जब महर्षि दयानन्द जी ने प्रचार शुरू किया तो उस समय लाउडस्पीकर वगैरा कुछ न होते थे, और महर्षि अपनी ओजस्वा वाणी के आधार पर हजारों मनुष्यों को जनसख्या में व्याख्यान देते थे। और सनने वाले (Spell bound) चुप चाप मुग्ध होकर सुनते थे। और कई बार श्रोतागण उस वक्त चेतते थे जब महर्षि कहते थे कि आज का व्याख्यान समाप्त हुआ। महर्षि की आवाज़ इतनी गम्भीर और ऊंची होती था कि बम्बई जैसे बडे शहर में पांच पांच मील तक सुनाई देती थी। काशी के शास्त्रार्थ में पचास हजार और कानपुर के शास्त्रार्थ में तीस हजार की हाजरी पर भी बगैर किसी उपकरण के कन्ट्रोल किया था।

१—महर्षि जी की इस अलौकिक शक्ति का वर्णन करते हुए फ्रांस के मशहूर फ़िलास्फ़र और लेखक रोमन रोलां जिनको एक लाख 20 हजार रुपये का नोबल पराइज़ भी मिला था। अपनी पुस्तक में लिखते हैं—"महर्षि दयानन्द ऐसे निर्भीक वक्ता थे जिनकी सिंह गर्जना के सम्मुख उसके प्रतिद्वन्दियों को ठहरने का साहस नहीं होता था। दयानन्द की ओजस्वी वाणी बिना किसी वैज्ञानिक उपकरण के तेज़ आंधी की तरह समस्त भारत में फैल गई। मानो उसकी पृष्ठ भूमि में विधाता की कोई रहस्यमयी योजना काम कर रही हो। शत्रु और मित्र दोनों ही महर्षि का भाषण सुनने पर विवश थे। जनता की अपार भीड़ के समक्ष काले मेघ की तरह मुक्त रूप से हुंकार करते हुए सुनने वालों के मस्तिष्क और हृदय पर समान अधिकार जमा लेते थे। प्रकृति ने ऐसा वरदान उन्हें दे रखा था।" महर्षि की इस दैविक शक्ति के उदाहरण निम्न घटाओं में पढ़िए।

१ सत्य वक्ता २ स्पष्ट वक्ता

महाराज जिया जी राव सिंधिया ने सन १८६४ में १०८ भागवत पाठ का आयोजन किया, बहुत सा रुपया खर्च करके दूर दूर से पण्डित मंगवाये गये, और बड़ा भारी मण्डप तैयार किया गया, महर्षि भी वहां जा पहुंचे। और भागवत का खण्डन करने लगे। महाराजा साहब ने पण्डित विष्णु दीक्षित को स्वामी जी के पास भेजा, और भागवत सप्ताह का महात्म पूछा। दयानन्द ने हंस कर जवाब दिया कि सिवाय दुख और क्लेश के इसका कोई फल न होगा चाहे करके देख लो। महाराज स्वामी जी का स्पष्ट उत्तर सुन कर बहुत खिन्न हुए, परन्तु इतना कहा कि स्वामी जी सामर्थ्य है जो चाहें कहें। परन्तु अब तो हम तयारी कर चुके हैं। अतः पाठ की समाप्ति के बाद महारानी का पांच माह का गर्भ पात हो गया। और पांच वर्ष के राजकुमार का देहान्त हो गया।

३—स्वामी जी की उपस्थिति में एक ब्राह्मण ने राजा साहब करौली को अन्नदाता कहकर आशीर्वाद दी, इस पर स्वामी जी कहने लगे, ये क्या कहा, अन्नदाता तो परमेश्वर है। मनुष्य अन्नदाता कैसे हो सकता है। इस पर राजा साहब स्वामी जी से रुष्ट हो गये। परन्तु स्वामी जी वहां से चले गये।

४—ठाकुर गुर प्रसाद वेसवां के ताल्लुकादार थे, उन्होंने महीधर के यजुर्वेद भाष्य का हिन्दी में उल्था करके छपवाया, वह पुस्तक स्वामी जी के पास लाया और महाराज की सम्मति पूछी। महाराज ने स्पष्ट कह दिया कि यह बिल्कुल अशुद्ध और वेद विरुद्ध है।

५—इन्दौर के पण्डित विष्णुपन्त ने जो स्वामी जी के व्याख्यानों में जब वह इन्दौर आया करते थे, उन्होंने सम्मति जाहिर की थी, कि स्वामी जी उत्कृष्ट वक्ता थे उनका स्वर उच्च, गम्भीर, और मधुर था, उनके बोलने की रीति तेज पर्ण और उनका आक्रमण

तीव्र होता था। उनकी वाणी एकदम लोगों के हृदयों में प्रवेश कर जाती थी, इसलिए वह विरोधी पक्ष के लोगों को असह्य हो जाती थी। और कई लोग बीच में से उठ कर चले जाते थे।

अपूर्व वक्ता

६—सन् १८७६ बड़ौदा में महर्षि का तीसरा व्याख्यान केदार ईश्वर के मन्दिर में राज्य धर्म विषय पर हुआ, राय बहादुर राम चन्द्र गोपाल राम्रो देशमुख ने इस व्याख्यान को सफल बनाने के लिए विशेष उद्योग किया था, और राज्य कर्मचारियों, वकीलों, प्रतिष्ठित मनुष्यों के पास उन्होंने निमन्त्रण भेजे थे, अतः इन व्याख्यान में श्रोताओं की संख्या बहुत बड़ी थी, इसमें सब बड़े बड़े राज्याधिकारी पधारे थे, प्रधान मन्त्री श्री माधव राम्रो भी आये थे, मिस्टर आर. एम. कल्कर जो इन दिनों विषलाद तल्लुका का बन्दोबस्त जमीन का कर रहे थे। वह भी आए थे, बहुत से पटेल जो बन्दोबस्त के सिलसिले में बड़ोदा आये हुए थे। वह भी आए। रेज़ीडैन्सी के सब अधिकारी भी उपस्थित थे। स्वामी जी ने इस व्याख्यान में राजा के गुण और कर्तव्य तथा मन्त्रियों के कर्तव्यादि सब बातें विस्तार से बताई थीं। ब्रह्मचर्य पर विशेष बल दिया था, और कहा था राजाओं के लिए ब्रह्मचर्य के पालन की नितान्त आवश्यकता है, राजाओं को चाहिए कि कानून बना कर लोगों को ब्रह्मचर्य पालन पर बाधित करें, और बाल विवाह को रोकें। मनुष्यों को सदाचारी और वैदिक धर्मानुयायी होना चाहिए। "अन्त में स्वामी जी ने कहा था कि यदि भारतवासी योग्य बन जावेंगे तो विदेशी लोग स्वयं ही उन से कह देंगे कि तुम योग्य हो गए हो तुम अपना शासन प्रबन्ध स्वयं करो।" ब्रह्मचर्य पर कथन करते हुए स्वामी जी ने यह भी कहा था कि किसी भी तीस वर्ष के मांस मदिरा भोज युवक को हमारे साथ चलने दो, तब आप देखना कि ब्रह्मचर्य का बल क्या होता है। या हमें किसी तीस वर्ष के युवक का हाथ

पकड़ लेने दो। तब आप देखेंगे कि ब्रह्मचर्य का बल कैसा होता है। यदि एक मनुष्य केवल चने चबा कर ब्रह्मचर्य का पालन करें तो वह मांसाहारी से कहीं अधिक बलिष्ठ हो सकता है। जिस समय सर टी. सी माधव राय प्रधान मन्त्री बड़ौदा व्याख्यान स्थल में आए थे, तो साधारण रीति से प्रणाम कर के बैठ गए थे, परन्तु जब व्याख्यान समाप्त हो गया और वह उस स्थल से जाने लगे तो उन्होंने स्वामी जी को दण्डवत हो कर प्रणाम किया था और कहा महाराज आप राज्यनीति में हम से सौ गुना अधिक निपुण हैं और सर टी. सी माधव राव ने महाराज को अपने गृह में भोजन का निमन्त्रण दिया और भोजन के उपरान्त एक हजार रु० थाल में रख कर भेंट करने को लाए तो महाराज ने लेने से इन्कार कर दिया और कहा कि हम अपने व्याख्यान बेचते नहीं हैं।

स्पष्ट वक्ता

अमृतसर निवास काल में एक दिन सरदार हरचरन दास महाराज को मिलने आए। वह इतने मोटे थे कि अच्छी तरह चल फिर भी न सकते थे। महाराज ने उन को देख कर कहा कि यह हमारे देश के अमीर लोग है। जिनमें चलने फिरने की भी शक्ति नहीं है। ऐसे मनुष्य देश का क्या उपकार कर सकते हैं।

११ मार्च सन् १८७८ लाहौर में स्वामी जी ने इस्लाम की आलोचना पर लैक्चर दिया। जिस कोठी में स्वामी जी ठहरे थे उस के मालिक नवाब निवाजशआलि खां पास ही टहल रहे थे और उन का व्याख्यान सुन रहे थे। व्याख्यान की समाप्ति पर किसी ने कहा कि महाराज आप को न कोई हिन्दू ठहरने को स्थान देता हैं न कोई ईसाई न मुसलमान, नवाब साहिब ने कृपा कर के आप को यह स्थान दिया है। सो यहां भी आपने इस्लाम का खण्डन करना शुरू कर दिया। ऐसा न हो कि नवाब साहिब

नाराज़ हो जाएं। महाराज ने कहा कि मैं यहाँ इस्लाम या किसी दूसरे मत की प्रशंसा करने नहीं आया हूं। मैं तो केवल वैदिक धर्म को ही सच्चा मानता हूं और उसी का उपदेश देता हूं। मैंने देख लिया था कि नवाब साहिब सुन रहे हैं और जानबूझ कर उन को वैदिक धर्म के गुण बता रहा था, मुझे परमात्मा के बिना अन्य किसी का भय नहीं है।

९. अमृतसर में सरदार दयाल सिंह मजीठिया ने महाराज के निवास के लिए एक कोठी किराया पर ली थी। एक दिन उन की महाराज से वेद विषय पर बातचीत हुई। सरदार दयाल सिंह जी ब्रह्मसमाजी थे वेदों को ईश्वरीय ज्ञान नहीं मानते। इस बात के लिए एक दिन निश्चित किया गया। सरदार साहिब बातचीत के वक्त प्रसंग से इधर-उधर हो जाते थे और बहुत सा समय व्यर्थ नष्ट कर रहे थ। इस पर महाराज ने कहा कि दोनों के बोलने का समय निश्चित होना चाहिए और समय का नियम हो जाने पर भी सरदार साहिब अपने निश्चित समय से अधिक समय लेते थे। तब स्वामी जी ने इन को नियम विरुद्ध समय ज़्यादा लेने से रोका। लेकिन वह अपनी अमीरी के नशे में इस को अपना अपमान समझ कर रुष्ट हो कर चले गए।

१०. मुलतान में महाराज १२. ३. ७८ से १६. ४. ७८ तक ३६ दिन रहे और ३५ व्याख्यान दिए। केवल एक दिय रूग्ण हो जाने के कारण व्याख्यान न दिया। व्याख्यानों में प्रायः सभी धार्मिक और लौकिक विषय आ गए थे। लोग चाहे किसी मत वा सम्प्रदाय के थे उन की विद्या और बुद्धि के वैभव को देख कर चकित रह जाते थे। अतः एक मुसलमान सज्जन ने कहा था कि, "स्वामी जी की विद्या, योग्यता और वादलील कथन होने के कारण उन से शास्त्रार्थ करना तो अलग रहा, उन से किसो को कोई बात पछने का भी साहस न होता था"।

११. सन् १८७६. ३ जुलाई को मुरादाबाद में वहां के अंग्रेज जाएंट मैजिस्ट्रेट सैंडिग की इच्छा से राजनीति विषय पर एक व्याख्यान मुरादाबाद छावनी की पीली कोठी में हुआ था। इस का प्रबन्ध भी अंग्रेज़ मैजिस्ट्रेट ने किया था और गणमान्य लोगों को टिकट दिए गए थे। जिस में मुरादाबाद से सब अंग्रेज अफ़सर, वकील, डाक्टर और पढ़े लिखे विद्वान लोग ही निमंत्रित थे। सब से पहले जब महाराज ने (शन्नो मित्रा शं वरूणा) वाला मन्त्र ही गम्भीर और उच्च स्वर से पढ़ा तो सुनने वाले वाह वाह करने लगे। व्याख्यान में स्वामी जी ने राजा प्रजा के धर्म का पूर्ण रीति से वर्णन किया तो श्रोता गण सुन कर मुग्ध हो गए और सब लोग हैरान थे कि एक सन्यासी जो केवल संस्कृत जानता है राजनीति के गूढ़ तत्वों को ऐसी उत्तम रीति से वर्णन कर रहा है यह उन सब अंग्रजी पढ़े लिखे श्रोताओं के लिए एक नई बात थी। ऐसा राजनीति का विवेचन तो वह किसी बड़े से बड़े अंग्रज़ी पढ़े लिखे पालिटीशन से भी आशा न रख सकते थे। कालिज के ग्रेजुऐटों ने कालिज में भी किसी अंग्रेज़ी की पुस्तक में ऐसी बातें नहीं पढ़ी थीं। बीमार होने के बावजूद भी महाराज कई घण्टे तक व्याख्यान देते रहे और श्रोतागण (Spell bound) मुग्ध हो कर सुनते रहे. व्याख्यान की समाप्ति पर सपैंडिग साहब ने उठ कर महर्षि की बहुत प्रशंसा की और कहा कि यदि राजा और प्रजा ऐसे धर्म का पालन करते जैसा कि महाराज ने कहा है तो सन १८५७ का गदर न होता और राजा व प्रजा को वह दुख उठाने न पड़ते जो उन दिनों सब ने उठाये. इसके बाद महाराज का बहुत बहुत धन्यवाद किया गया। अभी सभा में कुछ लोग बैठ हुए थे, कि श्री काली प्रसन्न वकील ने किसी से अंग्रेज़ी में बातचीत करनी शुरू कर दी, इस पर स्वामी जी ने इन्हें उपदेश दिया कि सभा में बैठ कर ऐसी भाषा में बातचीत करना जिसको दूसरे

समझ सकें अनुचित और चोरी की बात है।

१२. एक दिन व्याख्यान में बरेली के कमिश्नर कलैक्टर पादरी स्काट और कई दूसरे अंग्रेज़ भी उपस्थित थे। महाराज पुराणों के दोषों का वर्णन कर रहे थे। व्याख्यान ऐसा विनोद प्रिय था कि सब हाजरीन हँस रहे थे। पुराणकों के इस विश्वास का कि द्रोपदी, तारा, मन्दोदरी आदि कुमारी है। महाराज ने खंडन किया और पुराणकों की बुद्धि पर खेद प्रगट किया कि यह लोग द्रोपदी के पांच पति बतलाते हैं और फिर उसे कुमारी भी गिनते हैं। महाराज ने जब अंग्रेजों की तरफ़ देखा और अनुभव किया कि इनकी हँसी बड़ी अवज्ञा और ग्लानि सूचक है, तब इस विषय को समाप्त कर दिया और बोले कि यह तो हुई पुराणकों की लीला अब जरा किरानियों की सुनो। ये लोग कुमारी के पेट से पुत्र उत्पन्न होना मानते हैं और दोष सर्वज्ञ शुद्ध स्वरूप परमात्मा पर लगाते हैं और ऐसे घोर पाप की बात कहते हुए जरा भी लज्जित नहीं होते, बस इतना सुनना था कि अंग्रेजों की हँसी क्रोध में बदल गई। कलक्टर और कमिश्नर के चेहरे क्रोध से टमटमा उठे महाराज ने इसकी रत्ती भर भी परवाह न करके ईसाई मत की तीव्र आलोचना की।

१३. बरेली में महाराज लक्ष्मी नारायण ख़ज़ानची की कोठी उतरे हुए थे और लक्ष्मी नारायण ने एक वेश्या रखी हुई थी। महाराज ने एक दिन उन से पूछा कि आप का कौन सा वर्ण है। ख़ज़ानची साहिब ने कहा कि आप तो वर्ण व्यवस्था गुण, कर्म, स्वभाव अनुसार मानते हैं। मैं क्या उत्तर दूं। तब महाराज बोले कि यूं तो सभी वर्ण शंकर हैं। परन्तु लोक प्रथा के अनुसार तुम अपने आप को क्या कहते हो। उत्तर में उन्हों ने कहा कि मैं क्षत्री हूं। तब महाराज बोले यदि क्षत्रिय के वीर्य से वेश्या के पुत्र उत्पन्न हो तो उसे क्या कहोगे। तब ख़ज़ानची साहिब ने यह

सुन कर शर्म से सिर नीचा कर लिया। महाराज ने कहा, सुन भाई हम किसी का पक्षपात नहीं करते। हम तो सत्य ही कहेंगे। ख़ज़ानची जी ने उसी रात उस वेश्या को निकाल बाहर किया।

१४. सन् १८८७ में महाराज राजपूताने की रियासत राय पुर में पधारे, ठाकुर हरी सिंह जी अपने राज्य कर्मचारियों और बन्धु वर्ग समेत महाराज को मिलने आए। तब महाराज ने ठाकुर साहिब से पूछा कि आप का मन्त्री कौन है उन्हों ने कह दिया कि शेख इलाही बख्श मन्त्री हैं। वह जोध पुर गए हुए हैं। उन के पीछे उनके भतीजे शेख करीम बख्श जी काम करते हैं। जो यहां उपस्थित हैं। महाराज ने कहा कि आर्य पुरुषों को चाहिए कि यवनों को अपना राज्य मन्त्री न बनावें। यह सुन कर करीम बख्श और उन के पांच छः मुसलमान साथी जो वहां बैठे थे बहुत क्रोधित हो गए।

१५. उदय पुर आधीश महाराणा सज्जन सिंह का चित्त नास्तिकता की ओर झुकने लगा था और उनके चरित्र में वेश्या रखने का दोष भी आ गया था। एक दो मुसलमानों से भी महा-राणा बहुत खुश थे और मुसलमान महाराणा को अपने बस में करने का उद्योग भी करने लगे थे कि चितौड़ में जब कि उस वक्त के गवर्नर जनरल लार्ड रिपिन महाराणा को जी. सी. एस. आई की उपाधी देने आए थे। स्वामी जी भी पहुंच गए दरबार के खतम होने पर महाराणा साहिब की महाराज से भेंट हुई और स्वामी जी ने महाराणा साहिब को राजनीति का उपदेश दिया। और राजाओं के चरित्र में वेश्या गमन का दोष भी दिखलाया। स्वामी जी की निर्भय वाणी का महाराणा साहिब पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्हों ने अपने वज़ीरों और सरदारों को सम्बोधन कर के

११. विशेष गुण कीर्तन काण्ड

१०२. पूर्ण पुरुष का वास्तविक स्वरूप

१—अनूप शहर निवास के समय एक ब्राह्मण ने स्वामो जी के मूर्ति पूजा के खण्डन से रुष्ट होकर पान में विष दे दिया था। परन्तु महाराज ने न्योली कर्म करके इस विष को अपने शरीर से निकाल दिया था। और स्वस्थ्य हो गये थे। अनूप शहर का मुसलमान तहसीलदार सैयद मुहम्मद स्वामी जी का बड़ा भक्त बन गया था, जब सैयदमुहमद को इस घटना का पता लगा तो वह उस ब्राह्मण को पकड़ कर स्वामो जी के पास ले आया, और मन में विचारने लगा कि स्वामो जी अपने कातल को पकड़ कर लाने के सबब मुझ पर प्रसन्न होंगे। परन्तु जब वह उनके सामने आया तो महर्षि जी ने इस से बोलना बन्द कर दिया। जब सैयद मुहम्मद ने इस अप्रसन्नता का कारण पूछा तो महाराज ने कहा—

"मैं दुनियां को कैद कराने नहीं आया बल्कि कैद से छुड़ाने आया हूं।"

अगर दुष्ट अपनी दुष्टता को नहीं छोड़ता तो मैं संन्यासी होकर अपनी श्रेष्ठता को क्यों छोड़ूं।

२. महर्षि ने सिर्फ दुनियावी कैद से अपितु दिमाग़ी गुलामी से भी संसार को छुड़ाने आये थे। उन्होंने कभो यह न कहा था, कि कि मेरी कोई नया मत चलाने की इच्छा है। बल्कि हर समय वह यही कहते और लिखते रहे कि ब्रह्मा से लेकर जैमनी ऋषि पर्यन्त जो वैदिक ऋषियों का मन्तव्य है वही मेरा भी है।

३. जब आर्य समाज बम्बई की स्थापना हुई तब सब समासदों ने स्वामी जी से प्रार्थना की कि आप इस समाज के सभापति अथवा अधिनायक बन जावें। तो स्वामी जी ने इस बात को स्वीकार न किया। परन्तु सभासदों के आग्रह करने पर अन्य सभासदों की भांति समाज के सभा सद बन गये, और नियमानुसार चन्दा देते रहे, इस पर किसी कवि ने कहा है—"सभासद बना खुद समाजें बना कर।'

४. जब आर्य समाज लाहौर की स्थापना हो गई तो एक दिन शारदा प्रसाद भट्टाचार्य ने अन्य सभासदों की अनुपति से आर्य समाज के अधिवेशन में यह प्रस्ताव किया कि महाराज को आर्य समाज लाहौर के संक्षरक वा अधिनायक की पदवी दी जावे। सर्व सम्पति से यह प्रस्ताव पास हो गया। परन्तु जब महाराज के सामने यह प्रस्ताव रखा गया, तो उन्होंने अस्वीकार कर दिया और कहा कि इससे गुरुडम का बू आती है। और मेरा जीवन उद्देश्य गुरुडम के दुर्ग को मिसमार करने का है। न कि स्वयं गुरु बनने या कोई नया पन्थ स्थापति करने का। यदि कल को इस पदवी से मेरा ही मस्तिष्क फिर जावे अथवा ऐसा न भो हो और मेरा चेला घुमण्ड में आकर कोई अन्यथा कार्य करने लगे। तब आप लोगों को बड़ी कठिनता होगो, और वही दोष उत्पन्न हो जाएंगे जो दूसरे नवीन पन्थों में हो गये हैं।

५—इसके बाद फिर लाहौर के सभासदों ने सर्व सम्मति से यह पास किया कि महाराज को आर्य समाज लाहौर के परम सहायक की पदवी दी जावे। इसे भी महाराज ने अस्वीकार कर दिया, और कहा कि यदि मुझे परम सहायक मानोगे तो उस जगदीश्वर जगद् गुरु सर्व शक्तिमान को क्या मानोगे। अन्त में सब सभासदों के आग्रह पर महाराज लाहोर आर्य समाज के साधारण सभासद् बन

गये। और अपना नाम सभासदों की सूची में दूसरों की भान्ति लिखवा दिया।

५. एक दिन महाराज आर्य समाज लाहौर के सत्संग में जब पधारे तो उस समय ईश्वर उपासना हो रही थी. महाराज को आता देखकर सब सभा सद सम्मान प्रदर्शनार्थ खड़े हो गये। उपासना की समाप्ति पर महाराज ने उपदेश दिया कि उपासना काल में उपासक ईश्वर के सत्संग के मग्न होता है। ऐसे समय में कोई कितना भी बड़ा मनुष्य आवे, उपासकों को खड़ा न होना चाहिए। क्योंकि परमेश्वर से बड़ा कोई नहीं है। अतः ऐसा करने से उपासना धर्म का निरादर होता है।

७. संसार में कितने लोगों ने अपने को ईश्वर का सन्देश हर (पैगम्बर) कह कर अपने नाम से पन्थ चलाए और आज उन के लाखों करोडों अनुयाई हैं। कितनों ने गुरु बन कर चेलों चेलियों की बुद्धि को आंखों पर पट्टी बाँधी। उन का तन मन धन हड़प कर लिया। किसी ने अपने आपको ईश्वर का इकलोता बेटा घोषित किया। और कई कई स्वयं ईश्वर बन बैठे और लाखों लोगों को अज्ञान के घोर अन्धकार में धकेल दिया।

एक ओर यह लोग हैं और एक ओर ऋषि दयानन्द है, जो उस को गुरु बनाना चाहता है, वह इन्कार कर देता है। हम देखते हैं कि योग की साधारण क्रियाओं के द्वारा कई लोग गुरु बन बैठे हैं और शिष्य मण्डली के हृदय और मस्तिष्क के स्वामी बने हुए हैं। परन्तु एक दयानन्द है जो पूर्ण योगी पूर्ण विद्वान होता हुआ भी गुरु बनने से भागता है। निरभिमान की पराकाष्ठा है, यह है दयानन्द का वास्तविक स्वरूप। दयानन्द जो कुछ था वह औरों के लिए था। अपने लिए कुछ नहीं। दयानन्द न सिर्फ जिस्मानी गुलामी से दुनियां को आजाद कराने आया था बल्कि दिमागी

गलामी से भी संसार को आज़ाद कराने आया था। दिमागी गुलामी सब से बुरी चीज़ है, दिमागी तौर पर ग़ुलाम मनुष्य और जातियां अपने लिए स्वतन्त्रता से कुछ सोच नहीं सकते। उनके हांकने वाला जिस तर्फ उन को ले जाना चाहे, भेड़ों की तरह दिमाग़ी गुलाम लोग उसी तर्फ़ चल पड़ते हैं जैसे किसी ने कहा भी है—

गुर गूंगे गुर बावरे गुर के रहिये दास।
जे गुर भेजे नर्क में तो स्वर्ग न रखिये आस॥

८. किसी पुरुष का वास्तविक स्वरूप वह अच्छी तरह बियान कर सकता है, जो कुछ समय तक उस पुरुष के पास आठों पहर रहता रहा हो। एक ही जगह भोजन करता रहा हो और एक ही जगह रात को सोता रहा हो। महर्षि का वास्तविक स्वरूप नीचे लिखे एक पत्र से जो बाबू मनमथ नाथ चौधरी B. A. एक बंगाली महाशय ने देवेन्द्र बाबू जी को लिखा था अच्छी तरह देखा जा सकता है बाबू मनमथनाथ चौधरी B. A. एक बंगाली युवक स्वामी जी के उपदेश, उन के चरित्र उनकी विद्वता पर इतने मुग्ध हुए कि कलकत्ते से प्रायः उन के साथ ही रहने और उन के पास ही सोने लगे थे, वह कलकत्ता से हुगली भी स्वामी जी के साथ आए थे। उन का वह पत्र जिस में उन्होंने महर्षि के जीवन का आंखों देखा हाल लिखा है। निम्न प्रकार है।

"मैं वर्धमान से स्वामी जी से विदा हो कर कलकत्ता चला गया, मुझे कुछ काम था और स्वामी जी विहार चले गये, वर्धमान से अलग होकर मैं जोधपुर में महाराजा के स्कूल का हैड मास्टर हो कर चला गया। फिर मैं स्वामी जी के सहवास का आनन्द लाभ न कर सका। स्वामी जी मुझे अन्तिम दिनों तक

प्रेम करते रहे. जैसा मुझे बहुत से मनुष्यों से ज्ञात हुआ। अब मुझे गहरा शोक है कि मैंने नौकरी करनी क्यों स्वीकार कर ली, मैं स्वामी जी के साथ सन् १८७३ में रहा था और अब सन् १९०० है। इन २७ वर्षों में मैं भारत वर्ष में बहुत कुछ घूमा हूं। परन्तु मुझे एक भी पुरुष ऐसा नहीं मिला जो स्वामी जी से लग्गा खाता हो। मेरा जीवन दूसरे ही प्रकार का होता, यदि मैं उनके साथ रह जाता। क्योंकि मैं उन के साथ रहा हूं, सोया हूँ, इस लिए मैं आप को कुछ ऐसी बातें बता सकता हूँ। जो कोई दूसरा मनुष्य नहीं बता सकता। वह पक्के निरामिश भोजी थे। उन की दाल भाजी में विलक्षण प्रकार के मसाले पड़ते थे और उनका विलक्षण स्वाद होता था अपने पश्चात् के जीवन में मैंने कभी कोई वस्तु उस जैसी नहीं खाई। वह फूस पर सोते थे, मैं भी उनके पास ही सोता था। वह नियम से प्रतिदिन प्रातःकाल बहुत देर तक योगाभ्यास किया करते थे और इस समय भी मुझे अपने पास रहने की आज्ञा दे दिया करते थे। मैंने बनारस मे बहुतों को योगाभ्यास करते देखा है, परन्तु उन के समान किसी को नहीं देखा। उनकी दिनचर्या इस प्रकार थी। वह तीन बजे के लग भग उठा करते थे और प्रातःकाल तक योगाभ्यास करते रहते थे। फिर वह शौच आदि से निवृत्त हो कर स्नान करते थे और शरीर पर भस्म लगाते थे। ९ बजे वह दर्शकों से मिलते थे और १२ बजे तक उन से बात चीत करते थे। फिर वह भोजन करते, मुझे आश्चर्य है कि उन्हें गले का कैंसर रोग क्यों नहीं हुआ। मैंने और किसी मनुष्य को नहीं देखा, जो प्रति दिन इतने घण्टे महीनों और वर्षों संस्कृत में बोलता और वाद विवाद करता रहे। मुझे विश्वास है कि उन का जन्म किसी विशेष उद्देश्य के लिए हुआ था। वह इतना बोलते थे कि प्रतिदिन उन का गला बठ जाता था। परन्तु अगले दिन फिर उसी कार्य में संलग्न हो जाते थे, रात्रि को वह

सूक्ष्म आहार करते थे और कई बार कुछ भी नहीं खाते थे और सब भोजन हम लोगों को खाने के लिए बांट देते थे। अब मैं वह वर्णन करता हूं जो अनुभव मुझे उन का हुआ था, यदि कोई मनुष्य पूर्णतया स्वतन्त्र चरित्र लेकर उत्पन्न हुआ हो? तो वह स्वामी जी थे। यदि किसी मनुष्य ने साम्यवाद को चरितार्थ किया हो तो वह स्वामी जी थे, वह यह जानते ही न थे, कि ऊँच नीच का भेद भाव क्या होता है। मैंने उनके पास राजाओं और महाराजाओं को बहुधा आते देखा है, जो यह आशा रखते थे कि उन का विशेष प्रकार से स्वागत किया जायेगा। परन्तु स्वामी जी उनके प्रति लेशमात्र भी विशेष सम्मान प्रकट न करते थे। हम बहुत बार निस्वार्थी पुरुषों और देश भक्तों का वर्णन सुनते हैं, परन्तु मेरे ज्ञान में तो यही एक निस्वार्थी पुरुष और देश भक्त थे। यदि मुझे उन के निरन्तर सहवास का सौभाग्य प्राप्त न हुआ होता, तो मुझे यह भी ज्ञान न होता कि साम्यवाद क्या होता है, मुझे कभी ज्ञात न होता कि चरित्र बल क्या होता है। यह भारत वर्ष का दुर्भाग्य है कि उनकी मृत्यु समय से पहले हुई है। उन का स्थान लेने वाला कोई नहीं है, ऐसा विद्वान, ऐसा भक्त, निस्वार्थी कोई नहीं है, कट्टर पण्डित गण ने चिढ़ाने के लिए उनका नाम नास्तिक रख छोड़ा था। परन्तु यदि वह नास्तिक थे तो मैं नहीं जानता कि आस्तिक कौन हो सकता है, मैं स्वामी जी की स्मृति से अत्यन्त प्रेम करता हूं। मुझे सदा यह पश्चाताप रहा है कि मैंने नौकरी के लिए उनका सहवास त्याग दिया। मैं आप को धन्यवाद देता हूं कि आप उन का जीवन चरित्र लिख रहे हैं, मैं उनकी स्मृति की पूजा करता हूं।"

महर्षि के प्रचार काल के समय छपने वाले अखबारों ने जो कुछ उनके विषय में लिखा था, इससे उनके वास्तविक स्वरूप

पर बड़ा प्रकाश पड़ता है। अतः कुछ संक्षिप्त उदाहरण निम्न-लिखित हैं।

कलकत्ता से छपने वाली ब्रह्म पत्रिका में लिखा है—"प्रसिद्ध पंडित दयानन्द सरस्वती कलकत्ता आये हैं. हिन्दू शास्त्र में उनका निश्चित अधिकार है, वह मूर्ति पूजक नहीं हैं, और अद्वैतवादी भी नहीं है, वह जीवात्मा और परमात्मा का भेद स्वीकार करते हैं, और एक निराकार ईश्वर की उपासना करते हैं। उनके मत में वेद का मन्त्र भाग निर्भ्रान्ति ईश्वरीय ज्ञान हैं। विधवा विवाह के सम्बन्ध में उनकी सम्पति युक्ति संगत है। बाल विवाह के वह नितान्त विरोधी हैं, वह यह सिद्ध करते हैं कि कन्या के लिए १८ वर्ष की आयु और पुरुष के लिए ३० वर्ष की आयु विवाह के लिए शास्त्रोत है। वह जाति पाति का भेद स्वीकार नहीं करते। गुण कर्म के अनुसार वर्ण भेद की वयवस्था स्वीकार करते हैं। वह बड़े विद्वान, शिष्टाचारी, सदाचारी, और सरल हैं, परन्तु मूर्ति पूजा के बड़े विरोधी हैं, संस्कृत भाषा उनकी मातृ भाषा हो गई है। वह बिल्कुल अनायास ही श्रुति मधुर संस्कृत भाषा में वार्तालाप करते हैं। और उनके साथ बात चीत करने से सभी प्रसन्न होकर आते हैं।"

१०—कलकत्ता से निकलने वाली पत्रिका धर्म तत्व में दयानन्द सरस्वती शीर्षक देकर लिखा है, "यह एक दिग्गज पंडित हैं, यह हिन्दु शास्त्र विशारद हैं, संस्कृत भाषा इनके अधीन हो गई है, विशेष कर उनकी संस्कृत भाषा इतनी श्रुति मधुर और सरल है कि संस्कृत न जानने वाले भी उनके कथन को बहुत कुछ समझ लेते हैं, सरस्वती की बुद्धि बड़ी परिष्कृत और तीक्षण है, उनकी क्षमता असाधारण है, इनमें लोगों के आकर्षण करने की विलक्षण शक्ति है, वह बड़े मीठा बोलने वाले हैं। एक ईश्वर की उपासना का प्रचार, मूर्ति पूजा का विनाश, उनके जीवन का प्रधान लक्ष है। पश्चिम की रोशनी

से अलौकिक न होने पर भी वह जिस विशुद्ध रूप से उदारता के साथ सारे विषयों को प्रकट करते हैं। इसे देखकर अवाक्य होना पड़ता है, आश्चर्य की बात यह है कि जिस विषय पर भी व्याख्यान देते हैं उसको ऐसा खोल कर वर्णन करते हैं कि वह सब कि समझ में ठीक बैठ जाते हैं, यह वर्ण—गुण कर्म स्वभाव से मानते हैं, जन्म से नहीं, वह विधवा विवाह के पक्षपाती हैं, और छोटी आयु के विवाह की घोर निन्दा करते हैं, यही नहीं कि सरस्वती जी व्याख्यान ही देते हैं, बल्कि वह प्रातः काल और सायंकाल दोनों संधियों में ५— ६ घण्टे ईश्वर के ध्यान और उपासना में लगाते हैं। इन में अन्तदृष्टि विशेष भाव से दीखती है, इन्द्रिय निग्रह और आत्म संयम इन को सिद्ध है। इनको देखने ने वीरत्व, महत्व, गंभीरत्व, उच्च आशा के लक्षण स्पष्ट प्रतीत होते हैं। यह अपना जीवन प्रतिदिन, उपासना अध्ययन, व्यायाम और धर्मालय में बिताते हैं। जो कुछ कहते हैं, वह सब कुछ उनके जीवन में उपस्थित है।"

११—इन्दू प्रकाश पत्र नामक में महर्षि के उपदेश की बाबत लिखा है, "वह इतने निर्भीक थे, कि नदी के तट पर विचार विमूढ ब्राह्मणों के वृहद् समूह के सामने प्रोहित दल की बुराइयों और इन लोगों के अविद्या जन दोषों को निर्भीकता और अटल भाव से स्पष्ट अक्षरों में वर्णन करने के कारण उसी स्थान के लोग पंडित दयानन्द से इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने पंडित दयानन्द का साधुवाद किया। और बहू मूल्य वस्त्र उपहार में दिये।

१२—११ मार्च सन् १८७५ के अहमदाबाद से निकलने वाले पत्र हितेच्छू में लिखा था "निसन्देह स्वामी दयानन्द असाधारण व्यक्ति हैं, इनकी प्रतिभा और योग्यता दुर्लभ है। यदि वह अन्य सम्प्रदाय वादी गुरुओं के सदृश धन के कारण कार्य करने वाले होते तो इन्हें हजारों शिष्य प्राप्त हो जाते। और एक नया सम्प्रदाय

स्थापित करके धन की बहुत बड़ी राशि इकट्ठी कर लेते, परन्तु ऐसे नीच भाव उनकी प्रकृति के प्रतिकूल हैं, इनका एक मात्र उद्देश्य भारत सुधार ही है, इनकी प्रबल इच्छा है कि वह स्मृद्धि और सभ्यता में अपने देश को फिर एक बार सारे संसार के सिर स्थान पर देखें।"

१३—गुजरात (पंजाब) में पहले ही व्याख्यान में स्वामी जी ने कहा कि जब कोई श्रोता किसी का व्याख्यान सुने तब उस पर खूब मनन करे, और देखे कि इसमें कितना सत्य है और कितना असत्य है, फिर असत्य के त्यागने और सत्य के ग्रहण करने में तत्पर रहना चाहिये। मैं आपको विश्वास दिलाता हुं, कि मैं यह नहीं चाहता, कि जो कुछ मैं आप से कहूं आप उस पर आँखें मीच कर चलें। यदि वह आप को सत्य जान पड़े तो उस पर चलें, यदि असत्य जान पड़े तो उस पर कोई ध्यान न दें। यह अन्ध विश्वास ही हमारे विनाश का मूल है, संस्कृत पुस्तकों में ज्ञान का बहुत बड़ा कोष है, इन्हें पढ़ो और देखो, इनमें क्या है. ऐसा मत कहो कि कोई बात केवल इसलिए मानने का त्यागने योग्य है कि दयानन्द सरस्वती ऐसा कहता है।

१४—कानपुर में एक दिन प्रातःकाल महर्षि लेटे हुए थे, लाला मोहनलाल सभापति गौ रक्षणी सभा पैर दबा रहे थे, लाला मोहन लाल ने अत्यन्त नम्र भाव से महाराज से कहा कि महाराज जो कुछ मैंने शास्त्रों में देखा और सुना है उससे ज्ञात होता है कि आप मोक्ष के पूर्ण अधिकारी हैं, क्या आप को इस शरीर में मोक्ष पाने की इच्छा नहीं है? महाराज ने इसके उत्तर में कहा मैं अकेला मोक्ष पा कर क्या करूंगा। मेरी तो इच्छा है कि बहुत से मनुष्यों को मोक्ष मिले।

१५--कहते हैं कि एक बार ऋषि भक्तों ने इच्छा प्रकट की

कि ऋषि के निर्वाण पद प्राप्त करने पर उनकी समाधि बनवाई जाए ऋषि जानते थे समाधि के बन जाने पर भक्त लोग समाधि की पूजा में रत हो सकते हैं और इस प्रकार जिस गुरडम और कबरप्रस्ती आदि का खंडन करके ऋषि ने उन्हों स्वतन्त्र विचार का मार्ग दिखाया था उस सारे जीवन कार्य का विध्वंस हो कर लोग फिर से उसी अंधरे कूप में गिर पड़ेंगे, इसलिए उसी समय उन्हें इस घृणित कार्य से रोकते हुए कहा—

जलाना मुझ को, मगर न मेरी
समाध हरिगज़ वहां बनाना ।
यह बट्टा हरिगज़ मेरे नाम पर
ए-आर्यो न तुम लगाना ॥
वह ताकि बेफ़ायदा न जाये
किसी मसरफ़ के काम आए ।
जो ख़ाक हो मेरी हड्डियों की
वह जाके खेतों में डाल आना ॥

धन्य हो निरभिमानता के अवतार, तुम धन्य हो, तुम्हें नतमस्तक होकर कोटिशः प्रणाम करता हुं । आर्यो, ऋषिराज अपने शरीर को भस्म तक न पुजवा कर लोकोपकार थे लिये उसे खेतों में डलवा देना चाहते हैं । वह गुरुडम के सख्त विरुद्ध थे ।

१६—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें ।

आर्य समाज के इस दसवें नियम में स्वतन्त्रता और परतन्त्रता की मीमानसा बड़ी उत्तम रीति से कर दो गई है और आर्य समाज

के सभासद पूरी स्वतन्त्रता से काम कर ते रहे हैं, पंजाब में एक ऐसा भी समय आया कि डा: गोकल चन्द नारंग हिन्दू सभा के डा: सत्य पाल कांगिरिस के सर छोटू राम ज़मीदार पारटी के प्रधान रहे और यह तीनों महानुभाव पक्के समाजी भी थे परन्तु जिस पोलटीकल पारटी में उन्हें काम करना देश के हित में ठीक प्रतीत हुआ. पूरी ज़िमेदारों से काम करते रहे, ऐसी विचार स्वतन्त्रता संसार के इतिहास में आप कहीं भी देख न पाए गे, इसीलिए तो महाराज ने कहा था, मैं दुनियां को कैद कराने नहीं आया परन्तु कैद से छुड़ाने आया हूं, और यही महाराज का वास्तविक स्वरूप हैं।

१०३. पूर्ण विद्वान

१. महर्षि दयानन्द जी ने भ्रान्ति निवारण पुस्तक में लिखा है कि "मैं अपने निश्चय और परीक्षा के अनुसार ऋग्वद से लेकर पूर्व मीमांसा परन्तु अनुमान से ३ हज़ार ग्रन्थों के लगभग मानता हूं' अब आप स्वयं ही विचार करें, कि जिस महाराज ने ३ हज़ार ग्रन्थ प्रमाणिक चुने हों। उसने कितने हज़ार ग्रन्थ पढ़ होंगे, ऐसा अनुमान सहज में हो किया जा सकता है । सस्कृत के तो वह पूण विद्वान थे ही, अतः वह ६—७ वर्ष जब गगा के किनारे विचरते रहे और जितने व्याख्यान दिये, बड़ बड़े शास्त्रार्थ किये, वार्तालाप और बात चीत की, सब संस्कृत में ही करते रहे। उनको संस्कृत वाणी पर इतना प्रभुत्व था कि घन्टों बालते रहते और व्याख्यान देते थे, और ऐसी आसान संस्कृत में कि जो संस्कृत से अनभिज्ञ मनुष्यों की भो समझ में आ जाया करतो थी। इससे अधिक किसी भाषा पर और क्या प्रभुत्व हो सकता है । और फिर जो तीन हज़ार ग्रन्थ वह प्रमाणिक मानते थे, इसमें साईंस, फ़िलासफ़ी,

हिस्ट्री, जुगराफिया, आयुवद, ज्योतिष, व्याकरण, अध्यात्मक अधिदैविक, अधिभौतिक, याज्ञिक, कानून, आदि विद्याओं का समावेश हो है, इसलिए वह इन सब विद्याओं के भी पूर्ण विद्वान थे।

२. आजकल जो मनुष्य १६ वर्ष पढ़ता है उसको M. A. M. s. s. यानि मास्टर की डिगरी मिल जाती हैं। और इस पर भी यदि कोई मनुष्य किसी एक मजबून पर एक छोटी सी पुस्तक या लेख जिसको thesis कहते हैं लिख देवे तो उसको डाक्टर की डिगरी मिल जाती है। परन्तु क्या आप को ज्ञात है कि महर्षि ने कितनी देर विद्या पढ़ी, और किस अवस्था में पढ़ी, याद रखिये दुनियां की सारी यूनिवर्सिटियों में एक दो प्रतिशत विद्यार्थी ऐसे निकलेंगे जो मास्टर की डिगरी लेने तक पूर्ण रूप से ब्रह्मचारी रह सके हों। पूर्ण रूप से ब्रह्मचारी रहने का अर्थ है कि किसी भी अवस्था में स्त्रि का दर्शन, चिन्तन सम्भाषण आदि न कर पाये। परन्तु महर्षि जी पूर्ण ब्रह्मचारी थे, उनको ब्रह्मचर्य की रक्षा करने के लिए भरपूर यत्न भी करने पड़े, और सारे संसार की यूनिवर्सिटियों में चाहे कोई पूर्ण ब्रह्मचारी तो निकल भी आये। परन्तु पूर्ण योगी एक भी दृष्टि गोचर न होगा। महर्षि न केवल पूर्ण ब्रह्मचारी ही थे, परन्तु पूर्ण योगी भी थे।

और

३. एक पूर्ण योगी और ब्रह्मचारी जो पूरे ३६ वर्ष ४ वर्ष की आयु से लेकर ४० वर्ष की आयु तक विद्या ग्रहण करता रहा हो और वह भी योगियों और ब्रह्मचारियों से। यदि वह पूर्ण विद्वान न हो तो कौन होगा। आप सब भाई यह तो जानते ही हैं, कि विद्यार्थी के लिए ध्यान की एकाग्रता अत्यन्त आवश्यक साधन है, और यह भी कि ध्यान की एकाग्रता योग की पहली सीढ़ी ही है। वह योगी जो ७२

घण्टे लगातार बग़ैर कुछ खाये पिये, हिले जुले अपने मन को एक स्थान पर स्थिर कर सकता है । इससे बढ़ कर कोन ध्यान की एकाग्रता को प्राप्त हो सकता है । इस लिए महर्षि किसी पुस्तक को एक बार पढ़ कर ही याद कर लेते थे । एक मज़मून का छोटा सा Thesis लिख कर डाक्टर की डिगरी लेकर बड़ा समझने वाले भला इस का क्या कहेंगे । जिसने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका और सत्यार्थ प्रकाश जैसे कितने ही प्रमाणिक ग्रन्थों की रचना कर डाली हो, जिन में सभी विद्याओं का समावेश हो ।

४. इस प्रकार इन साधनों से प्राप्त की हुई विद्या में पूर्ण हो कर ही तो महाराज ने सारे संसार के हर किसम के विद्वानों को चेलेंज किया । परन्तु उन के सारे प्रचार के समय में कोई भी किसी भी विद्या का विद्वान उन के चैलेंज को स्वीकार न कर सका और जिस ने स्वीकार किया उसने मुंह को खाई, पुराना, किरानी, कुरानी, बौद्ध, जैनी, नवीन वदान्ती, साइंसदान, फ़िलासफ़र, ताराखदान कोई भी उनके सामने ठहर न सका । चक्रवर्ती बाबू ने जो कलकत्ता से कानपुर उन के पास उपनिशद् पढ़ने आये । कुछ दिन महर्षि के साथ एक जगह रहे । एक दिन हैरान हो कर महाराज से कहा—महाराज जी यह विचित्र तमाशा है जो आपके सन्मुख आता है । दो चार मिनट से अधिक आप से बात चीत हो नहीं कर सकता, और चुप साध कर बंठ जाता है पूर्ण विद्वान थे तभी तो दुनिया के दो अरब मनुष्यों के सामने अकेले डट कर खड़े हुए और किसी को हिम्मत न हुई कि इस सिंह के सामने दम भी मार सके ।

५. रूढ़की में इस प्रकार मौलवी साहब ने शास्त्रार्थ करना किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं किया । जिन दिनों मौलवी साहब से शास्त्रार्थ की छेड़-छाड़ हो रही थी उन्हीं दिनों एक पण्डित

जी आये जिनके संस्कृत के विद्वान होने की बड़ी ख्याति थी। वह महाराज से मिलने गये तो महाराज ने उन्हें सत्कार पूर्वक बिठाया। पण्डित जी ने एक व्याकरण का ग्रथ बनाया था जिसे वह अपने विचार में अपूर्व समझते थे। उन्होंने वह ग्रंथ महाराज को दिखाया, महाराज ने ५. ७ मिनट देखकर वापस कर दिया और कहा कि आप का संस्कृत का ज्ञान अच्छा है। पण्डित जी उन दिनों बेकार थे, महाराज ने उन्हें पास रखना भी चाहा परन्तु वह राज़ी न हुए। महाराज ने कहा कि यदि आप अपना समय किसी आर्ष ग्रन्थ के अनुवाद में लगाते तो अच्छा होता। पंडित जी बोले, तो मेरा ग्रंथ किसी अर्थ का नहीं? महाराज ने कहा, जैसा है वैसा ही है। पण्डित जी ने कहा कि मेरे व्याकरण में सब नियम आ गये हैं। पण्डित जी के हठ करने पर महाराज ने कहा कि आप अपने ग्रन्थ का कोई नियम निकालिये। उन्होंने एक नियम निकाला तो महाराज ने १७, १८ वेद मन्त्र पढ़ कर कहा आप अपने नियम को इन मन्त्रों पर घटाइये। परन्तु वह न घटा तो पण्डित जी ने कहा कि वेद का व्याकरण अलग हो सकता है, इस पर महाराज ने कहा कि इससे क्या लाभ कि वेद के लिए एक ग्रन्थ पढ़ा जाय और लौकिक संस्कृत के लिए दूसरा फिर महाराज ने ३२, ३३ लौकिक संस्कृत के श्लोक पढ़े। उन पर भी पण्डित जी का नियम न घटा। इस पर पण्डित जी चकित हुए और महाराज के पग पकड़ लिये और कहा कि आप समुद्र हैं। मैंने यह ग्रंथ काशी के पण्डितों को भी दिखाया था, सबने इसकी प्रशंसा की। फिर महाराज ने पाणिनीय का एक सूत्र पढ़ कर सब पर घटा दिया और पण्डित जी को मन्त्रणा दी कि आप आर्ष-ग्रन्थों की टीका और व्याख्या लिखने का यत्न करें जिस से संस्कृत विद्या की उन्नति हो। पण्डित जी का गर्व चूर्ण हो गया

और निष्प्रभ परन्तु अधिक बुद्धिमान् हो कर विदा हो गए।

हरिद्वार के प्रसिद्ध सतुआ स्वामी से भी लोगों ने कहा था कि स्वामी दयानन्द से शास्त्रार्थ कीजिये। पहले तो उन्होंने हाँ कर ली, परन्तु फिर कहा कि मैं स्वामी दयानन्द का मुख नहीं देख सकता। लोगों ने यह बात महाराज से कही तो उन्होंने कहा कि बीच में पर्दा डाल कर शास्त्रार्थ हो सकता है, परन्तु सतुआ स्वामी इस पर भी उद्यत न हुए।

१०४. पूर्ण योगी

१. राज योग—महर्षि पतंजलि योग दर्शन की समाधि याद के दूसरे श्लोक में योग का लक्षण करते हुए लिखते है—"योगश्चित वत्ति निरोध" अर्थात चित की वृत्तियों का निरोध हो योग है, और वृत्तियों की पाँच प्रकार की गणना की है। १. प्रमाण २, विपर्य ३. विकल्प, ४. निद्रा, ५. स्मृति। प्रमान तीन माने हैं—१. प्रत्यक्ष २. अनुमान, ३. आगभ.। मिथ्या ज्ञान का नाम विपर्यप है, नेस्ति स हस्ती मानना विकल्प कहलाता है। ज्ञान के अभाव को निद्रा कहा गया है, स्मृति यानि वृत्तयों की यादाशात। इनकी दो किसमें वर्णन की गई हैं। एक क्लिष्ट और दूसरी अक्लिष्ट। फिर योग दर्शन के समाधि पाद के २४ श्लोक में ईश्वर कीं स्तुति करते हुए लिखा है। जो क्लेश कर्म—विपाक, आशय के सम्बन्ध से रहित हो वह पुरुष विशेष ईश्वर है। क्लेश पाँच हैं—अविदया, अस्मिता, राम, द्वेष, अभिनिवेश कर्म चार प्रकार के है—पुण्य-पाप, पुण्य और पाप मिश्रत और पुण्य पाप से रहित। और कर्मों के फल का नाम विपाक है। और श्लोक २७ में उस ईश्वर का नाम "ओ३म्" बतकाया है। देखिये कितने साफ़ शब्दों में ईश्बर को निराकार माना गया है)। पाँचों क्लेश योग साधन में बड़ी भारी रुकावट बनते हैं। ईश्वर के इस स्वरूप का ध्यान और ओं का नाम का जाप करने से बुद्धि

ऋतम्भरा हो जाती है, यानि सचाई की तह तक पहुँचने वाली बुद्धि प्राप्त हो जाती है. जिसमें संशय और भ्रम का लेश भी नहीं होता, योग के आठ अंग हैं, इसलिए उसको अष्टाँग योग कहते हैं। १. यम, २. नियम, ३, आसन, ४. प्राणायाम, ५. प्रत्याहार, ६. धारणा, ७. ध्यान, ८. समाधि। फिर यम पांच हैं—१. अहिंसा, २. सत्य, ३. अस्तेय, ४. ब्रह्म चर्य ५. अपरिग्रह । पांच ही नियम हैं—१. २. सन्तोष, ३. तप, ४. स्वाध्याय, ५. ईश्वर प्राणिधान। जब योग साधन करता हुआ मनुष्य समाधि अवस्था को प्राप्त कर लेता हैं। तब उसको सब से वहले ६ सिद्धियां प्रकट होती हैं—१. प्रातिभा २. श्रवण, ३. वेदन, ४. आदर्श, ५. आखाद, ६. वारता। १. प्रतिभा—इस से भूत, भविष्य, वर्तमान और सूक्ष्म ढको हुई और दूर देश में रखो हुई वस्तुए प्रत्यक्ष हो जाती हैं। २. श्रवन—इससे दिव्य शब्द सुना जाता है। ३. वेदन—इससे दिव्य स्पर्श का अनुभव होता है। ४. आदर्श—इससे दिव्य रूप का दर्शन होता है। ५. आखाद—इससे दिव्य रस का अनुभव होता है। ६. वारता—इससे दिव्य गन्ध का अनुभव होता है, अथवा पांचों ज्ञान इन्द्रियों के अन्दर दिव्य शक्तियों का समावेश होता है। परन्तु इन सिद्धियों को पातंज़लि मुनि ने ईश्वर दर्शन या कैवल्य पद प्राप्तो के रास्ते में रुकावट समझते हुए उन को त्याग देने का उपदेश दिया है। क्योंकि अगर साधक रास्ने में ही कुछ कामयाबी प्राप्त होने पर थक कर वैठ जावे या उसी थोड़ी कामयाबी को मंजिल समझ ले तो फिर वह अपनी असल मंजिल यानि मुक्ति पद को प्राप्त नहीं कर सकता; इसलिए ऋषि ने उनको त्याग कर इनमें न रीझ कर निरन्तर आगे वढ़ने के लिए ही उत्साह दिलाया है, ताकि साधक अपनी असली मंजिल को प्राप्त कर सके।

२. राज योग से जो पिभूतियां साधक के अन्दर उत्पन्न हो

उपदेश दे दिया है और कम व अधिक सब संसार में Division of Labour इसी प्रकार से चलती आई हैं। अब भी चलती है, आगे भी चलती रहेगी। जहां जहां और जिस वक्त मनुष्य अपनी अकल को बड़ा समझ कर इस (डिविजन आफ़ लेबर) में टांग अड़ा कर उस को ख़राब करने की कोशिश करेंगे। वहीं अशान्ति दुख और सन्ताप पैदा हो जायेगा। रूस में काले मार्कस का श्रेणी रहित समाज का असूल फ़ेल हो गया और फिर वहां भी अनायास हो श्रेणी बद्ध समाज बनाने की योजना बनानी पड़ी। क्यों कि वेद ज्ञान से मुनकिर होने की किसी में शक्ति नहीं है।

इस वेद मन्त्र को फ़ारसी के प्रसिद्ध कवि शेख सादी ने इस प्रकार ब्यान किया है।

बनी आदम आज़ाये यक दीगरंद,
के दरआफ़रीनश ज़े यक ज़ोहरद।
चूं उज़वे वदर्द आवरद रोज़गार,
दिगर उज़वहा रा न मानद करार।

अर्थात समस्त मनुष्य एक दूसरे का अंग है। एक अंग दर्द करे तो बाकी सारे अंग जिसम के दुखी होते हैं।

सच्चा और सुच्चा सोशल इज़म जो वेद के उपरोक्त मन्त्रों और निम्नलिखित वेद मन्त्रों में उपदेश किया गया है। इससे बेहतर कोई आज तक बता नहीं सका। हाँ अपनी अल्प बुद्धि से इसको दूषत कर रहे हैं। जिस से संसार में खून ख़राबा होता चला आया है और दुनिया जग का अखाड़ा बन रही है।

हमारे वैदिक धर्म का शुद्ध सांस्कृतिक स्वरूप तो हमारे इस वैदिक सन्देश में भरा पड़ा है कि—

१—यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषुचात्मानं ततो न विचिकित्सति॥

२—यस्य सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूत् विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपशयतः ।।

संसार के सब देशों के सब प्राणधारी मेरे आत्मा में मेरे अनुकूल हा हैं और सर्वत्र एक आत्म तत्व का निवास देखने वाला सब प्रकार के संशयों से मुक्त हो जाता है। सारा विश्व मेरा निजी बन्धु 'वसुधैव कुटुम्बलम्' जिस पुरुष को भगवान की कृपा से यह भान हो गया कि मेरा परिवार एक छोटे से तंग मकान तक ही परिमित नहीं अपितु सारी पृथ्वी के नर नारी नहीं पशु-पक्षी तक मेरे अपने परिवारक जन हैं उस में काले और गोरे का छूत और अछूत का ब्राह्मण और क्षत्रिय का और धनी व कंगाल का फिर भेद भाव कहां ? हम ऐसी उत्तम संस्कृति के कोष भण्डार रखते हुए भी आज दीवालिए बन गए और पतन के धरातल को पहुँच गए। हमारी सांस्कृतिक विचारधारा और हमारे क्रियात्मक चलन में कितना पृथ्वी पाताल का अन्तर है ? अस्तु। आज हमें कौन साम्य-वाद की शिक्षा देने का साहस कर सकता है। हम तो स्वयं साम्य-वादियों के परमगुरु रह चुके हैं।

हमारी Joint Hindu Family System (सम्मिलित हिन्दू प्रणाली) क्या परस्पर सहकारिता और सहयोग Co-operative System की आदर्श प्रतीक न थी। जैसे हिरण की अपनी नाभि में कस्तूरी होती है परन्तु वह उसकी सुगन्धि से सुरभित हो कर उसे पाने के लिए बाहर को दौड़ता है, ठीक हमारी अवस्था भी वैसे ही बन रही है। सहकारिता का मूल-मन्त्र हमने वेद में पढ़ा, जब इस ने गाया—

सहृदयं सांमनस्यम् अविद्वेषं कृणोमि वः
अन्योऽन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्यः

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षण मा स्वसारमुतस्वसा
सम्यञ्चा सव्रता: भूत्वा वाचं वदतं भद्रया ।

वेद ने कहा ! तुम "वन्दे मातरम्" गान करते हो । मातृ भूमि जननी व माता की पूजा करो परन्तु आज "वन्दे मातरम्" गाने वाला युग आ गया है। आज परमेश्वर पिता और पृथ्वी माता के हम सब पुत्र परस्पर भाई बहिन के तुल्य हैं। हमें आज एक दूसरे से ऐसा प्यार करना है जैसे गौ नए उत्पन्न हुए बछड़े को चाट चुम्बन करके स्नेह प्रदर्शन करती है । वेद कहता है—

"अज्येष्ठासोऽकनिष्ठास: सं भ्रातरो वावृधु सौभगाय"

हम सब प्रभु की सन्तान एक दूसरे के भाई हैं। हम में न कोई बड़ा है और न कोई छोटा है। फिर वेद में आया "समानी प्रपा सहवोऽन्नभाग"। हम सब के खाने व पीने का स्थान व भाग एक जैसा हो। हमारे अन्दर आर्थिक समानता की भावनाएँ जागृति हों। हमें वेद का सन्देश मिला "सगच्छध्वम् संवदध्यम्" तुम्हारा गीत और तुम्हारो वाणी एक सरीखी हों। "समानीमंत्र: समिति समानी" तुम्हारा सभा समितियां एक समान हों और उन सब में विचारों की एकता और सामंजस्य हो । इसी प्रकार "समानि व आकूति: समानो हृदयानि व:" तुम्हारे हृदय के संकल्प एक से हों और तुम्हारे हृदयों का मिलन संसार के लिए अनुकरणीय आदर्श हो हमारे वैदिक ऋषि जिन्होंने जीवन के चार लक्ष्यों "धर्म-अर्थ काम और मोक्ष" में से "धन से धर्म" "अर्थस्य मूलम् धर्म:" धर्म को विशेष प्रधानता दी थी, वह अर्थ के विषमता पूर्ण बटवारे को कैसे बरदाशत कर सकते थे वह तो "सर्वेभवन्तुसुखिन:" सब लोगों को सुखी बनाने की प्रार्थना करते थे और "सर्वभूतहितेरता:"

और समस्त मनुष्यों और प्राणियों के हितों की रक्षा में एक रस रत रहने वाले थे। उन्होने ने तो दान शब्द की व्याख्या का तो कहा "दानं सम्विभागः" दान उसे कहते हैं जिस में सब को एक सरीखा धन का भाग प्राप्त हो सके। धन, भूमि आदि सम्पत्ति के बटवारे के इस सिद्धान्त का श्री गांधी जी अथवा विनोबा जी ने नया आविष्कार नहीं किया। यह तो वैदिक धर्म की वर्णव्यवस्था और आश्रम मर्य्यादा के मूल भूत सिद्धान्तों में से एक था। जहाँ गुरुकुल में राजा और रंक के सुपुत्र—सुदामा और कृष्ण दोनों एक सरीखा भोजन और एक सरीखे वस्त्र, एक सरीखा छात्रावास और एक सरीखी शिक्षा प्राप्त करते थे। हमारे शास्त्रकारों ने तो C-operation संगति करण सहयोग के प्रचार को हो 'यज्ञ, का नाम दिया था—और परमेश्वर ने सब प्रजाओं को उत्पन्न कर के यह आदेश दिया कि हे मनुष्यो! मैंने तुम्हें 'यज्ञ के साथ' अर्थात् परस्पर सहयोग की दीक्षा दे कर मानव जन्म दिया है। इस सिद्धान्त का पालन करके तुम संसार में स्मृद्धि और ऐश्वर्य को प्राप्त कर सकते हों। गोता का प्रमाण है।

"सहयज्ञाः प्रजाःसृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः

अनेन प्रसविष्यध्वम् एष वोऽस्तुइष्ट कामधुक्।

गाता में स्पष्ट कहा कि परस्पर सहयोग अथवा यज्ञ से तुम मुंह मांगी मुरादें पा सकते हो और जो आदमी अकेले खाते हैं ऋग्वेद ने उनके बारे में कहा 'केवलाघो भवति हि केवलादो' अकेला खाने वाला पाप खाता है।" गीता में भी इसी भाव को प्रदर्शित किया गया 'भुंजते तु अघं पापा ये पचन्ति तु आत्म कारणात्' निश्चय से केवल अपने लिए ही अन्न पकाने वाले स्वार्थी पाप खाते हैं। इस यज्ञ की महिमा में माता पिता गुरु आचार्य कुल पुरोहित की पूजा 'पितृ यज्ञ' से, सन्यासी महात्मा

विद्वानों का सत्कार 'अतिथि यज्ञ' से और अपने घर के गौ कुत्ते कव्वे तक की सेवा भूत यज्ञ से करने का विधान यज्ञ द्वारा धन के बटवारे का उपदेश करता है। शास्त्र ने लिखा जो लोग धन को बांट कर खाते हैं वह यज्ञमय पुरुष सब पापों और कष्टों से रहित हो जाते हैं हमारे नीति कारों ने भी लिखा—

धर्माय, यशसे कामाय, स्वजनाय पर हिताय च।
पंचधा विभजन वित्तम् इहामुत्र च मोदयत।

जो लोग धर्म, यश-कामना व वंधुवर्ग और परोपकार में धन का सदुपयोग करते हैं वह इस लोक और परलोक दोनों में सुख को पाते हैं। और भी बहस्पती नीति में कहा गया है—

सभा प्रपा देवगृह तड़ागाराम संस्कृति।
तथा अनाथ दरिद्राणाम् संरक्षणं याजन क्रियाः॥
समर्थस्तु पालनीयाः सर्वे, यः समर्थस्तु संवदेत्।
तस्य सर्वस्वहरणं दण्डः निर्वासनं पुरात्॥

धनी पुरुषों का धर्म है कि वह सार्वजनिक हित के लिए सभा भवन, विद्यालय मन्दिर, कूआं तालाब, बाग आदि और अनाथ विधवा आदि पीड़ितों की रक्षा और बड़ी बड़ी राष्ट्र हित की इंजोनीयरिंग की योजनाओं के लिए धन देवें और जो धनी लोग ऐसा आर्थिक सहयोग देने से इन्कार करें राजा उस का समस्त धन छीन लेवे अर्थात जब्त कर लेवे और ऐसे देशद्रोही स्वार्थी को अपने देश से निर्वासित कर देवे। फिर लिखा है कि—

यावद्भ्रियते उदरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
तदूर्ध्वम्योऽभिमन्येत सः स्तेनः दण्डमर्हति॥

जो धनी सावजनिक हितों के लिए अपने धन का प्रयोग

नहीं करता वह समाज का चोर है और राज्य दण्ड का पात्र अपराधी है। प्रत्येक को पेट भरने मात्र, प्राचीन ब्राह्मणों की भान्ति 'कुम्भी-धान्य' आवश्यकता नुसार धन का भण्डार करना चाहिए। वैदिक साम्यवाद और आर्थिक सहयोग की ऐसी शिक्षा देने वाली संस्कृति वाले राष्ट्र को रूस का झूठा और कं किया हुआ विचार खाने की विशेष आवश्यकता नहीं।

४. वैदिक वर्ण व्यवस्था और आश्रम व्यवस्था ही है जो संसार में बेरोज़गारी नहीं होने देती। जिस बेरोज़गारी से सारा संसार इस समय तंग आ रहा है। इस का हल आश्रम व्यवस्था से किया गया है यानि रोज़गार धन्धा करना और कमाना केवल गृहस्थ आश्रम में ही है। अतः दुनियां की १/४ आबादी कमाये और बाकी ३/४ खाये। तब बेरोज़गारी का सवाल ही नहीं पैदा हो सकता है। ब्रह्मचर्याश्रम में विद्या पढ़ें। न कोई विद्यार्थी फ़ीस देवे, न कोई गुरु वेतन लेवे। क्योंकि जो वानप्रस्थो होते थे, वह गुरु का कार्य बिना वेतन के करते थे। विद्यार्थी और गुरु केवल रोटी कपड़ा वह भी सादा और मामूली, लेकर निर्वाह करते थे। जो कि गृहस्थी उन्हें दे दिया करते थे और चौथा आश्रम संन्यास है जो कि विद्यालयों के और दूसरी संस्थाओं के इन्स्पैक्टर के तौर पर होते थे और हर जगह Surprise Virit करके, सब संस्थाओं को नियम पूर्वक चलाने में सहायक बनते थे और यह गुरु भी केवल मामूली रोटी कपड़ा ले कर गुज़ारा करते और दौरा सुपुर्द रहते थे। मनुस्मृति में सन्यासी को तीन रात्रि से अधिक एक जगह ठहरने का विधान नहीं है और फिर उन को अतिथि भी कहते थ। क्यों कि उन के आने की कोई तिथि निश्चित नहीं होती थी, बल्कि अकस्मात ही वह किसी जगह आ सकते थे और सब संस्थाओं की जांच पड़ताल कर सकते थे।

चूंकि हर विद्या के माहर और तजरबाकार हो कर ही संन्यासी बनते थे। इस लिए सब राज्य कार्य और समष्टि गत अथवा व्यक्तिगत, देख भाल उन के ज़िम्मे होती थी, किसी भी दुख का डाक्टर नुस्ख़ा लिखे तो जब तक उसका अनुपात न हो, वह दवाई लाभ नहीं कर सकती. अब दुनिया के अन्दर जो दुख है उसका वेद ने समाजवाद बनाने का नुसखा लिखा और यूरोप के विद्वान भी इसी समाजवाद को संसार के दुखों का सही इलाज समझते हैं। और कार्ल मार्कस ने भी यही समझा और नुसखा लिखा और इसका प्रचार किया। परन्तु इसका अनुपान सिवाये वैदिक ऋषियों के यूरोपियन विद्वानों की समझ में नहीं आया। अतः कार्ल मार्कस ने तो इस नुसखा के अनुपान में यहां तक लिखा दिया कि ख़ून ख़राबा करके राज्य शक्ति को प्राप्त कर राज्य शक्ति के ज़ोर से समाजवाद चलाया जावे। परन्तु इतना बढ़ा ख़ून ख़राबा करने पर भी कार्ल मार्कस का सोशलईज़म अमली तौर पर फ़ेल हो गया। चलाना तो वही पड़ा जो करीबन करीबन वेदानुकूल था। परन्तु सोलह आना सही तौर पर सोशलइज़म चलाने का तरीक़ा महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के तीसरे समुलास में इस तरह लिखा है "कि पांच वर्ष से आठ वर्ष की आयु के सब लड़के और लड़कियां अपनी अपनी पाठशाला में चली जावें। जो पाठशालाएं गांव नगर से करीबन ४ कोस के फासला पर हों। और इसमें सब को एक जैसे कपड़े, खाना, पीना, बिस्तर, आसन दिये जावें। चाहे राजकुमारी या राजकुमार क्यों न हो। चाहे ग़रीब चाहे अमीर की सन्तान हों। सब को तपस्वी होना चाहिये।' यह है सही तरीक़ा जिससे सही सोशलईज़म पनप सकता है। वरना कह देने से कि सब को एक जैसा उन्नति का मौक़ा दिया जावेगा; सोशलईज़म नही बन सकता। शुरू की तालीम से ही इस तरह रहन सहन और विचार बनाए जावें। तब बड़ी आयु में यह परिपक्क हो सकते हैं। अथवा आजकल

के तालीमी सिस्टम में सोशलईज़म नहीं पनप सकेगा । चाहे लाख यतन किया जावे । क्योंकि यतन भी तो वही सफ़ल हो सकता है जो सही तरीके से किया जावे । वरना व्यर्थ ही हो जाता है ।

किसानों और मज़दूरों के मुतल्लिक महर्षि का अपना विचार कार्ल मार्कस या किसी हीगर समाजवादी से बढ़ कर ही है कम नहीं । महर्षि लिखते हैं ।' यह बात ठीक ही है कि राजाओं के राजा किसान आदि परिश्रम करने वाले हैं और राजा इन का रक्षक है । अतः संसार का कल्याण वेद मार्ग के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं कर सकता ।

सोशलईज़म के फ़लसफे को महर्षि ने आर्य समाज के नौवें नियम में बयान करके समुद्र को कूज़े में बन्द कर दिया है कि "प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये" ।

बोलो वैदिक धर्म की जै

९३. इटली का जोजफ़ मेज़नी

१. इटली को गुलामी में नजात दलाने वाला महापुरुष जोज़फ़ मेज़नी बाल ब्रह्मचारी था, बड़ा विद्वान था, उसकी वाणी में जादू था, लैक्चर देता था तो सुनने वाले मोहित हो जाते थे, इसकी तहरीर में बिजली चमकती थी । इसने एक किताब मनुष्य धर्म की व्याख्या में लिखी, जो बिल्कुल वैदिक सिद्धान्तों के अनुकूल थी । ईश्वर विश्वासी, ईश्वर भक्त था, आत्मा को अमर मानता था, पुनर्जन्म मानने वाला था । एक दिन उसके एक भक्त ने पूछा कि आप के मन में कभी काम वासना पैदा हुई या नहीं हुई । तो उसने जवाब दिया कि मेरे पास समय ही नहीं जो ऐसी बात भी सोच सकूं । ईश्वर सर्वव्यापक है, इसलिए उनका वेद ज्ञान भी सर्वव्यापक है । सारे संसार में जहां कोई चाहे वैदिक सिद्धान्तों को उपलब्ध



महर्षि दयानन्द सरस्वती
सच्चे और स्वच्छ वैदिक समाजवाद
का प्रचारक

कर सकता है। इसलिए अगर इटली के महापुरुष मेजनी ने वैदिक सिद्धान्त जाने और माने तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

और

१. इसी तरह महर्षि दयानन्द जी भी बाल ब्रह्मचारी थे, महर्षि की वाणी में भी जादू था, व्याख्यान देते थे तो हज़ारों श्रोतागण मुग्ध हो जाते थे, महर्षि की कलम में भी बिजली चमकती थी, और सत्यार्थ प्रकाश जैसा अमर ग्रन्थ रचकर महर्षि ने थलका मचा दिया, वदिक धर्म के समस्त सिद्धान्तों के पूर्ण विश्वासी और उनके उत्कृष्ट प्रचारक थे।

महर्षि जब बंगाल में प्रचारार्थ पधारे तो ख्यातनामा साधक अश्विनी कुमारदत्त भी उन के प्रचार में आया करते थे। एक दिन एकांत पाकर दत्तमहाशय ने महर्षि से प्रश्न किया—'क्या आप को काम ने कभी नहीं सताया'? महर्षि ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया—'स्मरण नहीं पड़ता'। इस उत्तर को सुनकर दत्तमहोदय ने फिर कहा—क्या आप हाड मांस के बने हुए नहीं हैं।' महर्षि जी ने जो उत्तर दिया वह प्रत्येक ब्रह्मचारी तथा सच्चरित्र मनुष्य के लिए अपने हृदय में धारण करने योग्य है। महर्षि ने कहा—अश्विनी कुमार जी! अवकाश ही नहीं है'। महर्षि ने कितना उत्तम उत्तर दिया बात भी सत्य है कि—युगपत् ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम अर्थात् मन एक समय में एक विचार कर सकता है, अनेक नहीं, महर्षि का सदाचार ऊंचे दर्जे का था, इसकी अनेक घटनायें महर्षि जीवन में मिलती हैं। ब्रह्मचर्य, सदाचार के कारण ही तो महर्षि ने सारे विश्व में वेदों का प्रचार किया। स्वराज्य का नाद बजाया, भारत के सर्व विध-त्राता दयानन्द थे। उन्होंने अपने जीवन में १६ बार विषपान किया। २३ के लगभग ग्रन्थ लिखे, जिनमें सत्यार्थ प्रकाश अनुपम ग्रन्थ है, जिसे पढ़कर कलुषित जीवनों में जागृति

आती है। सत्यार्थ प्रकाश में मनुष्य बनने का पूर्ण विधान है। मनुष्य जीवन का पूरा प्रोग्राम है। यह सब कुछ महर्षि ने किया अपने ब्रह्मचर्य, सुदृढ़ वेदाध्ययन तथा सच्चरिता से—

अपनी चिंता न करें प्रभु प्रेम के दास,
सूई ख़ुद नंगी रहे सब का सिये लिबास।

दोनों महापुरुष अपने लिए नहीं अपितु दूसरों के लिए ही चिन्तन करते रहे।

६४. जापान के महापुरुष ईटो

१.—जापान में भी समुद्र यात्रा करना पाप समझा जाता था, और समुद्र यात्रा करने वाले को प्राण दण्ड दिया जाता था, अनुमान से १५० वर्ष हुए, वहां एक महापुरुष पैदा हुआ, जिसका नाम ईटो था, इस से यह प्रतिबन्ध सहन न हो सका इसने नौजवानों का एक जथा तैयार किया, समुद्र यात्रा को यह जत्था निकल पड़ा और जर्मन देश जो उस समय साईंस का घर था पहुंच गया और वहां से दियासिलाई और कपड़े की दस्तकारी सीख कर वह जत्था वापस जापान आ गया, और देश में इस दस्तकारी को चला दिया। पहले तो इसको भी प्राण दण्ड की सज़ा दी गई। परन्तु उसने अपने प्रचार से और दस्तकारी के ज़रिए देश को लाभ पहुंचाकर राय आमा अपने हक में कर ली, इस तरह खुद भी बच गया और जापान को भी बचा लिया, वही जापान जो चीन से शिकस्त खा गया था, ईटो के इस उपकार से इतना बलवान हो गया कि सन १९०४ में रूस जैसे देश को शिकस्त देकर दुनिया के बड़े देशों की पंक्ति में खड़ा हो गया।

और

इस तरह भारत में भी समुद्र यात्रा को पाप समझा जाता था,

था, अगरचे यहां इसकी सजा प्राण दण्ड तो न थी, परन्तु धार्मिक दृष्टि से प्राश्चित करना पड़ता था, जिसके डर के मारे लोग समुद्र यात्रा न करते थे, और इसी तरह कुएं के मैंडक बनें रहते थे। महर्षि दयानन्द जी महाराज ने जहां देश की उन्नति में बाधक दूसरी सब बातों को अच्छी तरह देखा, उनको दूर करने का यत्न किया वहाँ उन्होंने इस प्रतिबन्ध की बुराइयों को भी अनुभव किया और घोषणा कर दी कि समुद्र यात्रा कदापि पाप नहीं, और ईटो की तरह उन्होंने भी नौजवानों का एक जत्था तैयार करना चाहा, जो जर्मन देश में जाकर दस्तकारी की तालीम प्राप्त करके आवे, और देश के अन्दर कल कारखाने लगा कर देश को लाभ पहुंचावें, अतः उन्होंने इस विषय में जर्मन के प्रिंसिपल डाक्टर वाईज़ से पत्र व्यवहार भी किया था, जिसके जवाब में डाक्टर वाईज़ ने महाराज को लिखा, 'काश मैं आप का पुत्र और शिष्य होता और आप के चरनों में बैठ कर ब्रह्मज्ञान की शिक्षा प्राप्त करता, यदि आप अपना कोई योग्य शिष्य यहां भेजें तो हम उन्हें दस्तकारी की शिक्षा देंगे। और उनसे वह ज्ञान भी प्राप्त करेंगे, जो उन्होंने आप से प्राप्त किया होगा।"

स्वामी जी के अत्यन्त यत्न करने पर भी नौजवान आगे न आए और कोई जत्था जर्मनी न भेजा सका, परन्तु महर्षि के दिल में जो अपने देशोन्नति के विचार थे, वह उन के इन प्रयत्नों से बिल्कुल प्रत्यक्ष हैं। इसके अतिरिक्त महर्षि जी ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के दसवें समुल्लास में अति उत्तम रीति से विदेश यात्रा करने का समर्थन किया है। पूर्व पक्ष में यह प्रश्न रखकर।

"आर्यावर्त देश वासियों का आर्यावर्त देश से भिन्न भिन्न देशों में जाने से आचार भ्रष्ट हो जाता है या नहीं," सके उत्तर में महाराज लिखते हैं। 'यह बात मिथ्या है, क्योंकि जो बाहर भीतर की पवित्रता करनी, सत्य भाषण आदि आचरण करना है वह जहां कहीं करेगा आचार और धर्म भ्रष्ट कभी न होगा, और जो आर्यावर्त

में रह कर भी दुष्टाचार करेगा वही धर्म और आचार भ्रष्ट कहावेगा,'' इसके बाद महाराज उदाहरण देते हैं। "कि एक समय व्यास जी अपने पुत्र शुक और शिष्य सहित पाताल, अर्थात जिसको इस समय अमरीका कहते हैं, उसमें निवास करते थे, और व्यास जी ने अपने पुत्र शुक का एक प्रश्न का उत्तर लेने के लिए अमरीका से भारत मिथला पुरी राजा जनक के पास भेजा था, और शुक अमरीका से हरिवर्ष यानि योरुप और हूण यानि यहूदियों के देश का पार करते हुए, चीन से होते हुइ भारत पहुंचे और श्री कृष्ण और अर्जुन जहाज़ पर चढ़ कर अमरीका से उद्धालक ऋषि को महाराज युधिष्टिर के यज्ञ में लाए थे। धृतराष्ट्र का विवाह गंधार के राजा की पुत्री गधारी से हुआ था, मादरी पाण्डू की स्त्री ईरान के राजा की लड़की थी, और अर्जुन का विवाह अमरीका के राजा की लड़की अलूपी से हुआ था। जो देश देशान्तर, दीप दीपान्तर न जाते होते तो यह बातें क्योंकर हो सकतीं। महाराज युधिष्ठर के राजसूय यज्ञ में सब पृथ्वी के राजाओं को निमन्त्रण देने भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव चारों दिशाओं में गये थे यदि दोष मानते तो कभी न जाते, सब प्रथम आर्य लोग व्यापार राज्य कार्य और भ्रमण के लिए सब भूगोल में घूमते थे, और जो आजकल छूत छात और धर्म भ्रष्ट होने की शका है वह केवल मूर्ख बहकाने और अज्ञान बढ़ाने से है, जो मनुष्य दूसरे देश में जाने में शका नहीं करते, वह हर किसम के लोगों के संसर्ग में आने से अपना राज्य और व्यापार बढ़ाने से निर्भय शूरवीर होने लगते हैं। अच्छे व्यवहार को ग्रहण और बुरी बातों के छेड़ने से बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं। भला जो महा भ्रष्ट मलेच्छ कुल उत्पन्न वेश्या आदि के समागम से आचार भ्रष्ट धर्महीन, नहीं होते। किन्तु देश देशान्तरों के उत्तम पुरुषो के साथ समागम से छूत और दोष मानते हैं। यह केवल मूर्खता की बात नहीं तो और क्या है।'' विदेश यात्रा के लिए महर्षि के कितने खुले

विचार हैं। और देश यात्रा के प्रतिवन्ध को महर्षि मूर्खता की बात बताते थे। और देश के लिए हानिकारक। हरेक बात का महाराज ने बड़े तीव्र शब्दों में खण्डन किया है। फिर अन्त में महर्षि बड़ी अमूल्य बात कहते हैं "कि जब विदेशियों को देखने और स्पर्श करने से मूर्ख जन पाप मानते हैं तो उनसे युद्ध कभी नहीं कर सकते। क्योंकि युद्ध में उनको देखा और स्पर्श करना अवश्य है।

९५. मैक्समूलर ९६. ग्रिपथ ९७. मेकडानलड

यूरोप देश के वेद के भाष्यकारों में मैक्समूलर का दर्जा सबसे बड़ा माना जाता है, और हमारे देश के लोग भी उसको बहुत बड़ा विद्वान मानते हैं। परन्तु मैक्समूलर ग्रिफ्थ मैक्डानल्ड आदि यूरोपियन भाष्यकर देव वाणी, और संस्कृत के भेद को नहीं जानते थे। और उनके सामने जो उस समय साईण आदि के भाष्य थे उनका ही उन्हें आश्रय लेना पड़ा था, इस लिए वह वेद के अर्थ का समझने से एक दम वंचित रहे। और उन्होंने वेद वाणी को आम संस्कृत समझा और उसके साथ ही उसका शब्दार्थ भी करा दिया। जो कि सरासर ग़लत और बेजोड़ साबित हुआ। तभी उन्होंने वेदों के विषय में यह राय स्थिर की कि "वेद गडरियों के गोत हैं" इन विचारों को तो यहां तक भी ज्ञान न था कि वेद वाणी संस्कृत से बिल्कुल भिन्न वाणी है। और उसका अलग व्याकरण है, अलग ही उसका कोष है, और इसी लिए वह वेद के अर्थों में अनर्थ कर गये। जैसे एक नीम हकीम अपने कई मरीजों के मारने में समर्थ हुआ था। जिस की कथा इस प्रकार है।

"एक आदमी ने कहीं यह पढ़ लिया कि मरोड़ की जो बीमारी है इस के लिए अस्पग़ोल बहुत अच्छी दवाई है, अब उसको अस्पग़ोल के अर्थ देखने के लिए कोष का सहारा लेना पड़ा परन्तु उसने दवाईयों के कोष को न देख कर साधारण कोष देखा, उसमें

अस्पगगोल के अर्थ लिखे थे घोड़े के नाख़ुन, "तब उसने घोड़े के नाख़ुन इकट्ठे किये और उनको पीस कर शीशी में बन्द कर लिया, जो कोई मरोड़ का मरीज़ आता, उसको वही दवाई देता तभी बीमार की बीमारी बजाए अच्छी होने के और भी बढ़ जाती' और कई कई विचारे तो जान से भी हाथ धो बैठते' बस यही हालत इन वेद भाष्यकारों की है, कि वेद वाणी को वैदिक कोष और व्याकरण से सिद्ध न कर आम संस्कृत के कोष और व्याकरण से सिद्ध करते रहे जिसमें आप भी अन्धेरे में रहे और दूसरों को भी अन्धेरे में ही रखा। मैक्समूलर आदि ईसाई भाष्यकारों का तो इससे एक अभिप्राय सिद्ध हो गया कि वह वेदों के विषय में अश्रद्धा पैदा करने में सफल हुए जिससे ऐसाई मत के प्रचार को बढ़ावा मिल गया। अतः मैक्स मूलर ने तो अपनी इस भावणा का अपने एक पत्र में स्पष्ट रूप से उल्लेख भी कर दिया था, यह मैक्स मूलर ऋषि के समय में ही हुआ है, और महर्षि जी ने इसके अन्र्थकारी वेद भाष्य के लिए उस को चैलेंज भी दिया था। परन्तु जिस महान ऋषि के सामने भारत के ब्राह्मणों में एक भी न आया, और जो आया भी वह एक मिनट के लिए भी न ठहर सका, तो इनका चैलेंज मैक्स मूलर जैसा विदेशी कैसे स्वीकार करने का साहस कर सकता था, अतः महर्षि इस मैक्स मूलर के विषय में सत्यार्थ प्रकाश के ११वें समुल्लास में लिखते हैं। और मैक्समूलर साहब के सस्कृत साहित्य और थोड़ी सी वेद की व्याख्या देख कर मुझ को विदित होता है कि मोक्षमोलर साहब ने इधर उधर के कार्य वर्तीय लोगों की टीका देख कर कुछ कुछ यथा तथा लिखा है जैसा कि—

(ऋग्वेद १– ६—१) इस मन्त्र का अर्थ थोड़ा किया है। इस से तो सायना चार्य ने सूर्य अर्थ किया है, सो अच्छा है। परन्तु इसका ठीक अर्थ परमात्मा है, सो मेरी बनाई ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका देख लीजिये, उस में इस मन्त्र का यथार्थ अर्थ

किया है। इससे जान लीजिए कि जर्मनी देश और मोक्षमूलर साहब में संस्कृति विद्या का कितना पाण्डित्य है । यह निश्चय है कि जितनी विद्या और मत भूगोल में फैले हैं, वह सब आर्य वर्त देश से ही प्रचारित हुए और मैक्समूलर साहब ने हिरण्यगर्भ का अर्थ सोने का अण्डा किया है और ग्रिफ्थ साहब ने 'अज एक पाद्देवा' का अर्थ—एक पांव वाला बकरा किया है । भला इन भले मानसों से कोई पूछे कि सोने का अण्डा या एक पांव वाला बकरा कभी संसार में किसी ने देखा है । परन्तु इन लोगों को इससे क्या प्रयोजन था । उन्होंने तो वेदों के अर्थ, शब्दार्थ किये हैं इसका भाव कुछ बनता है या नहीं, अक्ल के विरुद्ध है व अनुकूल इस से इनका कोई मतलब न था । इन यूरोपीयन लोगों का वेद का तर्जमा तो ऐसा ही है, जैसा कि एक विद्यार्थी ने परीक्षा के पर्चे में आये हुए निम्नलिखित वाक्यों का अंग्रेजी में तर्जमा किया था । ऐसा ही अनुवाद इन यूरोपीयन लोगों ने वेद का अंग्रजी में किया है । अंग्रेजी में तर्जमा करो—

प्रश्न—१. दो रुपये तो मेरे मारे गये तुम्हारा क्या गया ?
जवाब—Two rupees of mine killed what went of you.

प्रश्न—२. कल मुझ को बुखार चढ़ा ?
जवाब—Machine Vapour ascended me.

अब उपरोक्त दोनों फिकरो के भाषा में लिगे शब्दों का अंग्रेजी में उल्था तो ठीक है, परन्तु भाव कुछ नहीं बनता और एक पागल का प्रलाप ही प्रतीत होता है । ठीक इसी तरह यूरपीयन लोगों का वेद भाष्य पागल का प्रलाप ही सिद्ध होता रहा, एक संस्कृत कवि ने भी कहा है—

यस्य प्रज्ञा नास्ति तस्य शांस्त्रम् किं करिष्यसि,
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणं किं करिष्यासि ।

अर्थात् जिसको प्रज्ञा (Common sence) नहीं वह शास्त्र को क्या समझ सकता है, जैसे अन्धा जिसकी आंख नहीं है, उसको शीशा क्या दिखा सकता है। और जो हमारे देशो भाई ऐसे अनर्थ-कारी भाष्यकारों का आंखें मून्द कर समर्थन कर रहे हैं। उनके विषय में क्या कहा जावे। यह आप स्वयं विचार लें !

६८. अफ़लातून

राजा हरिश्चन्द्र प्रकरण में देखो।

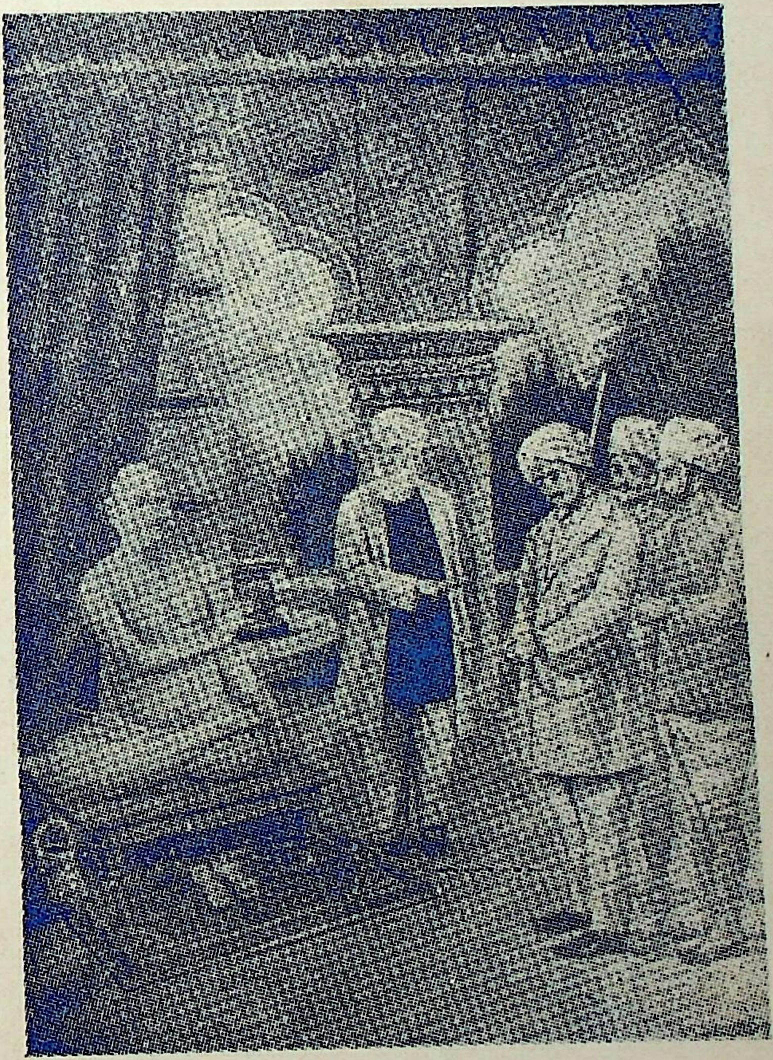
६९. लार्ड विलिंगडन

महर्षि धनमन्त्री प्रकरण में देखो।

१००. शोपन हार १०१. लार्ड बायरन

नारी अधिकार रक्षक प्रकरण में देखो।

विदेश काण्ड समाप्त।



मैं दुनियां को कैद कराने नहीं आया,
कैद से छुड़ाने आया हूँ ।

११. विशेष गुण कीर्तन काण्ड

१०२. पूर्ण पुरुष का वास्तविक स्वरूप

१—अनूप शहर निवास के समय एक ब्राह्मण ने स्वामी जी के मूर्ति पूजा के खण्डन से रुष्ट होकर पान में विष दे दिया था। परन्तु महाराज ने न्योली कर्म करके इस विष को अपने शरीर से निकाल दिया था। और स्वस्थ्य हो गये थे। अनूप शहर का मुसलमान तहसीलदार सैयद मुहम्मद स्वामी जी का बड़ा भक्त बन गया था, जब सैयदमुहमद को इस घटना का पता लगा तो वह उस ब्राह्मण को पकड़ कर स्वामी जी के पास ले आया, और मन में विचारने लगा कि स्वामी जी अपने कातल को पकड़ कर लाने के सबब मुझ पर प्रसन्न होंगे। परन्तु जब वह उनके सामने आया तो महर्षि जी ने इस से बोलना बन्द कर दिया। जब सैयद मुहम्मद ने इस अप्रसन्नता का कारण पूछा तो महाराज ने कहा—

"मैं दुनियां को कैद कराने नहीं आया बल्कि कैद से छुड़ाने आया हूं।"

अगर दुष्ट अपनी दुष्टता को नहीं छोड़ता तो मैं संन्यासी होकर अपनी श्रेष्ठता को क्यों छोड़ूं।

२. महर्षि ने सिर्फ दुनियावी कैद से अपितु दिमागी गुलामी से भी संसार को छुड़ाने आये थे। उन्होंने कभी यह न कहा था, कि कि मेरी कोई नया मत चलाने की इच्छा है। बल्कि हर समय वह यही कहते और लिखते रहे कि ब्रह्मा से लेकर जैमनी ऋषि पर्यन्त जो वैदिक ऋषियों का मन्तव्य है वही मेरा भी है।

३. जब आर्य समाज बम्बई की स्थापना हुई तब सब समासदों ने स्वामी जी से प्रार्थना की कि आप इस समाज के सभापति अथवा अधिनायक बन जावें। तो स्वामी जी ने इस बात को स्वीकार न किया। परन्तु सभासदों के आग्रह करने पर अन्य सभासदों की भांति समाज के सभा सद बन गये, और नियमानुसार चन्दा देते रहे, इस पर किसी कवि ने कहा है—"सभासद बना ख़ुद समाजें बना कर।'

४. जब आर्य समाज लाहौर की स्थापना हो गई तो एक दिन शारदा प्रसाद भट्टाचार्य ने अन्य सभासदों की अनुपति से आर्य समाज के अधिवेशन में यह प्रस्ताव किया कि महाराज को आर्य समाज लाहौर के संक्षरक वा अधिनायक की पदवी दी जावे। सर्व सम्पति से यह प्रस्ताव पास हो गया। परन्तु जब महाराज के सामने यह प्रस्ताव रखा गया, तो उन्होंने अस्वीकार कर दिया और कहा कि इससे गुरुडम का बू आती है। और मेरा जीवन उद्देश्य गुरुडम के दुर्ग को मिसमार करने का है। न कि स्वयं गुरु बनने या कोई नया पन्थ स्थापति करने का। यदि कल को इस पदवी से मेरा ही मस्तिष्क फिर जावे अथवा ऐसा न भी हो और मेरा चेला घुमण्ड में आकर कोई अन्यथा कार्य करने लगे। तब आप लोगों को बड़ी कठिनता होगी, और वही दोष उत्पन्न हो जाएंगे जो दूसरे नवीन पन्थों में हो गये हैं।

५—इसके बाद फिर लाहौर के सभासदों ने सर्व सम्मति से यह पास किया कि महाराज को आर्य समाज लाहौर के परम सहायक की पदवी दी जावे। इसे भी महाराज ने अस्वीकार कर दिया, और कहा कि यदि मुझे परम सहायक मानोगे तो उस जगदीश्वर जगद् गुरु सर्व शक्तिमान को क्या मानोगे। अन्त में सब सभासदों के आग्रह पर महाराज लाहोर आर्य समाज के साधारण सभासद् बन

गये। और अपना नाम सभासदों की सूची में दूसरों की भान्ति लिखवा दिया।

५. एक दिन महाराज आर्य समाज लाहौर के सत्संग में जब पधारे तो उस समय ईश्वर उपासना हो रही थी, महाराज को आता देखकर सब सभा सद सम्मान प्रदर्शनार्थ खड़े हो गये। उपासना की समाप्ति पर महाराज ने उपदेश दिया कि उपासना काल में उपासक ईश्वर के सत्संग के मग्न होता है। ऐसे समय में कोई कितना भी बड़ा मनुष्य आवे, उपासकों को खड़ा न होना चाहिए। क्योंकि परमेश्वर से बड़ा कोई नहीं है। अतः ऐसा करने से उपासना धर्म का निरादर होता है।

७. संसार में कितने लोगों ने अपने को ईश्वर का सन्देश हर (पैगम्बर) कह कर अपने नाम से पन्थ चलाए और आज उन के लाखों करोडों अनुयाई हैं। कितनों ने गुरु बन कर चेलों चेलियों की बुद्धि को आंखों पर पट्टी बाँधी। उन का तन मन धन हड़प कर लिया। किसी ने अपने आपको ईश्वर का इकलोता बेटा घोषित किया। और कई कई स्वयं ईश्वर बन बैठे और लाखों लोगों को अज्ञान के घोर अन्धकार में धकेल दिया।

एक ओर यह लोग हैं और एक ओर ऋषि दयानन्द है, जो उस को गुरु बनाना चाहता है, वह इन्कार कर देता है। हम देखते हैं कि योग की साधारण क्रियाओं के द्वारा कई लोग गुरु बन बैठे हैं और शिष्य मण्डली के हृदय और मस्तिष्क के स्वामी बने हुए हैं। परन्तु एक दयानन्द है जो पूर्ण योगी पूर्ण विद्वान होता हुआ भी गुरु बनने से भागता है। निरभिमान की पराकाष्ठा है, यह है दयानन्द का वास्तविक स्वरूप। दयानन्द जो कुछ था वह औरों के लिए था। अपने लिए कुछ नहीं। दयानन्द न सिर्फ जिस्मानी गुलामी से दुनियां को आजाद कराने आया था बल्कि दिमागी

गलामो से भो संसार को आज़ाद कराने आया था। दिमागी गुलामी सब से बुरी चीज़ है, दिमागी तौर पर ग़ुलाम मनुष्य और जातियां अपने लिए स्वतन्त्रता से कुछ सोच नहीं सकते। उनके हांकने वाला जिस तर्फ उन को ले जाना चाहे, भेड़ों की तरह दिमाग़ी गुलाम लोग उसी तर्फ़ चल पड़ते हैं जैसे किसी ने कहा भी है—

गुर गूंगे गुर बावरे गुर के रहिये दास।
जे गुर भेजे नर्क में तो स्वर्ग न रखिये आस॥

८. किसी पुरुष का वास्तविक स्वरूप वह अच्छी तरह बियान कर सकता है, जो कुछ समय तक उस पुरुष के पास आठों पहर रहता रहा हो। एक ही जगह भोजन करता रहा हो और एक ही जगह रात को सोता रहा हो। महर्षि का वास्तविक स्वरूप नीचे लिखे एक पत्र से जो बाबू मनमथ नाथ चौधरी B. A. एक बंगाली महाशय ने देवेन्द्र बाबू जी को लिखा था अच्छी तरह देखा जा सकता है बाबू मनमथनाथ चौधरी B. A. एक बंगाली युवक स्वामी जी के उपदेश, उन के चरित्र उनकी विद्वता पर इतने मुग्ध हुए कि कलकत्ते से प्रायः उन के साथ ही रहने और उन के पास ही सोने लगे थे, वह कलकत्ता से हुगली भी स्वामी जी के साथ आए थे। उन का वह पत्र जिस में उन्होंने महर्षि के जीवन का आंखों देखा हाल लिखा है। निम्न प्रकार है।

"मैं वर्धमान से स्वामी जी से विदा हो कर कलकत्ता चला गया, मुझे कुछ काम था और स्वामी जी विहार चले गये, वर्धमान से अलग होकर मैं जोधपुर में महाराजा के स्कूल का हैड मास्टर हो कर चला गया। फिर मैं स्वामी जी के सहवास का आनन्द लाभ न कर सका। स्वामी जी मुझे अन्तिम दिनों तक

प्रेम करते रहे. जैसा मुझे बहुत से मनुष्यों से ज्ञात हुआ। अब मुझे गहरा शोक है कि मैंने नौकरी करनी क्यों स्वीकार कर ली, मैं स्वामी जी के साथ सन् १८७३ में रहा था और अब सन् १९०० है। इन २७ वर्षों में मैं भारत वर्ष में बहुत कुछ घूमा हूं। परन्तु मुझे एक भी पुरुष ऐसा नहीं मिला जो स्वामी जी से लगा खाता हो। मेरा जीवन दूसरे ही प्रकार का होता, यदि मैं उनके साथ रह जाता। क्योंकि मैं उन के साथ रहा हूं, सोया हूँ, इस लिए मैं आप को कुछ ऐसी बातें बता सकता हूँ। जो कोई दूसरा मनुष्य नहीं बता सकता। वह पक्के निरामिश भोजी थे। उन की दाल भाजो में विलक्षण प्रकार के मसाले पड़ते थे और उनका विलक्षण स्वाद होता था अपने पश्चात् के जीवन में मैंने कभो कोई वस्तु उस जैसी नहीं खाई। वह फूस पर सोते थे, मैं भी उनके पास हो सोता था। वह नियम से प्रतिदिन प्रातःकाल बहुत देर तक योगाभ्यास किया करते थे और इस समय भी मुझे अपने पास रहने की आज्ञा दे दिया करते थे। मैंने बनारस में बहुतों को योगाभ्यास करते देखा है, परन्तु उन के समान किसी को नहीं देखा। उनकी दिनचर्या इस प्रकार थी। वह तीन बजे के लग भग उठा करते थे और प्रातःकाल तक योगाभ्यास करत रहते थे। फिर वह शौच आदि से निवृत्त हो कर स्नान करते थे और शरीर पर भस्म लगाते थे। ९ बजे वह दर्शकों से मिलते थे और १२ बजे तक उन से बात चीत करते थे। फिर वह भोजन करते, मुझे आश्चर्य है कि उन्हें गले का कैंसर रोग क्यों नहीं हुआ। मैंने और किसी मनुष्य को नहीं देखा, जो प्रति दिन इतने घण्टे महीनों और वर्षों संस्कृत में बोलता और वाद विवाद करता रहे। मुझे विश्वास है कि उन का जन्म किसो विशेष उद्देश्य के लिए हुआ था। वह इतना बोलते थे कि प्रतिदिन उन का गला बठ जाता था। परन्तु अगले दिन फिर उसी कार्य में सलग्न हो जाते थे, रात्रि को वह

सूक्ष्म आहार करते थे और कई बार कुछ भी नहीं खाते थे और सब भोजन हम लोगों को खाने के लिए बाँट देते थे। अब मैं वह वर्णन करता हूं जो अनुभव मुझे उन का हुआ था, यदि कोई मनुष्य पूर्णतया स्वतन्त्र चरित्र लेकर उत्पन्न हुआ हो? तो वह स्वामी जी थे। यदि किसी मनुष्य ने साम्यवाद को चरितार्थ किया हो तो वह स्वामी जी थे, वह यह जानते ही न थे, कि ऊँच नीच का भेद भाव क्या होता है। मैंने उनके पास राजाओं और महा-राजाओं को बहुधा आते देखा है, जो यह आशा रखते थे कि उन का विशेष प्रकार से स्वागत किया जायेगा। परन्तु स्वामी जी उनके प्रति लेशमात्र भी विशेष सम्मान प्रकट न करते थे। हम बहुत बार निस्वार्थी पुरुषों और देश भक्तों का वर्णन सुनते हैं, परन्तु मेरे ज्ञान में तो यही एक निस्वार्थी पुरुष और देश भक्त थे। यदि मुझे उन के निरन्तर सहवास का सौभाग्य प्राप्त न हुआ होता, तो मुझे यह भी ज्ञान न होता कि साम्यवाद क्या होता है, मुझे कभी ज्ञात न होता कि चरित्र बल क्या होता है। यह भारत वर्ष का दुर्भाग्य है कि उनकी मृत्यु समय से पहले हुई है। उन का स्थान लेने वाला कोई नहीं है, ऐसा विद्वान, ऐसा भक्त, निस्वार्थी कोई नहीं है, कट्टर पण्डित गण ने चिढ़ाने के लिए उनका नाम नास्तिक रख छोड़ा था। परन्तु यदि वह नास्तिक थे तो मैं नहीं जानता कि आस्तिक कौन हो सकता है, मैं स्वामी जी की स्मृति से अत्यन्त प्रेम करता हूं। मुझे सदा यह पश्चाताप रहा है कि मैंने नौकरी के लिए उनका सहवास त्याग दिया। मैं आप को धन्यवाद देता हूं कि आप उन का जीवन चरित्र लिख रहे हैं, मैं उनको स्मृति की पूजा करता हूं।"

महर्षि के प्रचार काल के समय छपने वाले अखबारों ने जो कुछ उनके विषय में लिखा था, इससे उनके वास्तविक स्वरूप

पर बड़ा प्रकाश पड़ता है। अतः कुछ संक्षिप्त उदाहरण निम्न-लिखित हैं।

कलकत्ता से छपने वाली ब्रह्म पत्रिका में लिखा है—"प्रसिद्ध पंडित दयानन्द सरस्वती कलकता आये हैं. हिन्दू शास्त्र में उनका निश्चित अधिकार है, वह मूर्ति पूजक नहीं हैं, और अद्वैतवादी भी नहीं है, वह जीवात्मा और परमात्मा का भेद स्वीकार करते हैं, और एक निराकार ईश्वर की उपासना करते हैं। उनके मत में वेद का मन्त्र भाग निर्भ्रान्ति ईश्वरीय ज्ञान हैं। विधवा विवाह के सम्बन्ध में उनकी सम्पति युक्ति संगत है। बाल विवाह के वह नितान्त विरोधी हैं, वह यह सिद्ध करते हैं कि कन्या के लिए १८ वर्ष की आयु और पुरुष के लिए ३० वर्ष को आयु विवाह के लिए शास्त्रोत है। वह जाति पाति का भेद स्वीकार नहीं करते। गुण कर्म के अनुसार वर्ण भेद की वयवस्था स्वीकार करते हैं। वह बड़े विद्वान, शिष्टाचारी, सदाचारी, और सरल हैं, परन्तु मूर्ति पूजा के बड़े विरोधी हैं, संस्कृत भाषा उनकी मातृ भाषा हो गई है। वह बिल्कुल अनायास ही श्रुति मधुर संस्कृत भाषा में वार्तालाप करते हैं। और उनके साथ बात चोत करने से सभी प्रसन्न होकर आते हैं।"

१०—कलकत्ता से निकलने वाली पत्रिका धर्म तत्व में दयानन्द सरस्वतो शीर्षक देकर लिखा है, "यह एक दिग्गज पंडित हैं, यह हिन्दु शास्त्र विशारद हैं, संस्कृत भाषा इनके अधीन हो गई है, विशेष कर उनकी संस्कृत भाषा इतनी श्रुति मधुर और सरल है कि संस्कृत न जानने वाले भी उनके कथन को बहुत कुछ समझ लेते हैं, सरस्वती की बुद्धि बड़ी परिष्कृत और तीक्षण है, उनकी क्षमता असाधारण है, इनमें लोगों के आकर्षण करने की विलक्षण शक्ति है, वह बड़े मीठा बोलने वाले हैं। एक ईश्वर को उपासना का प्रचार, मूर्ति पूजा का विनाश, उनके जीवन का प्रधान लक्ष है। पश्चिम की रोशनी

से अलौकिक न होने पर भी वह जिस विशुद्ध रूप से उदारता के साथ सारे विषयों को प्रकट करते हैं। इसे देखकर अवाक्य होना पड़ता है, आश्चर्य की बात यह है कि जिस विषय पर भी व्याख्यान देते हैं उसको ऐसा खोल कर वर्णन करते हैं कि वह सब कि समझ में ठीक बैठ जाते हैं, यह वर्ण—गुण कर्म स्वभाव से मानते हैं, जन्म से नहीं, वह विधवा विवाह के पक्षपाती हैं, और छोटी आयु के विवाह की घोर निन्दा करते हैं, यही नहीं कि सरस्वती जी व्याख्यान ही देते हैं, बल्कि वह प्रातः काल और सायंकाल दोनों संधियों में ५—६ घण्टे ईश्वर के ध्यान और उपासना में लगाते हैं। इन में अन्तदृष्टि विशेष भाव से दीखती है, इन्द्रिय निग्रह और आत्म संयम इन को सिद्ध है। इनको देखने ने वीरत्व, महत्व, गंभीरत्व, उच्च आशा के लक्षण स्पष्ट प्रतीत होते हैं। यह अपना जीवन प्रतिदिन, उपासना अध्ययन, व्यायाम और धर्मालय में बिताते हैं। जो कुछ कहते हैं, वह सब कुछ उनके जीवन में उपस्थित है।"

११—इन्दू प्रकाश पत्र नामक में महर्षि के उपदेश की बाबत लिखा है, "वह इतने निर्भीक थे, कि नदी के तट पर विचार विमूढ ब्राह्मणों के वृहद् समह के सामने प्रोहित दल की बुराइयों और इन लोगों के अविद्या जन दोषों को निर्भीकता और अटल भाव से स्पष्ट अक्षरों में वर्णन करने के कारण उसी स्थान के लोग पंडित दयानन्द से इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने पंडित दयानन्द का साधुवाद किया। और बहू मूल्य वस्त्र उपहार में दिये।

१२—११ मार्च सन् १८७५ के अहमदाबाद से निकलने वाले पत्र हितेच्छू में लिखा था "निसन्देह स्वामी दयानन्द असाधारण व्यक्ति हैं, इनकी प्रतिभा और योग्यता दुर्लभ है। यदि वह अन्य सम्प्रदाय वादी गुरुओं के सदृश धन के कारण कार्य करने वाले होते तो इन्हें हजारों शिष्य प्राप्त हो जाते। और एक नया सम्प्रदाय

स्थापित करके धन की बहुत बड़ी राशि इकट्ठी कर लेते, परन्तु ऐसे नीच भाव उनकी प्रकृति के प्रतिकूल हैं, इनका एक मात्र उद्देश्य भारत सुधार ही है, इनकी प्रबल इच्छा है कि वह स्मृद्धि और सभ्यता में अपने देश को फिर एक बार सारे संसार के सिर स्थान पर देखें।"

१३—गुजरात (पंजाब) में पहले ही व्याख्यान में स्वामी जी ने कहा कि जब कोई श्रोता किसी का व्याख्यान सुने तब उस पर खूब मनन करे, और देखे कि इसमें कितना सत्य है और कितना असत्य है, फिर असत्य के त्यागने और सत्य के ग्रहण करने में तत्पर रहना चाहिये। मैं आपको विश्वास दिलाता हुं, कि मैं यह नहीं चाहता, कि जो कुछ मैं आप से कहूं आप उस पर आँखें मीच कर चलें। यदि वह आप को सत्य जान पड़े तो उस पर चलें, य द असत्य जान पड़े तो उस पर कोई ध्यान न दें। यह अन्ध विश्वास ही हमारे विनाश का मूल है, संस्कृत पुस्तकों में ज्ञान का बहुत बड़ा कोष है, इन्हें पढ़ो और देखो, इनमें क्या है. ऐसा मत कहो कि कोई बात केवल इसलिए मानने का त्यागने योग्य है कि दयानन्द सरस्वती ऐसा कहता है।

१४—कानपुर में एक दिन प्रातःकाल महर्षि लेटे हुए थे, लाला मोहनलाल सभापति गौ रक्षणी सभा पैर दबा रहे थे, लाला मोहन लाल ने अत्यन्त नम्र भाव से महाराज से कहा कि महाराज़ जो कुछ मैंने शास्त्रों में दखा और सुना है उससे ज्ञात होता है कि आप मोक्ष के पूर्ण अधिकारी हैं, क्या आप को इस शरार में मोक्ष पाने की इच्छा नहीं है? महाराज ने इसके उत्तर में कहा मैं अकेला मोक्ष पा कर क्या करूंगा। मेरी तो इच्छा है कि बहुत से मनुष्यां को म क्ष मिले।

१५--कहते हैं कि एक बार ऋषि भक्तों ने इच्छा प्रकट को

कि ऋषि के निर्वाण पद प्राप्त करने पर उनकी समाधि बनवाई जाए ऋषि जानते थे समाधि के बन जाने पर भक्त लोग समाधि की पूजा में रत हो सकते हैं और इस प्रकार जिस गुरडम और कबरप्रस्ती आदि का खंडन करके ऋषि ने उन्हों स्वतन्त्र विचार का मार्ग दिखाया था उस सारे जीवन कार्य का विध्वंस हो कर लोग फिर से उसी अंधरे कूप में गिर पड़ेंगे, इसलिए उसी समय उन्हें इस घृणित कार्य से रोकते हुए कहा—

जलाना मुझ को, मगर न मेरो
समाध हरिगज़ वहां बनाना ।
यह बट्टा हरिगज़ मेरे नाम पर
ए-आर्यो न तुम लगाना ॥
वह ताकि बेफ़ायदा न जाये
किसी मसरफ़ के काम आए ।
जो ख़ाक हो मेरी हड्डियों की
वह जाके खेतों में डाल आना ॥

धन्य हो निरभिमानता के अवतार, तुम धन्य हो, तुम्हें नतमस्तक होकर कोटिशः प्रणाम करता हुं । आर्यो, ऋषिराज अपने शरीर को भस्म तक न पुजवा कर लोकपकार थे लिये उसे खेतों में डलवा देना चाहते हैं । वह गुरुडम के सख्त विरुद्ध थे ।

१६—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें ।

आर्य समाज के इस दसवें नियम में स्वतन्त्रता और परतन्त्रता की मीमांनसा बड़ी उत्तम रीति से कर दो गई है और आर्य समाज

के सभासद पूरी स्वतन्त्रता से काम कर ते रहे हैं, पंजाब में एक ऐसा भी समय आया कि डा: गोकल चन्द नारंग हिन्दू सभा के डा: सत्य पाल कांगरिस के सर छोटू राम ज़मीदार पारटी के प्रधान रहे और यह तीनों महानुभाव पक्के समाजी भी थे परन्तु जिस पोलटीकल पारटी में उन्हें काम करना देश के हित में ठीक प्रतीत हुआ. पूरी ज़िमेदारों से काम करते रहे, ऐसी विचार स्वतन्त्रता संसार के इतिहास में आप कहीं भी देख न पाए गे, इसीलिए तो महाराज ने कहा था, मैं दुनियां को कैद कराने नहीं आया परन्तु कैद से छुड़ाने आया हूं, और यही महाराज का वास्तविक स्वरूप हैं।

१०३. पूर्ण विद्वान

१. महर्षि दयानन्द जी ने भ्रान्ति निवारण पुस्तक में लिखा है कि "मैं अपने निश्चय और परीक्षा के अनुसार ऋग्वद से लेकर पूर्व मीमांसा परन्तु अनुमान से ३ हज़ार ग्रन्थों के लगभग मानता हूं" अब आप स्वयं ही विचार करें, कि जिस महाराज ने ३ हज़ार ग्रन्थ प्रमाणिक चुने हों। उसने कितने हज़ार ग्रन्थ पढ़ होंगे, ऐसा अनुमान सहज में हो किया जा सकता है । सस्कृत के तो वह पूण विद्वान थे ही, अतः वह ६—७ वर्ष जब गगा के किनारे विचरते रहे और जितने व्याख्यान दिये, बड़ बड़े शास्त्रार्थ किये, वार्तालाप और बात चीत की, सब संस्कृत में ही करते रहे। उनको संस्कृत वाणी पर इतना प्रभुत्व था कि घन्टों बालते रहते और व्याख्यान देते थे, और ऐसी आसान संस्कृत में कि जो संस्कृत से अनभिज्ञ मनुष्यों की भो समझ में आ जाया करतो थी। इससे अधिक किसी भाषा पर और क्या प्रभुत्व हो सकता है । और फिर जो तीन हज़ार ग्रन्थ वह प्रमाणिक मानते थे, इसमें साइंस, फ़िलासफ़ी,

हिस्ट्री, जुगराफिया, आयुर्वेद, ज्योतिष, व्याकरण, अध्यात्मक अधिदैविक, अधिभौतिक, याज्ञिक, कानून, आदि विद्याओं का समावेश हो है, इसलिए वह इन सब विधाओं के भी पूर्ण विद्वान थे।

२. आजकल जो मनुष्य १६ वर्ष पढ़ता है उसको M. A. M. S. S. यानि मास्टर की डिगरी मिल जाती हैं। और इस पर भी यदि कोई मनुष्य किसी एक मज़बून पर एक छोटी सी पुस्तक या लेख जिसको thesis कहते हैं लिख देवे तो उसको डाक्टर की डिगरी मिल जाती है। परन्तु क्या आप को ज्ञात है कि महर्षि ने कितनी देर विद्या पढ़ी, और किस अवस्था में पढ़ी, याद रखिये दुनियां की सारी यूनिवर्सिटियों में एक दो प्रतिशत विद्यार्थी ऐसे निकलेंगे जो मास्टर की डिगरी लेने तक पूर्ण रूप से ब्रह्मचारी रह सके हों। पूर्ण रूप से ब्रह्मचारी रहने का अर्थ है कि किसी भी अवस्था में स्त्रि का दर्शन, चिन्तन सम्भाषण आदि न कर पाये। परन्तु महर्षि जी पूर्ण ब्रह्मचारी थे, उनको ब्रह्मचर्य की रक्षा करने के लिए भरपूर यत्न भी करने पड़े, और सारे संसार की यूनिवर्सिटियों में चाहे कोई पूर्ण ब्रह्मचारी तो निकल भी आये। परन्तु पूर्ण योगी एक भी दृष्टि गोचर न होगा। महर्षि न केवल पूर्ण ब्रह्मचारी ही थे, परन्तु पूर्ण योगी भी थे।

और

३. एक पूर्ण योगी और ब्रह्मचारी जो पूरे ३६ वर्ष ४ वर्ष की आयु से लेकर ४० वर्ष की आयु तक विद्या ग्रहण करता रहा हो और वह भी योगियों और ब्रह्मचारियों से। यदि वह पूर्ण विद्वान न हो तो कौन होगा। आप सब भाई यह तो जानते ही हैं, कि विद्यार्थी के लिए ध्यान की एकाग्रता अत्यन्त आवश्यक साधन है, और यह भी कि ध्यान की एकाग्रता योग की पहली सीढ़ी ही है। वह योगी जो ७२

घण्टे लगातार बग़ैर कुछ खाये पिये, हिले जुले अपने मन को एक स्थान पर स्थिर कर सकता है । इससे बढ़ कर कोन ध्यान की एकाग्रता को प्राप्त हो सकता है। इस लिए महर्षि किसी पुस्तक को एक बार पढ़ कर ही याद कर लेते थे। एक मज़मून का छोटा सा·Thesis लिख कर डाक्टर की डिगरी लेकर बड़ा समझने वाले भला इस का क्या कहेंगे। जिसने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका और सत्यार्थ प्रकाश जैसे कितने ही प्रमाणिक ग्रन्थों की रचना कर डाली हो, जिन में सभी विद्याओं का समावेश हो।

४. इस प्रकार इन साधनों से प्राप्त की हुई विद्या में पूर्ण हो कर ही तो महाराज ने सारे संसार के हर किसम के विद्वानों को चेलेंज किया। परन्तु उन के सारे प्रचार के समय में कोई भी किसी भो विद्या का विद्वान उन के चैलेंज को स्वीकार न कर सका और जिस ने स्वीकार किया उसने मुंह की खाई, पुराना, किरानी, कुरानी, बौद्ध, जैनी, नवीन वदान्ती, साइंसदान, फ़िलासफ़र, ताराखदान कोई भो उनके सामने ठहर न सका। चक्रवर्ती बाबू ने जो कलकत्ता से कानपुर उन के पास उपनिशद् पढ़ने आये। कुछ दिन महर्षि के साथ एक जगह रहे। एक दिन हैरान हो कर महाराज से कहा—महाराज जी यह विचित्र तमाशा है जो आपके सन्मुख आता है। दो चार मिनट से अधिक आप से बात चीत हो नहीं कर सकता, और चुप साध कर बंठ जाता है पूर्ण विद्वान थं तभी तो दुनिया के दो अरब मनुष्यों के सामने अकेले डट कर खड़े हुए और किसो को हिम्मत न हुई कि इस सिंह के सामने दम भी मार सके।

५. रूढ़की में इस प्रकार मौलवी साहब ने शास्त्रार्थ करना किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं किया। जिन दिनों मौलवो साहब से शास्त्रार्थ की छेड़-छाड़ हो रही थी उन्हीं दिनों एक पण्डित

जी आये जिनके संस्कृत के विद्वान होने की बड़ी ख्याति थी। वह महाराज से मिलने गये तो महाराज ने उन्हें सत्कार पूर्वक बिठाया। पण्डित जी ने एक व्याकरण का ग्रंथ बनाया था जिसे वह अपने विचार में अपूर्व समझते थे। उन्होंने वह ग्रंथ महाराज को दिखाया, महाराज ने ५. ७ मिनट देखकर वापस कर दिया और कहा कि आप का संस्कृत का ज्ञान अच्छा है। पण्डित जी उन दिनों बेकार थे, महाराज ने उन्हें पास रखना भी चाहा परन्तु वह राज़ी न हुए। महाराज ने कहा कि यदि आप अपना समय किसी आर्ष ग्रन्थ के अनुवाद में लगाते तो अच्छा हाता। पंडित जी बोले, तो मेरा ग्रंथ किसी अर्थ का नहीं? महाराज ने कहा, जैसा है वैसा ही है। पण्डित जो ने कहा कि मेरे व्याकरण में सब नियम आ गये हैं। पण्डित जी के हठ करने पर महाराज ने कहा कि आप अपने ग्रन्थ का कोई नियम निकालिये। उन्होंने एक नियम निकाला तो महाराज ने १७, १८ वेद मन्त्र पढ़ कर कहा आप अपने नियम को इन मन्त्रों पर घटाइये। परन्तु वह न घटा तो पण्डित जी ने कहा कि वेद का व्याकरण अलग हो सकता है, इस पर महाराज ने कहा कि इससे क्या लाभ कि वेद के लिए एक ग्रन्थ पढ़ा जाय और लौकिक संस्कृत के लिए दूसरा फिर महाराज ने ३२, ३३ लाकिक सस्कृत के श्लोक पढ़े। उन पर भो पण्सित जी का नियम न घटा। इस पर पण्डित जी चकित हुए और महाराज के पग पकड़ लिये और कहा कि आप समुद्र हे। मैंने यह ग्रंथ काशो के पण्डितों को भी दिखाया था, सबने इसकी प्रशंसा की। फिर महाराज ने पाणिनीय का एस सूत्र पढ़ कर सब पर घटा दिया और पण्डित जी को मन्त्रणा दो कि आप आर्ष-ग्रन्थों को टीका और व्याख्या लिखने का यत्न करें जिस से संस्कृत विद्या की उन्नति हो। पण्डित जो का गर्व चूर्ण हो गया

और निष्प्रभ परन्तु अधिक बुद्धिमान् हो कर विदा हो गए।

हरिद्वार के प्रसिद्ध सतुआ स्वामी से भी लोगों ने कहा था कि स्वामी दयानन्द से शास्त्रार्थ कीजिये। पहले तो उन्होंने हाँ कर ली, परन्तु फिर कहा कि मैं स्वामी दयानन्द का मुख नहीं देख सकता। लोगों ने यह बात महाराज से कही तो उन्होंने कहा कि बीच में पर्दा डाल कर शास्त्रार्थ हो सकता है, परन्तु सतुआ स्वामी इस पर भी उद्यत न हुए।

१०४. पूर्ण योगी

१. राज योग—महर्षि पतंजलि योग दर्शन की समाधि याद के दूसरे श्लोक में योग का लक्षण करते हुए लिखते है—"योगश्चित वत्ति निरोध" अर्थात चित की वृत्तियों का निरोध ही योग है, और वृत्तियों की पाँच प्रकार की गणना की है। १. प्रमाण २, विपर्य ३. विकल्प, ४. निद्रा, ५. स्मृति। प्रमान तीन माने हैं—१. प्रत्यक्ष २. अनुमान. ३. आगभ.। मिथ्या ज्ञान का नाम विपर्यप है, नेस्ति स हस्ती मानना विकल्प कहलाता है। ज्ञान के अभाव को निद्रा कहा गया है, स्मृति यानि वृत्तयों की यादाशात। इनकी दो किसमें वर्णन की गई हैं। एक क्लिष्ट और दूसरी अक्लिष्ट। फिर योग दर्शन के समाधि पाद के २४ श्लोक में ईव्वर की स्तुति करते हुए लिखा है। जो क्लेश कर्म—विपाक, आशय के सम्बन्ध से रहित हो वह पुरुष विशेष ईश्वर है। क्लेश पाँच हैं—अविदया, अस्मिता, राम, द्वेष, अभिनिवेश कर्म चार प्रकार के है—पुण्य-पाप, पुण्य और पाप मिश्रत और पुण्य पाप से रहित। और कर्मों के फल का नाम विपाक है। और श्लोक २७ में उस ईश्वर का नाम "ओ३म्" बतकाया है। देखिये कितने साफ़ शब्दों में ईश्बर को निराकार माना गया है)। पाँचों क्लेश योग साधन में बड़ी भारी रुकावट बनते हैं। ईश्वर के इस स्वरूप का ध्यान और ओं का नाम का जाप करने से बुद्धि

ऋतम्भरा हो जाती है, यानि सचाई की तह तक पहुँचने वाली बुद्धि प्राप्त हो जाती है, जिसमें संशय और भ्रम का लेश भी नहीं होता, योग के आठ अंग हैं, इसलिए उसको अष्टाँग योग कहते हैं। १. यम, २. नियम, ३, आसन, ४. प्राणायाम, ५. प्रत्याहार, ६. धारणा, ७. ध्यान, ८. समाधि। फिर यम पांच हैं—१. अहिंसा, २. सत्य, ३. अस्तेय, ४. ब्रह्म चर्य ५. अपिरिग्रह । पांच ही नियम हैं—१. २. सन्तोष, ३. तप, ४. स्वाध्याय, ५. ईश्वर प्राणिधान। जब योग साधन करता हुआ मनुष्य समाधि अवस्था को प्राप्त कर लेता हैं। तब उसको सब से वहले ६ सिद्धियां प्रकट होती हैं—१. प्रातभा २. श्रवण, ३. वेदन, ४. आदर्श, ५. आखाद, ६. वारता। १. प्रतिभा—इस से भूत, भविष्य, वर्तमान और सूक्ष्म ढको हुई और दूर देश में रखो हुई वस्तुएं प्रत्यक्ष हो जाती हैं। २. श्रवन—इससे दिव्य शब्द सुना जाता है। ३. वेदन—इससे दिव्य स्पर्श का अनुभव होता है। ४. आदर्श—इससे दिव्य रूप का दर्शन होता है। ५. आखाद—इससे दिव्य रस का अनुभव होता है। ६. वारता—इससे दिव्य गन्ध का अनुभव होता है, अथवा पांचों ज्ञान इन्द्रियों के अन्दर दिव्य शक्तियों का समावेश होता है। परन्तु इन सिद्धियों को पातजलि मुनि ने ईश्वर दर्शन या केवल्य पद प्राप्ती के रास्ते में रुकावट समझते हुंए उन को त्याग देने का उपदेश दिया है। क्योंकि अगर साधक रास्ने में ही कुछ कामयाबी प्राप्त होने पर थक कर वैठ जावे या उसी थोड़ी कामयाबी को मंजिल समझ ले तो फिर वह अपनी असल मंजिल यानि मुक्ति पद को प्राप्त नहीं कर सकता; इसलिए ऋषि ने उनको त्याग कर इनमें न रीझ कर निरन्तर आगे वढ़ने के लिए ही उत्साह दिलाया है, ताकि साधक अपनी असली मंजिल को प्राप्त कर सके।

२. राज योग से जो पिभूतियां साधक के अन्दर उत्पन्न हों

जाती हैं उनका वर्णन करते हुए योग दर्शन के विभूति पाद में महर्षि पातंजलि जी ने जो लिखा है, उसमें से थोड़ा सा दिग्दर्शन कराया जाता है।

2. बाहर या शरीर के भीतर किसी एक देश में चित्त को ठहराना धारणा कहलाती है, उसी में वृत्ति का एक तार चलना ध्यान है, जब केवल ध्येय मात्र यानि जिसका ध्यान किया जावे उसकी ही प्रतीति होती है और चित्त का निज स्वरूप शून्य सा हो जाता है, तब वही ध्यान समाधि कहलाता है।

प्रेम गली अति साँकरो ता में दो न समाएं।
जब मैं था तब साहब न, जब साहब तब मैं नाएं॥

और जब धारणा ध्यान समाधि तीनों इकट्ठे हो जाते हैं तो उसको संयम कहते हैं। जब योगी ऐसा संयमी बन जाता है, तब उस को बुद्धि में अलौकिक ज्ञान शक्ति आ जाती है। दूसरे के चित्त का साक्षात कर लेने से दूसरे के चित्त का ज्ञान हो जाता है यह mind reading है। हाथी के समान बल प्राप्त होता हैं। कंठ कूप में संयम करने से भूख प्यास मिट जाती है, कूरमाकर नाड़ी में संयम करने से चित्त और शरीर दोनों स्थिर हो जातें हैं।

३—योगदर्शन के कैवल्य पाद में पाँच सिद्धियों का वर्णन किया गया है जो योगी को सिद्ध हो जाती है, सिद्धि की तारीफ करते हुए लिखा है कि शरीर इन्द्रिय और चित्त में परिवर्तन होने से जो पहले की अपेक्षा विलक्षण शक्तियाँ पैदा हो जाती हैं इन्हीं को सिद्धि कहते हैं और वह पांच प्रकार की हैं।

१—जन्म से होने वाली सिद्धि—जब योगी मर कर एक योनि से दूसरी योनि में जाता है। तब उसके प्रारब्धानुसार शरीर इन्द्रियों और चित्त का परिवर्तन होकर इन में अपूर्व शक्ति का प्राभर्दुाव हो जाता हैं। दुनियां के अन्दर जितने भी महापुरुष हुए हैं वह सभी इसी जन्म के कर्मों के प्रभाव से नहीं बन पाये, परन्तु जन्म जन्म के हो

इस प्रकार के संस्कार लेकर ही आए थे जिससे इस जन्म में इनका जीवन चमत्कारक बन सका। एक अंग्रेज़ शायर कहता है—The height which greatmen reached and kept was not attained by sudden flight अर्थात बड़े आदमी एक दम बड़े आदमी नहीं बन गए। उर्दू के शायर ने भी कहा है "सौ बार जब अकाक कटा तब नगीं हुआ" यानि मुन्दरी में आने से पहले सौ बार उसको कटना पड़ता है।

२—औषध से होने वाली सिद्धि—यानि औषधि का उपचार करने से जो शरीर की काया कल्प हो जाती है।

३—मन्त्र से होने वाली सिद्धि—जब मनुष्य विलक्षण सामर्थ्य प्राप्त करने के लिए किसी मन्त्र का अनुष्ठान करता है, तब इससे भी शरीर इन्द्रियों और चित्त में विलक्षण शक्ति पैदा हो जाती है।

४—तप से पैदा होने वाली सिद्धि—जब मनुष्य शास्त्रोक्त तप विधिवत करता है, अथवा अपने कर्तव्य का पालन करने के लिए भारी से भारी कष्ट सहर्ष सहन करता है, परन्तु धर्म का त्याग नहीं करता तब इसके शरीर इन्द्रियों और चित्त समस्त के मल नष्ट हो जाते हैं और उनमें अपूर्व शक्ति का प्रादुर्भाव हो जाता है।

५—समाधि से होने वाली सिद्धियों का वर्णन विभूति पाद में आ चुका है। और आप स्वय देख सकेंगे कि योग दर्शन में वरनत सिद्धिया और योग की विभूतियां सब ही महर्षि को सिद्ध हो चुकी थीं।

१—अजमेर जब स्वामी जी पहली बार आए तो शाम लाल सिंह जो एकान्टेंट जनरल रेलवे के दफ्तर में कलर्क थे उनकी श्रद्धा स्वामी जी पर हो गई। एक दिन उन्होंने अपने घर से स्वामी जी का दूध भिजवाया, उनकी माता को यह बात बुरी मालूम हुई और उसने क्रोध करके कहा—उस मुंडे सन्यासी को दूध क्यों पिलाता है। जब उनका नोकर दूध लेकर स्वामी जी के पास गया, तब स्वामी जी

ने तिरस्कार पूर्वक उससे कहा कि यह दूध वापिस ले जाओ मुझे ऐसा चितायुक्त दूध नहीं चाहिए। और आयन्दा भी मेरे लिए ऐसी अनिच्छा से भेजा हुआ दूध मत लाना। शामलाल सिंह जी को इस पर बहुत खेद हुआ। जब अपनी माता से पूछा तो इन्हें अपनी माता की कृपणता का वृतान्त मालूम हुआ।

२—करनवास में एक दिन एक ब्राह्मण ने महाराज को भोजन का निमन्त्रण दिया। महाराज ने उसे स्वीकार कर लिया इस ब्रामण ने ठाकुरों को भोग लगाया हुआ भोजन महाराज के सामने रखा, परन्तु स्वामी जी ने यह कह कर खाने से इन्कार कर दिया कि हम किसी का जूठा भोजन नहीं खाते।

३—करनवास में एक दिन रती राम नामी पहलवान जिसे अपने बल पर बड़ा घमण्ड था महाराज के निवासस्थान पर आया और महाराज को देखकर तिरस्कार पूर्ण बोला—अरे यह बाबा तो बड़ा हृष्ट पुष्ट है। महाराज ने उसे कुछ उत्तर नहीं दिया। परन्तु इस पर अपने नेत्रों की इस प्रकार ज्योति डाली कि इस का सारा घमण्ड चूर हो गया और इस पर महाराज का इतना रोब छाया कि तुरन्त श्री चरणों में गिरा और हाथ जोड़ कर अपने अशिष्ट व्यवहार के लिए क्षमा मांगी।

४—करनवास में ही एक दिन १५/२० पंडित, जिनमें पण्डित कमल नेत्र और सुखदेव अच्छे विद्वान थे, एक बहुत ही मुशिकल सवाल पूछने के अभिप्राय से स्वामी जी के पास आयें, इस समय महाराज गंगा तट पर गये हुए थ, यह सब लोग उनकी प्रतीक्षा में बैठे रहे, थोड़ा देर में जब महाराज वहां आ गए, तो सब ने उठ कर उन्हें प्रणाम किया। महाराज बैठ कर थोड़ी देर तो ध्यानावस्थित हो गए, जब उन्होंने आंखें खोलीं तो उनसे कहा कि जो कुछ पूछने आए हो पूछो। स्वामी जी ने एक दो बार उनसे कहा परन्तु

कोई न बोला, तब स्वामी जी ने अपना उपदेश आरम्भ कर दिया, वह सब लोग सुनते रहे और सत्य वचन महाराज हो कहते रहे। थोड़ी देर पश्चात वह लोग चले गये, और रास्ते में जाते हुए एक दूसरे से कहने लगे—कि न जाने दयानन्द के पास क्या शक्ति है कि हम सबके मुख पर ताले लग गये। और जो प्रश्न सोच कर ले गये थे उन में से एक भी पूछ न सके।

योग साधन की अन्तिम सीढ़ी कैवल्य पद प्राप्ति ही है, सो योग दर्शन कार ऋषि ४-२६ में कहते हैं। उस समय योगी का चित्त असार संसार के विषयों की ओर नहीं जाता उनसे सर्वथा विरक्त हो जाता, इस विवेक ज्ञान में निरन्तर रहता है तथा कैवल्य के अभिमुख हो जाता है अर्थात अपने आप में विलीन होना आरम्भ कर देता है, क्योंकि चित्त का अपने कारण में विलीन हो जाना, और द्रष्टा का स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाना यही कैवल्य है। फिर ३० सूत्र में ऋषि कहते हैं। कि जब योगि को धर्म मेध समाधि सिद्ध हो जाती है, तब इस योगि को अविद्यादि पांचों क्लेश तथा सब कर्मों के संस्कार नष्ट हो जाते हैं। अतः वह योगी जीवन मुक्त कहलाता है। अतः इस राज योग को महर्षि दयानन्द जी ने कितने कष्ट उठा कर और कितना समय लगा कर सिद्ध किया, यह नीचे लिखे वर्णन में पढ़िये।

५. अपने ही घर में पहले एक छोटी बहन फिर प्यारे चचा जी की मौत हो जाने के कारण बालक मूलशंकर के मन में वैराग की भावना जाग कर परिपक्व होने लग गई। सच्चे शिव की तलाश जो शिवरात्री के व्रत रखने से पैदा हुई थी, उसके साथ अब मौत की दवा ढूंढने की जिज्ञासा भी तीव्र हो उठी थी, और जिस किसी से भी इन दोनों मनोकामनाओं को पूरा करने का इलाज पूछा, सबने एक स्वर से यही कहा कि दोनों रोगों का एक ही इलाज

है और वह है योग, जब सर्वसम्मति से हर किसी ने यही राय दी, तो अब योग साधन की लालसा ने इनको घर त्याग करने पर तैयार करना शुरू कर दिया। अतः अब आप घर त्याग करने की योजना बनाने लगे। और दूसरी तर्फ इनके माता पिता उनको विवाह के बन्धन में बांधने की योजना बनाने लगे। जब मूल जी को यह पता लगा तो उन्हों ने पिता जी को साफ़ कह दिया, कि मैं विवाह के बन्धन में नहीं बन्धना चाहता। परन्तु उनके पिता जी को बालक मूलशंकर का यह जवाब असह्य हो गया। अब बाप और बेटा अपनी अपनी धुन के पक्के हो गये। जहां मां बाप ने विवाह की पूरी तैयारी शुरू कर दी। दूसरी तरफ़ बेटे ने भी घर के त्याग की पूरी तैयारी कर ली, और एक दिन सम्वत् १९०३ मुताबिक सन १८४६ पूरे २१ वर्ष की भरपूर जवानी में घर के ऐश वा आराम को लात मार कर सायंकाल के समय किसी से कुछ कहे बिना सदा के लिए पितृ गृह को छोड़ दिया।

"न सुध बुध की ली और न मंगल की ली।
घर से निकल राह जंगल की ली।

और योग साधन सीखने के लिये योगियों की तलाश में सरगरम हो गये। जहां जहां भी किसी योगी का नाम सुनते वहीं पहुंच जाते। सबसे पहले उन्होंने पहचाने जाने के डर से घर के वस्त्र उतार ब्रमचारियों जैसे वस्त्र पहन कर अपना नाम शुद्ध चैतन्य रख लिया। लेकिन बमचर्य आश्रम में रहते हुए भी उनको योगाभ्यास करने में अड़चन महसूस हुई, अतः घर से निकलने के एक वर्ष बाद स्वामी पूर्णानन्द जी से संन्यास की दीक्षा लेकर दयानन्द सरस्वती नाम से प्रसिद्ध हुए। और जहां कहीं भी योग में प्रवीण किसी साधु सन्यासी का नाम सुना फ़ौरन वहां पहुंचे, अतः स्वामी योगानन्द जी से योग की शिक्षा प्राप्त करते रहे और योगा-

नुष्ठान भी करते रहे। अतः योगानन्द और उसके साथी ज्वालानन्द पुरी जी से महर्षि दयानन्द जी ने योग की बहुत उच्च शिक्षा प्राप्त की और उनके साथ योगायभ्यास भी करते रहे। महर्षि अपने स्वयं चरित्र में लिखते हैं।' योग विद्या की जो कुछ भी क्रिया गत शिक्षा थी वह मैंने इन्हीं दोनों साधओं से पाई और मैं उनका बड़ा कृतज्ञ हूं।'' इसके सिवा महर्षि शिवानन्द गिरी, भवानी गिरी, और दूसरे बहुत से योगियों के सत्संग में आए और योगाभ्यास को पूर्णता तक पहुचाने के लिए आप निम्नलिखित स्थानों में योगाभ्यास करते रहे और तीन दिन रात यानि ७२ घण्टे की समाधि सिद्ध कर ली, इस योग के सिद्ध हो जाने से वह इतना महान कार्य करने में सफलता प्राप्त कर पाए।

महर्षि के योगसाधन के स्थान—

१. शैला नगरी,
२. कोटगांगड़,
३. सिद्धपुर,
४. चेतनमठ (वटोदर
५. चणोद कर्णाली,
६. व्यासाश्रम,
७. छिनूर या सिनोर
८. दुग्धेश्वर मन्दिर, (अहमदाबाद)
९. आबू पर्वत.
१०. अर्वुदा भवानी-गिरि शृङ्ग
११. उत्तराखण्ड,
१२. हिमालय,
१३. हरद्वार
१४. चंडी का जंगल,
१५. हृषीकेश,
१६. टिहरी श्रीनगर,
१७. देव प्रयाग,
१८. रुद्रप्रयाग,
१९. केदार घाट,
२०. तुङ्गनाथ,
२१. ओखीमठ,
२२. ज्योतिर्मठ,
२३. अलखनन्दा,
२४. वसुधारा,
२५. गौरीकुण्ड,
२६. भीमा गुफा,
२७. केदारनाथ
२८. त्रियुगी नारायण
२९. बद्रीनारायण
३०. सत्पथ,
३१. नर्मदा नदी का स्रोत,
३२. गङ्गोत्री,
३३. उत्तरकाशी,
३४. गंगापार चोल के जंगल का जल प्रपात,
३५. धराली की गुफा
३६. भटवाड़ी का ऊंचा जंगल।
३७. मल्लाचट्टी का मार्ग।
३८. बूढ़ केदार आदि आदि

६. महर्षि पतञ्जल ने योग दर्शन में राजयोग और महर्षि वेद व्यास जी ने गीता में कर्मयोग का वर्णन किया हैं। गीता महाभारत का एक हिस्सा ही है, और महाभारत की रचना वेद व्यास जी ने की थी, परन्तु गीता को कृष्ण अर्जुन सम्वाद बना कर वर्णन किया गया है। योग दर्शन में चित की वृत्तियों के विरोध का नाम योग कहा गया है। और गीता के २—५० श्लोक में योग की तारीफ़ यूं की गई हैं। "समत्वत बुद्धि युक्त पुरुष पुण्य पाप दोनों को ही इस लोक में त्याग देता है। अर्थात् कम्पायमान नहीं होता, यह समत्व बुद्धि रूप योग ही कर्म में चतुरता है यनि सिद्धि असिद्धि किसी की भी परवाह न करके कर्तव्य करते जाना ही योग है।" फिर ७-४६ में कहा है—कर्म योगी तपस्वियों से भी श्रेष्ठ है, इस लिए हे अर्जुन तू योगी बन, निष्काम कर्म करना ही गीताकार को अभीष्ट है। फल की कामना न करते हुए अपने कर्त्तव्य कर्मों को करते चले जाना। क्योंकि साफ कहा गया है कि तेरा कर्म करने का अधिकार है, फल में मनुष्य का अधिकार नहीं है, इसलिए जिस में अपना अधिकार नहीं है, उसकी चिन्ता फ़ज़ूल है और जिसमें अपना अधिकार है उसको पूर्ण रूप से सम्पन्न करना ही योग गीताकार ने लिखा है।

७. संसार के अन्दर राज योगी भी बहुत हुए होंगे, और शायद आज कल भी कोई हिमालय की गुफ़ाओं में मिल जाएं, परन्तु ऐसे राज योगियों से संसार को क्या लाभ, क्योंकि अपने लिए तो एक च्यूंटी भी परिश्रम करती है। इस लिए अगर किसी योगी ने समाधि लगा कर ईश्वर का साक्षात्कार कर भी लिया तो संसार को क्या और इस तरह कर्म योगी भी संसार के अन्दर पहले भी बहुत से हुए और अब भी बहुत से मिल जाएंगे। परन्तु राज योग और कर्म योग दोनों में समृद्ध पुरुष तो पांच हज़ार वर्ष के अरसे

में केवल दो ही हुए हैं। स्वामी शंकराचार्य और स्वामी दयानन्द महर्षि के जीवन की निम्नलिखित घटनाएं महर्षि के राज योगी और कर्म योगी होने का भरपूर प्रमाण दे रही हैं।

८. करनवास में एक दिन पण्डित नन्द किशोर अध्यापक स्वामी जी के पास जा रहे थे, मार्ग में एक खेत से काले सेम का फलियां तोड़ कर ले जाकर स्वामी जी की भेंट की, स्वामी जी ने कहा नन्द किशोर जी आप यह फलियां चोरी करके लाये। यह शब्द सुन कर वह बहुत सटपटाये और बोले कि महाराज मैंने किसकी चोरी की है, तो महाराज ने हसकर कहा कि सच कहिये, क्या आप यह फलियां खेत के स्वामी से पूछ कर लाये हैं। इस पर पंडित नन्द किशोर जी लज्जित हुए और अपने कर्म पर पश्चाताप करने लगे महाराज ने वह फलियां ग्रहण न कीं।

९. अम्बागढ़ में एक दिन महाराज उपदेश दे रहे थे, सभा मण्डप श्रद्धालुओं से खचाखच भरा हुआ था, एक जाट क्रोध में भरा हुआ एक मोटा सा लठ लिए हुए आया, और आते ही स्वामी जी को सम्बोधन करके बोला। अरे साधु तू मूर्ति पूजा का खण्डन करता है। गंगा मैया की निंदा करता है, देवी देवताओं को बुरा कहता है। झट पट बता यह लाठ कहां मार कर तुझे समाप्त करुं। यह सुन कर एक बार तो सारी सभा विचलित हो गई। परन्तु स्वामी जी की शांति और धैर्य भंग न हुआ। उन्होंने गंभीरता पूर्वक उससे कहा—यदि तू समझता है कि मेरा धर्म प्रचार करना अपराध है, तो इसका अपराधी मेरा मस्तक है, वही मुझसे यह कार्य कराता है, तू अपना लठ मेरे सिर पर मार। यह कहकर महाराज ने अपनी दिव्य दृष्टि उस पर डाली। महाराज की आंखें ज्यों ही उसकी आंखों के सामने हुईं त्यों ही उसका हिंस्र भाव लुप्त हो गया चरणों में गिर पड़ा और रो रो कर अपना अपराध क्षमा कराने लगा। महाराज ने उस से कहा कि तुमने मेरा कोई अपराध

नहीं किया। यदि तुम मुझे मारते तो भी कोई बात थी, व्यर्थ क्यों रो रहे हो, जाओ ईश्वर तुम्हें सन्मार्ग दिखलाए।

१०. जलालाबाद के नवाब साहब ने महर्षि से पूछा कि कोई ऐसी भी विद्या है कि यहां बैठा हुआ आदमी दूसरी जगह की बात जान सके, महाराज ने कहा कि योगी लोग इच्छा नहीं करते, सब से गुप्त ब्रह्म विद्या है योगी का उसी को जानने का उद्देश्य है। लेकिन योगी अगर चाहे तो योग विद्या द्वारा गुप्त बातों को जान सकता है।

११. कानपुर में अनेक पण्डित महाराज से मूर्ति पूजा पर शास्त्रार्थ करने आते थे और परास्त होकर चले जाते थे, एक दिन कुछ पंडित शड्विंश ब्राह्मण का प्रमाण 'प्रतिमा हनस्ति' इत्यादि लेकर इस आशा से स्वामी जी के पास आए कि आज स्वामी जी को परास्त करेंगे, स्वामी जी ने उन से पूछा कि कोई प्रमाण लाए हो, उन्होंने कहा कि लाए हैं, स्वामी जी ने कहा वही प्रतिमा हनस्ति वाला लाए होंगे। यह सुन कर वह इतने घबराये कि अंगोछे से पुस्तक भी न खुल सकी और लज्जित हो कर वापस चले गये।

१२. काशी में सबसे बड़े शास्त्रार्थ के दिन बलदेव प्रसाद स्वामी जी के सेवक ने कहा कि महाराज आज बहुत भीड़ भाड़ होगी। काशी गुण्डों का शहर है, यदि फर्रुखाबाद होता तो दस बीस आदमी आप के पक्ष के भी होते, स्वामी जी यह बात सुन कर हंसे और बोले, 'योगियों का यह निश्चित सिद्धान्त है कि सत्य का सूर्य अन्धकार की सेना पर अकेला ही विजय पाता है' और ऐसा ही हुआ। काशी के सब बड़े बड़े पण्डित, काशी का राजा उस का भाई, तमाम शहर के गुण्डे एक तर्फ़ और पचास हजार की हाजरी में अकेला दयानन्द सत्य का सूर्य एक तरफ़ और

अन्धकार की सारी सेना पर विजय प्राप्त करके योगियों को निश्चित सिद्धान्त का बोल बाला कर गया।

१३. दूसरी बार काशी निवास में एक दिन महाराज सत्संगियों को उपदेश दे रहे थे कि उपदेश करते करते रुक गये और कहा कि थोड़ी देर में एक विशेष घटना होने वाली है। कुछ देर के बाद एक ब्राह्मण महाराज के लिए भोजन और पान लाया और उन से भोजन पाने की प्रार्थना की, महाराज ने स्वीकार न किया, परन्तु उसके आग्रह करने पर कि पान तो ले लें। पान लेकर महाराज ने खोल कर देखा तो वह ब्राह्मण तेज़ी से दौड़ गया। भोजन और पान दोनों में ज़हर मिलाया हुआ था।

१४. पटना में डिप्टी सोहन लाल ने राज नाथ विद्यार्थी को कहा कि स्वामी जी के लिए दूध ले जाओ, रात का वक्त था वह दूध ले कर जब चला, रात अन्धेरी थीं बून्दें भी पड़ रही थीं। स्वामी जी का डेरा बस्ती से दूर था। सड़क पर दोनों तर्फ़ पानी था, थोड़ी दूर जाने पर उसने देखा कि सड़क पर सांप पड़ा है, इसने सोचा कि वापस चला जाऊं परन्तु पीछे मुड़ कर देखा तो उधर भी एक बड़ा सांप छुपा पाया, फिर वह आगे की तर्फ़ ही बढ़ा, और सांप के ऊपर से छलांग लगा कर फांद कर भाग खड़ा हुआ। जब स्वामी के पास पहुंचा तो वह बैठे हुए थे, स्वामी जी ने इस से कहा कहा कि क्या मार्ग में तू डरा था और तूने सांप देखा था, राज नाथ को बड़ा आश्चर्य हुआ कि स्वामी की सारी बातें कैसे पता लग गईं।

१५. पटना में एक दिन स्वामी जी का कहार गंगा तट पर जो लकड़ी की टाल थी, उस पर सूखी लकड़ी मांगने चला गया, स्वामी जी को उस की खबर न थी, टाल वाले ने पूछा कि लकड़ी किस के लिए चाहिए। तो कहार ने कहा स्वामी जी के लिए। टाल वाले ने कहा हम नहीं जानते कौन स्वामी है। जब कहार

वापस आया तो स्वामी जी ने राज नाथ विद्यार्थी को कहा कि इसके जूते लगाओ, राज नाथ बड़ा हैरान हुआ कि स्वामी जी ऐसी आज्ञा क्यों दे रहे हैं, उसने स्वामी जी से पूछा इस ने क्या अपराध किया है। स्वामी जी ने कहा कि वह टाल पर लकड़ी की भिक्षा मांगने गया था। जब राज नाथ ने कहार से पूछा तो उसने सब बात मान ली। इतने में टाल वाला लकड़ी ले कर आ गया। तब स्वामी जी ने दोनों से कहा कि खबरदार किसी से भिक्षा मांगी तो दोनों को निकाल दूंगा।

१६. भागलपुर निवास के वक्त एक दिन राज नाथ रसोई बना रहा था, स्वामी जी ने राज नाथ से कहा—तेरा पिता आ गया है। हमने तुम से कहा था कि अपने पिता की आज्ञा लेकर आओ परन्तु तुमने न माना, राज नाथ रसोई से बाहर आया परन्तु उसके पिता का कहीं पता न था, आध घण्टे के बाद इस का पिता सचमुच आ गया। वह राज नाथ को देख कर रोने लगा। स्वामी जी ने कहा तुम अपने पुत्र को ले जाओ। हम दूसरे साधुओं की तरह नहीं हैं कि तुम्हारे पुत्र को चेला बना कर तुम को दुख दें।

१७. पंडित पन्ना लाल जोधपुर निवासी ने देवेन्द्र बाबू से कहा था कि जिन दिनों स्वामी जी काशी में थे, मैं भी काशी में था और जिस पंडित के पास भी जाता था और स्वामी जी का जिकर करता था तो वह यही कह दिया करता था कि कि स्वामी जी को परास्त करने का सामर्थ्य किसी में नहीं है।

१८. प्रयाग निवास के समय श्री ठाकुर दास ने एक दिन स्वामी जी को योगाभ्यास करते हुए कमरे के किवाड़ों के दरार में से देखा था कि स्वामी जी समाधिस्थ अवस्था में धीरे धीरे पृथ्वी से ऊपर उठ रहे हैं, और थोड़ी देर में ही वह अधर में स्थित

हो गये यानि कमरे के मध्य में ठहर गये थे ।

१९. काशी निवास में एक दिन महाराज ध्यान से निवृत होकर हँसते हुए बाहर आए तो पंडित सुन्दर लाल ने हँसने का कारण पुछा, उन्होंने कहा एक मनुष्य मेरी ओर आ रहा है, थोड़ी देर पीछे एक मनुष्य आया और नमोनारायण कर के बैठ गया उसने कुछ मिठाई महाराज के आगे रखकर खाने की प्रार्थना की, स्वामी जी ने कहा थोड़ी सी मिठाई तुम भी लो, परन्तु उसने न ली, जब महाराज ने डांट कर कहा तब भी उसने न ली और कांपने लगा। स्वामी जी ने कहा कि यह हमारे लिए विष युक्त मिठाई लाया है। पंडित सुन्दर लाल ने उस को पकड़ना चाहा, परन्तु स्वामी जी ने इन्हें पकड़ने न दिया और उसे क्षमा कर दिया, फिर उस मिठाई में से थोड़ी सा एक कुत्ते को डाली, कुत्ता उसे खाकर मर गया।

२०. एक बार गंगा तट पर विचरते हुए, स्वामी जी एक घने जंगल में जा निकले वहां इन्हें सामने से एक शेर आता दिखाई दिया। स्वामी जी सीधे चलते रहे, जब वह इस शेर के पास पहुँचे, तो शेर ने स्वामी जी को देख कर मुंह फेर लिया और जंगल में घुस गया। (अहिंसा को स्वामी जी ने सिद्ध किया हुआ था)।

२१. मुलतान निवास के वक्त एक दिन पंडित कृष्ण नारायण अपने अन्य कई मुसलमान और ईसाई मित्रों के साथ महाराज का व्याख्यान सुनने गये, और सब लोग कुछ प्रश्न पूछना चाहते थे, परन्तु उनके आश्चर्य की कोई सीमा न रही जब महाराज ने व्याख्यान में ही उनके प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देना आरम्भ कर दिया और इन सब लोगों के सब प्रश्नों का उत्तर बिना पूछे ही उन को मिल गया, जिससे इन लोगों को विश्वास हो गया कि महाराज सच्चे योगी हैं।

२२. मुन्शी सेवा राम इन दिनों मेरठ में नहर के ज़िलादार

थे, एक दिन उन्होंने महाराज से कहा कि यदि मैं नहर का डिप्टी मजिस्ट्रेट हो जाऊं तो पहले मास का वेतन वेद भाष्य की सहायता के लिए दूंगा। इस के कुछ काल के पश्चात् उन को यह पद मिल गया, अभी उन्होंने यह शुभ समाचार अपने किसी मित्र या रिश्तेदार को भी न कहा था कि स्वामी जी का पत्र उन के पास आया, जिसमें इन्हें बधाई दी गई थी और उन की प्रतिज्ञा याद कराई गई थी।

२३. मैडम बलोटसकी ने अपनी किताब में लिखा है कि स्वामी जी महाराज ने उन को कहा था कि वह सन् १८८४ नहीं देखेंगे और इस लिए उन्हों ने अपनी वसीयत भी सन १८८३ में ही उदय पुर में करा दी थी।

२४. शाह पुरा निवास के समय खस की टट्टी के कमरे में पंखे के नीचे बैठ कर वेद भाष्य लिखवाया करते थे, खस की टट्टी पर जल छिड़कने के लिए एक हौज़ था जिस में प्रति दिन कूएं का ताज़ा जल भर दिया जाता था। इस में से जल लेकर घासी लाल ब्राह्मण टट्टी पर जल छिड़कता था, एक दिन नौकर ने आलस्य किया और हौज़ को अच्छी तरह साफ़ न करके इस में थोड़ा जल रह गया था इस पर ताज़ा जल भर दिया। जब टट्टी पर वह मिला जुला जल छिड़का गया तो महाराज ने यह बात जान ली और उसी वक्त वेद भाष्य का काम बन्द कर दिया और कहा कि इस सारे हौज़ को बिल्कुल खाली कर के ताज़ा जल भर कर फिर छिड़को। घासी लाल को कहा तुमने बासी जल में ताज़ा जल मिला कर छिड़का है। (यह भी योग की एक विभूति है कि घ्राण इन्द्रिय इतनी प्रबल हो जाती है)।

२५. आगरा में आगरा कॉलिज के विद्यार्थी ब्रह्मानन्द दर्शन करने आए स्वामी जी इस समय कुटिया में न थे। पंडित भीमसैन और पंडित ज्वालादत्त बैठे थे, ब्रह्मानन्द जी ने कहा क्यों जी

आप किसी आत्मज्ञानी योगी को जानते हैं। ज्वाला दत्त जी बोले कि इस समय स्वामी दयानन्द से बढ़ कर कौन है। हम ने स्वयं उन को कई बार समाधि में देखा है। वेद भाष्य कराते समय जब कोई गूढ़ विषय बुद्धि से बाहर जान पड़ता तो तुरन्त समाधि लगा लेते और उस गूढ़ विषय को सिद्ध कर लेते थे।

२६. जिस वक्त से महर्षि दयानन्द गुरु आज्ञा मान कर प्रचार क्षेत्र में उतरे उसी वक्त से महर्षि के दो ही काम रहे। हर रोज योग अभ्यास करना और हर रोज़ वेद प्रचार का निष्काम कर्म करना यानि राजयोग और निष्काम कर्म योग ही इन का रोज़ाना का प्रोग्राम रहा है।

२७. अजमेर निवास के समय एक दिन एक अंग्रेज साईंस दान ने स्वामी जी से योग की सिद्धियों की बाबत संशय प्रकट किया। महाराज ने पहले तो युक्ति प्रमाण से योग सिद्धियों की सच्चाई प्रमाणित की जब फिर भी उसकी तसल्ली न हुई तो महाराज ने कहा कि क्या आप समझते हैं कि मैं जो इतना बड़ा कार्य करता हूं यह बिना योग सिद्धि के कर रहा हूं। इस जवाब पर उस अंग्रेज़ साईंसदान की तसल्लो हो गई कि वास्तव में इतना महान कार्य साधारण मनुष्य कदापि नहीं कर सकता।

२८—मुरादाबाद में एक दिन तोन पंडित शास्त्रार्थ करने के विचार से स्वावो जी के पास आये, परन्तु शास्त्रार्थ करना तो अलग रहा, वह स्वामी जी को देख कर कांपने लग गये, और उनके मुंह से बात तक निकलनी कठिन हो गई।

२६. दाना पुर में एक दिन एक आदमो ने महाराज से कहा - ईश्वर उपासना में मन नहीं लगता। तो महाराब मन्द मुस्कान से बोले—महाशय यदि मन एकाग्र नहीं होता तो भंग का एक लोटा और पी लिया करो। अब वह आश्चर्य में था कि स्वामी

जी को मेरे भंग पीने का पता कैसा लग गया। क्योंकि वह भंग पिया करता था।

३०—अमृत सर में एक कमरे में बैठे हुए वेद भाष्य लिखा रहे थे, अचानक किसी विचार तरंग में उठ कर खड़े हो गए, और कहने लगे कि शीघ्रता से इस कमरे का सब सामान निकाल कर दूसरी जगह ले चलो। सब इस अकारन आज्ञा पर आश्चर्य चकित हो गये। परन्तु सब सामान बाहर निकाल दिया। अभी सारा सामान निकाल कर कमरा खाली किया ही था कि उसकी छत गिर पड़ी।

३१—एक दिन महर्षि शौच करने बैठे हुए थे, कि एक मनुष्य नंगी तलवार लेकर उनके पीछे आ खड़ा हुआ, स्वामी जी ने इससे कहा मैं शौच से निवृत्त हो लूं फिर मेरा सिर काट लेना. इस पर वह राजी हो गया। जब महाराज शौच से निवृत्त हो चुके। तब उन्होंने अपनी आंख की ज्योति उस पर डाली और गर्दन उसके आगे झुका दी, इससे वह ऐसा प्रभावित हुआ कि बिना कुछ कहे वहां से चला गया।

३२—नर्बदा तीर पर विचरते हुए एक दिन घने जंगल में एक बहुत बलवान काला रीछ स्वामी जी के सामने आ खड़ा हुआ, और अपने दोनों पाओं पर खड़ा हो गया, परन्तु ज्यां ही स्वामी जी ने अपनी आँखों की ज्योति इसकी आंखों में डाली, वह मुंह फेर कर जंगल में चला गया।

३३—उदय पुर निवास में नौ लखा बाग़ के समीप ही एक बड़ा सरोवर है, महाराज गोवर्धन पर्वत को उसी के तीर तीर जाया करते थे, एक दिन सहजा-नन्द ने देखा कि महाराज पद्मासन लगाए जल पर ध्यानावस्थित है। सहजानन्द यह देख कर चकित हुए, परन्तु साथ ही महाराज की योग विद्या में निपुणता उनके हृदय में अंकित हो गई। कभी कभी महाराज लम्बी समाधि भी लगाया करते थे, और जब उन्होंने ऐसा करना होता था, तो एक दिन पहले सब को

कह दिया करते थे कि कल मेरे पास कोई न आए और न किवाड़ खट खटाये, और कई बार २४ घंटे की असम्भप्रज्ञात समाधि लगाया करते थे, वरना १८-१८ घटे तो उनकी आम समाधि लगती थी।

३४—एक दिन महाराणा सज्जन सिंह और सहजानन्द श्री सेवा में उपस्थित थे, और वार्तालाप कर रहे थे कि महाराज ने कहा कि पंडित सुन्दर लाल जो आ रहे है अगर पहले सूचना दे देते तो सवारी का उचित प्रबन्ध हो जाता। महाराणा साहब ने कहा कि सवारी का प्रबन्ध तो अब भी हो सकता है। परन्तु महाराज बोले कि अब ता वह बैल गाड़ी में आ रहे हैं। इसका एक बैल श्वेत और एक काला है। वह कल यहां पहुंच जाएंगे, अगले दिन पडित सुन्दर लाल जी उदय पुर पहुंच गये।

३५. गंगा तीर विचरते समय एक दिन गंगा में पैर डाल कर मौज में बैठे थे कि नदी में एक बड़ा मगर मच्छ निकल आया पास खड़े लोगों ने शोर मचा कर कहा स्वामी जी मगर मच्छ निकला है ऊपर आ जाइये महाराज ने हँस कर कहा जब हमारे मन में इस के प्रति बैर भाव नहीं है तो हमें क्यों दुख देगा और अपने जगह पर बैठे रहे मगर उन के पास आ कर वापिस चला गया।

बोलो पूर्ण योगी महर्षि दयानन्द सरवस्ती की जै

---

(१०५) "पूर्ण ब्रह्मचारी"

(क) ब्रह्मचर्य की पहली विभूति शरीरिक बल।

महर्षि दयानन्द न केवल स्वंय पूर्ण ब्रह्मचारी थे अपितु इस हितकर और महान विषय पर प्रभावशाली व्याख्यान देते थे। वैसा अन्य किसी ने नहीं किया। हम यह नहीं कहते कि शंकराचार्य, रामानुज, माधवाचार्य, कबीर और गौरांग देव आदि ने ब्रह्मचर्य के

महत्व को साधारण भाव से प्रगट नहीं किया। परन्तु इतना अवश्य कहते हैं, कि जिस असाधारण और अपरिहार्य भाव स ब्रह्मचर्य की आवश्यकता, और इस के गौरव का दयानन्द प्रचार कर गये, ऐसे किसी आचार्य को करते हुए हमने नहीं देखा। मुरादाबाद के स्वर्गीय राजा जै किशन दास जी कहा करते थे कि जिस ज़ोर, जिस आग्रह, और जिस उत्साह के साथ स्वामी जी इस विषय पर बोलते थे, ऐसा हमने किसी से नहीं सुना था, वह सबसे अधिक बल ब्रह्मचर्य पर दिया करते थे, महर्षि का निश्चल विश्वास था कि ब्रह्मचर्य के बिना मनुष्य का किसी प्रकार का कल्याण साधन नहीं हो सकता। चाहे वह शारीरिक हो, मानसिक, आर्थिक हो या अध्यात्मक, और जो कुछ उन्होंने ब्रह्मचर्य से अपने जीवन में प्राप्त किया था। वही वह सब मनुष्यों को प्राप्त कराना चाहते थे, महर्षि ने अपने जीवन में क्या क्या विभूतियां प्राप्त कीं, यह तो उनके सारे जीवन की जगमगाती हुई ज्योति स्पष्ट रूप से दरशाती है। परन्तु निम्नलिखित केवल चन्द घटनाएं महर्षि के जीवन में ब्रह्मचर्य की महिमा गा रही हैं।

१. करनवास में रतीराम नामी एक पहलवान था जिसे अपने बल पर बड़ा घमण्ड था। एक दिन वह महाराज के स्थान पर आया, और महाराज को देख कर तिरस्कार पूर्वक कहने लगा, अरे यह बाबा तो बड़ा हृष्ट पुष्ट है। महाराज ने उत्तर में कुछ नहीं कहा— परन्तु इस पर अपने नेत्रों को इस प्रकार दृष्टि डाली, कि इस का सारा घमण्ड चूर चूर हो गया। और उस पर महाराज का इतना रोब छा गया कि वह तत्काल ही महर्षि के चरणों में लोटने लग गया।

२. इसी करनवास में राव कर्ण सिंह ने म्यान से तलवार निकाल कर महाराज का सिर काटने के लिए हमला करना चाहा। परन्तु महाराज ने एक ही झटके से उस के हाथ से तलवार छीन कर ज़मीन पर मार कर तलवार को दो टुकड़े कर दिया।

३. एक बार पंडित मोहन लाल पाँडे एक मास्टर के साथ कानपुर गये थे, एक दिन वह संध्या समय गंगा तट पर भ्रमण करते हुए एक ऐसी जगह चले गये जहां महर्षि घाट पर एक बुर्ज पर बैठे हुंए साम गान कर रहे थे। थोड़े देर पीछे उन्होंने पाँडे जी मास्टर साहब से चले जाने को कहा—कि यहां उपद्रव होने वाला है, वह दोनों वापस जाने ही वाले थे कि इतने में कुछ लोग लाठियां और ढेले लिए हुंए वहाँ आए, और महाराज पर ढेले—फैंकने लगे, और एक व्यक्ति ने आगे बढ़ कर लाठी चलाई, महाराज ने इसकी लाठी पकड़ ली, और उसे गगा में धकेल दिगा। और पास से ही एक पेड़ का टहना तोड़ कर हमलावरों को हटाते हुए कहने लगे कि मित्र गण आओ। जो भी उनके पास आया उसी को चोट खाकर वापस जाना पड़ा। फिर स्वामी जी ने इन दुष्टों को ललकार कर कहा—कि मैं निरा साधू नहीं हूँ। आप जैसे गुण्डों का इलाज़ करना भी जानता हूं। इस पर सब दुष्ट अपना सा मुँह ले कर भाग गये।

४—काशी निवास के समय एक दिन महाराज एक घाट पर बैठे गंगा मैया से कलोल कर रहे थे, बाज़ार की तर्फ उनकी पीठ थी। इतने में कुछ मुसलमान वहा से गुज़रे। इनमें से किसी एक ने स्वामी जो का इस्लाम के खण्डन पर व्याख्यान सुना था, वह दूसरे मुसल मान गुण्डों को कहने लगा कि यही वह बावा है जो कुरान का खण्डन करता है। इस पर दो बलवान गुण्डो ने स्वामी जो को गंगा में डबोने की नीयत से पीछे से आकर स्वामी जो को धक्का देना चाहा। स्वामी जो इनका अभिप्राय समझ गये। और दोनों के एक एक हाथ को अपनी बगलों में भींच कर छलांग लगा दो। अब दोनों गुण्डे ग़ोते खाने लगे, तब जान बचाने को खातर लगे मिन्नत समाजत करने, तब महाराज ने कहा मैं तुम को डुबोऊंगा नहीं केवल दो चार ग़ोते और देकर यह सबक देना चाहता हूं कि पीठ पाछ से किसी पर हमला नहीं करना चाहिए। जब दो चार ग़ोते

और देने से दोनों गुण्डे निढाल हो गये तब स्वामी जी ने उनको छोड़ दिया। और स्वयं ग़ोता लगा कर गंगा के दूसरे पार जा निकले।

५—काशी निवास के समय ही एक दिन स्वामी जी बाहर भ्रमण करने जा रहे थे। क्या देखते हैं कि एक गडडा सामान से लदा हुआ कीचड़ में फंसा खड़ा है और गाड़ीवान बैलों पर जो बावजूद हृष्ट पुष्ट होने के गडडा कीचड़ की दलदल से बाहर निकालने में असमर्थ हो रहे थे, बार बार कोड़े मार रहा है। दयालु दयानन्द से यह दशा देखी न गई। स्वयं कीचड़ में घुस गये, और सामान से लदी हुई गाड़ी को, जो हृष्ट पुष्ट बैलों से भी बाहर न निकल सकती थी, अपना कन्धा लगा कर दलदल से बाहर निकाल कर सड़क पर खड़ी करके आगे सैर को चले गये।

६—काशी में ही एक दिन महाराज निश्चिन्त मौज से चल रहे थे, कि एक गुण्डा उनके पीछे हो लिया, उनकी दृष्टि पीछे फिरी तो देखा कि एक हट्टा कट्टा गुण्डा एक मोटा सा लठ लिए उनके पीछे आ रहा है, उन्होंने इस ज़ोर से हुंकार नाद किया कि गुण्डा भयभीत हो कर भाग गया।

७—मिर्जापुर निवास में बूढ़े महादेव के मन्दिर का पुजारी छोटू गिर गोसाईं बड़ा हृष्ट पुष्ट था, वह मूर्ति पूजा खण्डन से महाराज से द्वेष करने लगा, एक दिन वह कुछ साथियों को लेकर स्वामी जी का प्राण हरण करने के लिए उनके डेरे पर आया। और चिल्लाकर बोला, "बच्चा हम तेरे गुरु हैं, आज तुझे हम मूर्ति पूजा खण्डन का मज़ा चखायेंगे। जब स्वामी जी ने देखा कि यह अब दुष्टता करना चाहता है तो अपने सिरहाने का पत्थर उठा कर ज़ोर से हुंकार नाद करके कहने लगे, मूर्ख तू मुझे रोब दिखाता है। यदि मैं ऐसे ही भय खाता तो सारे देश में घूम घूम कर प्रचार कैसे कर सकता। तब ललकार कर बोले कि आओ मेरे नजदीक तो आओ, तब स्वामी जी की ललकार सुन कर वह हृष्ट पुष्ट और

उसके साथी कांपने लगे।

८—स्वामी जी की हुंकार से दुष्टों का टट्टी पेशाब निकल गया।

मिर्ज़ापुर निवास के समय उसी छोटू गिर ने एक दिन दो गुण्डों को स्वामी जी का वध करने के लिए कुछ लालच देकर भेजा, वह स्वामी जी के स्थान पर आकर गुण्डा पन का मज़हरा करने लगे। पहले तो महाराज ने उनको कोमल शब्दों में रोका परन्तु जब वह न रुके तब महाराज ने उठ कर ऐसा हुंकार नाद किया कि दोनों गुण्डों का टट्टी पेशाब निकल गया। और वह बेहोश होकर वहीं गिर पड़े।

९—कास गंज निवास के समय एक दिन शाम के समय स्वामी जी जंगल को ओर शौच के लिए जा रहे थे, और कई विद्यार्थी और अनुरागी जन उनके साथ थे, थोड़ी दूर चल कर गुलज़ारी लाल क्षत्री के बाग के सामने देखा कि मार्ग रुका हुआ है, कुछ और आगे बढ़ कर देखा कि मार्ग दूसरी ओर से भी रुका हुआ है। न इधर के लोग उधर जा सकते हैं। न उधर के लोग इधर आ सकते हैं। कारण यह था कि मार्ग के बीच में दो सांड आपस में लड़ रहे थे। दोनों सांडों के मुंह आपस में एक दूसरे से मिल रहे थे। और वह दोनों एक दूसरे को धकेलने का यत्न कर रहे थे, और यह द्वन्द्व युद्ध निरन्तर दो घण्टे से चल रहा था। कुछ देर तो स्वामी जी भी इस युद्ध की प्रतीक्षा करते रहे, जब लोगों ने कहा चलो दूसरी ओर चलें तब स्वामी जी ने हूं कह कर अस्वीकार कर दिया और तुरन्त ही उन रनमस्त सांडों की ओर चल पड़े उनके साथियों ने भी इनको रोका और दूसरे लोग भी चिल्लाने लग पड़े कि बाबा जी क्या करते हो। परन्तु महाराज ने किसी की बात न सुनी और उन रनमस्त सांडों के पास जा कर दोनों का एक एक सींग एक एक हाथ में

पकड़ लिया, और इस ज़ोर से उनको धक्का दिया कि दोनों का मुंह आकाश की ओर उठ गया। और दोनों एक दूसरे से अलग अलग हो गये। सांड इतने डर गये कि मार्ग छोड़ कर चले गये, और लोगों का आने जाने का मार्ग खुल गया। (सांड की ताकत शेर से भी अधिक होती है यह प्रसिद्ध ही है।

१०. बम्बई निवास के समय जीवन जी गुसाईं ने चार गुण्डों को लालच देकर स्वामी जी को जान से मार डालने के लिए, नियत किया, वह गुण्डे जिधर स्वामी जी प्रातःकाल सैर को जाया करते थे, उधर ही रास्ते में बैठ गये। जब स्वामी जी वापस आ रहे थे कि चारों गुण्डे हाथों में लाठियां ले कर स्वामी जी के सामने आ खड़े हुए और आक्रमण करने ही वाले थे कि स्वामी जी ने अपने डंडे से एक आक्रमणकारी पर वार किया और इतने जोर से हुंकार नाद किया कि चारों गुण्डे भय-भीत हो कर वहां से भाग गये।

११. जालन्धर निवास के समय एक दिन राजा विक्रम सिंह जी ने महाराज से कहा कि सुनते हैं कि ब्रह्मचर्य से बहुत बल बढ़ता है। महाराज ने कहा कि यह बात सत्य है तो राजा साहब ने कहा कि शास्त्रों के कथन का सत्य सिद्ध होना कठिन है, आप भी तो ब्रह्मचारी हैं, परन्तु आप में इतना बल प्रतीत नहीं होता, महाराज इस समय तो चुप हो गये। परन्तु जब सरदार साहब अपने दो घोड़ों की गाड़ी पर सवार होकर, चलने लगे तो स्वामी जी महाराज ने पीछे से चुपके चुपके गाड़ी का पहिया पकड़ लिया, कोचवान ने गाड़ी को चलाना चाहा, परन्तु घोड़े न चल सके, फिर उसने घोड़ों को चाबुक मारा चाबुक खाने पर घोड़ों ने बहुतेरा ज़ोर लगाया पर वह चल न सके। कोचवान और राजा साहब ने पीछे मुड़कर देखा तो स्वामी जी महाराज गाड़ी का पहिया पकड़े खड़े थे। तब स्वामी जी ने राजा साहब की ओर देखते हुए कहा

कि मैंने ब्रह्मचर्य के बल का परिचय दे दिया है। तब राजा विक्रम सिंह जी ने महाराज के चरन छूए और चले गये।

११. गुजरात (पंजाब) में एक दिन महाराज के व्याख्यान स्थल पर बहुत से गुण्डों ने आक्रमण कर दिया। महाराज बड़ी मुशकिल से अपने निवास स्थल पर पहुँच गये। परन्तु आक्रमण-कारियों की भीड़ उनके निवास स्थान के बाहर खड़े होकर हल्ला गुल्ला करती रही इतने में स्वामी जी का एक नौकर लाठी लेकर बाहर आया तो उसको गुण्डों ने खूब पीटा। इस पर स्वामी जी स्वयं लाठी लेकर बाहर आए और इस ज़ोर से गर्जना की कि सारी भीड़ भयभीत हो कर तितर वितर हो गई।

१२. गुजरांवाला निवास में एक दिन ब्रह्मचर्य की महिमा का वर्णन करते हुए महाराज ने कहा था कि हरिसिंह नलवा बड़ा शूर वीर था। सम्भवतः वह २५—२६ वर्ष तक ब्रह्मचारी रहा होगा, फिर कहा कि मेरी आयु इस समय ५१ वर्ष की है और ब्रह्मचर्य अखंडित है, मैं दृढ़ता पूर्वक कह सकता हूं। कि जिस किसी को अपने बल का घमंड हो मैं उस का हाथ पकड लेता हूं। वह छुड़वा लेवे। या मैं अपना हाथ खड़ा करता हूं मेरे हाथ को झुका देवे, इस समय लगभग ५०० मनुष्यों की हाज़री थी, जिस में कशमीरी पहलवान भी थे। परन्तु किसी को भी महाराज का चैलेंज स्वीकार करने का साहस न हुआ।

१३. मेरठ निवास में एक दिन रात्रि के नौ बजे, बेनी प्रशाद और उन के कुछ मित्रों ने महाराज की सेवा में उपस्थित हो कर कहा कि हम आप के पैर दबाना चाहते हैं, महाराज जान गये कि इस तरह वह इन के बल की परीक्षा करना चाहते हैं अतः उन्होंने कहा कि पैर तो पीछे दबाना पहले मेरा पांव उठाओ। यह कह कर अपने पांव जमीन पर फैला दिये। युवकों ने बहुतेरा ज़ोर लगाया पर अंगद के पांव की भान्ति महाराज का पांव न उठ सका।

१४. कहते हैं कि किसी एक नगर में एक पहलवान रहता था, जिसे अपने बल पर बड़ा घमंड था। वह अकेला ही कूँआ चला कर अपने स्नान के लिए एक हौज़ पानी का भर लेता था। वह स्वयं और दूसरे लोग भी यह समझते थे कि दूसरा कोई इस प्रकार हौज़ नहीं भर सकता। घटनावश महाराज भी उस नगर में पहुँच गये, महाराज का यह नियम था कि वह प्रातःकाल भ्रमनार्थ नगर से बाहर जाया करते थे एक दिन महाराज ने भी उसको हौज़ भरते देख लिया। इस के पश्चात् एक दिन वायु सेवन के अर्थ भ्रमण करते हुए वह इसी तर्फ से गुज़रें, उन के जी में आई कि आज हम भी हौज़ भरें। कुआ चला कर महाराज ने हौज़ भर दिया और वायु सेवन अर्थ आगे चले गये। जब पहलवान आया तो उसने देखा कि हौज़ पानी से भरा पड़ा है। तब उसके आश्चर्य का कोई ठिकाना न रहा। उस को यह सोच हुई कि कि मेरे समान कौन बलवान पैदा हो गया है। उसने वहां के रहने वालों से पूछ ताछ की तो उन्होंने कहा कि अभी अभी एक साधू हौज़ भर कर आगे चला गया है। पहलवान साधु के दर्शन करने की इच्छा से बैठ गया थोड़ी देर में स्वामी जी महाराज भी बड़ी तेज़ गति से आते हुए दिखाई दिये। पहलवान ने आगे बढ़ कर स्वामी जी का स्वागत किया और कहा कि आप हौज़ भर थके नहीं स्वामी जी ने उत्तर दिया कि हमारा तो व्यायाम भी इस हौज के भरने से पूरा नहीं हुआ। इस लिए हमें भ्रमण करने आगे जाना पड़ा। पहलवान यह सुन कर हक्का बक्का रह गया और महाराज के चरण छूने लग गया।

१५. एक बार जब स्वामी जी एकाएकी घूमते थे तो वाम मार्गियों ने देवी पर बलि चढ़ाने की कुचेष्टा की। परन्तु स्वामी जी महाराज अपने ब्रह्मचर्य बल से इन दुष्टों को मारते हटाते गिराते हुए। आठ फुट ऊंची दीवार पर छलांग लगा कर चढ़ गये और

दूसरी ओर उतर कर उन कातलों के पंजों से बच गये।

लाख रुपये की एक बात

१६. काशी निवास में एक दिन महाराज ब्रह्मचर्य पर व्याख्यान दे रहे थे। कि एक मुसलमान नौजवान भी व्याख्यान सुनने गया। व्याख्यान की समाप्ति पर वह महाराज जी से कहने लगा कि आप मुझे भी कुछ उपदेश देवें। महर्षि जी ने कहा कि आप २५ वर्ष की आयु से पहले विवाह न करना और २५ वर्ष तक पूर्ण ब्रह्मचारी रहना इस मुसलमान नौजवान ने स्वामी जी की आज्ञा पालन कर अपना बहुत हित किया। तब आठ वर्ष के बाद जब स्वामी जी फिर काशी पधारे तो महाराज के पास वह मुसलमान नौजवान आया। स्वामी जी ने उसको तुरन्त पहचान लिया और कहा कि क्या तूने हमारी आज्ञा का पालन किया था। तब मुसलमान नौजवान कहने लगा। महाराज! वह आप की लाख रुपये की एक बात थी। मैंने आप की आज्ञा का पूर्ण रूप से पालन किया है। और मैं बड़ा सुख अनुभव करता हूं।

(ख) स्मरण शक्ति का विकास

१ - महर्षि की स्मरण शक्ति अलौकिक थी, वह पाठ को एक दो बार सुनने से स्मरण कर लेते थे। परन्तु एक दिन अष्टाध्यायी की प्रयोग सिद्धि स्मृति से उतर गई उन्होंने उसे दण्डी जी से दो बार पूछा। दण्डी जी ने न बताया और कहा कि जाओ स्मरण करके आओ, हम बार बार बताने के लिए नहीं हैं। दयानन्द ने बहुतेरा प्रयत्न किया परन्तु सफलता प्राप्त न हुई। वह फिर गुरुदेव के पास गये और कहा कि महाराज मैंने तो बहुत प्रयत्न किया परन्तु वह प्रयोग स्मृति पथ पर नहीं आया। दण्डी जी अपनी हठ के पक्के थे। शिष्य की प्रार्थना पर उन्होने कान न दिया। बल्कि डांट कर बोले कि जब तक पिछला

पाठ न सुना दोगे तब तक अगला पाठ नहीं चलेगा तुम्हें अगर वह पाठ याद नहीं आता तो जमना में भले ही डूब जाओ परन्तु मेरे पास न आना। दयानन्द को गुरु देव के वचन तीर के समान चुभे उन्होंने यह संकल्प कर लिया कि या तो पाठ स्मरण करूंगा नहीं तो यमुना में डूब कर प्राण दे दूंगा। यह संकल्प करके वह विश्राम घाट के समीप सीता घाट के शिखर पर चढ़ कर समाधिस्त हो गये कि यदि पाठ स्मरण न आया तो मैं यहीं से यमुना जो में छलाँग लगा दूंगा। परन्तु समाधि अवस्था में उनको पाठ स्मरण हो गया और वह विपत्ति दूर हो गई।

२. बरेली नगर में चौधरी तालाब के निकटवर्ती कोठी में स्वामी जो बरेली निवास के समय ठहरा करते थे, एक बार बरेली के एक दिग्गज विद्वान ने स्वामा जी को शास्त्रार्थ का चैलेंज दिया। सभा मण्डप दर्शकों से खचाखच भर गया। इस पडित ने ऋषि पर ५० प्रश्न किये, जो एक काग़ज़ पर लिखकर वह पंडित सभा में ले गया था, स्वामी जी ने कहा सब प्रश्न सुना दीजिये। उससे सुना दिये। स्वामी जी ने कहा यह प्रश्न आपके हैं या और किसी के, पंडित जी ने कहा मैं स्वय पंडित हूं। स्वामो जी ने कहा कि यदि यह प्रश्न आपके हैं, तो काग़ज़ बन्द करके सुना दीजिए। पंडित जी बिना देखे सब प्रश्न न सुना सके। तब स्वामो जी ने कहा कि आप अपना कागज़ अपने पास रखिये मैं आपके प्रश्नों का सुनाता हूं। स्वामी जी ने इस पंडित के ५० मौ प्रश्न सिलसिले वार सुना दिये, जिस सिलसिले से कागज पर लिखे हुए इस पंडित ने बोले थे। तब इस दिग्गज विद्वान ने महर्षि को प्रणाम किया कि महाराज मैं आपके साथ शास्त्रार्थ नहीं कर सकता।

३—लाहौर निवास के समय पं० शिव नारायण अग्नि होत्री ने अक्षेप किया कि साम वेद में उल्लू की कथा है। महाराज ने कहा कि नहीं है और साम वेद का पुस्तक इन्हें देकर कहा—कि यदि है तो

इसमें से निकाल कर दिखला दीजिये । कुछ देर तक पुस्तक के पन्ने उलटने के बाद कहा कि इसमें तो नहीं मिलती । इस पर महाराज तो चुप रहे, परन्तु अन्य पास बैठे लोगों ने पंडित जी को बहुत शर्मिंदा किया ।

४—लाहौर निवास के समय ऐसे ही एक पंडित ने महाराज से कहा कि मनुस्मृति में मूर्ति पूजा का विधान है, और एक श्लोक भी पढ़ दिया, महाराज ने कहा कि यह मनुस्मृति का श्लोक नहीं है, और कहा कि यदि यह श्लोक मनुस्मृति में न निकला तो क्या आप मूर्ति पूजा छोड़ देंगे । यह कह कर मनुस्मृति का पुस्तक पंडित जी को दे दिया कि श्लोक निकाल कर दिखाओ । पंडित ने कहा मैं आपकी मनुस्मृति नहीं से किन्तु अपनी मनुस्मृति से निकाल कर लाऊँगा । स्वामी जी ने कहा बहुत अच्छा । जब तीसरे दिन वह पंडित फिर आया तो स्वामी जी ने पूछा कि क्या वह श्लोक आपको मनुस्मृति में मिला । तब पंडित जी हंसने लगे कि नहीं मिला ।

५. और इसी प्रकार एक पंडित ने एक श्लोक पढ़ कर कहा कि देखो योग वाशिष्ठ में मूर्ति पूजा की आज्ञा है । इस पर स्वामी जी ने कहा कि यद्यपि हम योग वाशिष्ठ को प्रमाणिक ग्रंथ नहीं मानते परन्तु आपके श्लोक में आधा योग वशिष्ठ का है और आधा किसी और की रचना है । इस पर जब योगवाशिष्ठ का ग्रन्थ देखा तो आधा ही श्लोक वहां का निकला ।

६. किसी आदमी को एक बार देख लेने के बाद सालों तक उसे न भूलते थे, और मिलने पर पहचान लेते थे । अत: एक मुसलमान नोजवान जिसको ब्रह्मचर्य का उपदेश काशी में दिया था दस साल के बाद भी उसको पहचान लिया । और पंडित भगवान वल्लभ वद्य अनूप शहर निवासी को भी कई सालों बाद देखने के भी तुरन्त पहचान लिया ।

७. सन् १८७४ में बम्बई जाते हुए रास्ते में नासक शहर में महाराज सिर्फ़ चार दिन रहे, उनमें उन्होंने दो व्याख्यान दिये। एक दिन व्याख्यान नासिक के प्रसिद्ध राम मन्दिर में हुआ और दूसरा तापती नदी के तट पर। राम मंदिर नासक के पंचवटी भाग में है, व्याख्यानों में जन साधारण बहुत बड़ी सख्या में उपस्थित थे। एक व्याख्यान में स्वामी जी ने कहा था कि श्री रामचन्द्र जी वनवास के समय पंचवटी में आकर रहे थे। तो इस से इसे तीर्थ मानने का क्या प्रयोजन। इस समय नासक में श्री विष्णु मोरेश्वर भिडु सब जज थे, इनके गृह पर स्वामी जी के साथ पंडितों के शास्त्रार्थ का प्रबन्ध किया गया। और विशेष विशेष पंडितों को निमन्त्रित किया गया था। इस सम्बन्ध में बम्बई के समाचार पत्र इन्दु प्रकाश में महाराभ की वाक शक्ति, विद्या और स्मरण शक्ति के अद्भुत होने का लेख लिखा गया था, जो निम्नलिखित प्रकार है—

"स्वामी जी की मानसिक शक्तियां दुर्लभ हैं, उनकी वाणी बड़ी प्रभाव उत्पादक है, उनकी स्मृति चूकने वाली नहीं है, इसके साथ ही वह अपने सुधार कार्य में उच्च कोटि के संस्कृत पांडित्य और हिन्दुओं के पवित्र ग्रन्थों के गहन परिचय से योग लेते हैं। हिन्दुओं के भिन्न भिन्न दर्शनों के गूढ़ ग्रन्थों के इतने सकत होते हैं कि हमारी सम्मति में किसी लिखित निबन्ध में भी और अच्छे पुस्तकालय की सहायता से भी उतने वचनों का उद्धरण करना सहज नहीं है। पंडित दयानन्द में ऐसे विशेष गुण हैं जो इन्हें दूसरों से अलग करते हैं। इनके हिन्दू धर्म सम्बन्धी विचार बहुत ठीक और उदार हैं। पंडित दयानन्द इस कपट के सच्चे मन से विरोधी हैं। जिनमें प्रोहित श्रेणी की मक्कारी ने हमारे सरल चित जन साधारण को धर्म के नाम पर फांस रखा है। अतः पंडित दयानन्द में प्रकृति

आदियोंराजत गुणों का दुर्लभ सम्मिलिन है। इसलिए यह देख कर हम सब को विशुद्ध प्रसन्नता हुई है। उन्होंने अपने जीवन को अपने देश के सुधार में लगाने का निश्चय किया है। और मूर्ति पूजा का दमन करने का व्रत धारण कर लिया है जो सभ्यता के मार्ग पर अग्रसर होने में रुकावट डालने और युक्ति विरुद्ध विचारों का उत्पत्ति स्थान है।

८. गुजरात (पंजाब) में एक दिन पंडित होशनाकराय ने कहा कि मनुस्मृति में मूर्ति पूजा का विधान है। महाराज ने कहा कि नहीं है. तब पंडित जी ने एक श्लोक पढ़ कर कहा—कि यह मनुस्मृति का श्लोक है, जिससे मूर्ति पूजा सिद्ध हुई है, इस पर महाराज ने कहा कि आप झूठ बोलते हैं। यह श्लोक मनुस्मृति का नहीं है अपितु विष्णु पुराण का है। इस पर पंडित जी शर्मिदा होकर चले गये।

१०६. बाल ब्रह्मचारी का संकल्प कभी निष्फल नहीं जाता

महाभारत युद्ध की समाप्ति पर मराराज युधिष्ठिर ने शर शैय्या पर पड़े ब्रह्मचारी भीष्म पितामाह जी से उपदेश प्राप्ति के लिये कितने ही प्रश्न किये, उन में से एक यह भी था कि "बाल ब्रह्मचारी की क्या पहचान है।" पितामह जी ने उत्तर दिया— "बाल ब्रह्मचारी का संकल्प कभी निष्फल नहीं जाता।"

इस कसौटी पर परखते हुए हम देखते हैं बाल ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द सरस्वती का कोई भी सकल्प निष्फल नहीं गया और उनके सारे ही सकल्प सफल हुए हैं।

१—महर्षि जी ने स्वराज की महिमा गाई, उसकी प्राप्ति के साधन बताए, और स्वराज की प्राप्ति होकर उनका यह पहला संकल्प पूरा हुआ।

२—सारे देश की एक भाषा हो, और वह हिन्दी ही हो। हमारे विधान ने ऐसा मान कर महर्षि का दूसरा संकल्प भो पूरा कर दिया।

३—छूत छात, ऊंच नीच का भेद भाव समाप्त करके सब को एक जैसा उन्नति करने का अवकाश मिलना चाहिए। देश के विधान ने महर्षि के तीसरे संकल्प को भी स्वीकार कर लिया।

४—छोटी आयु में विवाह नहीं होना चाहिए कानून बनाकर महर्षि के इस संकल्प पर भी फूल चढ़ाये गये।

५—एक स्त्री के होते हुए, पुरुष को दूसरे विवाह का अधिकार न हो। महर्षि का यह संकल्प भो पूरा हुआ।

६—सात वर्ष की आयु के बाद जो माता पिता अपने बच्चों को पाठशाला में न भेजें। उनको दण्ड दिया जावे। यह संकल्प भो कानून बन कर परा हो गया।

७—देश में पंचायत राज्य होना चाहिए। यह संकल्प भो महर्षि का ज्यों का त्यों पूरा हो गया। और देश में पंचायत राज्य चलाने का कानून बन चुका है।

८—देश में कल कारखाने खुलने चाहिएं। जिससे देश उन्नत हो। महर्षि का यह सकल्प भी सफल हो रहा है।

बोलो बाल ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द को जय

१०७. पूर्ण महात्मा

द्वन्दअतीत पूर्ण महात्मा होता है। द्वन्द कहते हैं जोड़े यानि सर्दी-गर्मी, दुख-सुख, भूख-प्यास, मान-अपमान। इन द्वन्दों को जो सहन कर लेता है, वह पूर्ण महात्मा कहा जाता है। सो महर्षि स्वामी दयानन्द जी सरस्वती के अन्दर इन द्वन्दों को सहन करने की अपार शक्ति थी, सर्दी-गर्मी, भूख प्यास, सुख-दुख इन सब को तो महर्षि बिल्कुल खातर में नहीं लाते थे, जो महापुरुष बर्फ़ से

से ढकी हुई पहाड़ों की चोटियों पर खूंख्वार जानवरों से भरे हुए जंगलात में वर्षों तक एकाएकी बिल्कुल अल्प वस्त्रों में और फिर पूरे छः वर्ष सिरफ एक लंगोटी में ही घूमता रहा हो, और जिसने भूख निवृत्ति के लिए कभी किसी के सामने हाथ न पसारा हो, भला इससे बढ़ कर भी कोई उसके द्वन्दातीत होने का प्रमाण मिल सकता है। बाकी रही मान अपमान की बात सो इस द्वन्द को सहन करने की भी पूर्ण शक्ति महर्षि में थी जो इनके जी निम्न घटनाओं से स्पष्ट हो रही है।

१. जब काशी शास्त्रार्थ में काशी के राजा और पंडितों ने मिल मिला कर महर्षि के किसी सवाल का जवाब देने की अपने में सामर्थ्य न पाकर हल्ला गुल्ला करके महर्षि की हार घोषित कर दी और फिर ईंट पत्थर जूते चला कर घोर अपमान किया तो उसी शाम को एक निर्मला साधू महाराज के पास आया, यह देखने के लिए कि इतन घोर अपमान का महर्षि पर क्या प्रभाव पड़ा है। परन्तु वह यह देखकर हैरान रह गया कि महर्षि ने इसके साथ इस घोर अपमान की बात तक न की और साधारण वार्तालाप इस से करते रहे। तब इस निर्मला साधू ने कहा कि पहले तो मैं आप को अजेय पंडित ही समझता था परन्तु आज मुझे विश्वास हो गया कि आप पूर्ण महात्मा भी हैं।

२. काशी में ही महर्षि से परास्त होकर पंडितों ने एक गधे पर एक व्यक्ति को भगवे वस्त्र पहना कर और गले में जूतियों का हार डालकर स्वांग बना कर, उस पर दयानन्द लिखकर, उसका जलूस बाज़ारों में निकला, महर्षि के एक भक्त ने महर्षिको इस घटना का वृत्तान्त सुनाया। तो ऋषि हंस कर कहने लगे, वह सब ठीक कर रहे हैं। "नकली दयानन्द" के साथ ऐसा ही सलूक होना चाहिए।

३. लाहौर निवास के समय जब पंडित लोग महर्षि के सामने न ठहर सके, तो वह दीवान रत्न चन्द जी के सुपुत्र दीवान भगवान दास के पास गये। जिसके बाग में महाराज ठहरे हुए थे, और कहा कि दयानन्द को ईसाईयों ने तनख्वाह देकर सब हिन्दुओं को ईसाई बनाने के लिए नीयत किया है, ऐसे नास्तिक को आपने बाग़ में ठहरा रखा है, इससे आपको घोर पातक लगेगा। दीवान साहब उनकी बातों में आ गये, और महर्षि को अपने बाग़ से निकाल दिया।

४. जब महाराज लाहौर पधारे तो उनके सब खर्च को ज़िम्मेदारी ब्रह्म समाजियों ने अपने ऊपर ली थी, और इसके लिए उन्होंने चन्दा भी किया था। दो सप्ताह तक तो वह सब खर्च करते रहे। परन्तु जब उन्होंने देखा कि महर्षि पर इनका रंग नहीं चढ़ता, और वह ब्रह्मसमाज के सिद्धान्तों का प्रचार नहीं करते, बल्कि उनका भी खण्डन करते हैं। तब उन्हों ने न सिर्फ आगे के लिए खर्च देना बन्द कर दिया। बल्कि पिछले दो सप्ताह के खर्च का बिल २५।-रुपया महर्षि जी से वसूल कर लिया।

५. एक ही दिन एक ही जगह मान अपमान करने वाली दोनों घटनाएं महर्षि के मान अपमान सहन करने की पूरी शक्ति का उदाहरण देती है। महादेव गोविन्द रानाडे आदि सुधारक सज्जनों ने महर्षि को पूना आवाहन किया। और महाराज ने वहां ५० व्याख्यान दिये। और वह सब व्याख्यान रानाडे महोदय ने पुस्तकार में छपवा दिये। १५ व्याख्यान जो शहर में दिये थे, थे, उनका हिन्दी अनुवाद उपदेश मंजरी के नाम से प्रकाशित हुआ था। पूना में अपना कार्य समाप्त करके स्वामी जी ने सितारा जाने की इच्छा प्रकट की। तब उनके श्रद्धालु भक्तों ने आपस में परामर्श करके यह स्थिर किया कि उनके प्रति अपने ऊपर किये उपकार

को प्रकट करने के लिए इन्हें समारोह पूर्वक शहर और छावनी में ले जाया जावे, और ५ सितम्बर १८७५ रविवार का दिन निश्चित किया गया और तदार्थ शहर और छावनी में तैयारियां शुरू कर दी गईं। स्वामी जी के समारोह यात्रा के लिए ३००) रुपये इकट्ठे किये गये। यह निश्चय हुआ कि ५ सितम्बर को पहले छावनी में महाराज का एक व्याख्यान कराया जावे, और तत्पश्चात समारोह यात्रा (जलूस) नगर को ले जाया जावे. सभा के लिए निमन्त्रण पत्र भेजे गये. और सभा गृह को फूल और पत्तों से खूब सजाया गया। जलूस के लिए देसी और अंग्रेज़ी बैण्ड बाजे मंगाये गये, कैम्प मजिस्ट्रेट से आज्ञा लेकर महाराज की सवारी के लिए हाथी मंगवाया गया, जिसको खूब सजाया गया, क्योंकि विपक्षियों की तरफ़ से दंगा फ़साद का भी खतरा था। इसलिए पुलिस का भी प्रबन्ध कर लिया गया। सम्वर्धन सभा संगठित हुई। श्रोताओं में हिन्दु, मुसलमान, पारसी, यहूदी, ईसाई सब ही मौजूद थे, स्वामी जी ने अपने व्याख्यान में "यथे मां वाचं कल्याणी मावदानी जनेभ्यः। इत्यादि वेद मन्त्र की व्याख्या की, व्याख्यान की समाप्ति पर श्री भाव भसके ने एक सुन्दर वक्तृता की जिस में महाराज के उपकारों का वर्णन करके उनके प्रति पूना निवासियों को कृतज्ञता प्रकट करके अन्त में कहा—स्वामी जी की व्याख्यान माला से सभी को लाभ हुआ है इसलिए कृतज्ञता प्रकट करने के चिन्ह स्वरूप हमें कोई उत्तम परिषद् इनको भेंट करना चाहिए और मैं आशा करता हूं कि स्वामी जी इसे ग्रहण करने की कृपा करेंगे।'

महाराज ने कहा यद्यपि मैं किसी परिषद् लेने को उद्यत नहीं हूं। परन्तु न लेने से आप लोग असन्तुष्ट होंगे, अतः मैं इसे स्वीकार करने में वाधित हूं। इसके अनन्तर एक जोड़ा शाल, एक पगड़ी, एक रेशमी पीताम्बर, और एक रेशमी चादर अत्यन्त श्रद्धा

से महाराज को भेंट किये, और सब श्रोताओं ने महाराज पर पुष्प वर्षा की, और उपस्थित लोगों में पान सुपारी बांटी गई और जलूस आरम्भ हो गया। महाराज ने हाथी पर सवार होना स्वीकार न किया, और वह अन्य मनुष्यों के साथ पैदल ही चल पड़। जलूस का क्रम ऐसा था कि सब के आगे हाथी था, उसके पीछे कोतल घोड़े, फिर पालोस के सिपाही, और उनके पीछे बैंड बाजे, और उसके पोछे महर्षि जी और उनके श्रद्धालु भक्त जिनकी संख्या ३००—४००, थी। यह थी सम्मान की परकाष्ठा।

६. अब निहारिये अपमान का परकाष्ठा, स्वामी जी का इस प्रकार सम्मान होने मे विपक्षी दल के हृदयों में इर्षा द्वेष की अग्नि जल उठी, और उनके सीने में इस मान से बरछियां चलने लगीं। तब उन लोगों ने परामर्श करके स्वामो जो के अपमान करने के निमित्त गर्धब समारोह यात्रा निकालो, एक गधे को सजाया गया, उस पर गेरवे रंग की चादर जैसी की स्वामो जी पहना करते थे भूल डाली, और उस पर गर्धबानन्द सरस्वता के शब्द लिखे और उसके आगे बाजे बजाते हुए "गधबानन्द सरस्वती की जय," "दयानन्द गधे की जय" बोलते हुए पूना नगर के बाजारों में घूमने लगे, शहर के सब लुच्चे, लफ़ंगे, गुण्ड, बहुत बड़ो संख्या में विपक्षी दल के इस जलूस में शामिल हुए। स्वामी जी की समारोह यात्रा ५ बजे सायंकाल कैम्प से चलकर नगर में पहुंच कर भवानो पोठ, गणेश पाठ, आदित्य वार पोठ, बुधवार पोठ में से होती हुई भिड़े के बाड़े की ओर जहां स्वामी जी का व्याख्यान होने को था जाने लगी तो साढ़े सात बजे गये थे, दूसरी तर्फ़ से विपक्षियों का जलूस भी पहुंच गया। और 'स्वामी गधे की जय' 'दयानन्द गधे की जय' बोलना आरम्भ कर दिया, तब गधे को पुलोस के हवाले करा दिया गया, फिर विपक्षी दल ने मिशालें बुझा दीं और स्वामो जो और उनके श्रद्धालुओं पर ईंट, पत्थर, गोबर, कीचड़ फैंकना

आरम्भ कर दिया। गली के मकानों की छतों से ईंटें बरसने लगीं। और कई लोगों को चोटें भी लगीं। इस हुलड़ बाज़ी में रात के दस बज गये, पोलीस वाले खड़े खड़े तमाशा देखते रहे। उन्होंने उपद्रव को शान्त करने का कोई भी उपाय न किया। तब किसी ने पुलिस कप्तान को खबर कर दी, और वह एक इन्सपैक्टर और १०० सिपाही लेकर उपद्रव स्थल पर पहुंच गये। परन्तु इतना बड़ा भारी उपद्रव होते हुए भी इतनी भीड़ में से सिर्फ़ एक व्यक्ति गिरफ़्तार किया गया। उपद्रव शान्त होने पर भी गर्दभ दल के लगभग १००० मनुष्य वहां खड़े रहे। उपद्रव समाप्त होने पर स्वामी जी उस मकान में पहुंच गये जहां उनका व्याख्यान होना था। और उन्होंने व्याख्यान दिया। परन्तु अपने उपरोक्त घोर अपमान का उन्होंने कोई ज़िकर तक न किया। उनका स्वर पहले की भान्ति मधुर, गम्भीर, और स्पष्ट था। श्रोतागण महर्षि का व्याख्यान सुनने के लिए इतने लालापत थे कि इतना बड़ा भारी उपद्रव होने पर भी व्याख्यान स्थल श्रद्धालुओं से भर गया था, व्याख्यान की समाप्ति पर बहुत से विद्वान पुरुषों ने महाराज की भूरि भूरि प्रशंसा की। महादेव गोविन्द रानाडे, ने सभा की ओर से २५० रुपया वेद भाष्य की सहायता के लिए स्वामी जी को भेंट किये। इस समय रात के बारह बज गये थे। ट्रेन साहब इन्सपैक्टर ने, जो व्याख्यान स्थल में उपस्थित थे, कहा कि आज की रात आप इसी जगह व्यतीत करें क्योंकि बाहर जाने पर आप पर आक्रमण होने की सम्भावना है। तब स्वामी जी ने कहा कि आप का काम रक्षा करना है। आप अपना काम करें, हम तो अपने निवास स्थान पर ही जाकर आराम करेंगे। इस पर पुलिस विवश होकर स्वामी जी के साथ गई, और उनको निवास स्थान पर पहुंचा आई।

विरोधी दल से जो इस समय तक बाज़ार में डटा खड़ा था।

पोलीस और स्वामी जी पर ईंट पत्थर बरसाए। पूना शहर की इन दोनों घटनाओं से ज्ञात होता है कि स्वामी जी महाराज में मान अपमान सहन करने की कितनी सहन शक्ति, साहस, निपुल वीर्य, दृढ़ संकल्प, निश्चिल निर्भीकता के गुण थे। वह चट्टान की तरह अटल थे। जिस से टकरा कर विरोध की लहरें छिन्न भिन्न हो जाती थीं।

६. बम्बई के विष्णु परशुराम शास्त्री जी जब महर्षि के प्रश्नों का उत्तर देने में असमर्थ रहे तब उन्होंने अखबारों में स्वामी जी पर मिथ्या दोषारोपण करने के इलावा उनको अवधूत, धूरत, और असत्यवादी आदि आदि कुवाक्य लिखने आरम्भ कर दिये। परन्तु महाराज ने इनकी तनिक भी परवाह न की।

७. महर्षि को प्रचार काल में बीसियों आदमियों ने गालियां निकालीं। कई जगह ठहरने वाले स्थानों से निकाले गये। ईंट पत्थर लाठियां लोगों ने मारी, वृन्दावन में एक आदमी ने मुट्ठी में खाक भर कर महर्षि के सिर पर डाल दी। यह सब तरह के अपमान महर्षि हंसते हंसते सहन करके, संसार के दुखी प्राणियों को वेद का पवित्र सुख और शान्ति दायक मार्ग दिखलाते ही चले गये। इतने घोर अपमानों के अतिरिक्त भी अपने पूज्य गुरु जी से जो प्रतिज्ञा वैदिक धर्म प्रचार की, की थी, वह आखिरी सांस देकर भी पूरी की।

बोलो पूर्ण महात्मा महर्षि दयानन्द की जय ॥

१०८. पूर्ण धर्मात्मा

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

भगवान् मनु ने धर्म के दश लक्षण बतलाये हैं। वे ये हैं :—

१. धृति—सदा सुख में, दुख में, भले में, बुरे में धैर्य रखना।

२. क्षमा—सदा मानापमान, हानि-लाभ, स्तुति-निन्दा आदि में सहनशीलता रखना।

३ दम—ज्ञान और कर्म इन्द्रियों तथा मन को सदैव भले कामों कामों में प्रवृत्त रखना और पथभ्रष्ट न होना।

४. अस्तेय—चोरी न करना, दूसरे के धन तथा अन्य पदार्थों को बिना उसकी आज्ञा के तथा कपट-छल से लेना चोरी है और ऐसा न करना अस्तेय है। पर-द्रव्य का लोभ न करना अस्तेय है।

५. शौच—मन, वाणी तथा कर्म की पवित्रता शौच है। शरीर को जल आदि से शुद्ध रखना और मन और वाणी से किसी का बुरा चिन्तन और सम्बोधन न करना शौच है।

६. इन्द्रियनिग्रह—दस इन्द्रियों को सदा धर्म में लगाए रखना और उन्हें पाप से दूर रखना ही इन्द्रिय निग्रह कहलाता है।

७. धी—मद्य, मांस तथा अन्य बुद्धिनाशक पदार्थों से परहेज़ करना, कुसंगत से दूर रहना और शुद्ध बुद्धि रखना तथा शरीर-पोषक पदार्थों का सेवन, स्वाध्याय तथा महात्माओं की संगत में रहना, सन्ध्या-हवन तथा प्रभु की स्तुति-प्रार्थना से बुद्धि को पवित्र बनाना धी है।

८. विद्या—परा तथा अपरा विद्या का अध्ययन करना, ब्रह्मा से जैमनि पर्यन्त ऋषियों के ज्ञान का प्राप्त करना और अविद्या से सदैव दूर रहना विद्या कहलाता है।

९. सत्य—जो जैसा बात हो, उसको वैसा ही समझना, वैसा ही वाणी पर लाना और वैसा ही कर्म में प्रयोग करना सत्य है। किसी दशा में भी इस नियम का परित्याग न करना चाहिए।

१०. अक्रोध—किसी दशा में भी क्रोध न करना, सदैव

सहनशील रहना और शान्ति को हाथ से न छोड़ना ही अगाध है।

महर्षि जी ने धर्म के सब अंगों को पूर्ण रूप अपने जीवन में धारण किया हुआ था जो इस पुस्तक में पाठक पढ़ेंगे।

१०६. पूर्ण भक्त

महर्षि दयानन्द परमात्मा के परम भक्त थे योग समाधि उन को सिद्ध हो चुकी थी और प्रचार कार्य करते हुए भी महर्षि रात्रि को तीन बजे के करीब उठ कर परम पिता परमात्मा का ध्यान किया करते थे। जिस दिन शास्त्रार्थ करना होता था, उस दिन कुछ अधिक समय प्रभु चिन्तन में लगाया करते थे, प्रभु भक्ति से भक्त को अभीष्ट फल मिलता है। यह सभी आस्तिक लोग स्वीकार करते हैं आस्तिक लोगों में कई ऐसे हैं जो यह मानते हैं। कि प्रभु भक्ति का फल मिलता है. परन्तु परलोक सम्बन्धि, जैसे दूसरे जन्म में अच्छी योनी मिलनी, अच्छे आदमियों के घर पैदा होना या स्वर्ग की प्राप्ति, बहिशत का मिलना, मोक्ष प्राप्ति अर्थात नजात का मिलना, आदि आदि। दूसरी विचारधारा के कई ऐसे लोग भी हैं, जो प्रभु भक्ति का फल केवल संसारिक सुख सम्पति-स्त्री पुत्र, नौकर चाकर की प्राप्ति मानते हैं। परन्तु परम भक्त दयानन्द प्रभु भक्ति का फल लौकिक और परलौकिक दोनों स्वीकार करते हैं। उन का विचार है कि इस लोक तथा परलोक के जो भी सुख या पदार्थ अभीष्ट हैं, सच्चे हृदय से तथा अटल विश्वास और श्रद्धा पूर्वक भक्ति करने वाले भक्त को वह अवश्य मिलते हैं। अतः उन्होंने संन्ध्या के पहले मन्त्र—

शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये शंयोरभि स्रवन्तु नः

में आये हुए अभीष्ट पद का अर्थ किया है, अभीष्ट सुख की प्राप्ति।

महाराज ने पूना शहर में बहुत से व्याख्यान दिये, जिन में से

१४ व्याख्यान की पुस्तक उपदेश मंजरी के नाम से छपी हुई है। इन में एक व्याख्यान प्रभु भक्ति पर भी था। इस में ऋषि ने हम ईश्वर भक्ति क्यों करें का बड़ा सुन्दर विवेचन किया है। महर्षि ने ईश्वर भक्ति के आठ फल बताये थे, यदि हम प्रभु की उपासना करते हैं तो माता पिता से भी ज्यादा उस परम हितकारी प्रभु के प्रति अपनी कृतज्ञता का प्रकाश करते हैं। अगर हम उस दयालु परमात्मा की उपासना नहीं करते और उस के गुनानुवाद नहीं गाते तो हम कृतघ्न बनते हैं। भला जिस ईश्वर ने सृष्टि और सृष्टि के सब पदार्थ हमारे लिए ही बनाए हैं तो उस के अनन्य उपकारों को भूलना नहीं चाहिए। कृतज्ञता प्रकट करने के लिए हमें उस को भक्ति अवश्य करनी चाहिए।

२. प्रभु भक्ति करने वाले का सब के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने वाला होता है वह सदैव प्रसन्न चित्त और शान्त रहता है। इसे दुख और चिंता नहीं सताते, क्योंकि अहसान मानने वाले मनुष्य का कोई भी अनिष्ट या अहित नहीं चाहता।

३. जो मनुष्य नित्य प्रति प्रभु भक्ति के द्वारा उसके चरणों में लीन रहता है, उसका आत्मा दिन प्रतिदिन निर्मल होता जाता है। और आत्मा के मल विक्षप आदि दोष दूर होके एक दिन भक्त अत्यन्त निर्मल और पवित्र बन जाता है।

४. जो भक्त प्रभु के दरबार में दीन होकर अपने सारे दोषों और अपराधों को प्रकट करता है और उन के लिए पश्चाताप करता है, उस के सब दोष और दुर्गुण एक न एक दिन दूर हो ही जाते हैं। पाप की वासना नष्ट हो कर मन के मल धुल जाते हैं। महर्षि फ़रमाते हैं कि पाप वासना के नष्ट करने का प्रभु भक्ति से बढ़ कर और कोई उपाय नहीं है।

५. प्रभु भक्त में सत्य और प्रेम का निवास हो जाता है।

सच्चिदानन्द का चिन्तन करने से उपासक का जीवन भी सत्यमय बन जाता है। वह कभी भूल कर भी असत्य का आचरण नहीं करता और वह प्राणी मात्र से प्रेम करने लग जाता है। कभी भूल कर भी किसी से द्वेष या वैर भाव नहीं रखता और न ही वह कभी अप्रिय आचरण करता है। उस का स्वभाव ही प्रेममय बन जाता है।

६. ईश्वर भक्ति करने से ईश्वर में प्रीति बढ़ती है और ज्यों-ज्यों प्रभु के गुण हमारी समझ में आते जाते हैं त्यों त्यों प्रीति अधिक बढ़ती जाती है।

७. उपासना के द्वारा आत्मा में सुख और शान्ति का प्रादुर-भाव होता है।

८. उपासना से विवेक उत्पन्न होता है और विवेकी होने से क्षणिक वस्तुओं में शोक और मोह यह नहीं होते। सत्य असत्य और नित्य अनित्य की पहचान उस को हो जाती है और वह असत्य और अनित्य वस्तुओं में आसक्त नहीं होगा।

११०. पूर्ण त्यागी

१—अपने माता पिता सगे सम्बन्धियों का त्याग।

२—अपने माता पिता की सुख सम्पत्ति से भरे घर का त्याग।

३—भरी जवानी में होने वाली स्वभाविक कामनाओं का त्याग।

४—हर प्रकार के मोह ममता का त्याग।

५—गुरु विरजानन्द को समावर्तन के समय लोगों की भेंट देते हुए क्या पता महर्षि के मन में क्या क्या विचार थे और वह क्या बनना चाहते थे, परन्तु गुरु जी के जीवन दक्षिणा मांगने पर एक दम अपनी सब भावनाओं का त्याग करके गुरु चरणों में सीस भेंट कर दिया।

६—परमानन्द का त्याग करके त्याग की पराकाष्ठा पूर्ण कर दी।

जिस परमानन्द की प्राप्ति के लिए १४ वर्ष निरन्तर घोर तपस्या की और उसको प्राप्त कर लिया, निरन्तर ७२ घण्टे की समाधि लगा कर परमानन्द में मग्न रहना सीख लिया उस परमानन्द को भी सर्व साधारण की उन्नति के लिये त्याग दिया। क्या होता है वह परमानन्द। कितना ऊंचा है उसका स्थान उसकी व्याख्या तैतरीय उपनिषद के आठवें अनुवाक में इस प्रकार की गई है।

७—यह आनन्द की मीमांसा आनन्द का वर्णन है।

१—मनुष्य श्रेष्ठ, युवा तथा विद्वान हो, पुरषार्थी वा सुशिक्षित हो, सुदृढ़ वा अतिशय बलवान हो, उसके यह सारो पृथ्वी धन से पूर्ण सारी भूमि मिल जावे। यह एक मानुषीय आनन्द है। यह एक मनुष्य सम्बन्धि सुख है।

२. वह जो सौ मनुष्य का आनन्द है उनके बराबर वह एक मनुष्य गन्धर्वों का आनन्द है। युवा, श्रेष्ठ, पुष्ट, उद्यमी, सुदृढ़ अंगी। महा धनाढ्य मनुष्य का आनन्द सौ गुणा किया जाये ता उतना आनन्द संगीत, नृत्य निपुण मनुष्य को होता है। पर उस मनुष्य गन्धर्व को यह आनन्द होता है जो वेद का विद्वान हो और कामना के वशीभूत न हो।

३—वह जो सौ मनुष्य गन्धर्व के आनन्द हैं उनके बराबर वह एक देव गन्धर्व का आनन्द हैं। देव गायकों का सुख, पर वह वेद का विद्वान और कामना रहित हो।

४—वह जो सौ गन्धर्वों के आनन्द हैं उनके बराबर एक पितर लोक वासी पितरों का आनन्द है। पर वह पितर वेद का विद्वान और कामना रहित हो।

५—वह जो पितरों के सौ आनन्द हैं, उनके बराबर वह एक आनन्द है। अजानज ज्ञानज देवों का आनन्द है। वह देव वेद का विद्वान और कामना रहित हो।

६—वह जो सौ अजानज ज्ञानज देवों के आनन्द हैं। उनके बराबर एक आनन्द कर्म देव का आनन्द है। कर्म देव वह हैं जो कर्म से देवत्व को प्राप्त होते हैं। (कर्मयोगी) पर वह कर्म देव वेद का विद्वान और कामना रहति हो।

७—वह जो कर्म देवों के सौ आनन्द है उनके बराबर वह एक देव का आनन्द है। जो देव ज्ञानी कामना रहित हो।

८—वह जो सौ देवों का आनन्द है, इसके बराबर वह एक इन्द्र का आनन्द है। वह इन्द्र ज्ञानी हो और कामना रहित हो।

९—वह जो इन्द्र के सौ आनन्द हैं। उनके बराबर एक बृहस्पति का आनन्द है। वह ज्ञानी और कामना रहित हो।

१०—वह जो बृहस्पति के सौ आनन्द है। उनके बराबर एक प्रजापति का आनन्द है। पर वह ज्ञानी और कामना रहित हो।

११—वह जो प्रजापति के सौ आनन्द हैं, उनके बराबर एक ब्रह्मा का आनन्द है। पर वह ज्ञानी और कामना रहित हो।

१२—ऊपर के पाठ से ब्रह्मा से तात्पय ब्रह्मवेता तथा ब्रह्मलीन से है। यह आनन्द की ऊंची कोटी है।

१३—वह जो यह ब्रह्मा समाधि गत पुरुष में है, और वह जो आदित्य वर्ण भगवान में है वह एक ही है। ब्रह्मा ज्ञानी और ब्रह्मा की आनन्दावस्था में समता है।

१४—वह जो ज्ञानी आनन्द धाम ब्रह्मा की महत्ता को उक्त प्रकार से जानता है। वह इस लोक से मुक्त हो कर इस अन्तमय शरीर के आत्मा को पा लेता है। इस प्राणमय आत्मा को पा लेता है। वह इस मनोमय आत्मा को पा लेता है। वह इस आनन्दमय

आत्मा को पा लेता है। इस पर यह श्लोक है—

इस ब्रह्मानन्द की महिमा को गान करते हुए एक भक्त ने फारसी में एक शेयर कहा है। जो ब्रह्मानन्द की ऊंची कोटि का वर्णन कर रहा है। जिसका अर्थ निम्नलिखित है।

अर्थात—तीस वर्ष के बाद ये मुझ को साक्षात अनुभव हुआ है कि एक मिनट भी ब्रह्मालीन होने का जो आनन्द है। वह सुलेमान की बादशाही के आनन्द से बेहतर है। कहते हैं हजरत सुलेमान जमीन, पानी, हवा का बादशाह था। गोया इस भक्त का ईशारा है कि तीनों लोकों की बादशाही से भी एक मिनट की ब्रह्मलीनता में जो आनन्द है वह बड़ा है) सो आनन्द की प्राप्ति के लिए जो गुण उपनिषद् कार ने लिखे हैं वह सब ही महर्षि में विद्यमान थे। महर्षि ब्रह्मज्ञानी और कामना रहित थे। उन्होंने ब्रह्मानन्द को प्राप्त कर लिया था। परन्तु सर्व साधारण के कल्याण के लिए इस ब्रह्मानन्द का भी त्याग कर दिया।

अहो कितना महान त्याग है, त्याग की पराकाष्ठा है, त्याग की पूर्णता है।

१—महर्षि के एक भक्त ने कहा कि महाराज आप इन संसारिक झगड़ों में न पड़ते तो अनायास ही मुक्ति प्राप्त कर लेते क्योंकि आप में ऐसे ही गुण विद्यमान हैं। तब महाराज ने इस भक्त को कहा—मैं अकेला मुक्ति लेकर क्या करूंगा जब जन साधारण उल्टे मार्ग पर चल कर महा कष्ट भोग रहे हैं। मैं तो सब को ही मुक्ति का रास्ता दिखलाना चाहता हूं। मैं अकेला मुक्ति लेना नहीं चाहता।

१११. पूर्ण विवेकी राज हंस

राजहंस पक्षी का यह गुण प्रसिद्ध है, कि उसके सामने यदि दूध और पानी मिलाकर रखा जावे, तो वह दूध पी लेता है, और

पानी छोड़ देता है, अथवा दूध और पानी मिले हुए में से दूध का दूध और पानी का पानी कर देता है। और इसी गुण को यदि मनुष्य धारण करले तो उसे विवेक गुण कहा जाता है। सो महर्षि राजहंस की भान्ति पूर्ण विवेकी थे। वैदिक साहित्य में अहिंसा और हिंसा का दूध और पानी की तरह मिलाप हो रहा है। और उस अहिंसा और हिंसा के मिलाप को कोई पूर्ण विवेकी ही पृथक पृथक कर सकता है। महर्षि जी से पहले आने वाले बहुत से आचार्यों ने अर्थात बुद्ध और जैन आचार्यों तो अहिंसा परमोधर्म का नारा लगा कर अहिंसा और हिंसा में कोई विवेक न कर सके. और फिर शंकराचार्य जैसे महापुरुष भी, कीड़ों तक को भी मारने का परहेज बता कर उसी डगर पर चलते रहे और अहिंसा तथा हिंसा के विवेक न होने के कारण हमारा यह देश एक हजार वर्ष तक विदेशियों की परतन्त्र की जंजीरों में जकड़ा रहा और अब हजारों वर्षों के बाद महर्षि दयानन्द ही ऐसा पूर्ण पुरुष हुआ है जिसने राजहंस की भान्ति अहिंसा और हिंसा का विवेक करके इन दोनों के वास्तविक स्वरूप को भारत में प्रचारित कर इस मुर्दा जाति के अन्दर जीवन का संचार किया; और हजारों वर्षों से लुप्त प्राय क्षात्र धर्म को उजागर कर के इस देश को आजाद कराने का प्रोग्राम बनाकर देश की स्वतन्त्रता के स्वप्न को पूरा कर दिया।

२—वेदों में बहुत से मन्त्र ऐसे हैं जो सकल संसार के साथ मित्रता का उपदेश करते हैं। जैसे "मित्रस्य चक्षुषा, समिक्षामहे या सर्वाआशा मम मित्रं भवन्तु" परन्तु वेद में ऐसे मन्त्र भी बहुत हैं, जहां शत्रुओं को, दुष्टों को, आततताईओं को, मार डालने को भी स्पष्ट आज्ञा पाई जाती है। इस प्रकार मनुस्मति आदि धर्म ग्रन्थों में दोनों ही किसम के श्लोक लिखे मिलते हैं, ऐसी सूरत में अहिंसा और हिंसा का जो मिश्रण वैदिक साहित्य में पाया जाता है, इसमें से किस समय हिंसा धर्म है, और किस समय अहिंसा धर्म है, इसका

विवेक हजारों वर्षों के बाद महर्षि दयानन्द जी महाराज ने किया—अतः सत्यार्थ प्रकाश के दशम सभुल्लास में स्पष्ट लिखा है "कि जो हानिकारक पशु अथवा मनुष्य हों। राजा उनको दण्ड देवे। और प्राण से भी विमुक्त कर दे।" सत्यार्थ प्रकाश के छठे समुल्लास में मनुस्मृति के श्लोक लिखकर स्वामी जी लिखते हैं, "चाहे गुरु पुत्रादि बालक हों, चाहे पिता आदि वृद्ध, चाहे ब्राह्मण, चाहे बहुत शास्त्रों का श्रोता क्यों न हो, जो धर्म को छोड़ कर अधर्म में वर्तमान होकर दूसरे को बिना अपराध मारने वाले हों, उनको बिना विचारे मार डालना चाहिए, दुष्ट पुरुषों के मारने में हन्ता को कोई पाप नहीं होता। इस प्रकार वेद और शास्त्रों का मन्थन कर महर्षि जी ने अहिंसा और हिंसा का पूर्ण विवेक कर दिया और आर्य समाज का सांतवां नियम बना कर के "सब के साथ प्रीति पूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए" समुद्र को कूजे में बन्द करके अपने को राजहंस यानि पूर्ण विवेकी सिद्ध कर गये।

११२. देश हितैषी

अगर देश हितैषी हमें न जगाता।
तो देशोन्नति का किसे ध्यान आता॥

महर्षि दयानन्द जी महाराज के मन में आर्यावर्त के लिए असीम दया भरी हुई थी। उन्होंने ब्रह्मानन्द जैसे उपलब्ध आनन्द को आर्यावर्त के उपकारार्थ त्याग कर दिया था और संसारिक कष्ट क्लेशों में पड़ना स्वीकार किया था। आर्यावर्त के प्रति उन का हृदय करूणा से इतना कोमल हो गया था कि वह इस के सम्पूर्ण दुखों को दूर करना चाहते थे। जब कभी देश की दुर्दशा सूचक कोई घटना उन के सन्मुख आ जाती, तो उन का हृदय रो उठता और वह इस पर दुख मानते थे, एक दिन महाराज ने कहा था कि

कुछ काल से परदेसी राजाओं ने हमारे देश का इतना धन हरण कर लिया है कि यह सर्वथा धनहीन हो गया है, किन्तु इस देश की वसुन्धरा इतनी उपजाऊ है कि स्वराज्य पाने से थोड़ी ही देर में इस देश को पुनः धन धान्य से मूरित कर देगी।

२. दानापुर में एक रात्रि को महाराज उठ कर इधर उधर टहलने लगे, इनके पाँव की आहट पा कर एक कर्मचारी की आँख खुल गई। उसने पूछा महाराज कोई कष्ट है, महाराज ने लम्बी साँस लेकर कहा—कि ईसाई लोग दलितों को ईसाई बनाने का भरसक यत्न कर रहे हैं और रुपया पानी की तरह बहा रहे हैं। इधर हिन्दुओं के धर्म नेता हैं जो कुम्भकर्ण की नींद सो रहे हैं। यही चिन्ता मुझे विकल कर रही है। किसी शायर ने ठीक कहा है।

इक टीस जिगर में उठती है इक दर्द सा दिल में होता है।
हम रात को उठ कर रोते हैं, जब सारा आलम सोता है॥

३. काशी में एक दिन पंडित हरिश्चन्द्र ने कहा कि आपके खंडन से विरोध बढ़ता है। तो महाराज ने समझाया कि मेरा उद्देश्य सब को ऐसे आपस में मिलाना है, जैसे जुड़े हुए हाथ हैं कोल से ब्राह्मण तक मैं जातीयता की ज्योति जगाना चाहता हूँ। मेरा खण्डन देशहित और सुधार के लिए है।

४—एक जगह एक अंगरेज़ कलैक्टर स्वामी जी का व्याख्यान सुनकर कहने लगा कि अगर लोग आपके कहने अनुसार चलने लगें तो हमें तो भारत छोड़ना पड़ेगा।

५. बम्बई में एक पेन्शनर ब्राह्मण जो कुछ संस्कृत भी जानता था, स्वामी जी के पास आया, महाराज ने इससे कहा—कि देखो तुमने ब्राह्मण कुल में जन्म लिया है और तुम्हारी पेन्शन भी हो गई है। ऐसे वक्त में आपको देशहित के काम में लग जाना चाहिए।

आज कल ईसाई लोग कोल, भील औरगोण्ड आदि जातियों को ईसाई बना रहे हैं। आप को इन्हें ईसाई होने से बचाना चाहिए। परन्तु वह न माना।

स्वामी जी के देश सुधार कार्य में धार्मिक, सामाजिक, शारीरिक, आर्थिक, राजनैनिक शिक्षा सम्बन्धी सब प्रकार का सुधार सम्मिलित थे, वह चाहते थे कि आर्य जाति और आर्यवर्त सब प्रकार से उन्नति के शिखर पर पहुंचे।

६—उदयपुर में एक दिन पाण्ढया मोहनलाल ने महाराज से प्रश्न किया कि भारत का पूर्ण हित और जाति उन्नति कब होगी। महाराज ने जो उत्तर दिया था उसका सार यह है कि "एक धर्म, एक भाषा, और एक लक्ष्य बनाये बिना ऐसा होना दुश्कार है। इस लिए मैं चाहता हूं कि देश के राजा गण अपने राज्य में धर्म भाषा और भाव में एकता उत्पन्न करें। पंडित मोहन लाल ने इस पर आपत्ति की कि जब आप का उद्देश्य एकता उत्पन्न करने का है तो आप मत-मतान्तरों का खण्डन क्यों करते हैं। इससे तो न इत्फ़ाकी बढ़ती है, महाराज ने उत्तर दिया कि धर्माचार्यों और नेताओं की असावधानी और प्रमाद से जाति के आचार व्यवहार, रहन सहन, दूषित हो जाते हैं और भाव एक नहीं रहते। आर्य जाति की यही दशा हुई है, उसे सम्भाला न गया तो यह नष्ट हो जायेगी, धर्मचार्यों के प्रमाद के कारण करोड़ों मुसलमान हो गये। अब ईसाई हो रहे हैं, यदि जाति को कड़वे उपदेशों के कोड़े से जगाया न गया और कुरीतियों, कुनीतियों, को नष्ट न किया गया, तो इसकी मृत्यु में सन्देह नहीं है। मैं यह काम किसी स्वार्थ से तो कर नहीं रहा। इस के कारण मैं कष्ट सहता हूं। गालियां और ईंट पत्थर खाता हूं। विष तक भी मुझ को दिया जा चुका है। परन्तु जाति और देश हित के लिए सब कुछ सहन कर रहा हूं।" महाराज के वचन सुन कर

गद् गद् हो गये, और निहायत श्रद्धा भक्ति से कहने लगे कि यदि दो चार धर्माचार्य भी आप के विचार के हों, तो अल्प अल्प समय में ही आर्य जाति का बेड़ा पार हो सकता है।

११३. निष्कलंक

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के जीवन में उन पर उनके विरोधियों ने कितने ही कलंक लगाने की कोशिश की। परन्तु महर्षि जी पूर्ण ब्रह्मचारी, पूर्ण योगी और ईश्वर के परम भक्त होने के कारण विरोधियों के भरपूर यत्न करने पर भी निष्कलंक जीवन ही बिता गये। जिस समय महर्षि जी ने भौतिक देह का त्याग कर ब्रह्मलोक को प्रस्थान किया तो रावलपिंडी का एक ब्राह्मण यह समाचार सुनकर ज़ार ज़ार रोने लग गया. लोगों ने पूछा कि जब महर्षि यहाँ आए थे तो आप उन का सब से अधिक विरोध करते थे और उनको अपना सब से बड़ा दुश्मन समझते थे, परन्तु अब जब कि वह इस संसार से चले गये तोआप ज़ार ज़ार रो रहे हैं। अतः आप को तो प्रसन्न होना चाहिए था कि आप का शत्रु चला गया। इस पर वह ब्राह्मण कहने लगा, मैं इसलिए नहीं रोता कि दयानन्द मर गया है बल्कि मैं तो इस लिए रोता हूं कि वह निष्कलक मर गया है, और अब उसके बाद उसका लगाया हुआ पौदा आर्य समाज और उसके ग्रन्थ जब तक सूरज चांद है पाखण्ड का खण्डन करते रहेंगे। और हम कोई जवाब न दे सकेंगे। "परन्तु दुश्मन बात करे अनहोनी," की लोकोक्ति के अनुसार महर्षि के जीवन पर घृणित से घृणित कलंक लगाने की चेष्टा उनके शत्रु करते रहे, परन्तु भगवान अपने भक्त की हर समय रक्षा करते रहे। किसी कवि ने ठीक कहा है—

"जा को राखे साईयां मार सके न कोय,
बाल न बांका कर सके जो सब जग वैरी होय।

१—जब जब उनके विरोधी उनकी युक्तियों का कोई उत्तर न दे सकते थे, और उनके सामने अपने आप का हर तरह असमर्थ पाते थे तो यह मशहूर करते थे कि यह तो अंग्रेज़ों ने हिन्दुओं को ईसाई बनाने के लिए एजन्ट रखा हुआ है। परन्तु जब महर्षि अंजील का पुर ज़ोर खण्डन करते तो विरोधियों का यह हथियार बिल्कुल निकम्मा हो कर रह जाता था।

२—काशी के पंडितों ने एक दुष्टा स्त्री को महर्षि के पास भेज कर कलंक लगाना चाहा परन्तु महर्षि उनकी चाल को भांप गये। और पंडित लोग इस बार भी महर्षि को कलंक लगाने में असफल रहे।

३—मथरा के पण्डों ने तो महर्षि को बदनाम करने के लिए सब हथियार बर्ते। पहले एक वेश्या को लालच देकर भेजा जिसका वर्णन "अर्जुन" शीर्षक में दिया गया है।

४—जब मथरा के पण्डों का वेश्या भेज कर महर्षि को कलंकित करने का प्रयत्न असफल रहा तब उन्होंने एक कसाई और एक शराब बेचने वाले को तैयार किया। कि वह स्वामी जी के व्याख्यान स्थल पर जाकर उनको बदनाम करें। जिसका वर्णन निम्नलिखित है। "अतः यह दोनों दुष्ट आत्मा वहां पहुंचे जहां महर्षि व्याख्यान दे रहे थे। और ऊंची आवाज़ में शोर गुल करके कहने लगे बाबा हमारे शराब मांस के दाम तो दीजिए। स्वामी जी ने हंस कर कहा—बहुत अच्छा, व्याख्यान के बाद तुम्हारा हिसाब भी चुका दूंगा। व्याख्यान के बाद स्वामी जी ने दोनों को अपने पास स्टेज पर बुलाया कि आओ आप का हिसाब करके आप को दाम देवें। जब वह दोनों स्टेज पर पहुंचे तो महर्षि एक हाथ से एक का और दूसरे हाथ से दूसरे का सिर पकड़ कर एक दूसरे के साथ टकराने लगे, और कहा कि बतलाओ तुम्हारे कितने कितने दाम हैं। जब एक दो टकरें दोनों के सिरों में महर्षि ने लगाईं तब उनके

होश ठिकाने हुए और हाथ जोड़ कर क्षमा मांगी, और कहा कि हम को अमुक पुरुषों ने सिखला पढ़ा कर आप को कलंक लगाने को भेजा था। दयालु दयानन्द ने उनको छोड़ दिया और क्षमा प्रदान कर दी।

११४. निष्कलंक कर गया

महर्षि जहां स्वयं निष्कलंक जीवन बिता गये, वहां उन्होंने पूर्वज ऋषि मुनियों पर लगे हुए कई कलंक धोकर उनके उज्ज्वल स्वरूप संसार के सामने रखे।

१—भगवान कृष्ण पर जितने कलंक उनके भक्तों की तर्फ़ से लगाये जाते हैं और श्रीमद् भागवत पुराण में उनके जीवन को जिस घिनावने तरीके से कलंकित किया गया है, इस का उदाहरण संसार भर में नहीं मिलता। ईसाई और मुसलमान प्रचारक भगवान कृष्ण पर चीर हरण, राधा रमन, गोपी वल्भादि लगे आरोपों को लेकर हिन्दुओं को अपने पूर्वजों के जीवनों से घृणा उत्पन्न कर अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं। और हज़ारों लाखों हिन्दु भगवान कृष्ण पर लगाए इन कलंकों को ठीक समझते हुए ईसाई और मुसलमान बनते रहे हैं। परन्तु महर्षि जी महाराज ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि "कृष्ण जी का जीवन चरित्र महाभारत में आप्त पुरुषों जैसा लिखा है कि उन्होंने जन्म से मरण पर्य्यन्त कोई अधर्म का काम नहीं किया।"

२—पुराणों में एक कथा आती है कि प्रजापति अपनी लड़की के पीछे भागा और उसको गर्भवती कर दिया। इससे कितना भयानक कलंक हमारी सभ्यता पर आता है। परन्तु महर्षि जी ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में इसका निराकरण अत्यन्त उत्तम रीति से करके हमारी प्राचीन सभ्यता पर लगे इस कलंक को बिल्कुल साफ़ कर दिया। महर्षि लिखते हैं—

"प्रजापति कहते हैं, सूर्य को और उसकी दो कन्याएं हैं। एक प्रकाश दूसरी ऊषा, क्योंकि जो जिससे उत्पन्न होता है, वही उसकी सन्तान कहलाता है। इसलिए उषा जो कि तीन चार घड़ी रात्रि शेष रहने पर पूर्व दिशा में लाली दिखाई देती है वह सूर्य की किरण से उत्पन्न होने से इसकी कन्याएं कहलाती हैं। उनमें उषा के सन्मुख जो प्रथम सूर्य की किरण जा के पड़ती है वही वीर्य स्थापना के समान है उक्त दोनों के समागम से दिवस रूपी पुत्र उत्पन्न होता है।

३—पुरानों की इस कलंकित कथा को अलंकार रूप में निरुक्त में इस प्रकार खोला गया है।

पिता के समान जल रूप मेघ है। इसकी पृथ्वी रूप दुहिता अर्थात कन्या हैं। क्योंकि पृथ्वी की उत्पत्ति जल से होती है। अब जल रूप मेघ वृष्टि द्वारा जल रूप वीर्य को धारण करता है, तब इस पृथ्वी में गर्भ रह कर औषधि वनस्पति आदि अनेक अन्न पुष्प फल आदि उत्पन्न होता है। इस कलंक को कैसी वैज्ञानिक खोजकर महर्षि ने प्रजापति को निष्कलक किया है।

४—एक और कलंक इन्द्र अहिल्या की कथा में लगाया गया देवों का राजा इन्द्र देव लोक में देह धारी देव था। वह गौतम ऋषि की स्त्री अहिल्या के साथ जार कर्म किया करता था। एक दिन जब उन दोनों को गौतम ने देख लिया, तब इस प्रकार शाप दिया। हे इन्द्र तू हजार भग वाला होजा और अहिल्या को शाप दिया कि तू पत्थर हो जा। परन्तु जब उन्होंने गौतम से प्रार्थना की कि हमारे शाप का मोक्ष कैसे होगा, तब इन्द्र को तो कहा—कि तुम्हारे हजार भग की जगह हजार नेत्र हो जावें, और अहिल्या को वचन दिया कि जिस समय राम चन्द्र जी अवतार लेकर तेरे पर अपना चरण रखेंगे उस समय तू फिर अपने स्वरूप में आ जावेगी, इस प्रकार पुराणों में यह कथा बिगाड़ कर लिखी है। सत्य ग्रन्थों में ऐसा नहीं लिखा है। अतः इस

प्रकार लिखा है—सूर्य का नाम इन्द्र है, रात्रि का नाम अहिल्या तथा चन्द्रमा का गौतम है। यहां रात्रि और चन्द्रमा स्त्री पुरुष के समान रूपक अलंकार है। (वैसे आजकल भी आम तौर पर पूर्णमासी की रात को सुहागन रात कहते हैं)। चन्द्रमा अपनी स्त्री रात्रि से सब प्राणियों को आनन्दित करता है और उस रात्रि का जार आदित्य अर्थात सूर्य है। जिसके उदय होने से रात्रि के वर्तमान रूप श्रृंगार बिगाड़ने वाला है यानि तारा गण जिससे रात्रि की शोभा होती है। सूर्योदय पर सब छिप जाते हैं। इसलिए यह स्त्री पुरुष का अलंकार बांधा है। कि जैसे स्त्री पुरुष मिल कर रहते हैं। वैसे ही चन्द्रमा और रात्रि भी साथ साथ रहते हैं, चन्द्रमा का नाम गौतम है, इसलिए है कि यह अत्यन्त वेग से चलता है और रात्रि को अहिल्या इस लिए कहते हैं कि इस में दिन लय हो जाता है। अर्थात् सूर्य रात्रि को निवृत्त कर देता है इस लिए वह उसका 'जार' कहाता है। इस उत्तम रूपक अलकार को अल्प बुद्धि पुरुषों ने बिगाड़ कर पूर्वजों पर कितने कलक लगाए। जिससे ईसाई मुसलमान प्रचारक फ़ायदा उठा कर लाखों करोड़ों हिन्दुओं को ईसाई और मुसलमान बनाने में सफल हुए और रामचन्द्र के अहिल्या रूपी पत्थर पर पांव रखने से उस का उड़ जाना, इस रूपक का स्पष्ट रूप से समर्थन करता है। क्योंकि जब रामचन्द्र जी अयोध्या से निकल कर नदी पार करने को नदी पर पहुंचे तो उस समय दिन निकल आया था और रात्रि उड़ गई थी। यानि नदी किनारे रामचन्द्र के पांव पड़ने से रात्रि समाप्त हो गई यानि 'अहिल्या उड़ गई' किसी कवि ने इस को इस तरह बान्धा है।

मशरक से निकला ज्योंहि शाहें खावर,
परी रात की उड़ गई पर लगा कर।

'अहिल्या' 'जिसमें दिन लय होता है उस को अहिल्या यानि

रात्रि कहते हैं।

इस तरह महर्षि खुद भी निष्कलंक थे और अपने सब पूर्वजों को भी निष्कलंक कर गये। जितनी भी पुराणों में ऊट पटाँग कथाएं आती हैं। जिस से हमारे किसी भी ऋषि मुनि महात्मा पर कोई कलंक का आरोप होता है। इन सब को महर्षि जी ने अलंकारक कथाएं सिद्ध कर के सब कलंक एक ही असूल बना कर एक दम धो डाले हैं।

५. पं० नीलकँठ शास्त्री जो ईसाईयों के प्रश्नों का उत्तर न दे सकने के कारण ईसाई हो गए और उन्होंने अँजील का संस्कृत में भाष्य भी किया। महर्षि को मिले और उन के व्याख्यान सुन कर एक दिन महर्षि जो से बोले कि अगर आप जैसा गुरु हम को पहले मिल जाता ता हम कदाचित ईसाई न होते। महर्षि जी ने कहा कि—अब क्या बिगड़ा है। वापस आ जाओ। तब नीलकण्ठ कहने लगा कि महाराज अब तो पानी सिर से गुज़र चुका है। लड़के लड़कियां सब ईसाईयों के घर विवाहे गये हैं और ईसाईयों की तर्फ़ से सब को काफ़ी तनख़ाहें मिल रही हैं। अब वापिस आना मुशकिल है।

११५. जीवन मुक्त महर्षि दयानन्द

अभयं मित्रादभयममित्रात्, अभयं ज्ञातादभयं पुरो यः।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः, सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु।

शब्दार्थ—(मित्रात् अभयं) मुझे मित्र से भय न हो (अमित्रात्) अमित्र से (अभयं) अभय हो (ज्ञातद् अभयं) जो मालूम हो गया है उस से भय न हो और (यः) जो (पुरः) आगे आने वाला है उस से (अभयम्) अभय हो। (नः नक्तं अभयं, दिवा अभयं) हमें रात में भी अभय हो, दिन में भी अभय हो (सर्वा आशाः) सब

दिशाएं, सब दिशाओं के बासी प्राणी (ममभित्रं भवन्तु) मेरे मित्र हो जाएं, मेरे मित्र रूप रहें।

महर्षि स्वामी दयानन्द जी जीवन मुक्त थे, क्योंकि जीवन मुक्त का एक लक्षण अभय होना भी है। वह पूर्ण रूप से महाराज के जीवन में वर्तमान था।

१. जब महाराज जयपुर पधारे और व्याख्यान माला शुरू की तो जयपुर के महाराजा को इस के पंडितों ने महाराज के विरुद्ध किया हुआ था। एक दिन श्री प्रसाद जिन्होंने जयपुर में स्वामी जी का आतिथ्य किया था ने ठाकुर फ़तह सिंह ज़ी मन्त्री से कहा कि एक दिन महाराजा साहब का स्वामी जी से वार्तालाप कराया जावे। ठाकुर साहब ने महाराजा साहब से निवेदन किया, कि बड़े विद्वान संन्यासी आए हुए हैं यदि इच्छा हो तो उन से साक्षात् कीजिए। महाराजा ने कहा कि क्या तुम्हारा आशय स्वामी दयानन्द से है। ठाकुर जी के 'हां, कहने पर महाराजा साहब कहने लगे, यदि मुझ में शक्ति हो तो इसे कुत्तों से फड़वा डालूं। ठाकुर साहब ने यह बात श्री प्रसाद को कह दी, श्री प्रसाद ने स्वामी जी की सेवा में आ कर प्रार्थना की कि महाराज ऐसी अवस्था में आप का जैपुर में रहना ठीक नहीं है। परन्तु महाराज ने निर्भीक भाव से कहा—कि तुम राजा के नौकर हो तो उस की आज्ञा मानो, हम राजा के नौकर नहीं हैं। इस के पश्चात् स्वामी जी नौ दिन जैपुर में ही रहे, और पहले की तरह ही निर्भय होकर व्याख्यान देते रहे।

२. मेरठ में कुछ पंडितों ने स्वामी जी के खण्डन से चिढ़ कर षड्यन्त्र रचा और एक दिन कुछ गुण्डे हाथों में लाठियां ले कर इस गली में छिप गये। जहां से स्वामी जी हर रोज़ व्याख्यान स्थल से अपने डेरे पर आया करते थे। इस बात का पता महर्षि

के भक्तों को लग गया। तब उन्होंने प्रस्ताव किया कि आज महाराज को बन्द गाड़ी में लाया जावे, महाराज ने इस बात को अस्वीकार कर दिया और पूरी निर्भीकता से हर रोज़ की भान्ति इसी गली में से चले आए। परन्तु किसी गुंड को उन पर वार करने का साहस न हुआ।

३. स्वामी जी ने एक दिन मसूदा में मौलवी इमदाद हुसैन से कहा था कि एक दिन मैं शौच करने बैठा था, कि एक मनुष्य नंगी तलवार लेकर मेरे पीछे खड़ा हो गया मैंने उससे कहा कि मैं शौच से निवृत्त हो लूं तब मेरा सिर काट लेना, इस पर वह राज़ी हो गया। जब मैं शौच से निवृत्त हो गया, तो मैंने अपना गर्दन उस के आगे झुका दी। परन्तु वह ऐसा प्रभावित हुआ कि बिना कुछ कहे मुझे छोड़ कर चला गया।

४. महाराणा साहब ने चित्तौड़ में महाराज के दर्शन किये, तो महाराज ने उन्हें राजनीति का उपदेश भी दिया और राजाओं में वैश्या गमन के दोष भी बताए। महाराज की निर्भय वाणी का महाराणा साहब पर बहुत प्रभाव पड़ा और उन्होंने अपने कर्मचारियों से कहा—कि एक यही मनुष्य है जो बिना लाग लपेट सत्य कहता है।

५. अजमेर में पादरी शूल ब्रेड स्वामी जी के बाईबल के खंडन से चिढ़ कर कहने लगे, आप को कैद करवा दिया जायगा। तब महाराज ने कहा कि कैद के भय से मैं सत्योपदेश नहीं छोड़ सकता।

६. फ़र्रुखाबाद में लाला जगन्नाथ ने कहा—कि आप विश्रान्त के निचले भाग में रहें, क्योंकि वह सुरक्षित है, महाराज ने कहा कि यहां तो आप मेरी रक्षा करेंगे, दूसरी जगह कौन करेगा। मैं तो भगवान की रक्षा के सहारे, निर्भय विचरता हूं।

मुझे किसी मनुष्य की रक्षा की आवश्यकता नहीं है और जहां-जहाँ भी स्वामी जी के भक्तों ने उन की रक्षार्थ प्रबन्ध करने का प्रस्ताव किया। महाराज ने यही उत्तर सब को दिया था।

७. फर्रुखाबाद में पादरी लूकस ने स्वामी जी को कहा कि यदि आप को तोप के मुंह पर रख कर आप से कहा जावे, कि यदि आप मूर्ति को मस्तक नहीं झुकायेंगे तो तुम्हें तोप से उड़ा दिया जायेगा तब आप क्या कहेंगे। तब स्वामी जी ने उत्तर दिया कि मैं कहूंगा कि उड़ा दो। पादरी लूकस कहते हैं कि इस बात को सुन कर मैं स्वामी जी के विषय में यह प्रभाव लेकर उठा था कि दयानन्द एक निर्भय और बलवान पुरुष हैं। और मूर्ति पूजा से इन्हें प्रबल और सच्ची घृणा है।

८ एक जगह स्वामी जी व्याख्यान दे रहे थे और उस दिन ईसाई मत की परीक्षा कर रहे थे कि लैक्चर में जनरल राबर्टस कमांडर इन चीफ अर्थात् जंगी लाट भी आए थे। व्याख्यान सुनते रहें, अन्त में स्वामी जी को टोपी उतार कर सलाम किया और कहने लगे कि आप जैसा निर्भय पुरुष हमने नहीं देखा। हमारे सामने ही आप ईसाई मत का खंडन करते रहे।

९. मैडम बलोटस्की ने अपनी किताब में लिखा है कि स्वामी दयानन्द सैकड़ों हजारों की संख्या में उपस्थित घोर विरोधियों के मध्य में संगमरमर की मूर्ति की तरह अचल हो कर खड़े रहते थे और बड़े से बड़े भय से भी भयभीत न होते थे। इस तरह महर्षि ने उपरोक्त वेद मंत्र को अपने जीवन में चरितार्थ कर जीवन मुक्त की पदवी प्राप्त कर ली हुई थी।

विशेष-गुण कीर्तन काण्ड समाप्त।

१२ प्रचार कांड

११६. पूर्ण पुरुष के जीवन पर वार

योगियों को तलाश करते हुए वनों और परवतों में फिरते समय जो वार जगली हिंसक पशुओं की ओ से हुए परन्तु संसार को संमार्ग दिखाते हुए नगरों में प्रचार के समय जो वार नर पशुओं नें किए उनकी कथाऐं निम्नलिखित हैं :—

१. सन् १८६८ गाज़ो घाट में निवास करते थे, तो एक दिन एक ठाकुर और उसके तीन साथी जिनमें से दो के हाथ में तलवारें और दो के हाथ में लाठियां थीं, महाराज के निवास स्थान पर आकर गुण्डा पन दिखाने लगे । महर्षि के मना करन पर भी जब वह बाज़ न आये, तो महर्षि के शिष्य वलदेव भक्त ने जो पहलवानी के सब दाव पेच जानता था, इन चारों को वहां से भगा दिया ।

२—अम्बा गढ़ में महर्षि के मूर्ति पूजा के खण्डन से रुष्ट होकर कुछ दुष्टों नें सलाह की कि रात की सोते समय दयानन्द को पकड़ कर गंगा में डुबो दें । जहां स्वामी जा सोया करते थे । इनके समीप एक और साधू भी सो रहा था । गुण्डों ने इसे दयानन्द समझ कर, दरया में फैंक दिया । जब वह चिल्लाया कि मुझे बचाओ तब गुण्डों को ज्ञात हुआ कि उन्होंने दयानन्द को जगह किसी और साधू को फैंक दिया है ।

३. अम्बागढ़ में ही एक उजड़ जाट हाथ में मोटा सा लट्ठ लेकर मारने को आया था ।

४. सन् १८६८ में करणवास में राव करण सिंह ने स्वामी

जो के खण्डन से चिढ़ कर मयान से तलवार निकाल कर उन पर वार करना चाहा परन्तु महाराज ने इससे तलवार छीन कर जमीन पर दबाकर दो टुकड़े कर दिये ।

५. करणवास में ही जब राव करण सिंह खुद स्वामी जी के प्राण हरन करने में असफल हुआ ता उसने तीन गुण्डों को तलवारें देकर रात के दो बजे स्वामी जी के निवास स्थान पर भेजा और कहा कि जाओ स्वामी जी का सिर काट लाओ, परन्तु जब वह स्वामी जी के निवास स्थान पर पहुंचे और आवाज़ दी कि कुटिया में कौन है । इस पर स्वामी जो जाग पड़े और कुटिया के दरवाज़ पर आकर इतने ज़ोर से हुक्कार लगाई कि तीनों गुण्डे ज़मीन पर औंधे मुंह गिर पड़े । और तलवारें उनके हाथ से छूट कर दूर जा गिरीं, और वह उलटे परों दौड़ गये ।

६. इसी वर्ष शाजहान पुर में दो वैरागी साधू स्वामी जी के प्राण हरण को नीयत से आए थे । परन्तु उनको स्वामी जी के निवान स्थान तक भी जाने की हिम्मत न पड़ी ।

६. फर्रुखाबाद में पाण्ड ठाकुर दास २०—२५, लठ बन्द लोगों को साथ लेकर स्वामो जो के प्राण हरण की नियत से उनके निवास स्थान में पहुंचे. परन्तु स्वामी जो को कुछ कहने का हौंसला उनको न हुआ ।

८. कानपुर में कुछ गुण्डे लाठियां और ढेले लेकर स्वामी जी को मारने के लिए आए। ढेले मारने लगे, एक ने लाठी से प्रहार किया, परन्तु महाराज ने लाठो उसके हाथ से छोन ली और उसको गंगा में धकेल दिया ।

९. काशी निवास में दो मुसलमानों ने महाराज को गंगा में डुबो देने की इच्छा से घाट पर बैठे हुए धक्का देना चाहा पर स्वामी जी ने उन दोनों को बगल में दबा कर स्वयं गंगा में डुबकी लगा दी

और उन को खूब गोते दिये।

१०. काशी में ही एक ब्राह्मण स्वामी जी के लिए भोजन लाया। जब वह भोजन करने लगे तो उसने पानी में विष मिला दिया। जो स्वामी जी ने न्योली कर्म द्वारा निकाल दिया।

११. मिर्ज़ापुर में छोटू गिर गोसाईं जो एक मन्दिर का पुजारी था और हृष्ट पुष्ट था, स्वामी जी के मूर्ति पूजा खण्डन से रुष्ट हो कर उनके प्राण हरण करने की नीयत से अपने कुछ साथियों को लेकर महाराज के निवास स्थान पर उनको मारने आया था।

१२. सन् १९७० में जब स्वामी जी अनूप शहर आये, तो एक ब्राह्मण इनके लिए विष मिश्रित भोजन लाया, जो स्वामी जी ने खा लिया, प्रतीत होने पर विष न्योली कर्म द्वारा निकाल बाहर किया।

१३. प्रयाग निवास के समय एक ब्राह्मण भोजन और पान में विष मिला कर लाया, स्वामी जी को पहले तो भोजन पाने को कहा—जब उन्होंने कहा कि तुम भी इसमें से कुछ खाओ, तो उसने न कर दी और फिर कहा—कि आप पान को ही खा लें। तब स्वामी जी जब पान को खोल कर देखने लगे तो वह आंख बचा कर भाग गया।

१४. बम्बई निवास में जीवन जी गोसाईं ने मूर्ति पूजा खण्डन से चिढ़ कर स्वामी जी के बलदेव रसोईये को लालच दिया कि तुमको एक हजार रुपया देंगे, अगर स्वामी जी के प्राण हरण कर दो तो और पाँच रुपया बतौर पेशगी दे दिये, पाँच सेर मिठाई भी पेशगी दे दी, बाद में स्वामी के पूछने पर बलदेव ने इस बात को स्वीकार कर लिया।

१५. फिर जीवन जी गुसाईं ने चार गुण्डे स्वामी जी को मारने के लिए काफी लालच दे कर तैयार किये।

१६. अमृतसर निवास के समय निहंग सिखों ने चैलेंज किया,

कि स्वामी जी के पास बहुत से आदमी सोते हैं, अगर वह अकेले सोवें तो हम अवश्य ही उन का सिर काट लें। यह बात सुन कर उस दिन अपने सब आदमियों को कहा—कि आप मेरे पास मत सोवो, मैं आज अकेला ही सोऊँगा। परन्तु किसी निहंग में साहस न हुआ कि महाराज की ओर आंख उठा कर भी देखता।

१७. जब स्वामी जी एकाएकी विचरते थे तो एक जगह वाम मार्गी साधुओं ने उन को देवी पर बलि चढ़ाने की नियत से अपने पास रख कर उन की खूब खातर की, पर वह बच निकले।

(देखो शुनःशेप)

१८. जब स्वामी एकाएकी फिरते थे। तो एक जगह वरागी लोगों ने इस घास की कुटिया को जिस में स्वामी जी सोए थे आग लगा दी।

(देखो प्रह्लाद भक्त)

१९. बंगाल की तर्फ़ प्रचार के समय स्वामी जी एक मन्दिर के पास गये जहाँ युवा लड़कियां मन्दिर में देव दासी के तौर पर चढ़ाई जाती थीं। जबरदस्त प्रचार करके इस कुप्रथा का तीव्र खण्डन किया, इस खण्डन से रुष्ट होकर उस मन्दिर के पुजारी ने एक मिट्टी के बड़े से बर्तन में रखे हुए एक बहुत जहरीले कोबरा सांप को स्वामी जी की देह पर दे मारा।

२०. सन् १८७० मिर्जापुर में स्वामी जी का प्राण हरण करने के लिए पंडितों ने तन्त्र ग्रथों में लिखे, मारन मन्त्र का उपचार भी किया परन्तु ऐसा करने वालों पर ही उल्टा असर हुआ। सारांश यह कि स्वामी जी के प्राण हरण करने के लिए हर भान्ति के तरीके बर्ते गये। लाठियों तलवारों से हमले किये गये। विष दिये गये। सांप फेंके गये। दरिया में फेंकने के षड़यन्त्र रचे गये।

२१. सन् १८६६ किशन गढ़ राजस्थान के निवास समय एक दिन ठाकुर गोपाल सिंह ३०—४० मनुष्यों और ५—६ पंडितों को

साथ लेकर स्वामी जी पर बार करने के लिए उनके डेरे पर पहुंचे सायं काल पांच बजे का समय था तब स्वामी जी ने शौच आदि से निवत्त हा कर स्नान कर विभूति रमाई और लकड़ी क तख्त पर विराजमान हो गये और इन लोगां से पूछा कि आप कसे आए हैं। तब एक वल्भ सम्प्रदाय की पुस्तक एक पडित ने इन को पढ़ने के लिए दी। स्वामी जी ने कहा कि आप ही पढ़ो, मैं इस का उत्तर दूंगा। उसने पुस्तक में से कुछ पढ़ा। तब स्वामी ने वल्लभ सम्प्रदाय का तीव्र खण्डन आरम्भ कर दिया। इस पर यह सब लोग स्वामी जी पर आक्रमण करने को उद्यत हुए। तब स्वामी जी तख्तपोष पर खड़े हो गये और कहने लगे तुम मुझे निरा साधू ही मत समझो, मैं अकेला ही तुम सब पर भारी हूं। अगर शास्त्रार्थ करना चाहो तो मैं शास्त्राथ करने को तयार हूं वरना तुम सब मिल कर भी मेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकते। इतने में कुछ और लोग भी आ गये और यह सब अपना सा मुंह लेकर वापस चले गये।

२२. सन् १८७० में प्रयाग निवास के समय कुछ मुसलमानों ने महाराज के प्राण हरण की चेष्टा की थी, माधवराव एक बंगाली सज्जन को इस षड़यन्त्र का पता लग गया और वह सफल न हो सके।

२३. सन् १८७२ आगरा निवास के समय महाराज ने अपने भक्त रजनी कान्त को बताया कि एक दिन मैं समाधि लगाये बैठा था कि एक दुष्ट तलवार लेकर मुझे वध करने की नीयत से आया, जब मेरी समाधि खुली तो मैंने जोर से हुंकार मारी तब वह डर कर भाग गया।

२४ –बम्बई निवास के समय वल्लभ सम्प्रदाय वालों ने एक बार और स्वामी जी के वध का यत्न किया था। उन्होंने इस कार्य

पर दो गुण्डे नियत किये, एक दिन वह मौका पाकर स्वामी जी के कमरे में रात्रि के समय घुस आये । लाला कृष्ण दास इस समय स्वामी जी के पास बैठे थे, उन्होंने इन घातकों को कमरे में आए हुए देख लिया और इन्हें पकड़ लिया, धमकाने पर इन गुण्डों ने स्वीकार कर लिया कि स्वामी जी को वध करने के लिए इन्हें २००/- रुपया मिले हैं।

२५. प्रिंस आफ़ वेल्ज़ जब भारत आए तो आगरा में बहुत से राजा उनके स्वागत को इकट्ठे हुए थे, महाराज ने ऐसे अवसर पर प्रचार करने का प्रोग्राम बनाया । एक दिन एक ऐसी सभा में जिस में राजा गण बहुत बड़ी तादाद में उपस्थित थे, महाराज का व्याख्यान हुआ, इस में उन्होंने और बहुत सी अवैदिक बातों का खण्डन करने के साथ साथ शैव मत का ज़बरदस्त खण्डन किया। तब एक राजा आवेश में आकर अपने स्थान से उठा और म्यान से तलवार निकाल कर स्टेज पर जहां महाराज व्याख्यान दे रहे थे। चढ़ आया, और स्वामी जी पर तलवार चलाना ही चाहता था, कि महाराज ने अपनी दृष्टि डाली और कहा कि आप क्षत्रीय हैं, और क्षत्रीय का काम तलवार चलाना है और मैं सन्यासी हूं। मेरा काम धर्म का प्रचार करना है । आप अपना काम करें । (यानि तलवार चलाएं) और मैं अपना काम करता हूं । इतना कह कर महाराज ने व्याख्यान देना फिर से आरम्भ कर दिया। परन्तु राजा पर महाराज का इतना आंतक छाया कि चुपचाप तलवार को म्यान में डालकर स्टेज से नीचे उतर गया ।

२६. बटाला निवास में एक दिन व्याख्यान में मूर्ति पूजा का खण्डन सुन कर हरी सिंह रईस तिलमिला उठे, और कहने लगे कि अगर अंग्रेजों का राज्य न होता तो तेरा सिर काट लेता ।

२७. बटाला में काक इंजीनियर पिशावर पधारे हुए थे, एक

दिन स्वामी जी ने व्याख्यान में कहा कि अंग्रेज़ों को इस देश में आए कितनी देर हो गई परन्तु अभी तक इन को शुद्ध हिन्दी बोलनी भी नहीं आई, तुम की जगह टुम ही बोलते हैं। इस पर काक साहब बहुत नाराज़ होकर कहने लगा, अगर आप पिशावर की तर्फ़ आओ तो तुम्हारी खबर ली जावेगी।

२८. अमृतसर में एक भंगी चरसी ब्राह्मण ने महाराज के खण्डन से चिढ़ कर उन को एक मोटा सा सोटा मारना चाहा परन्तु लोगों ने इसको पकड़ लिया। महाराज ने इसको क्षमा प्रदान कर दी।

२९. मेरठ में महाराज के खण्डन से ब्राह्मण और महाब्राह्मण बहुत चिढ़ गए थे, एक दिन कुछ गुण्डे हाथों में लाठियां लेकर महाराज को मारने की नियत से उस गली में छिप कर बैठ गये, जहां स्वामी जी व्याख्यान देकर वापस अपने डेरे पर आया करते थे। गुण्डों का हौसला न हुआ कि महाराज पर आक्रमण करें।

३०—हरद्वार में कुछ साधुओं ने साज़श की कि एक पत्थर मार कर स्वामी जी का सिर फोड़ दो। कुछ परवाह नहीं यदि एक को फांसी लग जाय।

३१—अजमेर में कुछ ब्राह्मणों ने स्वामी जी के प्राण हरण करने के लिए शास्त्रार्थ करने का बहाना बना कर उन को शैव बाग में निमन्त्रित किया, स्वामी जी ने एक आदमी को भेज कर मालूम करना चाहा कि वहां कोई विद्वान भी आया है। तब मालूम हुआ कि वहां शैवा बाग का पुजारी और दस बारह गुण्डे भंगी चरसी बैठे हुए हैं, इस पर महाराज वहां नहीं गये।

३२—अन्त में २९ सितम्बर १८८३ को जोध पुर में नन्हीं जान और अग्रेज़ों की मिली भगत से स्वामी जी को दूध में कांच पीस कर पिलवा दिया। जिससे ३० अक्तूबर दीवाली की सायं को

उन्होंने अपना भौतिक शरीर वैदिक धर्म की बलि वेदी पर बलिदान कर दिया। किसी कवि ने ठीक कहा है—

पराई आग में जलना मरीजों की दवा होना।
कोई सीखे दयानन्द से धर्म पर जां फ़िदा होना।

११६ शास्त्रार्थों की सूची

यूं तो महर्षि दयानन्द ने अपने जीवन काल में करोड़ों मनुष्यों के हर प्रकार के प्रश्नों के युक्ति युक्त उत्तर दिए। कोई भी व्यक्ति जो महाराज के दरबार में किसी किसम का भी प्रश्न लेकर आया उनका सन्तुष्टि जनक उतर लेकर ही गया। जटिल से जटिल प्रश्नों का समाधान भी महाराज अपनी तीव्र बुद्धि और स्मरण शक्ति से कर दिया करते थे। जिसके लिए उनके जीवन की दो घटनाएं ही प्राप्त हैं।

२—मेरठ निवास के समय एक दिन तीन चार पंडित आपस में सलाह मशवरा करके आये कि स्वामी जी से एक ही प्रश्न पूछेंगे कि आप विद्वान हैं या अविद्वान अगर तो वह कहेंगे कि हम विद्वान हैं। तो हम कह देंगे कि आप अहंकार करते हैं। जो विद्वानों का गुण नहीं। और अगर वह कह दगे कि हम अविद्ववान हैं। तब हम कहेंगे कि आप को प्रचार करने का क्या हक है। उन्होंने अपने मन में यह विचार निश्चय किया था कि दोनों बातों में से एक को तो स्वीकार करेंगे ही, बस हमारा मनोरथ सिद्ध हो जावेगा। यह धारणा करके बड़ी खुशी खुशी वह आकर महर्षि के सन्मुख बैठ गये। और भी कई सज्जन वहां बैठे थे, महर्षि का यह तरीका था कि वह हर आने वाले से पूछते थे। यदि कोई प्रश्न करना हो तो पूछो। अतः महर्षि ने उनसे भी यही बात कही। तब उन्होंने अपना वह प्रश्न उनके सामने उपस्थित किया। तब महाराज हंस कर बोले कि मैं संस्कृत वेद विद्या आदि में तो विद्वान हूं। परन्तु मुझको पकौड़े

तलने नहीं आते इसमें आप मुझे अविद्वान समझ लें। इस पर वह सब दंग रह गये। और उनका विचार कि हम महर्षि को पराजय कर लेंगे धरा का धरा रह गया।

२. दूसरा वाक्या हरद्वार के कुम्भ का है और वह इस से भी विचित्र है, कुम्भ के मौका पर निरन्तर तीन महीने १४—१४ घण्टे नित्य प्रति प्रचार करने शंका समाधान करने के कारण महाराज का शरीर ग्लान हो गया था और उनको दस्त आने शुरू हो गये थे। जिस कारण कुछ कमजोरी भी आ गई थी। यह बात जब मेले में फैल गई तो नवीन वेदान्ती साधुओं ने सोचा कि चलो महर्षि के पास चलें और शास्त्रार्थ करने का चैलिज उन को देवें। अगर वह कह देंगे कि हम बिमार हैं और शास्त्रार्थ नहीं कर सकते तो हम मेले में मशहूर कर देंगे कि स्वामी जी शास्त्रार्थ से भाग गए। यह विचार करके ६—७ नवीन वेदान्ती साधु महाराज के डेरे पर जा पहुंचे। महाराज उस समय पलंग पर लेटे हुए उन साधुओं को आते देख कर उठ बैठे और ६—७ मूढ़े उन के बैठने के लिए मंगवा कर अपने सामने रखवा दिए। आए हुए साधुओं को आदर सत्कार से बिठाया। जब उन्होंने अपने आने का अभिप्राय वताया कि हम शास्त्रार्थ करने आए हैं आप हमारे साथ शास्त्रार्थ करें। तब महर्षि जी ने यह नहीं कहा कि मैं बिमार हूं शास्त्रार्थ नहीं कर सकता। जैसा कि वह साधु अपने मन में विचार कर के आए थे। बल्कि उन से पूछा कि आप किस बात को मानते हैं। उन्होंने कहा नवीन वेदान्त को। तब महाराज ने कहा नवीन वेदान्त का क्या सिद्धान्त है। तब वह बोले "ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या" तब महाराज ने कहा आप जगत मिथ्या किस को मानते हैं। तब यह बोले कि सब जो दृश्यमान है सूर्य से ले कर कंकर तक सब जगत् में ही है तब महर्षि ने कहा कि क्या

आप का मत भी जगत् में है और आप की पुस्तकें भी जगत् में हैं । उन्होंने कहा कि हाँ, यह सब कुछ जगत में शामिल है । तब महाराज ने कहा कि जब आप ही अपनी पुस्तकों और अपने मत को मिथ्या स्वीकार कर रहे हैं तो मैं किस बात पर आप से शास्त्रार्थ करूँ । इस पर वह सब शर्मिन्दा हो कर वापिस चले गए । यह थी महाराज की अलौकिक प्रतिभा । जिस के सामने किसी वक्त कोई भी, किसी भी विचार धारा का बड़ से बड़ा अभिमानी न ठहर सका । और हर शास्त्रार्थ में महर्षि दिग्विजयी हो रहे शास्त्रार्थों की सूची निम्न प्रकार है ।

महर्षि के अनेकों शास्त्रार्थों में से कुछ प्रसिद्ध शास्त्रार्थों का नक्शा यहां दिया जाता है । ताकि ऋषि के भक्तों को पता लग सके कि उन दिनों जब हवाई जहाज़ और मोटरकार को ईजाद नहीं हुई थी और जब कि रेलवे लाईन भी इतनी विस्तृत नहीं थी । वैदिक धर्म पर होने वाले हमलों का जवाब और इन्सानी मत मतान्तरों पर भरपूर वार करने में आर्य समाज के प्रवर्तक को कितना प्रयत्न और परिश्रम करना पड़ा था ।

वर्ष व मास	स्थान	किस के साथ
१८६६	अजमेर	पादरी ग्रेइबसन और शूलब्रेड
१८६७	करनवास	पं० अम्बा दत्त अनूप शहर
,,	दाम घाट	पं० कृष्णा नन्द
,,	करनवास	पं० हरिवल्लभ
,,	सौरों	पं० अंगद शास्त्री
१८६८	काकोरी का मेला	पं० उमादत्त
,,	फर्रुखा बाद	पं० श्री गोपाल
१८६९	,,	पं० हलधर ओझा
,,	कन्नौज	पं० हरि शंकर

जौलाई	कानपुर	पं० हलधर ओझा
नवम्बर	बनारस	पं० तारा चरण तर्क रत्न स्वामी शुद्धानन्द पं० वाल शास्त्री, पं० राजाराम शास्त्री, पं० माधवाचार्य, पं० वामनाचार्य
१८७२	मिर्ज़ापुर	पं० गोबिन्द भट्ट, पं० जैसी राम
,,	डुमराओं	पं० दुर्गादत्त
,,	आरा	पं० रुद्र दत्त, पं० चन्द्र दत्त
सितम्बर	पटना	पं० राम जीवन भट्ट, पं० राम अवतार
अप्रैल	हुगली	पं० तारा चरन तर्क रत्न
१८७३ मार्च	कलकत्ता	पं० हेम चन्द्र चक्रवर्ती पं० महेश चन्द्र न्याय रत्न
मई	छपरा	पं० जगन्नाथ
अक्तूबर	कानपुर	पं० गंगाधर
नवम्बर	लखनऊ	पं० गंगाधर
१८६४ फर्वरी	ईलाहाबार	पं० काशी नाथ शास्त्री
२५ नवम्बर	सूरत	पं० इच्छा राम शास्त्री
,,	बड़ोच	पं० माघोराव शास्त्री
,,	राजकोट	पं० महीधर
१८७५ मार्च	बम्बई	पं० खेम चन्द्र, वाल जी शास्त्री
,, जून	बम्बई	पं० कवंल नैन आचार्य
,,	बड़ोदा	पं० यज्ञेश्वर पं० अप्पा शम्भू

१८७६ जून	बम्बई	पं० राम लाल
नवम्बर	मुरादाबाद	पादरी पारकर
१८७७ मार्च	चान्दा पुर मेला	पादरी स्काट मौलवी मुहम्मद कासम
२४ सितम्बर	जालन्धर	मौलवी अहमद हसन
१८७६ फरवरी	गुजरां वाला	ईसाईयों के साथ
नवम्बर	अजमेर	पादरी ग्रे, पादरी हसबैंड
१८७८ अगस्त	बदायूँ	पं० राम प्रसाद
अगस्त २५	बरेली	पादरी स्काट
१८८१ जून	ब्यावर	पादरी शूलब्रेड
१८८२ सितम्बर ११	उदय पुर	मौलवी अब्दुल रहमान

यह बात कावले ग़ौर है कि पहला शास्त्रार्थ १८६६ में अजमेर में ईसाईयों के साथ और आख़री उदयपुर में मुसलमानों के साथ हुआ था।

महर्षि के देहावसान के बाद सैकड़ों आर्य विद्वानों ने उनके चरन चिन्हों पर चलते हुए स्वाध्याय का आश्रय ले कर विधर्मियों के साथ शास्त्रार्थ के मैदान में लोहा लिया। अनेकों गिरतों को सम्भाला। हजारों गुमराह भाईयों को सन्मार्ग दिखलाया और लाखों को वैदिक धर्मी बनाया। जिनमें से निम्नलिखित महानुभावों के नाम स्मरणीय हैं। १. बाल ब्रह्मचारी स्वामी नित्यानन्द जी, २. धर्म वीर पं० लेख राम जी, आर्य मुसाफिर, ३. विचित्र दार्शनिक स्वामी दर्शनानन्द, ४. स्वामी योगेन्द्र पाल जी, ५. पं० रामचन्द्र जी देहलवी, ६. पं० धर्म भिक्षु जी, ७. पं० मुरारी लाल, शर्मा, ८. बुद्ध देव जी, विद्यालंकार, ६. पं० बुद्धदेव मीर पुरी, १०. श्री ठाकुर अमर सिंह जी आर्य पथिक, ११. पं० मनसाराम जी वैदिक तोप, १२. पं० भगवत दत्त जी रिसर्चस्कालर, १३. पं०

राम गोपाल जी शास्त्री, १४. पण्डित काली चरण शर्मा, १५. पं० जगदीश चन्द्र जी न्याय रत्न, १६. पं० देव प्रकाश जी अमृतसरा, १७. पं० शान्ती प्रकाश जी।

आर्य समाज में फिर से शास्त्रार्थ युग लाने की आवश्यकता है, शास्त्रार्थ ही एक ऐसी संस्था है जिससे सत्य असत्य का निर्णय शीघ्र हो सकता है और जब आर्य समाज शास्त्रार्थ करता था, तो हजारों की हाज़िरी होती थी और सैंकड़ों हजारों जिज्ञासु शास्त्रार्थों को सुन कर ही वैदिक धर्मी बनते थे और साथ ही आर्य समाज के विद्वान ही नहीं बल्कि आम सभा सदों को भी स्वाध्याय का शौक रहता था। और वैदिक साहित्य का प्रचार भी होता था। जब से शास्त्रार्थ प्रथा बन्द हुई है। तब से स्वाध्याय छूट गया है। दूसरों को आर्य बनाने की तो क्या कथा। आर्य समाज के मेम्बरान बल्कि वाज़ हालतों में आर्य समाजों के मन्त्री और प्रधान भी स्वाध्याय हीन होकर आपस में ही लड़ लड़ कर संसार को तमाशा दिखा रहे हैं। आर्य समाजों से सब झगड़े दूर करने के लिए भी शास्त्रार्थ युग फिर से लाने की आवश्यकता हैं ताकि आर्य समाजी स्वाध्याय शील होकर अपने धर्म का पालन कर सकें।

११८. मर्यादा पुरुषोत्तम

१. सन् १८७४ सूरत निवास के समय उनके चौथे व्याख्यान ७ दिसम्बर को रघुनाथ पुरे के सेठ ठाकुर भाई चुन्नी लाल चिक वाले के शिव मन्दिर से मिले हुए एक मकान में होने की घोषणा की गई थी। परन्तु जब व्याख्यान का समय हुआ और लोग वहाँ पहुंचे। तो देखा कि मकान अन्दर से बन्द है, लोगों ने बहुतेरे बाहर से द्वार खटखटाये और आवाज़ें दी, परन्तु किसी ने न सुना। श्रोता गण कहने लगे कि हम दूसरी जगह इन्तज़ाम कर देते हैं।

आप व्याख्यान वहाँ चलकर देवें। महर्षि ने कहा कि नहीं इसी जगह की घोषणा की गई है, व्याख्यान यहीं होगा, अतः उन्होंने इस मकान के बाहर ही व्याख्यान देना आरम्भ कर दिया और श्रोतागण भूमि पर बैठे महाराज का व्याख्यान सुनते रहे।

२. लाहौर आर्य समाज की एक सभा ६ नवम्बर १८७७ को उपनियम स्वीकार करने को हो रहा थी, स्वामी जी इस सभा में विराजमान थे। अन्तरग सभा की बैठक में महाराज को सम्मति देने की प्रार्थना की गई। परन्तु उन्होंने स्वीकार न किया। और कहा कि मैं आपकी अतरंग सभा का सभासद नहीं हूं। इस लिए मुझे सम्मति देने का कोई अधिकार नहीं है। तब महाराज को विधि पूर्वक अन्तरंग का सभासद बनाया गया, फ़िर उन्होंने अपनी सम्मति प्रकट की।

३. ८ मई १८७७ को आर्य समाज लाहौर की अन्तरंग सभा का अधिवेशन हो रहा था, महाराज इसमें उपस्थित थे। एक सभासद ने प्रस्ताव किया कि महाराज को इस सभा का प्रधान नियत किया जावे। परन्तु महाराज ने यह कह कर कि सभा के प्रधान उपस्थित हैं, "उन का उपस्थिति में मैं प्रधान नहीं बन सकता' इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया।

४—रुड़की में एक दिन जब आप नियत समय पर व्याख्यान स्थल पर आए तो केवल दो ही श्रोता बैठे थे। आपने अन्य श्रोताओं की प्रतीक्षा न करते हुए पूरे समय पर व्याख्यान आरम्भ कर दिया।

५ दाना पुर आर्य समाज के ठाकुर दास सभासद को आर्य समाज से इस लिए निकाल दिया कि उसने एक सभासद को दुर्वचन कहे थे। जब महाराज दाना पुर आए तो उसने पुनः आर्य समाज का सदस्य बनने की इच्छा प्रगट की, और जब महाराज ने आर्य समाज के अधिकारियों से इसके विषय में कहा कि तो उन्होंने

कहा कि यदि आप उसे नियमों के विरुद्ध सभासद बनाने की आज्ञा दें तो हम उसको पालन करने पर उद्यत हैं । नहीं तो इसको अपने पूर्व अपराध की क्षमा याचना करनी चाहिए । और पुनः प्रविष्ट होने के लिए आवेदन पत्र देना चाहिए । महाराज ने उत्तर दिया आप लोग ठीक कहते हैं । नियम विरुद्ध काम करने के हम पक्षपाती नहीं हैं ।

६. महाराज ने जो सिद्धान्त निश्चित किये हुए थे, उनके विपरीत किसी बड़े से बड़े व्यक्ति से भी समझौता न करते थे। कर्नल अल्काट और मैडम बलोटस्की ने अमरीका में एक समाज बनाया, जिसका नाम उन्होंने थ्योसाफीकल सोसाईटी रखा । इन्हीं दिनों महाराज ने यहां आर्य समाज स्थापित करने आरम्भ कर दिये थे। इन दोनों महानुभावों ने महाराज की आज्ञा पा कर अपनी सभा का नाम रखा थ्योसाफ़ीकल सोसाईटी आफ़ दी आर्य समाज आफ आर्या वर्ता । और उन्होंने ने अमरीका में बैठे ही स्वामी जी से पत्रव्यवहार करना आरम्भ कर दिया। वह अपने पत्रों में स्वामी जी को गुरु शब्द से सम्बोधन करते थे। बड़े लम्बे लम्बे पत्र दोनों तर्फ से आते जाते रहे. और महर्षि जो अपने पत्रों में जो वह उनको अमरीका में भेजते थे अपने सिद्धान्त स्पष्ट रूप से लिखते रहते थे। बहुत पत्र व्यवहार होने पर यह दोनों महानुभाव अमरीका से चलकर भारत महाराज से साक्षात् करने को आए। परन्तु यहां आकर पहले तो वह स्वामी जी के अनुकूल ही अपने विचार प्रकट करते रहे, वास्तव से यह लोग स्वामी जी की विद्या और ख्याति को अपना मतलब सिद्ध करने की नियत से इनको Exploit करने यहां आए थे। परन्तु जब देखा कि इन तिलों में तेल नहीं । और स्वामी जी अपने निश्चित सिद्धान्तों से इधर उधर होने को किसी भी सूरत में तैयार नहीं तो फिर उन्होंने

अपने आन्तरिक भाव खोल दिये, और कहने लगे कि हम तो ईश्वर को भी नहीं मानते और भूत प्रेत को मानते हैं। जब स्वामी जी ने इनको शास्त्रार्थ का चैलेंज दिया तो उन्होंने स्वीकार न किया। तब स्वामी जी ने विज्ञापन निकाल कर उनसे सम्बन्ध विच्छेद की घोषणा कर दी। हालांकि कई लोगों ने स्वामी जी से कहा कि यह लोग आर्य समाज का प्रचार संसार में कर देंगे। अगर इनके साथ समझौता कर लिया जावे। परन्तु महर्षि अपने सिद्धान्त पर अटल रहे, और किसी प्रकार भी सिद्धान्त विरुद्ध समझौता करने को तैयार न हुए। जो मर्यादा उन्होंने बान्ध रखी थी, उस पर ध्रुव की भान्ति अटल होकर चलते रहे।

७. अहमदाबाद में एक दिन एक विद्यार्थी स्वामी जी की ओर पैर करके सो गया, स्वामी जी ने सब कर्मचारियों को उपदेश किया कि तुम जिससे विद्या ग्रहण करते हो और जो मान्य व्यक्ति हैं, उनके सामने बिना बुलाये बोलना वा उनकी बातों के बीच में बोलना वा पैर करके सोना, आर्य मर्यादा का उलंघन करना है।

८. आगरा में बिशप साहब के बुलाने पर सब से बड़े गिर्जा घर गये। बिशप साहब से वार्तालाप करके उन्होंने गिरजा देखना चाहा, परन्तु गिरजे के चौकीदार ने कहा कि आप पगड़ी उतार कर ही गिरजे के अन्दर जा सकते हैं वरना नहीं। स्वामी जी ने कहा कि जूता तो उतारना हमारी मर्यादा के अनुकूल है परन्तु पगड़ी हमारी मर्यादा में प्रतिष्ठा का चिन्ह है: इसे उतार कर मैं अपने देश की मर्यादा को भंग नहीं कर सकता। इस तरह गिरजा अन्दर से देखे बिना चले आये। परन्तु मर्यादा को कायम रखा।

११६. पतित पावन

ओं अवहित देवा उन्नयथा पुनः।

ऋग्वेद १०. १३७. १.

जो गिरे हुए हैं उन्हें ऊपर उठाओ । जैसा किसी कवि ने कहा है—

शराब पिला के गिराना तो सब को आता है ।
मज़ा तब है जो गिरतों को थाम ले साकी ।।

महाराज के संसर्ग और उपदेशों का लोगों पर असाधारण प्रभाव पड़ता था । लाखों मूर्ति पूजकों ने इनके संसर्ग से मूर्ति पूजा छोड़ कर विशुद्ध ईश्वर भक्ति को स्वीकार किया । कितने ही नास्तिक आस्तिक बन गये । कितने ही दुराचारी सदाचारी बन गये । महाराज में मनुष्यों के चित्त को आकर्षण करने की विलक्षण शक्ति थी और वेद की उपरोक्त आज्ञा पालन करते हुए लाखों पतितों का उद्धार कर गये । कुछ घटनाएं निम्नलिखित हैं : —

घटनाएं

१—हरिद्वार पहले सं० १८२४ के कुम्भ में प्रचार आरम्भ किया तो स्वामी महानन्द दादू पन्थी संस्कृत के अच्छे विद्वान थे । उन्हों ने वेद के दर्शन प्रथम बार स्वामी जी के पास किये थे । वह महाराज के उपदेश,से इतगे प्रभावित हुए कि वैदिक धर्म के अनुयायी बन गये । और प्रचारक बन गयें । देहरादून आर्य समाज में जो महानन्द पुस्तकालय है, वह उन्हीं के नाम पर स्थापित है ।

२—फ़रुखाबद के एक प्रतिष्ठित सज्जन का नौजवान लड़का वैश्यागामी हो गया, उसने स्वामी जो से प्रार्थना की कि मेरे सपुत्र को आप बचावें, स्वामी जी ने कहा—उस लड़के को मेरे पास लाओ, अतः वह स्वामी जी के पास लाया गया । स्वामी जी ने मीठ शब्दों में उसका स्वागत किया और अपने पास बिठाया प्यार किया । फिर उससे कहा कि अगर कोई आदमी वैश्यागामी हो, उससे वैश्या को गर्भ रह जावे और उस गर्भ से लड़की पैदा हो तो, वह लड़की किस की होगी, उस युवक ने कहा कि वह लड़की उसी वैश्या

गामी की होगी। तब महाराज ने कहा—कि फिर वह लड़की बड़ी होकर क्या करेगी, वैश्या ही बनेगी न, जब उस युवक ने इस बात को स्वीकार किया, तब महाराज ने कहा कि क्या कोई भद्र पुरुष अपनी लड़की को वैश्या बनाना पसन्द करेगा। तो युवक ने कहा हरगिज़ नहीं, तब वह युवक महाराज के चरणों में गिर पड़ा, और उस दिन से उसने यह व्यसन छोड़ दिया।

३—जब स्वामी जी पराग आये तो इन दिनों कुछ लोग ईसाई बनने की तैयारियां कर रहे थे। इन्हें स्वामी जी के पास लाया गया। महाराज के संसर्ग और उपदेश से वह सब लोग ईसाई बनने से बच गये।

४—आगराज़ में माधो चन्द्र चक्रवर्ती बंगाली सज्जन P. W. D. में ओवर सीयर थे। जब महाराज प्राग पहुंचे तो वह पेन्शन लेकर वहीं ठेकेदारी करते थे, बड़े तीक्षण बुद्धि पुरुष थे। अंग्रेजी के साथ उन्हें फारसी का भी अच्छा ज्ञान था। वह अपने आप को बड़ा तार्किक समझते थे। और अपनी तर्क शक्ति पर बड़ा घमण्ड था। वह कहा करते थे कि मेरी युक्तियों का कोई भी खण्डन नहीं कर सकता। अतः उन्होंने १०१ प्रश्न लिख रखे थे। जो कोई प्रसिद्ध धर्मोपदेशक प्राग में आता, वह अपने प्रश्न उनके सामने रखते, और उनको निरुत्तर करके चले आते थ, महर्षि देवेन्द्र नाथ ठाकुर के सामने अपने वही प्रश्न रखे। परन्तु उनके उत्तरों से भी उनको सन्तोष न हुआ। माधो बाबू जन्म के ब्राह्मण थे। परन्तु हिन्दू धर्म से उनका विश्वास उठ गया था। और वह ईश्वर के विश्वास तक को भी तिलांजली दे चुके थे। उनके विचार मुसलमानो मत की ओर झुके हुए थे। और उन्होंने एक मुसलमान वश्या भी रखी हुई थी। और शराब मांस अण्डे सब कुछ खा पी जाया करते थे।

सन् १८७० में जब महाराज प्राग पहुंचे तो यही माधो चन्द्र

चक्रवर्ती अपने १०१ प्रश्न लेकर महर्षि की सेवा में भी उपस्थित हुआ। और लगे स्वामी जी से उत्तर प्रश्न करने। परन्तु थोड़ी देर तर्क करने के बाद इनकी तर्क शक्ति ने जवाब दे दिया। इनका सारा घमण्ड चूर चूर हो गया। और उसके हृदय मंदिर का सब अन्धेरा दूर हो कर उसमें आस्तिकता की चमक पैदा हो गई। और अन्त में श्री चरणों में अपना सिर रख कर सब दुर्व्यसन छोड़ कर संध्या, गायत्री, हवन, आदि क्रियाएं जो महर्षि ने बताई करने लग गये। (इसी माधो चन्द्र ने मुसलमानों के षड्यन्त्र को जो वह स्वामी जी के प्राण हरण करने के लिए कर रहे थे निष्फल बना दिया था।)

५. कलकत्ता निवास के समय ब्रह्म समाज के लीडर केशव चन्द्र सैन ने ब्रह्म समाजियों में यज्ञोपवीत पहनने के विरोध में बड़ा आन्दोलन उठा रखा था, अतः चक्रवर्ती बाबू ने स्वामी जी से पछा कि यज्ञोपवीत पहनना चाहिए या नहीं तो स्वामी जी ने उत्तर दिया कि अवश्य पहनना चाहिए। इस व्यवस्था को सुन कर अनेक ब्राह्मण और अनेक यज्ञोपवीत धारियों ने अपने यज्ञोपवीत न उतारे। हालां के केशव बाबू उन को पतित करने का पूरा पूरा यत्न करते रहे।

६. राम शरण गौड़ ब्राह्मण लुधियाना में पादरियों के पास नौकर हो गया था और वह उस को ईसाई बनाने का यत्न कर रहे थे। बल्कि उसके ईसाई बनाने की तारीख भी निश्चित हो चुकी थी। कि महाराज लुधियाना पधारे और उसको ईसाई होने से बचा लिया।

७. मारवाड़ का एक राजा १५ सेर रुद्राक्ष की मालाएं पहनता था और हर रोज ५ सेर मिटी के शिवलिंग बनाया करता था जो एक ब्राह्मण पानी में डुबो दिया करता था। महाराज के उपदेश से इस क्लेश से छूट गया और महाराज को कोटानुकोटि धन्यवाद देता था

८. जेहलम निवास में मेहता अमीं चन्द गान विद्या विशारद थे। जो महाराज के पास आकर भजन गाया करते थे। एक दिन महाराज को किसी ने कह दिया कि भक्त अमीचन्द तो व्यसनी आदमी है, इस पर स्वामी जी ने भक्त अमीचन्द को जब वह उन के पास फिर आये तो कहा –"अमीचन्द हो तो हीरे पर कीचड़ में पड़े हो" बस महाराज के मुखारबिन्द से यह शब्द निकलने की देर थी कि अमीचन्द की काया पलट गई। घर पर आ कर शराब की बोतल तोड़ दी, वैश्या को जवाब दे दिया अपनी पत्नी को जो बहुत देर से मैके गई हुई थी, जा कर ले आए और सचमुच हीरे बन गये। आज तक आर्य समाजों में उनके भजन बड़े प्रेम से गाये जाते हैं।

९. मुलतान निवास के समय सागर चन्द इन्जीनियर पक्का नास्तिक था, वह कहा करता था कि मैं १४०० पुस्तकें पढ़ कर नास्तिक बना हूं। जब महाराज के दर्शन किये तो तीन दिन तक उन से वार्तालाप करके महर्षि के प्रताप से आस्तिक बन गये और ईश्वर की सत्ता को स्वीकार कर लिया।

१०. अमृतसर में लगभग ४० हिन्दू नौजवान मिशन स्कूल में पढ़ने के कारण ईसाई मत की ओर झुक गये थे। वह नाम मात्र के हिन्दू रह गये थे। वह अपने आप को बपतिस्मा के बगैर ईसाई कहने लग गये थे। उन्होंने अपनी एक अलग सभा बना ली थी, जिसका नाम उन्होंने Prayer Meeting रख छोड़ा था और प्रति रविवार इस का अधिवेशन हुआ करता था। जब महाराज अमृतसर पधारे तो उन के व्याख्यान सुन कर उन के सब भ्रम निवृत्त हो गये और वह पतित होने से बच गये।

११. पादरी खड़क सिंह जिन को ईसाईयों ने स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने को बुलाया था, शास्त्रार्थ से पहले स्वामी जी

से मिले और वार्तालाप करके ईसाई मत त्याग कर आर्य बन गये।

१२. रुड़की में एक दिन आवागमन विषय पर महाराज का व्याख्यान सुन कर बाबू सुरेश चन्द असिस्टेंट इञ्जीनियर ने कहा कि मैंने आज तक ऐसा युक्ति युक्त व्याख्यान आवागमन के समर्थन में अपनी सारी आयु में कभी किसी से न सुना था। मेरा आवागमन पर विश्वास न था। परन्तु आज मेरा पक्का विश्वास हो गया है कि आवागमन सिद्ध सिद्धान्त है।

१३. हरिद्वार कुम्भ प्रचार के समय दो नांगे साधू महाराज के डेरे पर आए। और बड़ी असभ्यता से बातें करने लगे। परन्तु महाराज को तेवरी पर बल भो न आया। और उनकी बेतुकी बातों का सभ्यता पूर्वक उत्तर देते रहे। जब नागों ने देखा कि किसी प्रकार भी महाराज को शान्ति भंग नहीं होती। तो स्वामी जी के इनके प्रति व्यवहार पर इनका इतना प्रभाव पड़ा कि उनका आत्मा स्वयं उनको धिक्कारने लग गया। तब वह लज्जित होकर श्री चरणों में गिर पड़े और उसी वक्त नागा बाना उतार फैंका। और नागा पन्थ के सब चिन्ह पीतल के कड़े, माला कफ़नी और जटा वगैरह सब गंगा में फैंक दीं। और महाराज से दीक्षा लेकर नमस्ते कर विदा हो गये।

१४. हरिद्वार में एक निर्मला साधू जोत सिंह नाम का महाराज के पास वार्तालाप करने आया। परन्तु अत्यन्त कड़वी बोली में बातें करने लगा, रुड़की के हकोम थान सिंह जी स्वामी जी के श्रद्धालु भक्त थे, वह पास बैठ थे। उनसे साधू की बातें असह्य हो गईं, तो उन्होंने साधू से कहा—आदमियों की तरह बात करो वरना मुंह तोड़ दूंगा। महाराज ने हकीम साहब को कहा—कि आप ऐसा मत कहो। इस पर वह रुष्ट हो गया, और तीसरे दिन फिर वह आया तो स्वामी जी व्याख्यान दे रहे थे, जब महाराज

व्याख्यान से उठे तो साधू के अश्रुपात हो गये और महाराज के चरण पकड़ कर क्षमा प्रार्थना करने लगा । महाराज ने उसको उठाया और तसल्ली दी, फिर वह महाराज का अनुगत हो गया ।

१५. देहरादून के एक रईस के दो पुत्र अंग्रेज़ी पढ़े थे, उन पर ईसाईयों का रंग बहुत गहरा चढ़ गया था और वह ईसाई होने को तैयार हो चुके थे । इन्होंने इश्तिहार दे रखा था कि छः महीने के अन्दर अन्दर अगर कोई हमको सन्तुष्ट कर दे कि वैदिक धर्म ईसाई धर्म से श्रेष्ठ है तो हम ईसाई नहीं होगे. वरना ईसाई हो जावेंगे । इस छः महीने की अवधि में केवल दो चार दिन हो शेष थे कि महाराज देहरादून पहुंच गये । और उन्होंने इन दिनों नवयुवक को बुलाकर इन की सन्तुष्टि कर दी कि वैदिक धम ईसाई धर्म से बहुत श्रेष्ठ है । पादरियों ने उन लड़कों को कई प्रकार की धमकियां देनी शुरू कर दीं, पर वह दोनों नवयुवक महाराज के उपदेश से दृढ़ वैदिक धर्मी बन चुके थे । महाराज के इस अनुग्रह से इन लड़कों के पिता ने महाराज को कुछ धन भेंट करना चाहा, परन्तु उन्होंने स्वीकार न किया । और कहा कि इस धन से संस्कृत पाठशाला खोल दो ।

१६. बरेली के लाला लक्ष्मी नारायण जो स्वामी जी का आतिथ्य किया करते थे । उन्होंने एक वैश्या रखी हुई थी । महाराज को इस बात का पता लग गया । एक दिन महाराज ने उनसे पूछा कि आप का क्या वर्ण है, उन्होंने कहा आप तो वर्ण व्यव्यवस्था गुण-कर्म-स्वभाव अनुसार मानते हैं, मैं क्या उत्तर दूं । महाराज ने उत्तर दिया यूं तो सब वर्ण संकर हैं परन्तु लोक के अनुसार तुम अपने अपने आप को क्या कहते हो । उन्होंने उत्तर दिया कि मैं क्षत्रीय हूं । तब महाराज ने कहा कि यदि क्षत्रीय के वीर्य से वैश्या में पत्र उत्पन्न हो तो उसे क्या कहोगे । खजाची जी ने लज्जा से सिर

झुका लिया। तब महाराज ने कहा सुनो भाई हम किसी का पक्षपात नहीं करते, हम तो सत्य ही कहेंगे। महाराज के उपदेश से खजांची जी ने उसी रात उस वेश्या को निकाल दिया।

१७. मिर्जापुर में विद्या विषय पर महाराज का एक व्याख्यान हुआ, जिसमें उन्होंने, हिन्दू-मुसलमान, ईसाई अंगरेज़ आदि सब ज़ातियों के पंडितों को खूब धिक्कारा कि यह लोग जनता जनार्दन को अविद्या में रखते हैं महाराज की वक्तृता शक्ति इतनी अद्भुत थी कि श्रोतागण सत्य मानने पर बाधित हो जाते थे। श्रोताओं में एक सेठ जी और उनके प्रोहित भी थे, वक्तृता समाप्त होने पर सेठजी ने प्रोहित जी से पूछा कि वक्तृता कैसी रही, प्रोहित जी ने कहा बहुत अच्छी इस पर मारवाड़ी सेठ ने कहा कि तो फिर आपने हमें भ्रान्ति के कुएं में क्यों डाल रखा है। तब से वह स्वामी भक्त बन गये।

१८—आगरा में एक नास्तिक बगाली जिसको अपनी तर्क शक्ति पर बड़ा घमण्ड था, लोग भी इस को बड़ा तार्किक मानते थे। जब वह महाराज के सामने आया, तो लोगों के आश्चर्य की सीमा न रही, जब उन्होंने देखा कि बंगाली बाबू दो चार उत्तर पाकर ही सट्टी पट्ठी भूल गये, और उस के मुख से झाग निकलनी शुरू हो गई। श्री चरणों पर गिर पड़ा और आस्तिक बन गया।

१६—फर्रुखाबाद में कुछ विदेशी लोगों ने प्रसाद नामी एक बड़े हृष्ट पुष्ट गुण्डे को लालच देकर स्वामी जी पर आक्रमण करने को भेजा। वह एक मोटा सा लठ्ठ लेकर स्वामी जी के डेरे पर पहुंच गया। और बकवास करके कहने लगा, बाबा देव मूर्तियों को साक्षात परमात्मा मानते हो कि नहीं। स्वामी जी ने कहा कि देव मूर्तियां ईश्वर नहीं, तुम ईश्वर का स्वरूप नहीं जानते। वह कहने लगा

मैं जानता हूं। ईश्वर सच्चिदानन्द और भक्त वत्सल है, और भक्तों के कारण जन्म लेता है। स्वामी जी ने कहा ईश्वर अजन्मा है, यह शब्द तुमने रामायण में भी सुना होगा, उसने कहा हां सुना तो है। तब महाराज ने उसको कुछ देर उपदेश किया, और उसके सब हिंस्र भाव नष्ट हो गये। तब महाराज के चरणों में गिर पड़ा और उसके पश्चात जब तक जीता रहा एक सदाचारी ब्राह्मण की तरह रहता रहा।

२०—श्री रामदयाल सिंह रईस चन्द्रावली ज़िला मुरादाबाद शराब के बड़े व्यसनी थे। एक दिन महाराज ने व्याख्यान में शराब पीने का दोष कुछ ऐसे ढंग से वर्णन किया कि उक्त रईस ने उसी वक्त से शराब त्याग दी। और फिर सारी आयु न पी।

२१—अजमेर में एक हिन्दू युवक ईसाई बनने ही वाला था कि महाराज वहां पहुंच गये। और वह पतित होने से बच गया।

१२०. बेज़बानों का वकील

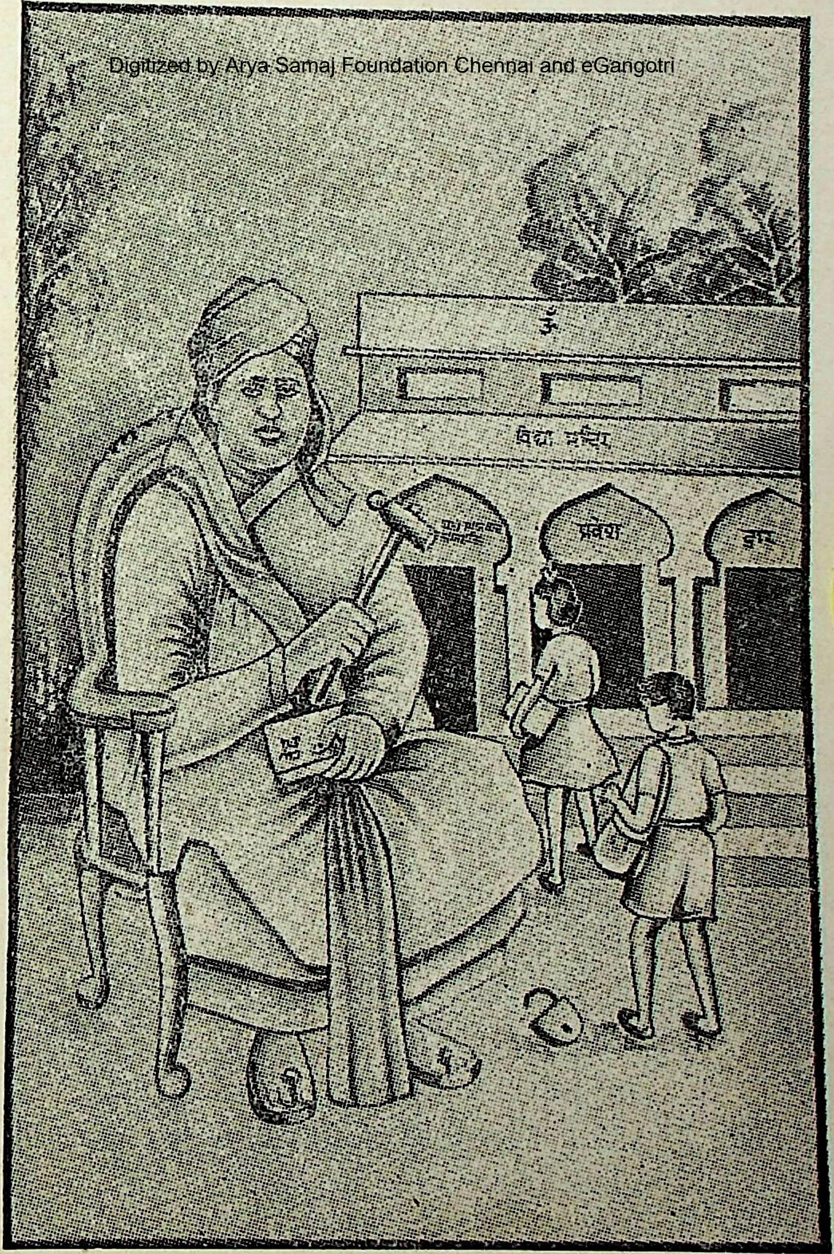
१. उदय पुर में दुसहरा के मौका पर सैकड़ों बकरे और भैंसे मारे जाते थे। महर्षि दयानन्द सरस्वती इस हिंसा कार्य को देख कर बहुत दुखी हुए। एक दिन जब महाराणा उदयपुर दुसहरे के उत्सव से लौटते हुए श्री सेवा में हाजिर हुए, तो स्वामी जी महाराज न हंसी का भाव धारण करते हुए कहा—कि आप राजा हैं, न्यायधीश हैं, मैं भैंसों और बकरों का वकील बनकर एक मुकदमा आप के सामने रखता हूं कि उन के बेज़बानों का मारना अन्याय है और इससे पाप के सिवाय और कोई लाभ नहीं है। महाराना जी ने स्वामी जी की बात तो मान ली, परन्तु यह कहा कि पशु हत्या बन्द कर देने से एक दम कोलाहल मच जायगा। इसे धीरे धीरे ही बन्द करना होगा और इस पर महाराना साहब ने किसी हद तक पशु हत्या बन्द कर देने की आज्ञा भी दे दी थी।

२. महर्षि जी अपने अमर ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश दसम समुल्लास में उपकारी पशुओं की हिंसा का निषेध शीर्षक कायम कर के लिखते हैं—"जो जो 'बुद्धि का नाश करने वाले पदार्थ हैं उन का सेवन कभी न करे और जितने सड़े, बिगड़े दुगन्ध आदि से दूषित, अच्छे प्रकार न बने हुए, मद्य मांसाहारी मलेच्छ कि जिन का शरीर मद्य माँस के परमाणुओं से पूरत है उनके हाथ का न खावे जिस में उपकारिक पशुओं की हिंसा अर्थात् जैसे एक गाय के शरीर से दूध घी, बैल उत्पन्न होने से एक पीढ़ी में चार लाख पच्छतर हज़ार छः सौ मनुष्यों को सुख पहुँचता है, ऐसे पशुओं को न मारें और न मारने दें।

वैसे भैंस भी हैं, परन्तु गाय के दूध से जितनी बुद्धि वृद्धि से लाभ होते हैं उतने भैंस के दूध से नहीं। इस लिए मुख्य उपकारक आर्यों ने गाय को ही माना है और जो कोई अन्य विद्वान होगा, वह भी इसी प्रकार समझेगा। बकरी के दूध से ३१९२० आदमियों का पालन होता है। वैसे हाथी, घोड़े, ऊंट, भेड़, गधे आदि से बड़े उपकार होते हैं (जिस की विशेष ब्याख्या गौ करूणा निधि में लिखीं है) इन पशुओं को मारने वालों को मनुष्यों की हत्या करने वाला जाने। देखो ! जब आर्यों का राज्य था तब यह महोपकारक गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे, तभी आर्यावर्त व अन्य भूगोल देशों में बड़े आनन्द में मनुष्यादि प्राणी रहते थे। क्योंकि दूध घी बैल आदि पशुओं की अधिकता होने से अन्न रस पुष्कल प्राप्त होते थे। जब से विदेशी माँसाहारी इस देश में आके गो आदि पशुओं के मारने वाले सिद्ध यानि राज्याधिकारी हुए तब से धीरे धीरे आर्यों के दुख की बढ़ती होती जाती है। क्योंकि—

"नष्टे मूले नैव फलं न पुष्प" (वृहदारण्यक १. १०)

जब वृक्ष का मूल ही काट दिया जाय, तो फल फूल कहां से हों।



महर्षि दयानन्द ने शताब्दियों से विद्या मन्दिर पर लगे ताले को तोड़कर विद्या मन्दिर के द्वार मनुष्य मात्र पर खोल दिए।

३. संवत १९३६ हरिद्वार के कुम्भ में प्रचार करते करते एक दिन महर्षि जी बैठे बैठे सहसा लेट गये, लोगों को इस पर बड़ा आश्चर्य हुआ, थोड़ी देर बाद महाराज उठ बैठे और लम्बी सांस ले कर कहा—कि विधवाओं और गौओं की आह से यह देश नष्ट हो गया।

१२१. नारी अधिकार रक्षक

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥

महर्षि दयानन्द जी के आने से पहले न केवल भारत वर्ष में अपितु संसार भर में नारी जाति अपने अधिकारों से वंचित थी। सभी बड़े बड़े फ़लासफ़री और भक्तों ने भी नारी जाति के प्रति निहायत ही घटिया दर्जे के विचारों को अपनाया और प्रचार किया जिस से संसार भर में नारी जाति अपमानित हो रही थी। परन्तु महर्षि दयानन्द जी महाराज ने नारी संसार के अधिकारों की रक्षा के लिए वह जोरदार आन्दोलन उठाया कि अब सकल संसार की नारी अपने अधिकारों को प्राप्त करने में कटिबध हो चुकी है। इंग्लैण्ड जैसे प्रसिद्ध प्रजातन्त्र राज्य में भी स्त्रियों को अपने अधिकार प्राप्त करने के लिए घोर परिश्रम और प्रयत्न करने पड़े थे। कई साल के निरन्तर प्रयत्न से ही अब इन को वोट का अधिकार प्राप्त हुआ है। हमारे इस भारत देश में तो "स्त्री क्षूद्रो नः धीयताम" की मनगढ़न्त श्रुति रच कर नारी जाति को विद्या अधिकार से एकदम वंचित कर दिया हुआ था महर्षि ने बड़े परिश्रम से 'यथे माम् वाचम कल्याणि मा वदानि जनेभ्यः' की श्रुति का शस्त्र हाथ में लेकर हजारों सालों से विद्या के इस बन्द द्वार पर लगे हुए बड़े भारी क़ुफ़ल को तोड़ कर विद्या मन्दिर का द्वार सब मनुष्य

मात्र के लिए खोल दिया । महर्षि के अतिरिक्त संसार भर के आदरणीय महापुरुषों के स्त्री जाति के प्रति कितने घृणाप्रद विचार थे। वे उनके निम्नलिखित वाक्यों से स्पष्ट ही हो रहे हैं।

१, स्वामी शंकराचार्य—स्त्री को नरक का द्वार समझते थे और शायद इसीलिए इन्होंने विवाह न किया था।

२. गुसाईं तुलसीदास तुलसी रामायण में लिखते हैं—

ढ़ोल, गंवार, क्षूद्र,पशु, नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी

फिर भिलनी के मुंह से कहलवा दिया है—

अधम ते अधम अधम अति नारी,
ताहि में मैं मतिमन्द गंवारी ।

३. भगत सूरदास से जब किसी ने नारी के विषय में पूछा कि आप के क्या विचार हैं। तो वह उत्तर देते थे—

"कि मेरी फूटी आंखों को देख कर भी मुझ से यह सवाल पूछते हो। मेरा तो सारा जीवन ही स्त्री के कारण तबाह हो गया है, सदा के लिए आंखें खो बैठा हूं।"

यह कथा इस तरह है कि भगत सूरदास जी भिक्षा मांगने जाया करते थे। एक दिन एक द्वार पर एक निहायत ही सुन्दर युवती नारी इन को भिक्षा देने के लिए आई, भगत जी इस को निहायत ही ग़ौर से देखने लग गए। जिस से उस का सुन्दर रूप उन की आंखों द्वारा उन के मन में उतर गया। जब अपने डेरे पर आए तो कुछ होश आई और सोचा कि आंखों के रास्ते वह रूप मेरे अन्दर आ कर मेरी गिरावट का कारण बना है। इसलिए आंखों को ही निकाल देना चाहिए। सो उन्होंने अपनी दोनों आखें निकाल दीं और अन्धे हो गए। अब तनिक विचारिए कि इस में स्त्री जाति का क्या दोष हुआ। सुन्दर और जवान होना क्या स्त्री का दोष

है ? ये तो वही बात हुई "मारुं घुटना फूटे आंख" दोष आप का है कि स्त्री के रुप यौवन को सहन न कर सके। होता कोई महर्षि दयानन्द जैसा योगीराज जो एक दम योग द्वारा मन का शीशा साफ कर लेता। जैसा कि उन्होंने मथुरा निवास समय ७२ घंटे की लगातार समाधि लगा कर किया था। यह तो भगत जी से बन न सका और आंखें फोड़ कर स्त्री जाति की निन्दा करना शुरू कर दी।

"गिला औरत का करते थे, कसूर अपना निकल आया।"

४—भगत कबीर कहते हैं।

नारी की छाया पड़त, अंधे होत भुजंग।
कबीरा ताकि कौन गत, जो नित नारी के संग।

५—हज़रत मुहम्मद साहब—औरतें तुम्हारी खेतियां हैं। आओ जिस तरह से चाहो इसलाम में एक मर्द के लिए चार औरतों को रखने का विधान है मर्द औरत को तलाक दे सकता है परन्तु औरत मर्द को तलाक नहीं दे सकती।

६—हज़रत ईसा—बाईबल ने कहा है कि, औरत के तो आत्मा ही नहीं होती (सैंकड़ों सालों तक ईसाईयों में यह विचार फैला रहा) कि यह तो मांस और हड्डी का लोथड़ा है। बेजान चीज़ है। जैसे चाहो इस्तेमाल करो क्योंकि हज़रत आदम ने जब खुदा-बन्द से अकेलेपन की शिकायत की तो खुदा ने हज़रत आदम की एक पसली निकाल कर हव्वा बना दी। ताकि आदम की दिल्लगी होती रहे।

७—यूनान का मशहूर फ़िलासफ़र सुकरात—कहता है कि औरत से अधिक फ़ितना वा फ़साद की चीज़ कोई नहीं। यह एक ऐसा पेड़ है जो बहुत ही सुन्दर और खुशनुमा नज़र आता है, लेकिन जब कोई चिड़िया इसका फल खाती है तो मर जाती है। मालूम

होता है कि सुकरात ने स्त्री जाति के प्रति ऐसे विचार अपनी धर्म पत्नी से तंग आकर बनाए थे, क्योंकि सुकरात की स्त्री बहुत लड़ाकी तबीयत की थी। सुकरात को बहुत गालियाँ भी निकाला करती थी। कहते हैं कि एक दिन सुकरात जब घर आया तो उसकी स्त्री उसे कठोर बचन कहने लगी। सुकरात चुप करके सुनता रहा, और बिल्कुल न बोला। इस पर उसका स्त्री को और भी गुस्सा आ गया ! और उसने भरी भराई पानी की बाल्टी सुकरात पर फैंक दी। इस पर सुकरात ने हंस कर कहा "सुना करते थे कि जो गरजते हैं वह बरसते नहीं "परन्तु आज यह लोकोक्ति भी व्यर्थ हो गई।

८. अफ़लातून ने कहा—ज़ालिम और ज़लील आदमी मरने के बाद औरत बना दिये जाते हैं।

९—योहना - औरत अमन और सलामती की दुश्मन है।

१०—नैपोलियन बोनापार्ट—जब जज़ीरा हैलना में कैदी था तो उसने कहा था कि औरत कुदरत की तर्फ़ से एक अतिया है ताकि बच्चे पैदा करें।

११—शापन हार—जर्मन का मशहूर फ़िलासफर—औरतों को किसी हुनर में दिलचस्पी नहीं होती। जिस तरह हाथी का सूंड, और शेर को पंजे दिये गये हे ताकि वह अपनी हिफ़ाजत कर सकें। इसी प्रकार औरत को मक्कारी दी गई है ताकि वह अपने मकसद को हासल करने के लिए फ़रेब से काम लें और इस नियम के मुताबिक इन को विरासत से महरूम रखना चाहिए। औरत अत्यन्त तग नज़र होती हैं।

१२. जर्मन का मशहूर मुसन्नफ़ नेटशे—यदि तुम संसार भर में तबाही का खतरा मोल लेना चाहते हो तो औरत को आज़ादी दे दो।

१३—इंगलैंड का मशहूर शायर लार्ड बायरन लिखता है—

औरतों को सिर्फ घरेलू बातों का ध्यान रखना चाहिए। इनकी तालीम भी खाने पकाने तक सीमित रहे। सोशल लाइफ के साथ इनका कोई सम्बन्ध न होना चाहिए।

१४—इस तरह नारी जाति के प्रति सैंकड़ों हजारों सालों से घृणित विचारों का प्रवाह चलता रहा। औरत को अत्यन्त घिनावने रूप में रखा जाता रहा और इसे तमाम बुराइयों का अड्डा बताया जाता रहा। परन्तु ज़माने ने पलटा खाया और भगवान की कृपा से एक ऐसा पूर्ण पुरुष संसार में पैदा हुआ जिसे नारी जाति को इसके सब अधिकार दिलाने के लिए अपनी जान की बाज़ी लगा दी। इस पूर्ण पुरुष ने स्त्री जाति को मातृ शक्ति के रूप में देखा। जो उनके जीवन की निम्नलिखित घटना से पूर्ण रूप से प्रत्यक्ष हो रहा है।

१५—जब महर्षि दयानन्द राजपूताना में प्रचार कर रहे थे, तो एक दिन बहुत से श्रद्धालु भक्तों के साथ बाहर सैर को जा रहे थे। रास्ते में एक पीपल का पेड़ था। जिसके नीचे कुछ बच्चे खेल रहे थे, इन बच्चों में एक छोटी सी कन्या थी। महर्षि जी ने इस मातृ शक्ति रूपी छोटी सी कन्या को सिर झुका कर नमस्कार किया। उसी पीपल के नीचे कुछ पत्थरों को इकट्ठा कर और सिन्दूर लगा कर देवता भी बनाया हुआ था. महर्षि के साथ वाले उनके श्रद्धालु भक्त महर्षि के नमस्कार करने के रहस्य को समझ न सके। अनायास ही एक श्रद्धालु ने कहा—महाराज चाहे आप मूर्ति पूजा का कितना ही खण्डन करें। परन्तु पीपल के नीचे पड़े हुए पत्थर के देवता ने आप का सिर झुका ही दिया। इस पर महर्षि चलते चलते खड़े हो गये। और उंगली से इस छोटी कन्या की तर्फ संकेत करके बोले, देखते नहीं हो वह मातृ शक्ति है मैंने तो उसको नमस्कार किया है। आपके पत्थर के देवता में कहाँ

शक्ति हैं कि वह मेरा सिर झुका सके। इस पर सब लोगों को श्रद्धा महर्षि की मातृ शक्ति की भक्ति देखकर और भी बढ गई। कहा भो है।

नारी निन्दा मत करो, नारो नर की खान।
नारो से ही उपजे ध्रुव प्रह्लनाद समान॥

फिर महर्षि जी ने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में मनुस्मति के बहुत से श्लोक उध.रण करके नारी जाति की महिमा गाई है। महर्षि ने स्त्री जाति के अधिकारों की रक्षा करके जो स्त्रो जाति का उपकार किया है। वह नारी संसार कभो नहीं भुला सकता। संसार के बड़े बड़े पुरुषों, फ़िलासफ़रों, ख़ुदा के पैग़म्बरों, और ख़ुदा के इकलौते पुत्र के प्रचार के खिलाफ़ खड़े होकर महर्षि जी ने अपूर्व साहस का परिचय दिया है। और इसलिए अनायास ही मुंह से निकल पड़ता है—

(नारो संसार के अधिकारों की रक्षा करने वाले की सदा जय हो)

१२२. संसार भर के साईंसदानों को चैलेंज करने वाला

उन वेदों को जिन को योरुपियन लोगों ने अपनी अल्प बुद्धि और अज्ञान से गडरियों के गीत कह कर घोषित किया था। महर्षि दयानन्द जी ने उनको सब सत्य विद्याओं का पुस्तक सिद्ध कर के दिखाया। महर्षि जहां फ़िलास्फ़ी का पूर्ण ज्ञान रखते थे इतिहास और तत्व ज्ञान के भी विद्वान थे वहां विज्ञान यानि साईंस के भी पूर्ण ज्ञानी थे। अत सन् १८७५ में जब महर्षि जी ने ऋगवेदादि भाष्य भूमि की पुस्तक लिखी तो उस में नाव, विमान, विद्या पर निम्न प्रकार प्रकाश डाला है।

१—महर्षि लिखते हैं कि "तीन प्रकार के यान बनाने चाहिए। पृथ्वी पर, समुद्र में और आकाश में चलने वाले और नगरों की सड़कों पर चलने वाली (मोटर) गाड़ियां और वह सवारियां मन से भी अधिक वेग वाली हों।" "फिर वह सवारी कैसे बनानी चाहिए जिन सवारियों से हमारा भूमि, जल और आकाश में प्रतिदिन आनन्द से आना जाना बनता है। वह लोहा, तांबा चांदी आदि तीन धातुओं से बनती हैं। और जैसे नगर वा गांव की गलियों में झटपट जाना आना बनता है ऐसे दूर देश में भी उन सवारियों से शीघ्र शीघ्र आना जाना होता है। इस प्रकार विद्या के निमित उपरोक्त जो अश्वी हैं (आग पानी इन को अश्वी कहते हैं) उनसे बड़े बड़े कठिन मार्गों में भी सहज से आना जाना होता हैं। जैसे मन के वेग के समान शीघ्र गमन करने के लिए सवारियों से प्रति दिन सुख से सब भूगोल में आवें जावें। जो उपुरोक्त अरितरीयुक्त यान बनते हैं। वह जो रथ बड़ बड़े समुद्रों के मध्य से भी पार पहुंचाने में श्रेष्ठ होते हैं। जो विस्तरित आकाश तथा समुद्र में आने जाने के लिए अत्यन्त उत्तम होते हैं। जो मनुष्य इन रथों में यंत्र सिद्ध करते हैं वह सुखों को प्राप्त होते हैं। फिर एक वेद मन्त्र का अर्थ करते हुए महर्षि लिखते हैं कि "हे मनुष्य लोगो जैसा मन का वेग है वैसे वेग वाले यान सिद्ध करो और जो इस प्रकार शिल्प विद्या रुप श्रेष्ठ यज्ञ करने वाले सब भोगों से युक्त होते हैं वह कभी दुखी होकर नष्ट नहीं होते। क्योंकि कला कौशल से युक्त मन से भी वेगवान सवारियों पर चढ़ कर सर्व भूगोल में आते जाते हैं। इन्हीं से मनुष्यों का सुख भी बढ़ता है। इस तरह महर्षि जो ने सन १८७५ में वेद मन्त्रों के आधार पर संसार के वैज्ञानिकों को हवाई जहाज बनाने का तरीका बताया। परन्तु जब संसार के वैज्ञानिकों के सामने यह प्रश्न आया तो उन्होंने एकदम उस को रद्द कर दिया और कहने लगे कि जब

तक जमीन की आकर्षण शक्ति कायम है । तब तक किसी आदमी का हवा में उड़ना कैसे सम्भव हो सकता है। यह कानून कुदरत के खिलाफ़ बात है और इस पर महर्षि का उपहास भी किया गया। ऋषिवर से जब किसी ने कहा कि क्या आप हवाई जहाज़ बना सकते हैं ? तो उन्होंने कहा अगर मुझ को पर्याप्त सामान मिल जाए तो मैं हवाई जहाज़ बना कर दिखा सकता है।

आश्चर्य जनक घटना

आप को यह जान कर आश्चर्य और हर्ष होगा कि संसार में सब से पहला हवाई जहाज़ बनाने वाला महर्षि जी का चेला ही था।

महर्षि दयानन्द जी के अनुवेशन में श्रद्धा रखने वाले उनके शिष्य आर्य समाज बम्बई के सभासद श्री तालपाड़े ने सन् १९०३ में एक हवाई जहाज बनाया। उसका नाम मरुद् सखा रखा गया और महाराज बड़ौदा के सम्मुख बम्बई चौपाटी पर उड़ाकर इस का परीक्षण किया गया। जो कामयाब रहा। लेकिन अफ़सोस कि श्री तालपाड़े बहुत दिन तक जीवत न रह सके। और उनका सारी खोज का साहित्य आर्य समाजियों से न सम्भाला गया। और जर्मन देश के लोग ले गए। इसके बाद सन् १९०४ में अमरीका के दो सगे भाई राईट ब्रादर्ज़ ने ग़ुबारा उड़ा कर हवाई जहाज़ का तजरबा किया। और फिर जर्मन के काऊंट जैपलन ने हवाई जहाज सन् १९१० में बनाया। और अब हवाई जहाज़ जैसा कि महर्षि ने ने लिखा है मन के वेग वाले बनाए जा रहे हैं। महर्षि जी की जिस बात पर सन् १८७५ में संसार के साईंसदानों ने उपहास किया था। अब उसी महाराज को कहने अनुसार हवाई जहाज, राकट आदि कई प्रकार के यन्त्र बना रहे हैं।

३—प्राचीन काल में वेदों के आधार पर भारत में विज्ञान का कितना फैलाव था। महर्षि सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं "कि राजा भोज के पास एक काठ का घोड़ा था जो एक घड़ी में कोसों चलता था। और एक पंखा था जो किसी मनुष्य की सहायता के बिना आप ही आप खूब चलता था। और खूब हवा देता था" इसी तरह धम्पद के कथा वासुदंत त्रिस्थू पृष्ट ६८ में लिखा है "कि कोशम्बी के राजा उद्यन को उज्जैन के राजा से शत्रुता थी। उसने राजा को पकड़ने के लिए एक लकड़ी का हाथी बनाया जो यन्त्र के सहारे चलता था। इस में साठ योद्धा बैठ सकते थे। इस हाथी को सफेद रंग में रंगा कर उज्जैन के जगलों में छोड़ दिया और वह यन्त्र के ज़ोर से इधर उधर फिरने लगा। सफेद हाथी का खबर पाकर राजा इसके पकड़ने को आया परन्तु खुद पकड़ा गया।" फिर उसी ग्रन्थ के सफ़ा १६५ में लिखा है "कि विशाखा ने महालता नाम का एक आभूषण बनवाया था। चार महीने में ५०० सुनार उसे बना पाए थे। उसकी कीमत उस समय के सिक्का के अनुसार ६ करोड़ थी। इस आभुषण में एक मोर लगा था जो हर समय विशाखा के मस्तक पर नाचा करता था।" इस तरह महाभारत के आदिपर्व में अन्तक राजा के घोड़े का वर्णन है। वह भी यन्त्र के सहारे चलता था। शाहवाजगढ़ी पिशावर में एक पत्थर पर रेल का इशारा भी है।

विमान कला

महर्षि दयानन्द जी के अन्वेषण अनुसार इस देश में विमान कला का बहुत विस्तार था। विमान नामक यन्त्र वैदिक काल से ही इस देश में प्रचलित था। वेद में विमान के बनने बनाने की विधि का कुछ वर्णन महर्षि जी ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में किया है। कहा गया है कि जो आकाश में पक्षियों के उड़ने की स्थिति को

जानता है। वह समुद्र, आकाश की नाव, विमान को जानता है। संस्कृत में "वी" पक्षी को कहते हैं और "मान" का अर्थ है अनुरूप अथवा सदृश। इसलिए विमान का अर्थ हुआ पक्षी के सदृश और अब आप के सामने जो विमान उड़ते हैं वह सब पक्षियों की शक्ल के ही होते हैं। पंच तन्त्र में लिखा है कि एक धूर्त मनुष्य विष्णु का रूप धारण करके आया करता था। और गरुड़ की आकृति का ही वाहन लाया करता था। विष्णु का तो वाहन ही गरुड़ की आकृति जैसा विमान जिसमें विष्णु विचरते थे। गया चिन्तमणि नामा में मोर की आकृति वाले हवाई जहाज़ का वर्णन मलना है। बालमीकि रामायण सुन्दर काण्ड में पुष्पक विमान का वर्णन आता है। भागवत पुराण में शल राजा के विमान का वर्णन आया है। जो भूमि, जल, आकाश और पहाड़ पर भी आसानी से चलता था। (आजकल ऐसे जहाजों को हेलीकोप्टर कहते हैं) ऐसे ही हेलीकोप्टर पर हनुमान लंका से हिमालय पर संजीवनी बूटी लाने के लिए आया था। सब से विशाल और शानदार विमान कंदम ऋषि का था। विमानों के बनाने वाले कारीगर इस देश में बौद्ध काल तक यानि आज से २५०० वर्ष पहले तक मौजूद थे। धमपंद बौध राजकुमार वथु पृष्ट ४१० में एक कारीगर का हाल इस प्रकार लिखा है। "बौध राजकुमार ने एक महल बनवाया। बनाने वाले कारीगर ने उसे बड़ा ही विचित्र बनाया। बौध राजकुमार ने सोचा कि कहीं यह कारीगर किसी दूसरे राजा का महल भी इस प्रकार का न बना देवे। इसलिए इसके हाथ कटवा देने चाहिए। राजा ने यह बात अपने किसी सलाहकार से कह भी दी। इस आदमी नें यह खबर उस कारीगर तक पहुंचा दी। कारीगर ने अपनी स्त्री से कहा कि वह अपना मकान तथा कुल सामान बेच कर इस महल को देखने के लिए राजा को दरख्वास्त देवे। स्त्री ने वही किया और राजा की

आज्ञा से महल देखने गई। कारीगर इसको दिखाने के लिए साथ गया था। कारीगर इसको एक कमरे में ले गया। और स्त्री पुत्र व सब सामान के साथ इस कमरे में लगाये गये गरुड़ यन्त्र पर चढ़ कर भाग गया और नेपाल के काठमाण्ड नगर में जा कर रहने लगा। इस से सिद्ध होता है २००० वर्ष तक इस देश में विमान बनाने वाले मौजूद थे। इन विमानों से सम्बन्ध रखने वाला एक प्राचीन पुस्तक है। उसका नाम है अन्शू बोधनी। यह भारद्वज ऋषि की बनाई हुई है। इस पुस्तक में अनेक विद्याओं का वणन है। प्रत्येक विद्या के लिए एक एक अधिकरण (चेपटर) रखा गया है। इन अधिकरणों में एक विमान अधिकरण भी है। इस अधिकरण में आए हुए एक सूत्र पर बोधायन ऋषि की व्याक्या इस प्रकार है—

इन श्लोकों में विमान की रचना आकाश संचारी गति के आठ विभाग इस प्रकार लिखे हैं—

(१) बिजली से चलने वाले; (२) अग्नि, जल, वायु आदि से चलने वाले, (३) भाप से चलने वाले, (४) पच चखी के तेल से चलने वाले (५) सूर्य की किरणों से चलने वाले, (६) चुम्बक से चलने वाले। (७) सूर्य कान्त, चन्द्र कान्त आदि मनियों से चलने वाले, (८) मरुद् सखा केवल वायु से चलन वाले, आजकल भारत सरकार को भी एक इसी प्रकार की पुस्तक पेश की गई थी। परन्तु हमारी सरकार न इस पुस्तक से कोई लाभ न उठाया। इस का अलमारी में बन्द कर रखा है।

बोलने वाली पुतलियां

पुराने जमाने में एक ऐसा यन्त्र भी बनवाया गया था जो मनुष्य की भान्ति बोलता था। महाराज विक्रमादित्य के सिंहासन की पुतलियां बराबर बोलती थीं। बाल्मीकि रामायण लंका काण्ड सर्ग ८० में लिखा है कि रावण ने एक बनावटी सीता बनाई था

जो राम का नाम लेकर वरलाप किया करती थी।

४—महाभारत काल में टैलीवीजन जैसे यन्त्र का स्पष्ट वर्णन है कि राजा धृतराष्ट्र के पास बैठा हुआ संजय ६० कोस दूर पर हो रहे कुरुक्षेत्र युद्ध का आंखों देखा और कानों सुना हाल बतला रहा है।

इस तरह विज्ञान में भी महर्षि दयानन्द जी के कथनानुसार भारत जगत गुरु ही सिद्ध होता है।

१२३ जगत् गुरु

स्वामी दयानन्द एक सच्चे जगत् गुरु और सुधारक थे। जैसा कि इगलैंड के मिस्टर फाक्स पिट जनरल सैक्रेटरी ने कहा था।

१—महर्षि जी के अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश को पढ़ कर अब ईसाई पादरी इंजील, मुसलमान मौलवी कुराण शरीफ का, और हिन्दू पंडित पुराणों का अर्थ बदलने में वाधत हुए हैं। और स्वामी जी के तर्क की रोशनी में अब नये नये तर्जमें इन पुस्तकों के हो रहे हैं। एक बार आर्य समाज के प्रसिद्ध संन्यासी स्वामी दर्शनानन्द जी रेलगाड़ी में सफर कर रहे थे। तो कुछ ईसाई पादरी भी इस कमरे में आ गये। जहाँ स्वामी जी बैठे थे। बातों ही बातों में आपस में प्रश्न उत्तर होने लगे। जब स्वामी दर्शनानन्द जी ने कहा—कि इंजील में तो लिखा है कि सूरज चौथे दिन पैदा हुआ। और दिन रात का सम्बन्ध सूरज से ही है तो जब सूरज न था, तो दिन कैसे हुआ। तब पादरी साहबान कहने लगे. कि चौथे दिन का मतलब है चौथे दर्जे पर। तब स्वामी दर्शनानन्द जी ने कहा—कि यह हेरा फेरी कब से हुई। तो ईसाई पादरी फौरन कहने लग गये, जो गुरु आप को पढ़ा गया है। वह हम को भी सिखा गया है इस तरह

कुरान शरीफ़ बहिश्त की दोज़ख के विषय मेंवह पुराने विचार बिल्कुल बदल चुके हैं। पुरानों की अश्लील और असम्भव कथाएं अब महर्षि के तर्कसे अलंकार बनते जा रहे हैं। यह तो हुई मजहबी दुनियां में महर्षि को गुरु मानने की वात। अब संसार में अमन आयम रखने के लिए जो अनुभूत नुस्खा महर्षि ने तजवीज़ किया था, वही सारा संसार मानने पर बाधत हो रहा है। वेद के अन्य भक्त महर्षि ने वेद के अधार पर संसार के अन्दर आर्यों के चक्करवर्ती राज्य की कामना की है। अपनी लघू पुस्तका आर्य्य भिविनय में जगह जगह हम ऐसी ही प्रार्थना करते हुए महर्षि को पाते हैं। जैसा कि निम्नलिखित वेद मन्त्र में हैं।

हमारा चक्रवर्ती राज्य और साम्राज्य धन बढ़े

ऋषि दयानन्द की हार्दिक प्रार्थना

वयं जयेम त्वया युजा, वृतमस्माकमंशमुदवा भरे भरे।
अस्मभ्यमिन्द्र बरिवः सुगं कृधि प्रशत्रूणां मघवन्वृष्ण्यारूजी ॥

ऋ १।७।१४।४

अर्थ—हे इन्द्र परमात्मन्! (त्वया युजा वयं जयेम) आपके साथ वर्तमान आप की सहायता से हम लोग दुष्ट शत्रुजन को जीतें। कैसा वह शत्रु? कि (आवृतम्) हमारे बल से घिरा हुआ। हे महा-राजाधिराजेश्वर! (भरे भरे अस्माकमंशमुदवां) युद्ध में हमारे अंश (बल) सेना का (उदवा) उत्तम रीति से कृपा करके रक्षण करो, जिस से किसी युद्ध में क्षीण होके हम पराजय को प्राप्त न हों। जिन को आप की सहायता है उनका सर्वत्र विजय ही होता है। हे (इन्द्र मघवन्) महाधनेश्वर! (शत्रूणां वृष्ण्या) हमारे शत्रुओं के वीर्य पराक्रमादि को (प्ररुजो) प्रभग्न रुग्ण करके नष्ट कर दे। (अस्म-भ्यं वरिवः सुग कृधि) हमारे लिए चक्रवर्ती राज्य और साम्राज्य

धन को (सुगं, सुख से प्राप्त कराओ अर्थात आपकी करुणा से हमारा राज्य और धन सदा वृद्धि को ही प्राप्त हो। —दयानन्द

३. महर्षि जी ने अपनी दिव्य दृष्टि से यह देख लिया था कि जब तक संसार में वैदिक धर्म का प्रचार होकर आर्यों का चक्रवर्ती राज्य रहा, तब तक संसार में अमन चैन रहा। परन्तु जब से आर्यों का चक्रवर्ती राज्य न रह कर मांडलिक राज्य स्थापित हुए तब से संसार जंग का अखाड़ा बना हुआ है। यदि संसार को फिर से युद्ध के भय से निर्भय करके शान्ती स्थापित करनी है तो यही एक उपाय है, कि संसार में आर्यों का एक अखण्ड चक्रवर्ती राज़्य होवे। परन्तु उस वक्त महर्षि की इस बात पर किसी ने ध्यान न दिया। शायर के कथानुसार—'अक्ल आती है वशर को ठोकरें खाने के बाद'। सन १९१४ १८, के महायुद्ध की भट्टी में जल कर संसार उसी रास्ते पर चलने पर विबश हो गया। जो जगत् गुरु ने आज से १०० वर्ष पहले बतलाया था।

४. सन १९१४—१८, का युद्ध समाप्त हुआ तो इस युद्ध में हुई भयानक हानि को देखकर उस वक्त के अमरीका के प्रैजीडेंट के मन में इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ जो महर्षि बतला गये थे। उन्होंने यूरोप के सब मुल्कों को सुझाव दिया, कि सब देश इकट्ठे हो जाओ और एक ऐसी संस्था कायम करो जो भावी युद्ध की सम्भावना को रोक सके। अतः यूरोप में एक लीग आफ़ नेशनज़ नाम की संस्था कायम की गई। परन्तु अमरीका इस में शामिल न हुआ और यह लंगड़ी सी सस्था संसार में अमन कायम करने में असमर्थ रही और पहले महायुद्ध के थोड़े ही दिन बाद इटली ने एबेसीनिया पर हमला कर दिया और भी कई मुल्कों में छोटी छोटी लड़ाईयां शुरू हो गई। क्योंकि यह लीग आफ़ नेशनज एक चत्रवर्ती राज्य न हो कर एक संस्था के रूप में ही बनाई गई

और वह भी अधूरी। इस लिए यह युद्ध टालने में असमर्थ रही। महर्षि जी का विचार एक चक्रवर्ती राज्य का था और राज्य वह होता है जिस के पास अपनी शक्तिशाली सेना हो और बड़ा स्मृद्ध कोष हो, परन्तु लीग आफ़ नेशनज़ के पास यह दोनों चीजें न थीं। इस वास्ते यह बुरी तरह फ़ेल हुई। महर्षि के विचार को पूर्ण रूप से मिस्टर एच. जी. वेल्ज़ ने ज़ाहर किया है—जो निम्न प्रकार है।

Mr. H. G. Wells in his book Salvaging of Civlisation writes A league from which large sections of world are excluded is no contribution to that need. It may be worse than nothing, if man is to be saved from destruction there must be a World-Control - Such a world Government that Should have might to Supersede the British Artillery, to Surpass the French Artillery and Air force superseding all navy and air forces. For many flags there must be one Sovereign flag."

अर्थात—यदि मनुष्य को तबाही से बचाना है तो सार्वभौमिक अध्यक्षता होनी चाहिए। इसके पास इतनी सेना होनी चाहिए कि वह ब्रिटिश व फ्रैंच सेनाओं से अधिक हो। तथा समस्त राजकीय झंडों के स्थान पर एक ही सार्वभौम झंडा लहराता हो।

५. सन १९३९—४५, में संसार का दूसरा महायुद्ध हुआ, इस में पहले महायुद्ध से भी अति भयंकर हानि हुई तब फिर वही महर्षि का विचार संसार के सामने आया और अब के U. N. O नाम की एक संस्था स्थापित हुई। जिसमें संसार के क़रीबन सभी देश शामिल हुए। अब भी महर्षि के विचार पूर्ण

रूप से क्रियात्मक रूप में नहीं लाए गए । इस संस्था के पास भी न अपनी सैना है, न ही कोई कोष है । और यह भी चक्रवर्ती राज्य न होकर एक चक्रवर्ती संस्था का रूप ही धारण किये हुए हैं । इस लिए अब भी संसार में छोटे बड़े झगड़े बखेड़े खड़े होते ही रहते हैं । अतः इस संस्था के होते हुए बर्तानिया और फ्रांस ने मिश्र पर हमला कर दिया था । जब तक महर्षि का चक्रवर्ती राज्य का पूर्ण रूप संसार में स्थापित नहीं होता तब तक संसार में अमन कायम नहीं हो सकता । और अब संसार के सारे ही पैलिटीशन इस एक बात पर सहमत होते जा रहे हैं कि One world govt की स्थापना के बिना संसार में अमन नहीं हो सकता । जैसा कि मिस्टर वेल्ज़ के ऊपर के लेख से बिल्कुल स्पष्ट है । और संसार के विचारक अब इन्हीं दो बातों पर सहमत हो रहे है ।

१—संसार में चक्रवर्ती राज्य को स्थापना ।

२. ससार में सार्व भौमिक धर्म की स्थापना ।

परन्तु चक्रवर्ती राज्य के साथ महर्षि जी ने जो आर्य शब्द का विशेषण लगाया है, वैसा ही होगा तो इन्सान और इन्सानियत बच सकेगी । अनार्यों का चक्रवर्ती राज्य हुआ तब तो संसार में अनर्थ ही अनर्थ हो जायेगा । क्योंकि आर्य और दस्यु दो ही क़िस्म के मनुष्य वेद ने कहे हैं । आर्य यानि श्रेष्ठ, दस्यु यानि दुष्ट । इस लिए आर्यों का ही चक्रवर्ती राज्य संसार के अमन का ज़ामन हो सकता हैं दस्युओं का नहीं । और दूसरी बात की भी महर्षि जी महाराज ने हा घोषणा की थो कि वैदिक धर्म ही सार्वभौमिक धर्म पहले करोड़ों वर्षों तक रहा हैं, और अब संसार का भावो धर्म भी होने का श्रेय वैदिक धर्म को ही हा सकता है । अतः महर्षि की इन दोनों घोषणाओं को संसार भर के राजनैतिक लीडर और फ़िलासफ़र

शिरो धार्य करने पर विवश हो चुके हैं । क्योंकि संसार के कल्याण का और कोई मार्ग उनको नज़र नहीं आता है और नज़र आवे तब जब कोई और मार्ग संसार कल्याण का उपस्थित हो। अत: महर्षि दयानन्द जगत् गुरु सिद्ध होते हैं।

बोलो जगत् गुरु दयानन्द की जय

१२४. दादा गुरु

१—भारत माता के हर दुख को दूर करने और भारत के पतन के हर कारण के विरुद्ध जितने भी आन्दोलन इस देश में हुए इन सब आन्दोलनों में दयानन्द से प्रेरणा पाये हुए युवक छाती तान कर सब से आगे होकर लड़ते रहे। धार्मिक क्षेत्र, सोशल बुराईयों को दूर करने अविद्या अन्धकार को मिटाने, विधर्मियों से देश वासियों को बचाने और अंग्रज़ों को देश निकाला देने के लिये दयानन्द के वीर सैनिक बढ़ चढ़ कर बलिदान देते रहे हैं । धर्म प्रचार की खातर गोलियां और ईंटें खाने वाले, देश को ग़ुलामी से आज़ाद कराने की खातर हंस हंस कर फांसी के तख्तों पर चढ़ जाने वाले अंग्रेज़ी राज्य में जेलों को भर देने वाले दयानन्द के वीर सैनिक ही तो थे, कांग्रेस के कर्णधार महात्मा गांधी ज़ी ने भी दयायन्द के शिष्य महादेव गोविन्द रानाडे के शिष्य, गोपाल कृष्ण गोखले, और महर्षि के शिष्य रूस के काउन्ट टालसटाई से प्रेरणा लेकर इतने बड़े आन्दोलन चलाये थे। और दूसरी तरफ क्रान्ति कारी दल के सब से प्रथम नेता प० श्याम जी कर्षण वर्मा भी तो महर्षि के ही सच्चे शिष्य थे। इस तरह महर्षि हर क्षेत्र में कार्य करने वाले वीरों के दादा गुरु ही सिद्ध होते हैं।

दयानन्द सरस्वती

माहादेव गोविन्द रानाड	लाला लाजपत राए	सत्याथ प्रकाश	(शयाम जी कषण वरमा पहला करांती कारी
गोपाले	Servant of the people Society	दादा भाई नारोजी तिलक महाराज	वीर सावरकर
कृष्ण	लाल बाहादर शास्त्री		लाला हरदियाल
गोखले			सुभाष चन्द्र बोस
महात्मा गाँधी			भगत सिह
जवाहर लाल			राम प्रसाद ।बसमल
नेहरु			आदि आदि

२. सबसे पहला क्रांतिकारी योद्धा

शाम जी कर्षण वर्मा

श्री शाम जी कर्षण वर्मा का भारत की इन्कलाबी तहरीक में एक निहायत ही नमायां मुकाम है, वह इस देश के उन मुहब्बे वतन और इन्कलाब पसन्दों में से थे, जिन्होंने अंग्रेज़ों के घर में बैठ कर उनके बरखिलाफ़ बग़ावत की नहीं कई योजनाएं बनाईं थीं। वह अपने ज़माने में इन्कलाबी तहरीक के नेता थे और इस वक्त के कई इन्कलाब पसन्द इनसे प्रभावित हुए थे, लाला हर दयाल, श्री वी. डी. सावरकर, भाई परमानन्द आदि ने इनसे बहुत कुछ सीखा था। श्री मदन लाल ढींगड़ा जिन्होंने लण्डन में सर कर्ज़न वायली नाम के अंग्रेज़ को गोली से उड़ाया था। शाम जी कर्षण के ही एक साथी थे, शाम जी ने लण्डन में "इण्डिया हाऊस" कायम किया था, जहां हिन्दुस्तानी नौजवान जमा हुआ करते थे, जो अपने देश को एक मुसल्लाह इन्कलाब के ज़रिये अंग्रेज़ों की ग़ुलामी से नजात दिलाना चाहते थे। जिस ग़दर पार्टी का नाम हम आज कल सुनते हैं, वह अमरीका में सन् १९१३—१४ में कायम हुई थी, परन्तु शाम जी कर्षण वर्मा ने तो सन् १९०८ लंडन में यूमे ग़दर मनाया था। और इस में अपने हम वतनों को, आदेश दिया था कि वह १८५७ के ग़दर की पैरवी करते हुए अंग्रेज के खिलाफ़ बग़ावत करने को तैयार हो जाएं। शाम जी कर्षण जी की सरगर्मियां एक ऐसी शकल अख़तियार कर गईं कि बर्तानवी पार्लीमेंट में यह सवाल होने लगे कि इस शख्स को इंगलिस्तान में रहने की क्यों इजाज़त दी जा रही है। अतः जब उन्होंने देखा कि इंगलिस्तान में इनका रहना ख़तरे से ख़ाली नहीं तो वह वहां से पैरिस चले गये

और वहां जाकर भारत की आज़ादी के लिए जद्दोजहद करते रहे। वहीं से वह बाग़्याना लिटरेचर छपवा कर भारत भेजा करते थे। और वहीं से अपने देश के नौजवानों को समय समय पर अंग्रेज़ के खिलाफ़ बग़ावत करने का आदेश भेजा करते थे, वह एक अति उत्तम श्रेणी के संस्कृत के पंडित थे, इनको काबलीयत मुसल्लमा थी, आक्सफोर्ड और केम्ब्रिज यूनिवर्सिटियों के प्रोफ़ेसर इन से मुलाकात करके अपने आपको खुश किस्मत समझा करते थे।

यह शाम जी कर्षण वर्मा कौन थे ? और वह कौन व्यक्ति था जिसने इनके दिल दिमाग़ में देश भक्ति का जज़बा पैदा किया। और जिसने आखिर में इन्कलाब तहरीक की रहनुमाई के लिए तैयार किया इसका जवाब इनकी इस जीवन कहानी से मिल जाता है, जो श्री इन्दुलाल यजनीक ने लिखी है। शाम जी कर्षण वर्मा जी के विचार में तबदीली क्यों और कैसे आई इसका ज़िकर करते हुए श्री यजनीक लिखते हैं।

जिस बात ने आखि़र में उनके विचारों में एक बड़ा भारी इन्कलाब पैदा किया वह थी उन की वह मुलाकात जो उनकी स्वामी दयानन्द सरस्वती से हुई जो सन् १८७४ में बम्बई तशरीफ़ लाए और जिन्होंने १० अप्रैल १८७५ को आर्य समाज की बुनियाद रखी।

परन्तु यह स्वामी दयानन्द जी सरस्वती कौन थे, जिन्होंने श्याम जी कर्षण वर्मा के विचारों पर इस कदर असर किया। श्री इन्दुलाल यजनीक के शब्दों में "वह जन्म से बागी थे, और आज़ादी के लिये उनके दिल में बेनज़ीर तड़प थी, वह १४ वर्ष की आयु में ही मूर्ति पूजा के ज़बरदस्त मुख़ालिफ़ बन गये। और २० वर्ष की आयु में घर से निकल पड़े थे। पहले बतौरे एक ब्रह्मचारी के और बाद में बतौरा एक सन्यासी के वह रोशनी की तलाश में और ज्ञान की प्राप्ति के लिए तपस्या करते रहे और आख़िर इस नतीजे

पर पहुंचे, कि इस देश के लोग वह राजे महाराजे हों या मजदूर या किसान, ब्राह्मण हो या गैर ब्राह्मण सब ही सच्चे धर्म के राह से भटक गये हैं।

यह वह ऋषि दयानन्द थे जिनकी शिक्षा का श्याम जी कर्षण वर्मा पर असर हुआ और जिन्होंने उसको एक कालज के प्रोफैसर से बागियों का सरदार बना दिया। अतः जिस समय श्याम जी ने इंग-लिस्तान जाने का निश्चय किया तो उन्होंने अपने गुरु ऋषि दयानन्द जी से इसकी आज्ञा मांगी, जा उन्होंने खुशी से दे दो। और साथ ही यह भी उपदेश दिया कि वहां जाकर उन्होंने क्या कुछ करना है। श्याम जी कर्षन वर्मा और ऋषि द ानन्द का मेल इस कदर अधिक गहरा हो गया कि न केवल इनके नज़दीकी दोस्तों और बन्धुओं को इसका ज्ञान था बल्कि दूसरे लोग भी यह समझते थें कि श्याम जी ऋषि दयानन्द के ज़ेर असर हैं। और उनकी मर्जी के खिलाफ कुछ नहीं करेंगे। ऋषि दयानन्द का भी इन पर इतना विश्वास था, कि वह अपने लिखे वेद भाष्य को इनके हवाले करने को तैयार थे, कि वह इस पर नज़र सानी करें। और यदि इसमें कोई कसर रह गई हो तो उसकी तरफ़ ऋषि का ध्यान दिलायें।

मई सन् १८७७ में श्याम जी कषण वर्मा पूना गये। वहां इनके कई भाषण भी हुए। इसका जनता पर बहुत अधिक असर हुआ। चारों तरफ़ इनकी तारीफ़ होने लगी, परन्तु इसका क्रेडट भो ऋषि दयानन्द को ही दिया गया। जब श्याम जी पूना जाने लगे तो वहां के चन्द सरकरदा शहरियों ने एक बयान जारी किया, जिसमें उन्होंने कहा—

पं० श्याम जी कर्षण वर्मा कुछ समय यहां रहे और हमने उनके व्याख्यान सुने। हमें यह कहने में कोई तामल नहीं, कि उन्होंने सस्कृत की अति उत्तम विद्या प्राप्त की है, और वह बड़ो आसानी

से संस्कृत में भाषण दे सकते हैं। इनका एक उत्तम घराने से सम्बन्ध है, और उन्होंने विद्या भी अति उत्तम प्राप्त की है। परन्तु इस से भी अधिक जो बात उनके विषय में जानो है वह यह है कि उन्होंने पंडित दयानन्द सरस्वती के चरणों में बैठ कर बहुत कुछ सीखा है।

श्याम जी कर्षण वर्मा अपने देश के लिए तप और त्याग के लिए कैसे तैयार हुए उनके जीवन चरित्र के लेखक श्री इन्दुलाल याजनीक लिखते हैं। "ऋषि दयानन्द की मिसाल ने इन्हें भी त्याग का जोवन बसर करने और मिशनरी बनने के लिए तैयार कर दिया।"

अक्तूबर १८७८ में श्याम जी आर्य समाज लाहौर की दावत पर वहां गये, और उन्होंने कई भाषण दिए जब वह वापस चले गये, तो आर्य समाज लाहौर के मन्त्री ने उन्हें एक पत्र लिखा जिसमें लाहौर के आर्य समाजियों के जज़बात को इन शब्दों में प्रकट किया।

"आर्य समाज लाहौर की इग्जैक्टिव कमेटी ने मुझे यह आदेश किया है कि मैं आप क लिखू कि आपने जो आलमाना लैक्चर दिए हैं उनका बहुत असर हुआ है। आर्य समाज को यह देखकर बहुत ही हर्ष हुआ कि आपके व्याख्यानों को जो आपने अंग्रेजी, हिन्दी, सस्कृत में दिए है, जनता ने उसे बहुत ही पसन्द किया है। आर्य समाज की यह तमन्ना है कि इस देश में आप जैसे और भी ऐसे विद्वान पंडित पैदा हों जो इस रवानी से संस्कृत और दूसरा भाषाओं में भाषण दे सकें। जैसा कि आप देते हैं, इस हालत में हमारा प्रचार और सुधार का काम और भो तेज़ो से चल सकेगा।

ये थे पंडित श्याम जी कर्षण जिन्होंने पहले इंग्लिस्तान में बाद में फ्राँस में एक इन्कलाबी तहरीक को तन्ज़ीम शुरू की, उन्होंने वहां हिन्दुस्तानो युवकों का रहने के लिए एक "इण्डिया हाऊस"

कायम किया और भारत का आजादी की तहरीक चलाने के लिए जनवरी १६७५ में इण्डिया होम रूल सोसाईटी कायम की, उन्होंने ऋषि दयानन्द के नाम पर कुछ इनाम भी रखे। वह उन नौजवानों में तकसाम करना चाहते थे, जो ऐसे विधान की रूप रेखा तैयार करें। जो भारत से अंग्रेजों को निकाल सकें, अगर श्याम जो चाहते तो अपने बुद्धि बल से यूरोप में लाखों रुपये कमा सकते थे, परन्तु महर्षि दयानन्द की फूंकी हुई देश भक्ति की स्प्रिट उन को चैन न लेने देती थी। सरकार अंग्रेजो ने इन को बैरिस्ट्री की डिग्री भी ज़ब्त कर ली थी। क्रान्तिकारियों का यह प्रथम नेता सारी आयु देश की आजादी के लिए लड़ता रहा। श्याम जी का जन्म सन् १८५० में कच्छ के एक वैश्य घराने में हुआ था और उन्होंने आयु का अधिक हिस्सा यूरोप के देशों में अंग्रेजां के खिलाफ़ बग़ावत का प्रचार करने में लगा दिया और आखिर ८० वर्ष की आयु में १६३० में स्विट्ज़रलैंड में देशहित अपने प्राण भी त्याग दिये। विदेशों में जलाई हुई इस महान क्रान्तिकारी नेता की जोत पर भारत के सैकड़ों नौजवान जो यूरोप आदि देशों में गये, परवानों की तरह बलिदान होते रहे। श्याम जी के विषय में उनके प्यारे शिष्य वीर सावरकर जी ने क्या खूब लिखा है। कि मन्दिर के कलश की तरफ़ तो सब देखते हैं परन्तु मन्दिर की आधारशिला को सब भूल जाते हैं। श्याम जी भारत को आजादी के मन्दिर की आधार शिला बन गये थे।

नेता जी सुभाष चन्द्र बोस

यह भी श्याम कर्षण जी वर्मा के जोवन से बहुत प्रभावित हुए थे और उन्होंने भी सन् १६३२ में अग्रेज़ों की कैद से निकलने का वही तरीका अखतियार किया जो श्याम जा ने सन

१८९६ में किया था, वह इस तरह कि २२ जून १८९७ में जब बम्बई में दो मराठा वीरों ने दो अंग्रेजों को कत्ल कर दिया तो अंग्रेजों को पूरा पूरा शक हो गया कि यह हत्या श्याम जी कर्षण वर्मा के नौजवानों में क्रान्तिकारी विचारों के प्रचार का ही परिणाम है। इस लिए अंग्रेज़ सरकार श्याम जी को गिरफ्तार करना चाहती थी, श्याम जी को भी इस बात का पता लग गया और उन्होंने अपने आप अपने घर में नजरबन्द हो कर दाढ़ी केस बढ़ा कर भेष बदल कर अंग्रेजों को आंखों में धूल डालकर भारत से निकल यूरोप जाने में सफलता प्राप्त की थी, ठीक इसी तरह नेता जी सुभाष चन्द्र बोस को जब अंग्रेजों ने इनके अपने घर में नज़रबंद किया था, तो वह भी दाढ़ी केस बढ़ा कर, भेष बदल कर अंग्रेज़ों की आंखों में धूल डाल कर भारत से निकल कर अफ़गानिस्तान, के रास्ते जर्मनी पहुंच गये और वहां से अंग्रेजी साम्राज्य की जड़ें काटने में मसरूफ़ हो गये और फिर जर्मनी से डुबकनी किश्ती में चढ़ कर जापान आ गये। और यहां आ कर आज़ाद हिन्द फ़ौज बना कर अंग्रेज के बरखिलाफ़ बाकायदा जंग शुरू कर दिया था और इसी आज़ाद हिन्द फौज और दूसरी फौज में बग़ावत का प्रचार हो जाने के डर से ही अंग्रेज़ १९४७ में भारत छोड़ने पर मजबूर हुआ था। महर्षि को श्रद्धांजलि भेंट करते हुए सुभाष बाबू कहते हैं।

दयानन्द सरस्वती महान क्रान्ति कारी थे, उन की विद्या, उन की बुद्धि अपार थी। उनके दिव्य नेत्रों ने भारत के अतीत को देखा था और वह भारत को फिर से जगत गुरु बनाने के इच्छुक थे, उनके चलाए हुए आर्य समाज ने जहाँ विद्या प्रचार में अद्वितीय कार्य किया हैं, वहाँ सैंकड़ें हजारों नौजवान देश सेवा में भी भाग लेने व ले पैदा किये हैं। जो देश को स्वतन्त्र कराने के लिए

बड़े से बड़ा बलिदान कर रहे हैं। दयानन्द सरस्वती को मेरा प्रणाम है। जिस ने सब से पहले स्वराज्य का नारा लगाया था।

१२५. गुरुओं का गुरु

श्री रविन्द्र नाथ टाकुर जिनको गिताञ्जलि पुस्तक लिखने पर एक लाख बीस हज़ार रुपये का नोबल प्राईज़ भी मिला था। हमारे देश के महापुरुषों में से एक थे। उन्होंने गुरुकुल प्रणाली के तरीके पर शान्ति निकेतन नामी एक संस्था बंगाल में जारी की थी जो अब भी अच्छी तरह चल रही है। इन में कई पढ़े लिखे भारतीयों को इतनी श्रद्धा है। कि आम तौर पढ़े लिखे भारती रविन्द्र नाथ ठाकुर (जिन को आम भाषा टैगोर कहते हैं) को इन की ज़िन्दगी में भी गुरुदेव के नाम से याद करते थे और अब भी जब कभी इन का नाम लेते हैं तो गुरुदेव टैगोर करके ही सम्बोधन करते हैं। परन्तु गुरुदेब टैगोर महर्षि दयानन्द जी महाराज को अपना गुरु मानते थे जो इन की निम्न लिखित श्रद्धाञ्जलि से स्पष्ट है। इस लिए महर्षि गुरुओं के भी गुरु ही ठहरते हैं। गुरुदेव टैगोर कहते हैं—

मेरा प्रणाम हो !

उस महान गुरु दयानन्द को जिस की दिव्य दृष्टि ने भारत के अध्यात्मिक इतिहास में सत्य और एकता को देखा और जिनके मन ने भारतीय जीवन के सब अंगों को प्रदीप्त कर दिया। जिस गुरु का उद्देश्य भारत वष को अविद्या आलस्य और प्राचान ऐत-हासिक तत्व के अज्ञान से मुक्त कर सत्य और पवित्रता को जागृति में लाना था, उसे मेरा बारम्बार प्रणाम है।

...मैं आधुनिक भारत के मार्ग दर्शक उस दयानन्द को आदर पूर्वक श्रद्धाञ्जलि देता हूं जिसने देश की पतितावस्था में सीधे व सच्चे मार्ग का दिग्दर्शन कराया।'

—डा० रविन्द्र नाथ ठाकुर

महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय

(१) ऋग्वेद भाष्य—इस में मूलमन्त्र, पदपाठ, संस्कृत में पदार्थभाष्य, अन्वय और भावार्थ देकर पुनः आर्य्यभाषा में अन्वयानुसार अर्थ और भावार्थ दे दिया गया है। महर्षि ने तो केवल संस्कृत भाष्य की रचना की थी। उसकी भाषा पण्डितों ने बनाई है। यह भाष्य केवल मण्डल ७। म० २ तक ही हुआ है। ऋषि दयानन्द अपने जोवन काल में इसे समाप्त नहीं कर सके।

(२) यजुर्वेद भाष्य—इसमें ऋग्वेद के समान मूलमन्त्र, पदपाठ, पदार्थभाष्य, अन्वय, भवार्थ संस्कृत में और, आर्य भाषा में अन्वयानुसार अर्थ और भावार्थ दिये गये हैं।

(३) यजुर्वेद भाषा-भाष्य—इसमें ऋषि दयानन्द रचित संस्कृत भाग को हटा कर केवल भाषा में अन्वयानुसारी पदार्थ और भावार्थ संकलित किया गया है।

(४) ऋग्वेदादि भाष्य-भूमिका—ऋषि दयानन्द जिस वेदभाष्य को रचना कर रहे थे। उसको यह भूमिका है। यह सम्पूर्ण संस्कृत में है और इसका अनुवाद आर्य्यभाषा में भी किया गया हैं वेद की उत्पत्ति, रचना, प्रामाण्य-अप्रामाण्य, वेदोक्त धर्म आदि अनेक विषयों पर स्पष्ट विचार किया गया है। पूर्व के वेदभाष्यकारों के अनेक अनार्ष मतों का विवेचन करके सप्रमाण वेदिक आर्य्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। वेद के सिद्धान्तों को समझाने के लिए यह ग्रन्थ अपूर्व है।

(५) सत्यार्थप्रकाश—इस ग्रन्थ में १४ समुल्लास हैं। प्रथम १० समुल्लास में आर्य्य वैदिक सिद्धान्तों का युक्ति, तर्क और वेद,

शास्त्र, दर्शनों और स्मृति के आधार पर मण्डन किया गया है और पिछले ४ समुल्वासों में आर्यावर्त्तीय मतों और बाइबल और कुरान के मतों की समीक्षा की गई है। यह एक युगान्तरकारी पुस्तक है इसने भारतवर्ष में जनता की विचार धारा को ही परिवर्तित कर दिया है।

(६) संस्कार विधि—इस में गृह्य सूत्रों के अनुसार गर्भाधान से अन्त्येष्ठि कर्म तक १६ संस्कारों को वैदिक रीति के अनुसार करने की पद्धति और वर्णों और आश्रमों के नित्य धर्म-कर्मों का विधान किया गया है।

(७) आर्य्याभिविनय—इस ग्रन्थ में ऋषि ने ईश्वर की स्तुति प्रार्थना, उपासना के लिए चारों वेदों से कुछ मन्त्रों का संग्रह करके उनको अर्थ सहित दिया है।

(८) पञ्चमहायज्ञविधि—इस में ऋषि ने सन्ध्या (ब्रह्मयज्ञ) अग्निहोत्र (देवयज्ञ) बलिवश्वदेव (भूतयज्ञ) पितृयज्ञ और अतिथियज्ञ इन पांचों के करने की विधि और मन्त्रों पर संस्कृत भाष्य और सरल अनुवाद भी दिया है।

(९) संस्कृत वाक्य प्रबोध—संस्कृत के आरम्भिक शिक्षा के के लिए व्यावहारिक विषयों पर सरल संस्कृत वाक्यों द्वारा बालकों को शिक्षा दी गई है। इससे संस्कृत वाक्यों का सुगमता से बोध हो जाता है।

(१०) व्यवहार भानु—बालकों को शिष्ठ, आर्यव्यवहार की शिक्षा देने और अज्ञान की कुशिक्षा के निवारण करने के लिए इस ग्रन्थ की रचना की है।

(११) शास्त्रार्थ काशी—इस में, काशी में ऋषिदयानन्द के साथ जो श्री विशुद्धानन्द का शास्त्रार्थ हुआ है उसका विवरण दिया

गया है। जो इस पुस्तक के पृष्ट १७७ पर है। यह ग्रन्थ संस्कृत में है। इसका भाषानुवाद साथ ही है।

(१२) वेदविरुद्धमतखण्डनम्—इस ग्रन्थ में वल्लभ आदि मतों के प्रति प्रश्न और उनका खण्डन किया गया है। यह ग्रन्थ संस्कृत में है और इसका अनुवाद हिन्दी में पण्डित भीमसेन शर्मा ने किया है।

(१३) शिक्षा पत्रीध्वान्त निवारणम्—इस ग्रन्थ में सहजानन्द आदि के मतों का खण्डन किया गया है। यह ग्रन्थ संस्कृत में है और इसका हिन्दो अनुवाद स्वामी नारायण खण्डन के नाम से प्रसिद्ध है।

(१४) भ्रमोच्छेधन—इस ग्रन्थ में बनारस के राजा शिवप्रसाद जी की ओर से श्री स्वामी विशुद्धानन्द की प्रश्नावली के कारण उत्पन्न हुए भ्रम को दूर किया गया है। उक्त भ्रमोच्छेदन के उत्तर में राजा जी के दूसरे निवेदन के उत्तर में पण्डित भीमसेन का उत्तर अनुभ्रमोच्छेदन नाम से छपा है।

(१५) भ्रान्ति निवारण—इस ग्रन्थ में ऋषि दयानन्द ने अपने वेद भाष्य पर पं० महेशचन्द्र न्याय रत्न (आफ़िशियेटिङ्ग प्रिंसिपल संस्कृत कालिज कलकत्ता) के किये भ्रान्ति युक्त आक्षेपों का खण्डन किया है। यह ग्रन्थ संस्कृत में है, साथ ही अनुवाद भो दिया गया है।

(१६) वेदान्तध्वान्त निवारणम—इस ग्रन्थ में नवीन वेदान्त के मत का अच्छी प्रकार विवचन किया गया है।

(१७) सत्य धर्म विचार (मेला चाँदापुर)—चादपुर के मेले के अवसर पर धर्म चर्चा करने के लिए जो आर्य्य, ईसाई और मुसलमानों के बड़े बड़े विद्वान सत्य निर्णय लिये एकत्र हुए थे उसका विस्तृत विवरण म० दयानन्द जी० च० पृ० २२ से ३५ में है।

(१८) आर्योद्देश्य रत्नमाला—इस ग्रन्थ के आर्यों के १०० उद्देश्यों का संग्रह किया गया है।

(१९) गोकरुणानिधि—इस ग्रन्थ में स्वामी जी ने गौ आदि उपकारी पशुओं का वध बन्द करने और उनके पालने पर बल दिया है। गौ आदि पशुओं की ओर से एक प्रकार से मर्मस्पर्शी अपील है। इसके अन्त में गो-कृष्यादि-रक्षिणी सभा की योजना भी सम्मिलित है।

(२०) वेदाङ्ग-प्रकाश—पाणिनीय व्याकरण के प्रक्रिया-भाग को स्पष्ट करने के लिए लौकिक और वैदिक व्याकरण के अंशों को एक साथ लेकर भाषा में व्याकरण के विषय को अति सुगम कर दिया है। सिद्धान्द कौमुदी आदि अनार्ष ग्रन्थों के भीतर आये अनेक अवैदिक अनार्ष बातों को दूर करके व्याकरण का स्वच्छ कर दिया हैं और भट्टोजी दीक्षित आदि की अनेक त्रुटियों को भी दर्शाया है।

वेदाङ्ग प्रकाश में वेदार्थ को स्पष्ट करने वाले इतने ग्रन्थों का समावेश है।

१ वर्णोच्चारण शिक्षा	२ नामिक
३ सन्धिविषय	४ कारकीय
५ सामासिक	६ सौवर
७ आख्यातिक	८ पारिभाषिक
९ स्त्रैणताद्धित	१० धातुपाठ
११ अव्यार्थ	१२ गणपाठ
१३ उणादिकोष	१४ निघण्टु
	१५ निरुक्तम्

इन खण्डों में पठन पाठन विषय में एक विशेष क्रम है, उस क्रम से पढ़ने से व्याकरण और संस्कृत विद्या और वेद विद्या का विशेष रूप से बोध हो जाता है।

(२१) अष्टाध्यायी भाष्यम्।

पाणिनीय अष्टाध्यायी के ऊपर सत्र क्रमानुसार ऋषि दयानन्द

का यह उत्तम भाष्य है। इसका प्रकाशन उनके जीवन काल में न हो सका। लाहौर में श्री डा० पण्डित रघुवीर एम० ए० (डी० लिट) द्वारा सम्पादित करा कर श्रीमती परोपकारिणी सभा ने इस को दो भागों में प्रकाशित किया है। यह भाष्य स्थान स्थान पर खण्डित है। बड़े खेद से लिखना पड़ता है कि ऋषि दयानन्द के इस अमूल्य ग्रन्थ की रक्षा यत्नपूर्वक नहीं की गई। इस भाष्य में ही दीक्षित और काशिकारक ज्यादित्य आदि की व्याकरण विषयक अनेक त्रुटियां दर्शाई हैं। संस्कृत व्याकरण के क्षत्र में यह एक अद्भुत पुस्तक है।

(२२) इनके अतिरिक्त—स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश सत्यार्थ-प्रकाश के अन्त में तथा पृथक भी प्रकाशित होता है। इसी प्रकार स्वीकार पत्र आर्य समाज के नियम भी पृथक छपे हैं।

श्री परोपकारिणी सभा ने वेदभाष्य को छोड़ कर समस्त ग्रन्थों को संकलित कर श्री मद्दयानन्द जन्म शताब्दी के अवसर (संवत १९८१ वि० अर्थात १९२५ ई०) पर दो भागों में प्रकाशित किया था।

प्रचार काण्ड समाप्त

१३. संघठन काण्ड

१२७. पूर्ण पुरुष की मनोकामना

१. पूर्ण पुरुष की मनोकामना थी कि यह जननी भारत भूमि सच मुच स्वर्ग भूमि बन जावे और अपना खोया हुआ गौरव प्राप्त कर फिर से जगत् गुरु की पदवी पर विराजमान हो जावे और इस के प्रधान लाल क़िला के मंच पर खड़े होकर संसार भर को यह सन्देश दे सके जैसा कैकय देश के राजा ने (जिसकी कथा छान्दोग्य उपनिषद् के प्रपाठक ७वा खण्ड १२ में है) पूरे अभिमान के साथ कहा था।

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
नाना हिताग्नि न अविद्वान् न स्वैरी स्वैरिनी कुतः॥

अर्थात्—न मेरे देश में कोई चोर है,न कोई कृपण, न शराबी, न कोई अग्नि होत्र रहित, न कोई व्यभिचारी पुरुष तब स्त्री व्यभिचारिणी कैसे हो सकती है।

अपनी इस मनोकामना को सिद्ध करने के लिए महर्षि ने दिन रात परिश्रम किया। लाठियां, गालियां, ईंट-पत्थर, ज़हर खाये, अपमान सहे, गर्मी-सर्दी, भूख-प्यास, दुख, रंज-ग़म, सब सहन किये, और इस को पूरा करने के लिए निम्नलिखित सिद्धान्त निश्चित किये।

१. विदेशी राज्य कितना भी अच्छा क्यों न हो स्वराज्य का मुकाबला नहीं कर सकता।

२ देश को संगठित करने के लिए एक भाषा का होना आवश्यक है और वह हिन्दी भाषा ही हो सकती है।

३. देश में से छूत-छात, ऊँच-नीच, रंग नसल का भेद भाव मिटाये बिना देश संगठित नहीं हो सकता।

४. छोटी आयु का विवाह, अनमेल विवाह, देश के लिए घातक प्रथाएं हैं, इन को हटाना होगा।

५. एक समय में एक ही स्त्री से युवा अवस्था में विवाह की प्रथा प्रचलित करनी होगी।

६ देश में पंचायती राज्य स्थापित करना होगा।

७. विद्या की वृद्धि और अविद्या का नाश करना होगा। सब को विद्या का अधिकार समान देना होगा। (६ या ७ वर्ष की आयु के बाद जो गृहस्थी अपनी संतानों को पाठशाला न भेजे उस को दण्ड देना होगा)।

८. देश देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर में जाने का जो प्रतिबन्ध है उसको हटाना होगा।

९. देश में कल कारखाने खोलने से देश उन्नत होगा।

१०. मातृ भूमि मातृ सभ्यता और मातृभाषा से प्यार करना होगा। स्वदेशी कपड़ा और स्वदेश में बनी वस्तुओं का प्रयोग करना होगा।

११. गो विधवाओं और अनाथों का संरक्षण करना होगा।

इन सिद्धान्तों के प्रचार के लिए पहले तो महाराज ने पाठशालाएँ स्थापित करनी आरम्भ कीं। अतः फर्रुखाबाद, छलेसर, काशी आदि कई स्थानों पर पाठशालाएं जारी कीं, परन्तु जब उनसे अपना मनोरथ सिद्ध होते न देखा तो यह पाठशालाएं बन्द कर दीं, इस के बाद महर्षि ने अपनी मनोकामना पूर्ण करने के निमित्त आर्य समाज रूपी ट्रेनिंग कालेज बनाने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया

और साथ साथ ट्रेनिंग कोरस तथा सत्यार्थ प्रकाशादि ग्रंथ रचना भी आरम्भ कर दी। जिसने एकदम इस देश में जागृति की एक लहर पैदा कर दी।

१२८. ट्रेनिंग कालज

महर्षि दयानन्द का आर्य समाज जहां लीडरों का ट्रेनिंग कालज बना और सैकड़ों ही लीडर भारत वर्ष और भारत वर्ष के बाहर के देशों में भारत को आज़ाद कराने के लिए दिये, वहाँ आर्य समाज के कालजों, गुरुकुलों, कन्या पाठशालाओं ने हजारों की तादाद में वरकर दिये जो भारत उत्थान के हर क्षत्र में अगुआ बन के काम करते रहे। इन्कलाबी पार्टी, क्रान्तिकारी दल, ग़दर पार्टी, आल इण्डिया कांग्रेस, आल इण्डिया हिन्द महा सभा, आल इण्डिया जन संघ, ब्राह्मण सभा, क्षत्री सभा, अरोड़ बन्स सभा, राजपूत सभा, जाट सभा, विद्या प्रचार, सामाजिक सुधार, अकाल पीड़तों की सेवा, दुखी दीनों की रक्षा, देश में आने वाली हर प्रकार की आपत्तियों के समय आपत्ति ग्रस्त लोगों की सेवा, यतीम और बेवाओं की रक्षा, विधर्मियों से वरग़लाई हुई अबलाओं की रक्षा, शुद्धि क्षेत्र, दलितोद्धार क्षेत्र, गो रक्षा आदि सभी क्षेत्रों में आर्य समाज के ट्रेंड किये हुए लीडर और आर्य समाज के विद्यालयों से शिक्षा प्राप्त नौजवान हमेशा सबसे आगे छाती तान कर निकलते रहे। विधर्मियों की गोलियों और तलवार की चोटें खाते रहे। अंग्रेज के जेलों को भर कर फांसी के तख्तों पर बिना झिझक चढ़ जाने वाले आर्य वीर ही तो थे। आर्य समाज के ट्रेनिंग कालज की तीन सब से बड़ी विशेषताएं रहीं। जो संसार के इतिहास में और कहीं आपको नहीं मिल सकेंगी।

१. दिमाग़ी आज़ादी जितनी इस समाज में है और किसी समाज, सभा मज़हब में नहीं मिल सकती। जैसा कि ऊपर वर्णन

हो चुका है कि हर संस्था में आर्य समाज के ट्रेंड लीडर और वरकर एक ही समय में हिस्सा लेते रहे। ग़दर पार्टी में भी, इन्कलाबी पार्टी में भी, अदम तशद्दुद मानने वाली कांग्रेस में भी हिन्दू सभा में भी, गरज़े के मुख़तलिफ़ विचारधारा रखने वाली, संस्थाओं में यदि कोई काम कर सका तो वह आर्य समाज का ट्रेंड सिपाही ही था। क्योंकि इसके गुरु ने इस को दिमाग़ी आजादी का पाठ पढ़ाया था, दिमाग़ी आज़ादी दुनियां की सब से बड़ी नेमत है, जो सिवा आर्य समाज के और कहीं नहीं मिल सकती।

२. इतने थोड़े से अर्से में जितना कि आर्य समाज को बने हुआ है, इतने बलिदान धर्म और देश के लिए किसी और सोसाईटी या मज़हब ने न किये होंगे।

३. जितना विद्या का प्रचार कर के आर्य समाज ने इस अल्प समय में और अपनी अल्प शक्ति से इस देश में जागृति पैदा की है किसी और संस्था ने क्या करनी है। गवर्नमैंट से दूसरे दर्जे पर आर्य समाज की विद्या संस्थाएं इस समय भी देश में विद्यमान हैं। जितनी समाजें बनीं, सभाएं बनीं, स्कूल और कालेज बने हैं। यह सब आर्य समाज के बाद और आर्य समाज से उत्साह प्राप्त करके ही बन पाये। आर्य समाज हर मैदान में देश को लीड Lead देता रहा है महर्षि दयानन्द ने यह एक अनोखा ट्रेनिंग कालज खोल दिया। जिस में हर किसम की सेवा करने की ट्रेनिंग मिलती है और इस ट्रेनिंग कालज के ट्रेंड महानुभाव हमेशा पहली श्रेणी में ही रहे हैं। किसी शायर ने शायद इन्हीं के लिए यह शेर कहा है—

„गुलशन में सरव फ़ौज़ में मिसले निशां रहे।
दुनियां में सर बुलन्द रहे यह जहां रहें॥"

१२६. बीज बोया

१. सबसे पहले महर्षि के मन में आर्य समाज स्थापन करने

का विचार सन् १८७२ में उत्पन्न हुआ और सबसे पहले उन्होंने आराह (बिहार) में एक सभा की स्थापना की थी, जिसका उद्देश्य आर्य धर्म और रीति निति का संस्कार करना था। परन्तु उसके एक दो अधिवेशन ही हुए थे कि स्वामी जी आराह से प्रस्थान कर गये। और महाराज के चले जाने के कुछ ही दिन बाद यह सभा समाप्त हो गई।

२. फिर दूसरीबार जनवरी १८७५ राजकोट (महाराष्ट्र) में आर्य समाज स्थापित हो गया। इसके तीस प्रतिष्ठित पुरुष सभासद् बन गये, आर्य समाज राजकोट ५—६ मास चलता रहा, फिर एक ख़ास कारण से यह समाज बन्द हो गया। क्योंकि इन्हीं दिनों अंग्रेज़ों ने महाराजा मल्हार राव गायकवाड़ को राज पद से हटा दिया था। इस पर घोर आन्दोलन आरम्भ हो गया था। और आर्य समाज राजकोट के सभासदों पर अंग्रेज़ों की कड़ी दृष्टि हो गई, जिस पर समाज का काम बन्द हो गया था। परन्तु इस पर स्वामी जी निराश न हुए और आर्य समाज स्थापना के अपने शिव संकल्प पर दृढ़ता से डटे रहे और परमात्मा की कृपा से सफलता प्राप्त कर ली।

१३०. अंकुर फूटा

३. गुजरात प्रान्त में जाने से पहले जब महाराज़ बम्बई में विराजमान थें, तो उनके श्रद्धालुओं से आर्य समाज स्थापन करने का प्रस्ताव किया था। परन्तु स्वामी जी के चले जाने से यह प्रस्ताव, प्रस्ताव ही रहा। अब फिर गुजरात के प्रचार से वापस आने पर पुनः वह प्रस्ताव स्वामी जी के सामने आया और ५ अप्रैल १८७५ शनिवार, चैत्र शुक्ल पंचमी सन् १९३२ को गिरगाम रोड प्रार्थना समाज के निकट डाक्टर मानक जी की बागबाड़ी में सायं काल के ५½ बजे एक सभा करके आर्य समाज स्थापित किया गया।

इस समय २८ नियम स्वामी जी ने स्वयं बनाये। जिनमें पहला नियम यह था, आर्य समाज का सब मनुष्यों के हितार्थ होना आवश्यक है। क्योंकि इन २८ नियमों में उपनियम भी मिश्रित थे। इसलिए लाहौर आर्य समाज की स्थापना पर नियम और उपनियम अलग अलग करके दस नियम निर्धारित किये गये। जो अब आर्य समाज में प्रचलित हैं। बम्बई में पहले १०० के लगभग सभासद बने।

४. पूना में भी आर्य समाज स्थापित हुआ था पर वह कुछ दिन ही चलकर समाप्त हो गया।

५. १४ जून १८७७ मुताबिक, जेठ शुक्ल १३ सं० १९३४ आर्य समाज लाहौर डा० रहीम खाँ की कोठी पर ही स्थापित हो गई। और बम्बई आर्य समाज की स्थापना पर जो २८ नियम बनाये थे। उनमें से उपनियमों को पृथक करके अब दस नियम स्वीकार हुए। और अल्प समय में ही समाज के १०० सभासद् हो गये। और जौलाई महीने में ही सभासदों की संख्या ३०० हो गई। फिर धड़ा धड़ आर्य समाजें स्थापित होनी शुरू हो गईं। अमृतसर, गुरदासपुर, फ़िरोज़पुर, रावलपिण्डी, जेहलम, गुजरांवाला, मुलतान, जालन्धर, लुधियाना, रुड़की, मेरठ, देहरादून, मुरादाबाद, फ़र्रुखाबाद, लखनऊ, कानपुर, दानापुर, काशी, मैन पुरी, आगरा, जयपुर, इत्यादि करीबन १०० आर्य समाजें महर्षि के जीवन काल में स्थापित हो चुके थे।

१३१. वृक्ष फैला

जो बीज महाराज ने १८७२ में बोया जिसका अंकुर १८७५ में बम्बई में फूटा और जो महाराज के जीवन में एक वृक्ष का रूप धारण कर रहा था, अब इतना फैला कि इसकी शाखें चारों तर्फ़ छाकर तप्त हृदय देश वासियों को अपनी शान्ती दायनी छाओं में

वास देने लगीं। अतः इस समय आर्य समाजों का विस्तार और आर्य समाज के प्रबन्ध में चलने वाली संस्थाओं का कुछ व्योरा निम्नलिखित है।

आर्य समाज सम्बन्धी

कुछ तथ्य तथा आंकड़े

(FACTS & FIGURES)

१. भारत में आर्य समाज सर्वप्रथम संस्था है जिसकी कार्यपद्धति और संगठन लोकतन्त्रात्मक सिद्धान्तों पर आधारित है।

२. सन १८५७ के विप्लव के पश्चात भारत के सार्वजनिक जीवन में जिन प्रमुख संस्थाओं और आन्दोलनों का प्रादुर्भाव हुआ, उन सब का ब्रह्म समाज को छोड़ कर, आर्य समाज की स्थापना के बहुत पीछे जन्म हुआ।

३. आर्यसमाज एक सुसंगठित संस्था है जिसकी शिरोमणि संस्था सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली है सार्वदेशिक सभा के अधीन भारत में १० आर्य प्रतिनिधि साभाएं हैं :—

१. आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, २. आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश
३. ,, ,, ,, राजस्थान, ४. ,, ,, ,, मध्य प्र. वा विदर्भ
५. ,, ,, ,, बिहार ६. ,, ,, ,, बंगाल व आसाम
७. ,, ,, ,, बम्बई ८. ,, ,, ,, बड़ोदा
९. ,, ,, ,, हैदरावाद स्टेट १० ,, ,, ,, मध्य भारत

४. इन प्रतिनिधि सभाओं से सम्बन्धित आर्य समाजों की संख्या ४००० हैं जिसकी प्रादेशिक तालिका निम्नांकित है :—

१.	आर्य	प्रति नि.	सभा	उत्तर प्रदेश	से	सम्बन्धित	१०००	आर्य	समाजें
२.	,,	,,	,,	पंजाब	,,	,,	१०००	,,	,,
३.	,,	,,	,,	राजस्थान	,,	,,	१४८	,,	,,
४.	,,	,,	,,	मध्य प्र० विदर्भ	,,	,,	१३४	,,	,,
५.	,,	,,	,,	बिहार	,,	,,	३००	,,	,,
६.	,,	,,	,,	बम्बई	,,	,,	११६	,,	,,
७.	,,	,,	,,	बड़ोदा	,,	,,	२१	,,	,,
८.	,,	,,	,,	मध्यभारत	,,	,,	६४	,,	,,
९.	,,	,,	,,	बगाल आसाम	,,	,,	२१४	,,	,,
१०.	,,	,,	,,	हैदरा बाद	,,	,,	३००	,,	,,

५. इन आर्य समाजों के अतिरिक्त लगभग ४०० आर्य समाजें आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि पंजाब से सम्बन्धित हैं। २१ आर्य समाजें मद्रास प्रान्त में हैं कुछ आर्य समाजें स्वतन्त्र भी हैं। इस प्रकार भारत में आय समाजों को संख्या ४००० के लगभग है।

६. इन प्रतिनिधि सभाओं के अतिरिक्त भारतवर्ष से इतर देशों में भी ५ भिन्न आर्य प्रतिनिधि सभाएं हैं जिनसे सम्बन्धित अनेकों आर्य समाजें हैं।

१. आय प्रतिनिधि सभा नटाल (दक्षिण अफ़्रोका)
२. ,, ,, ,, पूर्वी अफ़्रीका
३. ,, ,, ,, मारीशस
४. ,, ,, ,, फ़िजो
५. ,, ,, ,, दक्षिणी अमरीका

७. विदेशों में इन आर्य प्रतिनिधि सभाओं के अतिरिक्ति अन्य देशों में कई और आर्य समाजें भो हैं जिनको संक्षिप्त सूचो यह है—

१. आर्यसमाज Chaguaus (Trinidad) ब्रिटिश वैस्ट इंडीज़)
२. ,, ,, सानफरनैनडो (ब्रिटिश वैस्ट इंडीज़)
३. ,, ,, बग़दाद (इराक़)
४. ,, ,, अदन (अरब)
५. ,, ,, बंगकाक (स्याम)
६. ,, ,, रौवल रोड़ सिंगापुर)
७. ,, ,, रंगून (बर्मा)
८. ,, ,, मांडले (बर्मा)
९. ,, ,, लंडन

८. देश के विभिन्न भागों में आर्य समाज की छत्रछाया में चलने वाली विविध संस्थाओं की संक्षिप्त सूची निम्नांकित है—

बालकों के कालिज	संख्या	२०
बालिकाओं के ,,	,,	१०
बालकों के हाईस्कूल	,,	१५०
बालिकाओं के ,,	,,	१००
मिडिल स्कूल	,,	२००
पुत्री पाठशालाएं मिडिल	,,	४००
प्रायमरी स्कूल	,,	५००
हिन्दीपाठ शालाएं	,,	२८०
रात्रि पाठशालाएं	,,	१४२
गुरुकुल (बालकों के लिए)	,,	५३
कन्या गुरुकुल	,,	७
आयुर्वेदिक कालेज	,,	५
मैडिकल कालेज	,,	२
ट्रेनिंग कालेज	,,	१०
शिल्प कन्या संस्थाएं	,,	१५

९. शिक्षाक्षेत्र में आर्य समाज के सुबिस्तृत कार्य और उल्लिखित

संस्थाओं से प्रभावित हो कर ही महात्मा गान्धी जी ने मार्च १९२७ में गुरुकुल कांगड़ी के उत्सव पर भाषण देते हुए कहा था :—

"गवर्नमैंट के बाद आर्य समाज के शिक्षा विस्तार के कार्यों की मैं विशेष प्रशंसा करता हूं। शिक्षा; आध्यात्मिक क्षेत्र में आर्य समाज ने देश की सब से अधिक सेवा की है।"

१०. शिक्षा सम्बन्धी इन संस्थाओं के अतिरिक्त अन्य आर्य सामाजिक संस्थाओं की सूची इस प्रकार है :—

अनाथालय	संख्या २५
विधवाश्रम	,, ४०
औषधालय	,, १३५
बड़े २ पुस्तकालय	,, ४९
व्यायाम शालाएं	,, २००
योग शिक्षणालय	,, ५
अन्ध विद्यालय	,, २

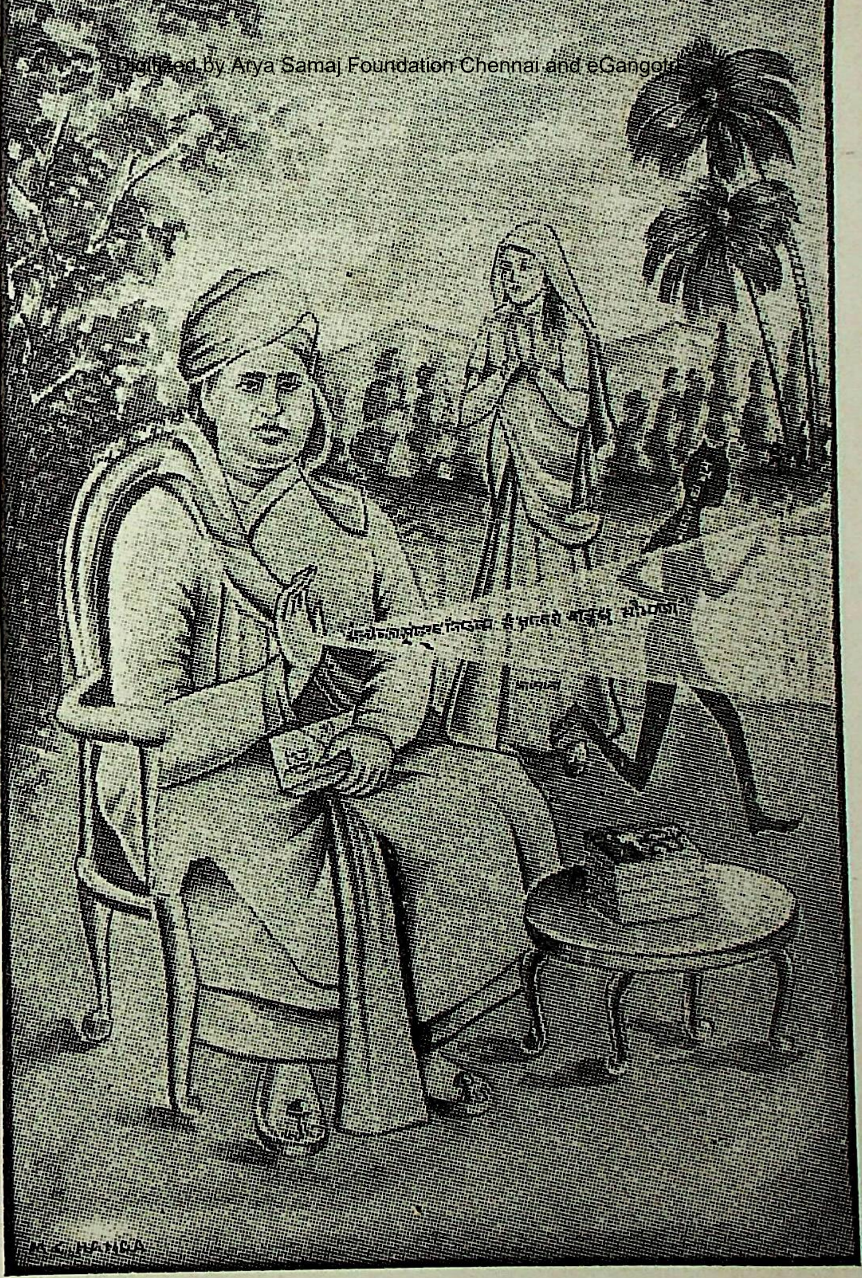
११. आर्य समाजों के अतिरिक्त आर्य युवक समाजों, आर्य कुमार सभाओं, आर्य वीर दलों तथा आर्य वीरांगना दलों की भी प्रचुर संख्या है।

१२. सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के कार्यालय की सूचनानुसार १९४१ में आर्यसमाजियों की जन-संख्या ४५ लाख थी जो कि अब लगभग एक करोड़ हो चुकी है।

१३. अछूतोद्धार के लिए दयानन्द दलितोद्धार मंडल।

१४. आल इण्डिया शुद्धि सभा जिसने लाखों मलकाना राजपूत शुद्ध किये।

१५. आल इण्डिया दयानन्द साल्वेशन मिशन जो इस समय सारे भारतवर्ष में ईसाईयों का प्रतिकार करने वाली एक मात्र सस्था है जिसके प्रधान श्री महात्मा देवी चन्द जी एम. ए. हैं।



महर्षि दयानन्द ने शताब्दियों से मानव जाति को चिमटे
हुए नफ़रत के भूत को वेद प्रचार से दूर भगा
कर मानवता को मुक्त कराया।

१६. भाई परमानन्द जी ने जात-पात तोड़क मंडल भी बनाया था।

१३२. छूत-छात नाशक आन्दोलन

छूत छात नाशक कानून भी स्वतन्त्र भारत की सरकार ने बना दिया है। अतः छूत छात को हटाने के लिए महर्षि और आर्य समाज को कितना घोर प्रयत्न करना पड़ा उसका थोड़ा सा दिग्दर्शन कराना चाहता हूं। क्योंकि इस विषय का सम्बन्ध जनता जनार्दन के धार्मिक सिद्धान्त से टक्कर खाना था, इस लिए इस विषय में आर्य समाज को विशेष यत्न करना पड़ा। और कितने ही बलिदान देने पड़े। सब से पहले तो आर्य समाजियों को अछूतो द्धार का प्रयत्न करने पर बिरादरियों से खारज किया जाने लगा। रिश्ते-नाते टूटने लगे। हुक्का पानी बन्द कर दिया गया। कहार, धोबी, नाई आदि के बाईकाट सहन करने पड़े। गरज़ेके सोशल तौर पर आर्य समाजियों का नाक में दम लाया जाता था, परन्तु महर्षि के शेर भी मैदान में डटे रहे और सारी मुख़ालफ़तों के बावजूद मोरचा सर कर लिया और अब सरकार ने भी कानून बना दिया है। लुत्फ़ की बात यह है कि सब से ज़्यादा मुख़ालफ़त अछूतो-द्धार में कांग्रेसी किया करते थे। जो अब हरेक बात का क्रेडट लेने के लिए सब से आगे आ जाते हैं। मैं अपने निजी अनुभव की एक घटना आप को सुनाता हूं। जिस से आपको मालूम हो जायगा कि यह कांग्रेसी कहलाने वाले अछूतोद्धार के रास्ते में किस प्रकार रुकावटें डालते रहे, सन् १९२१—२२ की बात है कि दयानन्द दलितोद्धार मण्डल की तरफ से एक उपदेशक हकीम मुकन्दी लाल आया और हमने शहर चुनियां में अछूतोद्धार आन्दोलन शुरू किया। मुझे अच्छी तरह याद है कि जब हमने पहले दिन बाल्मीकि भाईयों को साथ लेकर और ओम् का झण्डा हाथ में लेकर शहर

में जलूस निकाला तो सारे शहर में थलका मच गया और लोग मुँह में उंगलियां डाले हमारे जलूस को देख रहे थे। जलस बड़ी शान से निकला। सारे शहर में घूमा और बाल्मीकि महल्ला में जा कर खतम हुआ। उसी रात सारे शहर के हिन्दुओं ने एक बड़ी विशाल सभा करके हमारा हुक्का पानी बन्द तथा बाईकाट घोषित कर दिया। प्रातः जब हम उठ तो शहर में कोई हमारे साथ बात करने को भी रवादार न था। कहार भी पानी देने न आया, हमारे जो बड़े मित्र और रिश्तादार थे वह भी हम से कन्नी कतराने लगे। जब दो चार दिन के बाद हमने देखा कि अब हिन्दुओं का सोडावाटर का जोश ठण्डा हो गया है तो फिर एक जलूस निकाल कर एक ऐसे कूए पर बाल्मीकियों को चढ़ाना था, जहाँ हिन्दू मुसलमान इकट्ठे पानी भरते थे। जब हमारा यह निश्चय हमारे शहर की कांग्रेस कमटी को पता लगा (जिस का सारे शहर में केवल एक ही मुसलमान मेम्बर था और वह भी जासूसी करने के लिए क्यों कि हम इस मुसलमान को निहायत अच्छी तरह जानते थे) तो काँग्रेस के अधिकारी मेरे पास आए और कहने लगे कि आपने जो आज का प्रोग्राम बनाया है वह मुलतवी कर दें। मैंने कहा—क्यों ? तब वह काँग्रेसी भाई कहने लगे कि इस तरह हिन्दू मुसलमानों में तफ़रका पड़ता है। जब मैंने पूछा कि वह किस तरह। तो कहने लगे कि मुसलमान कहते हैं कि हम बाल्मीकियों को इस कूएं पर न चढ़ने देंगे। मैंने कहा—कूआँ सब का साँझा है, इस पर चढ़ने से कोई रोक नहीं सकता, परन्तु वह हिन्दू मुसलिम सवाल पर अड़ गये। हमने भी निश्चय कर लिया था। हम ने वह जलूस निकाला और उसी कूए पर गये तो क्या देखते हैं कि मुसलमान तो कोई नहीं परन्तु हिन्दू काँग्रेसी लाठियां लेकर कूएं पर खड़े हैं और ऐलान कर रहे हैं कि हम कूए पर बाल्मीकियों को नहीं चढ़ने देंगे। भला दयानन्द के वीर सैनिक ऐसी गीदड़ भभकियों से कब दबने वाले थे।

हमने बाल्मीकियों को कूएं पर चढ़ा दिया और अपना प्रोग्राम पूरा करके ही दम लिया।

छूत-छात को दूर करने के लिए जहाँ हर एक आर्य समाज और हर एक आर्य समाजी कोशिश करना अपना धर्म समझता था। वहाँ पर महात्मा देवी चन्द जी एम. ए. ने हुशियार पुर में एक दयानन्द दलितोद्धार नाम की संस्था कायम कर के बड़ा उपकार किया और इस काम में बड़ा योग दिया, इस के अतिरिक्त जिन विशेष व्यक्तियों ने इस छूत छात के विनाश के लिए जीवन अर्पण कर दिये। उन के संक्षिप्त विवरण यह हैं।

१. पंडित गंगा राम जी बिजवाड़ा में पौराणिक परिवार में पैदा हुए। सन् १८७६ में ओवरसीयर का इमतिहान दिया। जिस में वह अव्वल रहे। लुधियाना में महर्षि जी के व्याख्यान सुने और मन में महर्षि के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। आप जिला मुज़फ़र गढ़ में ओवरसीयर बन कर गये। उन्होंने इस इलाका में आर्य समाज का बहुत प्रचार किया। कई जगह आर्य समाज स्थापित किये। उन्होंने देखा कि जिला मुजफ़र गढ़, मुलतान, मियाँ वाली, डेरा ग़ाज़ी खां और रियासत बहावल पुर में एक ओड जाति रहती है, जिनके पूर्वज काल से तंग हो बीकानेर से आकर इन ज़िलों में बस गये थे। बाकी इन का सब काम काज तो हिन्दू रीति से होता था। परन्तु यह अपने मृतकों को बजाए जलाने क दबाते थे। जिस से यह हिन्दू मुसलमान दोनों के दरमियान समझे जाते थे और हिन्दू इन को अछूत ही समझते थे। अतः गंगाराम जो ने देखा कि हिन्दुओं के नफ़रत करने से यह बहादुर जाति कहीं मुसलमान न बन जाये। उन्होने इनके उद्धार के लिए पूरा ज़ोर लगाना शुरू कर दिया और इस कारण नौकरी से भी त्याग पत्र दे दिया। पुरुषार्थ और परिश्रम करके इस सारी जाति को मुसलमान होने से बचा लिया। और हिन्दुओं के अन्दर से इनके प्रति छूत छात के भाव

मिटाने में भी समर्थ हो गये, और इस तरह प्रभु कृपा से हजारों बहादुर राजपूतों को फिर से अपने धर्म पर कायम कर दिया।

२. पं० गंगाधर राम जो एडवोकेट सियालकोट ने भी अपना जीवन अछूत उद्धार में लगा दिया। अपनी कमाई का बहुत सा हिस्सा वह इस छूत छात नाश करने में ही लगा दिया करते थे और उनकी कोशिशें से जिला सियालकोट रियासत जम्मू व काशमीर के तकरीबन सारे चर्मकार जो मेघ कहलाते थे और अछूत समझे जाते थे। शुद्ध होकर हजारों लाखों की तादाद में मुसलमान ईसाई होने से बच गये और अब वह लोग भक्त कहलाते हैं। बटवारे के बाद उन की बहुत बड़ी तादाद जालन्धर नगर भारगों कैम्प में आ बसी है।

३. श्री पं० रामभज दत्त जी एडवोकेट ने जिला गुरदासपुर और रियासत जम्मू में रहने वाली अछूत जाति के हजारों मनुष्यों को फिर से हिन्दू धर्म में लाकर उनको महाशय बना दिया।

४. वीर राम चन्द्र जी खजांची, अछूतोधार का कार्य करते थे, राजपूतों को इनका यह काम एक आंख न भाता था। अतः एक दिन राजपूतों ने मौका पा कर इन को लाठियां मार मार कर मार दिया और वीर राम चन्द्र अछूतोद्धार करता वीर गति को प्राप्त कर गया।

५. श्री मेघराज जी ने इन्दौर में अछूतों को मन्दिर में प्रवेश कराते हुए अपना बलिदान दे दिया।

६. भक्त फूल सिंह जी का जन्म मौज़ा माहरा, तहसील सोनीपत, जिला रोहतक में हुआ। उनके छूत-छात निवारक आन्दोलन से चिढ़ कर मुसलमानों ने उनको कत्ल कर दिया।

इस तरह आर्य समाज ने छूत-छात नाशक आन्दोलन में इतना महान कार्य किया है यदि आर्य समाज अछूतोद्धार के लिए इतना यत्न न करता तो स्वराज्य प्राप्ति के लिए जो अछूतोद्धार का

सिद्धान्त निश्चित किया गया था वह कभी सफल न होता। महर्षि दयानन्द जी और आर्य समाज ने भरपूर यत्न कर इतनी कुर्बानियाँ देकर वह मैदान साफ़ किया था।

१३३. संन्यास मंडल

१. बाल ब्रह्मचारी स्वामी नित्यानन्द जी और स्वामी विश्वेश्वरा नन्द जी, यह दोनों महानुभाव इकट्ठे ही रहे थे। महर्षि दयानन्द जी के बाद स्वामी नित्यानन्द जी ने ठीक महर्षि जी के पद चिन्हों पर चलते हुए पूरे ३० वर्ष तक कार्य किया और दक्षिण देश में जहां महर्षि जी को जाने का अवकाश न मिल सका था। वहां जाकर आर्य समाज का डंका बजाने वाले यह दोनों ही महानुभाव थे। परन्तु शोक है कि आर्य समाजियों ने बाल ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी कोई कदर न की, न कभी इनका नाम किसी अखबार में आता है और न ही कभी जलसे जलूस में इनके नाम का ज़िकर है। इनके जीवन का थोड़ा सा वृतान्त इस पुस्तक में दिया गया है। आप पढ़ेंगे तो गद् गद् हो जायेंगे और विश्वेश्वरानन्द जी के नाम से ट्रस्ट कायम किया गया था। जो अब हुशियार पुर के नजदीक बिजवाड़ा में जल ता रहा है, परन्तु इसका अध्यक्ष आर्य समाज की जड़ों में तेल दे रहा है।

२. स्वामी दर्शनानन्द जी आप पहले कृपाराम शर्मा जगरानवी के नाम से प्रसिद्ध थे, फिर संन्यास लेकर स्वामी दर्शनानन्द के नाम से विख्यात हुए, इन्होंने कितने ही गुरुकुल स्थापित किये, जिन में से एक महा विद्यालय ज्वाला पुर है, जिस के अध्यक्ष पंडित नरदेव जी शास्त्री, बड़े विद्वान और त्यागी पुरुष थे। इस विद्यालय के एक विद्यार्थी श्री प्रकाश वीर शास्त्री ने अपनी वाक्य शक्ति से पार्लियामैंट का मैम्बर बन कर अपनी विद्वता की धाक बिठा रखी है, स्वामी दर्शनानन्द ने सैकड़ों छोटे २ ट्रेक्ट उर्दू में लिखे। उपनिषदों

और दर्शन शास्त्रों का उर्दू में भाष्य भी किया। आप बड़े ओजस्वी शास्त्रार्थ महारथी थे और ईसाई पादरी तो आप से ऐसे चलते जैसे गधे के सिर से सींग। आप को ७५ हजार रुपया की पैतृक सम्पत्ति मिली थी वह सब की सब और अपना जीवन भी आर्य समाज के अर्पण कर दिया। सर्वस्व निछावर करने वाले ऐसे ही महानुभावों के कारण आर्य समाज का इतना प्रचार हुआ है।

३. स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी जाट घराने में पैदा हुए। परन्तु आर्य समाज की जब लगन लगी, तो अद्वितीय प्रचारक बन गये। आप कई वर्ष तक वेद विद्यालय गुरुदत्त भवन के अध्यक्ष रहे और कितने ही नौजवानों को आर्य समाज में लाने में कामयाब हुए। हैदराबाद सत्याग्रह आप की ही देख रेख में सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ था। आपने दीना नगर जिला गुरदासपुर में दयानन्द मठ बनाया था। जो अब स्वामी सर्वानन्द जी की देख रेख में वैदिक धर्म के प्रचार का साधन सिद्ध हो रहा है।

४. स्वामी आत्मानन्द जी पहले मुक्ति राम जी के नाम से गुरुकुल पोठोहार के आचार्य रहे। फिर संन्यास ग्रहण कर आत्मानन्द नाम से प्रसिद्ध हुए। विभाजन के बाद यमुना नगर में अपना आश्रम बना कर बैठ गये। हिन्दी सत्याग्रह आप की ही अध्यक्षता में आरम्भ हुआ था। इन का वैदिक साधनाश्रम यमुना नगर आर्य समाज और वैदिक धर्म प्रचार के लिए ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यासी तैयार करता है।

५. स्वामी सर्वदानन्द जी बिजवाड़ा के रहने वाले थे। पहले नवीन वेदान्ती थे। भ्रमण करते बीमार हो गये। तिलहर निवासी श्री चमनलाल वैश्य एक दृढ़ आर्य समाजी सज्जन ने आप की सेवा की। आप निरोग हो गये। तो श्री चमन लाल जी ने इन का एक रेशमी कपड़े में लपेट कर सत्यार्थ प्रकाश भेंट करते हुए इन से प्रतिज्ञा ले ली कि एक बार इस पुस्तक को आदि से अन्त

तक पढ़ जायें। तब स्वामी जी ने इस प्रतिज्ञा के अनुसार सत्यार्थ प्रकाश पढ़ा तो रंग ही बदल गया और पूर्ण रूप से वैदिक धर्मानुयाई हो कर वैदिक धर्म प्रचार का डंका बजा दिया। उनकी सब से बड़ी खूबी यह थी कि वह आर्य समाज की पार्टी बाज़ी से अलग रह कर प्रचार करते रहे। बिल्कुल सादा, एक काला लम्बल उठाये फिरते थे, परन्तु उन की प्रचार शैली इतनी मनोरंजक और आकर्षक होती थी कि श्रोतागण सुनते सुनते थकते नहीं थे।

६—स्वामी वेदानन्द जी भी बड़े विद्वान थे। उन्होंने वेद के स्वाध्याय को सरल बनाने के लिए कितने ही पुस्तक लिखे हैं। आप ऋषि दयानन्द के परम श्रद्धालु थे, और अपने नाम के साथ दयानन्द तीर्थ लगाया करते थे।

७—स्वामी भूमानन्द जी एम. ए. ने वेद के मन्त्रों का अंग्रेज़ी में बड़े रोचक ढंग से तर्जमा किया था। आप अंग्रेज़ी और संस्कृत के बड़े विद्वान थे।

८—स्वामी सत्यानन्द जी जैनी थे, फिर आर्य समाज में प्रवेश कर सत्यानन्द नाम से प्रसिद्ध हुए। बड़े मित भाषी थे। इनके व्याख्यानों में दूर दूर से लोग आया करते थे, बहुत वर्षों तक आर्य समाज का प्रचार करते रहे, परन्तु बाद में कुछ गुरु बनने की भावना पैदा हो गई थी।

९. महात्मा नारायण स्वामी जी बड़े विद्वान, महात्मा, लेखक, उपदेशक, और सब से बढ़ कर Administrator सिद्ध हुए आप कई वर्ष तक सार्वदेशिक सभा के प्रधान रहे। आप आर्य समाज के सारे महा सम्मेलनों में योग देते रहे। परन्तु शोलापुर का आर्य सम्मेलन जिस में हैदराबाद सत्याग्रह निश्चय हुआ। यह तो केवल आपकी ही दक्षता से सम्पन्न हुआ। और आप ने सब से पहले जत्थे को लेकर हैदराबाद सत्याग्रह आरम्भ किया। जो निरन्तर आठ महीने चलता रहा, और अन्त में विजय दुन्दभि

बजाते हुए सत्याग्रही घरों को लौटे।

१०—इन महानुभावों के अतिरिक्त और भी कई सन्यासी आर्य समाज का प्रचार करते रहे। जैसे स्वामी अच्युतानन्द जी स्वामी अनुभवानन्द जी, इत्यादि इत्यादि और अब भी बहुत से सन्यासी आर्य समाज का प्रचार कर रहे हैं। स्वामी ध्रुवानन्द जी जो सार्वदेशिक सभा के प्रधान थे। इस तरह और भी कई सन्यासी महानुभाव हैं जो वैदिक धर्म के प्रचार में यथाशक्ति योग दे रहे हैं।

११—श्री आनन्द स्वामी जी ने विभाजन के बाद श्री स्वामी आत्मानन्द जी से सन्यास लिया और अब देश विदेश में वैदिक धर्म का प्रचार कर रहे हैं इनकी कथाएं बहुत रोचक होती हैं। हजारों की तदाद में लोग सुनते हैं। सन्यास लेने से पहले श्री खुशहाल चन्द खुरसंद के नाम से प्रसिद्ध थे। आप महात्मा हंसराज जी के कृपा पात्र बने रहे थे। आर्य गजट के सम्पादक भी कई साल रहे हैं। आर्य प्रादेशिक सभा के प्रधान रह कर भी सेवा करते रहे हैं।

१२—महात्मा टेक चन्द जी प्रभु आशरत और विज्ञान भिक्षु जी वान प्रसथी भी समाज सेवा में सलंग्न रहते हैं।

१३—आचार्य राम देव जी सन्यास लेकर स्वामी सत्यानन्द नाम से यमुना नगर का आश्रम चला रहे हैं।

सर्वमुखी प्रतिभासम्पन्न

शास्त्रार्थ महारथी ब्र० नित्यानन्द जी

(१) महर्षि दयानन्द सरस्वती महाराज के परमपदारूढ़ होने के उपरान्त आवश्यकता थी कि कोई उनके उद्देश्यों की पूर्ति के लिये अपने आपको सर्वात्मना अर्पण कर दे। परमात्मा की अपार कृपा से वह व्यक्ति ब्रह्मचारी स्वामी नित्यानन्द जी महाराज सिद्ध हुए। आप का जन्म जालोर (राजस्थान) में अनंत चतुर्दशी सं० १९१७ को हुआ। पिता जी और नाना जी से प्रारम्भिक शिक्षा

प्राप्त की और ज्ञान वर्धन की लालसा लिये गृह त्याग कर अहमदाबाद, बम्बई, नासिक पूना आदि स्थानों में हते हुए काशी पहुंच कर विद्यार्जन किया और १६३८ वि० अर्थात २१ वर्ष की आयु में काशी त्याग कथा वार्ता करने लगे। काशी निवास में स्वामी गोपाल गिरीजो ने आप को महर्षि स्वामो दयानन्द जो महाराज का परिचय दिया, बरेली में पंडित यज्ञदत्त जी प्राप्त कर आपने सत्यार्थप्रकाश और ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पढ़ा और तिलहर में नारायणी शिक्षा के रचयिता सुप्रसिद्ध आर्य श्री चिमन्लाल जी के यहां गीता की कथा और वृहद् यज्ञ करा कर उन्हें आश्वासन दिया कि मैं शीघ्र ही महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती महाराज के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये अपने आपको समर्पित कर दूंगा।

(२) तिलहर से प्रस्थान कर ब्रह्मचारी जो आर्य्यसमाजों में ठहरने और प्रचार करने लगे, यत्र तत्र शास्त्रार्थों और शंका समाधानों का क्रम चल पड़ा। देशी नरेशों, जगीरदारी, समाज सुधारकों और राजनैतिक नेताओं को उपदेश देते हुए विचरण करने लगे। आपकी ख्याति भारत भर में व्याप गई। मइसोर नरेश श्री चामराज वाडियार बड़ौदा नरेश श्रो सयाजी राव गायकवाड़ आपको गुरु मानते थे। इन्दौर नरेश शिवा जी राव होल्कर आपको अपने ही राज्य में निवास करने की बारम्बार प्रार्थना करते रहे। महामति माधव गोबिन्द रानांडे आपको महर्षि दयानन्द के पश्चात् आये हुए कार्य कर्त्ताओं में सर्व शिरोमणि मानते थे और आपका परिचय (Gifted Preacher) करके देते थे। महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर अपना शान्ति निकेतन विद्यालय आपकी भेंट करने को उद्यत थे। मनस्वो मदनमोहन मालवीय भी राजनैतिक समाजिक और धार्मिक विषयों पर आप से सतत परामर्श करते थे। उदयपुर के महाराणा श्री फतहसिंह जी, ईडर नरेश सर प्रतापसिंह जी, शाहपुराधीश श्री नाहर सिंह जी,

नाभा नरेश श्री हीरासिंह जो, पटियाला नरेश श्री रिपुदमन सिंह जी ब्रह्मचारी के उपदेशामृत पान करने को उत्सुक रहते थे।

(३) आर्य समाजों के तो आप प्राक्षणाधार थे, पंजाब, सिंध, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, मध्यभारत, महाराष्ट्र गुजरात, सौराष्ट्र, बम्बई, हैदराबाद, मैसूर, मद्रास, उड़ीसा, बिहार, बंगाल, आसाम सारे भारतवर्ष को आपने अपने वेद नाद से गुंजा दिया। आर्य समाज का तत्कालीन प्रत्येक नेता आपकी महत्ता और विद्वता का कायल था। जब सार्वदेशिक आ० प्र० सभा का वैधानिक संगठन नहीं हुआ था, तब व्यवहारिक रूप से भारतवर्ष भर में सर्वत्र आर्य समाज की प्रगतियों आन्तरिक विवादों और कठिन प्रसंगों पर आप ही पहुंचते थे इस कार्य में आप के सहयोगी लाला मुंशीराम जी (स्वा० श्रद्धानन्द जी) मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी और अजमेर के राव साहिब रामविलास जी शारदा थे। गौ रक्षा के निमित्त नीमच में अपने अन्त्यजनों को घिनौनी बस्तियों में रातों चक्कर काट उनकी पंचायतें करा उनसे गौमांस त्याग के प्रण करवाये और इस प्रकार नीमच में प्रतिवर्ष होने वाले २५०० गऊओं के वध को रुकवाया। अन्त्यजनों के प्रति दुर्व्यवहार को, आपने सक्रिय रूप में बंगलोर की सभाओं में समान स्थान दिला, हटाने का उद्योग किया।

दक्षिण भारत में हिन्दी की सुगमता और उसके सुबोध होने की मान्यता प्रतिष्ठत की।

४. महापुरुषों के जीवन में नाना दैवी गुणों का समावेश हुआ करता है। ये दैवी गुण (विभूतियां) ही उन्हें सामान्य जीवों से ऊपर उठा कर महात्मा, सन्त देवता बना देती हैं। पूज्य स्वामी नित्यानन्द जी भी ऐसी महान् विभूतियों में से एक थे। यदि महात्मा नित्यानन्द जी को सर्वगुण सम्पन्न एक आदर्श संन्यासी या परम सन्त कहा जाए तो अत्युक्ति न होगी। उनको विद्वता, उन का

अखण्ड ब्रह्मचर्य, निर्लोभता, सौम्य तथा शान्त स्वभाव, तेजस्वी शरीर, उनका योग, बल ये सब दैवी विभूतियां उनके महात्मापन की प्रबल परिचायक हैं।

पूज्य स्वामी जी के प्रबल विरोधी भी उनके विद्वतापूर्ण व्याख्यानों को सुनकर भूरि २ प्रशंसा करने लगते थे। हैदराबाद (दक्षिण) में पूज्य स्वामी जी के कई विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान हुए। उन में एक व्याख्यान को सभा के सभापति मद्रास के कट्टर पौराणिक श्री कृष्ण आयंगर थे। नित्यानन्द जी के विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान को सुनकर वे गद् गद् हो गए। उन्होंने अपने सभापति भाषण में कहा—

"मैं सुनता था कि हजारों में एक पण्डित होता है, किन्तु श्री ब्रह्मचारी जी तो लाखों में एक हैं।" जब बम्बई में स्वामी नित्यानन्द जी के कई विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान हुए तो बम्बई की प्रसिद्ध पत्रिका "गुजराती" के सम्पादक ने ५ अगस्त १८६३ के अंक में 'स्वामी नित्यानन्द के व्याख्यान' इस शीर्षक की अपनी सम्पादकीय टिप्पणी में लिखा—

'आजकल बम्बई नगरी स्वामी नित्यानन्द जी के व्याख्यानों से गूंज रही है। उनके भाषणों से क्या हिन्दू क्या मुसलमान क्या फारसी सब आश्चार्यान्वित हो रहे हैं। इन स्वामी जी के उपदेशों को सुनने के लिए लोगों के झुण्ड के झुण्ड इकट्ठे हो जाते हैं। पीछे आने वालों को बैठने का स्थान तक भी नहीं मिलता, इत्यादि"।

दक्षिण भारत में जो कि पौराणिकता का गढ़ माना जाता है। जब महाराज के मद्रास और मैसूर आदि में वैदिक सिद्धान्तों पर व्याख्यान हुए तो वहां के बड़े बड़े धुरन्धर विद्वान उन की विद्वत्ता पर मुग्ध हो गये और वहाँ के समाचार पत्रों ने उनकी विद्रत्ता की भूरि २ प्रशंसा की। मैसूर के अंग्रेजी पत्र 'मैसूर हैरल्ड' ने अपने सम्पादकीय लेख में स्वामी जी की विद्वत्ता के सम्बन्ध में लिखा—

स्वामी नित्यानन्द जी आजकल मैसूर में हैं। दोनों स्वामी (विश्वेश्वरानन्द, नित्यानन्द) हिन्दू धर्मशास्त्रों के पूर्ण ज्ञाता हैं। वेद वेदांग तथा स्मतियों का इन्हें पूर्ण ज्ञान है। दर्शन पुराण और ऐतिहासिक ग्रन्थों के तो ये दोनों स्वामी असाधारण ज्ञाता हैं। इत्यादि। बम्बई के पत्रों ने तो स्वामी जी के व्याख्यानों से प्रभावित होकर उनके कारटून तक निकाले। ता० १४ 'हिन्दीपंच' ने स्वामी जी का एक चतुर्भुआकार अर्थात् चार भुजाओं वाला कारटन प्रकाशित किया। जिस में मुखमण्डल के चारों ओर सूर्य की किरणों दैदिप्यमान हो रही थीं। एक हाथ में वेद, दूसरे में मनुस्मृति, तीसरे में तर्कशास्त्र आदि ग्रन्थ दिए गए थे। इन्हीं ग्रन्थों के समीप ज्ञान, ज्योति, सम्मान, कीर्ति अदि शब्द शोभायमान थे। कारटन ने नीचे लिखा था—

"बम्बई के आर्यों को पूजा की मूर्ति स्वामो
नित्यानन्द जी महाराज"

पाठक उपर्युक्त उद्धरणों से अनुमान लगा सकते हैं कि पूज्य स्वामी नित्यानन्द जी महाराज कितने उच्चकोटि के अद्वितीय विद्वान् थे। प्रायः देखा गया है कि अपनी विद्वत्ता का घमण्ड मनुष्य को अभिमान के नशे में चूर चूर कर देता है। किन्तु ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी विद्या के अथाह सागर होते हुए भी उनमें अभिमान का लेश भी नहीं था। वे सरल तथा शान्त स्वभाव और सौम्यता की मूर्ति थे। उनका प्रतिपक्षी उन्हें चाहे कितने अपशब्द या बुरा भला कहता वे उसके कटु वचनों पर कुछ भी ध्यान न देकर उसे अपने शान्त तथा हँसमुख चेहरे से प्रेमपूर्वक उत्तर दिया करते।

५. बहुधा देखा गया है कि ऐसे महापुरुषों के सम्मुख कामिनी और कांचन के प्रलोभन भी अक्सर आया करते हैं और इन प्रलोभनों में बड़े बड़े महापुरुष भी फंस जाया करते हैं और अपने धैर्य

और ध्रुव ध्येय की धारणा से विचलित हो जाते हैं। परन्तु पूज्य ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी अपने पूज्य गुरु ऋषि दयानन्द के समान कामिनी और कांचन के प्रलोभन से कोसों दूर थे। उन के सम्मुख कई बार ऐसे प्रलोभन आए किन्तु उन को ब्रह्मचारी जी ने एक दम ठुकरा दिया। एक बार एक सुन्दरी जिसका कि पति कहीं चला गया था महाराज के सुन्दर तथा तेजस्वी चेहरे को देखकर मुग्ध हो गई। और लोगों में यह फैला दिया कि मेरे तो यही पति हैं जो कि मुझे छोड़ कर अब साधु बन गए हैं। अन्य लोगों ने भी उस युवती के कथन का समर्थन किया और स्वामी जी महाराज से उसे अपने पास रखने के लिए आग्रह करने लगे। किन्तु उस अखण्ड ब्रह्मचारी ने सब को डांट दिया और उस स्थान से प्रस्थान कर दिया। इन्दौर, बड़ोदा, शाहपुरा के नरेशों ने इस शर्त पर कि ये उनके राज्य में रहकर प्रचार करें, अन्यत्र कहीं न जाएं हजारों रुपये मासिक देने का वचन दिया किन्तु उस परम त्यागी नित्यानन्द ने यह कहकर कि साधु सर्वत्र विचरता है उनके इन भारी प्रलोभनों को ठुकरा दिया। मैसूर नरेश ने तो उनकी विद्वत्ता पर मुग्ध होकर उन के सामने अपने हीरे, मोती तथा जवाहरातों के भण्डार खोल दिये और कहा ब्रह्मचारी जी इन में से जितने हीरे, मोती, जवाहरात चाहिए आप ले लें, आपको खुली छुट्टी है। किन्तु उस आदर्श त्यागी नित्यानन्द ने उनकी ओर दृष्टिपात भी नहीं किया। उनके त्याग की एक दो घटनाएं पाठकों के सम्मुख रखना अप्रासंगिक न होगा। अहमदाबाद के सुप्रसिद्ध सेशन जज श्री लल्लू भाई सांवलदास ने अपने एक लाख रुपये के विशाल बाग को महाराज से भेंट स्वरूप स्वीकार करने की सविनय प्रार्थना की। किन्तु उस त्यागमूर्ति ब्रह्मचारी ने यह कह कर कि साधुओं को बाग से क्या लाग, इस विशाल बाग को लेने से साफ़ इन्कार कर दिया। आज जहां हमारे संन्यासी तथा नेतागण साधारण सी संस्थाओं के मोह से भी मुक्त नहीं होना

चाहते, वहाँ महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर ने उनको विद्वता और प्रतिभा से प्रभावित होकर उन्हें अपनी विश्व विख्यात संस्था 'शान्ति निकेतन अर्पण करनी चाही किन्तु उस विरक्त महात्मा ने उसे लेना स्वीकार नहीं किया। यह है उस परमहंस के परम त्याग की पराकाष्ठा।

६. उपर्युक्त गुणों के अतिरिक्त ब्रह्मचारी नित्यानन्द में यदि कोई महान् तथा अद्भुत गुण था तो वह था शास्त्रार्थ का कौशल वे शास्त्रार्थ करने में परम प्रवीण थे। उन्होंने अपने जीवन काल में प्रायः सभी धर्मावलम्बियों से पचराव, नरसिंहगढ़, कोल्हापुर, बूंदी, बम्बई, हैदराबाद, बड़ोदा, इन्दौर आदि स्थानों में सैकड़ों शास्त्रार्थ किए और सभी शास्त्रार्थों में अभूतपूर्व विजय प्राप्त की। उनके शास्त्रार्थ कौशल को देख कर प्रतिपक्षी अवाक् रह जाते थे। और कट्टर से कट्टर विधर्मी भी अपने अलीक मत को छोड़कर पवित्र वैदिक धर्म को स्वीकार कर लेते थे। नरसिंहगढ़ में सच्चा गुरु मंत्र कौन है' जब इस विषय पर पौराणिक पण्डितों से शास्त्रार्थ हुआ तो उस का उपस्थित जनता पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि न केवल साधारण जनता अपितु ५०० से अधिक प्रतिष्ठित राजपूतों सहित नरसिंहगढ़ के महाराजा ने भी पवित्र वैदिक धर्म को स्वीकार कर लिया और वहाँ दूसरे ही दिन आर्यसमाज स्थापित हो गया। ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी अपने प्रतिपक्षी के प्रश्नों का उत्तर इतनी विद्वत्ता और योग्यता से देते थे कि दुबारा उसके बोलने का साहस ही नहीं होता था। बड़ोदा के गोबिन्द बिष्णुदेव नामक एक प्रसिद्ध पौराणिक विद्वान ने स्वामी महाराज के पास १५ प्रश्न लिखकर उत्तर के लिये भेजे और दावा किया कि प्रश्नों का उत्तर स्वामी नित्यानन्द जी त्रिकाल में भी नहीं दे सकते। स्वामी नित्यानन्द जी महाराज ने सभी प्रश्नों का उत्तर एक एक करके ऐसा युक्ति युक्त दिया कि फिर उपर्युक्त विद्वान को कुछ बोलने या लिखने का साहस भी नहीं हुआ।

यूं तो पूज्य स्वामी जी के सभी शास्त्रार्थ बड़े महत्त्वपूर्ण हैं किन्तु सब से अधिक महत्वपूर्ण शास्त्रार्थ उनका बूंदी शास्त्रार्थ है। है। जो कि पुस्तकाकार में छप चुका है। खेद है कि वह मुद्रित शास्त्रार्थ आज उपलब्ध नहीं है। बूंदी शास्त्रार्थ में जब वहां के रामानुज सम्प्रदायी राजा द्वारा बुलाये गये सभी धुरन्धर तथा दिग्गज विद्वान पूज्य स्वामी जी के सम्मुख परास्त हो गए तब उन विद्वानों ने बहुत ओछे हथियारों से काम लिया जैसा कि काशी के पण्डितों ने ऋषि दयानन्द से शास्त्रार्थ में पराजित हो कर किया था उन्होंने बूंदी के महाराजा को बहका कर उन दोनों महात्माओं को बूंदी राज्य से बाहर निकलवा दिया और उनके लिए अपशब्दों का प्रयोग किया गया। किन्तु पूज्य स्वामी विश्वेश्वरानन्द तथा नित्यानन्द की विद्वत्ता का धाक बूंदी के समस्त नर नारियों के हृदय में बैठ गई। बूंदी के महाराज तथा उन पौराणिकों की सर्वत्र निन्दा होने लगी। अखबारों में बूंदी के महाराज के विरुद्ध लेख निकले। जिनमें उनकी तीव्र आलोचनाएं की गईं। अजमेर से प्रकाशित होने वाले "राजस्थान समाचार" ने जो कि राजस्थान के नरेशों का कट्टर पृष्ठ पोषक था, अपने चैत्र सुदी ४ सं० १९४५ के अङ्क में लिखा।

"हमारी समझ में नहीं आता कि आर्यसमाज जैसी प्रतिष्ठित और बलवान संस्था जिसने कि भारतवर्ष भर को प्रबल और दृढ़ उपदेशों द्वारा बहुत लाभ पहुंचाया है उसके विश्वेश्वरानन्द तथा नित्यानन्द दोनों सन्यासियों के साथ महाराज ने ऐसा दुर्व्यवहार क्यों किया? ऐसा अनुचित व्यवहार करते हुए राजपुताना के सप से वृद्ध महाराजा बूंदी नरेश की नीति और विद्वत्ता कहां चली गई? हम सत्य कहते हैं कि महाराज रामसिंह जी ने उपर्युक्त दोनों महात्माओं का अपमान करके अपनी आज तक की सम्मान और प्रतिष्ठा को बट्टा लगा दिया है। आर्यसमाज और बूंदी राज्य के इतिहास में यह बात लिखी जाएगी और सदा विद्यमान रहेगी कि बूंदी के राजा

ने अपने साम्प्रदायिक पक्षपात के वश में हो कर आर्यसमाज के दो साधुओं के साथ ऐसा दुर्व्यवहार किया था। इत्यादि।

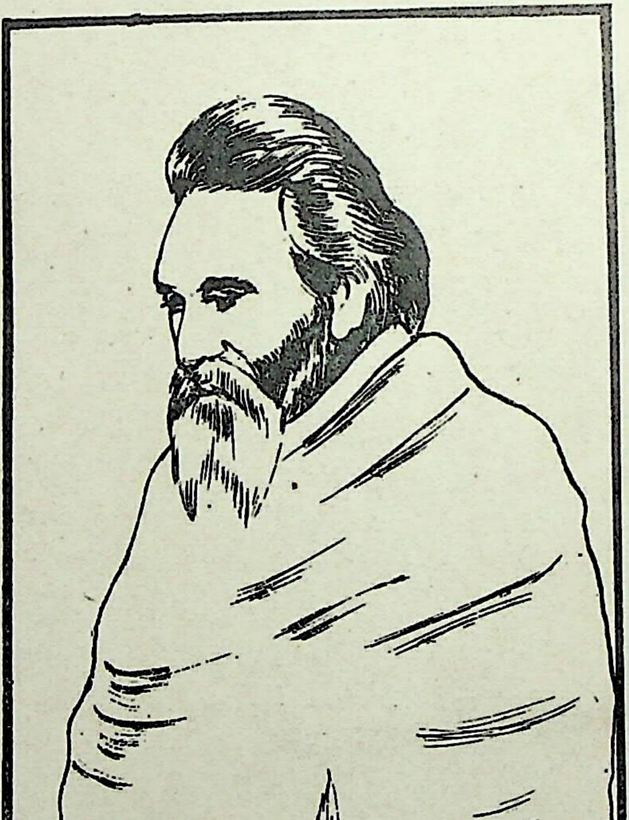
प्रिय पाठक इसी से अनुमान लगा सकते हैं कि पूज्य स्वामी नित्यानन्द जी की विद्वत्ता तथा शास्त्रार्थ की प्रवीणता का सिक्का न केवल सर्वसाधारण अपितु बड़े बड़े विचारकों तथा विद्वानों के हृदय पर कितनी प्रबलता से बैठ चुका था। इसलिए मैं पूज्य स्वामी जी को शास्त्रार्थ विजेता व शास्त्रार्थ महारथी के नाम से सम्बोधित करता हूं।

७—स्वामी नित्यानन्द जी महाराज न केवल अद्वितीय विद्वान शास्त्रार्थ विजेता तथा सफल वक्ता ही थे प्रत्युत वे अखण्ड ब्रह्मचारी तथा पूर्ण योगी भी थे। जहां उनकी विद्वत्ता आदि का सिक्का लोगों के हृदय में बैठा हुआ था, वहां उनके ब्रह्मचर्य तथा योग बल का प्रभाव भी उनके तेजस्वी मुखमण्डल को देखते ही प्रत्येक नर नारी के हृदय में अङ्कित हो जाता था। मैसूर में जब एक ब्राह्मण विद्वान ने उन्हें अपने गृह पर भोजन का निमन्त्रण दिया तो उस विद्वान की विदुषी धर्मपत्नि ने पूज्य स्वामी जी की प्रशस्ति में संस्कृत में जो श्लोक लिखकर उनकी सेवा में भेंट किये थे वे स्वामी जी के त्याग तथा ब्रह्मचर्य के प्रभाव को स्पष्ट प्रकट करते हैं। लेख विस्तार भय से हम यहां उन सब श्लोकों को उद्धृत न कर केवल प्रारम्भ का एक श्लोक ही पाठकों के दिग्दर्शनार्थ अङ्कित कर रहे हैं जो कि निम्न प्रकार है।

अष्टाङ्गयोगनिरतो यतिसार्वभौमः।
दुर्वाद खण्डन विधौ चतुरोऽयमद्य॥
यस्मात् समस्त जनदृष्टिपथं जगाम।
गायन्ति तद् यतिपतरेवदान पद्यम्॥



बाल ब्रह्मचारी स्वामी नित्यानन्द जी
1861—1914



स्वामी पंडित ब्रह्मदत जी जिज्ञासु

1892—1964

अर्थात स्वामी नित्यानन्द महाराज यम नियम आदि अष्टांग योग में सदा निरत एक सार्वभोम अखण्ड ब्रह्मचारी हैं। वे मिथ्या सिद्धान्तों के खण्डन करने में महान चतुर हैं। चूंकि उनके ये उपर्युक्त सब गुण समस्त जनों के भलो प्रकार से विदित हैं इसलिए आज उस यतिवर के समस्त नर नारीं गुणवाद गा रहे हैं।

ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी ने अपने जीवनकाल में कई ग्रन्थों की भी रचना की है। जिनमें पुरुषार्थ प्रकाश सब से अधिक प्रसिद्ध हैं जिसके सम्बन्ध में पंजाब के प्रसिद्ध आर्य नेता पं० ठाकुरदत्त धवन ने अपनी सम्मति देते हुए लिखा था—सत्यार्थ प्रकाश के दूसरे दर्जे पर पुरुषार्थप्रकाश है।

८—खेद है कि विश्वेश्वरानन्द और नित्यानन्द आनी इन दोनों महान् विभूतियों को जिन्होंने अपने जीवन काल में अपने व्याख्यानों, उपदेशों और शास्त्रार्थों द्वारा सवसाधारण से लेकर बड़ बड़े विद्वानों तथा राजाओं महाराजाओं के हृदय में आर्य्य समाज की धाक बैठा दी थी आर्य्यसमाज बिल्कुल भूल गया है। अन्य नेताओं तथा महात्माओं को उनके स्मृति दिवस मनाकर तथा उसके सम्बन्ध में विशेषांक आदि निकाल कर याद भी कर लेता है। किन्तु इन दोनों महापुरुषों का तो कभी स्मृति दिवस ही नहीं मनाया जाता और न ही इनके सम्बन्ध में कभी विशेषांक आदि ही निकाले जाते हैं। वास्तव में यह हमारी उनके प्रति बड़ी भारी कृतघ्नता है।

९—ब्रह्मचारी जी ने इस प्रकार महर्षि दयानन्द जी के परमपदारुढ़ होने के उपरान्त ३० वर्षों तक उनके उद्देश्यों की पूर्ति में अपने को अर्पण कर पौष १९७० में बम्बई में नश्वर शरीर त्याग दिया।

महर्षि दयानन्द का उपकार

दयानन्द ने किया वेद प्रचार, दयानन्द ने किया वेद उद्धार
दयानन्द का महान उपकार, कृतज्ञ है अब सारा संसार

ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी

दयानन्द के पीछे चलकर, उन्हीं के सांचे में ढल कर।
नित्यानन्द बन गये ओजस्वी, विज्ञ तेजस्वी वर्चस्वी ॥
दनानन्द ने तो बीज रोपा, "नित्य" ने बना वृक्ष सौंपा।
दयानन्द के दृढ़ अनुयायी, नित्यानन्द स्वामी हे आर्य ॥

१३४. पंडित मंडल

महर्षि की कृपा से आर्य समाज ने बहुत बड़े बड़े प्रकाण्ड पंडित पैदा किये। पं० लेखराम जी, पं० गुरुदत्त जी विद्यार्थी, महामहोपाध्याय पं० आर्य मुनि जी, पं० शिव शंकर काव्यतीर्थ, पं० खेमकरण दास त्रिवेदी, जिन्होंने ४० वर्ष की आयु में संस्कृत पढ़ना आरम्भ कर अथर्ववेद का भाष्य किया। पं० जै देव विद्यालंकार, जिन्होंने चारों वेदों का हिन्दी सरल भाष्य किया। पं० भोजदत्त जी जिन्होंने आगरा में आर्य मुसाफिर विद्यालय कायम कर सैंकड़ों शास्त्रार्थ महारथी पैदा किये। पं० बुद्धदेव विद्यालंकार, पं० मनसाराम वैदिक तोप, पं० तुलसीराम स्वामी मेरठ के, पं० घासी राम जी, गुरु कुलों, कालजों, दयानन्द ब्रह्ममहाविद्यालय, और दयानन्द उपदेशक विद्यालयों ने हजारों पंडित शास्त्रार्थ महारथी, पैदा किये। परन्तु पुस्तक का कलेवर बढ़ जाने के भय से केवल चार महापंडितों का ही जिकर कर रहे हैं।

१. पं० रामचन्द्र जी देहलवी, जिन्होंने अपनी विद्या और

शास्त्रार्थ चतुरता से आर्य समाज की धाक जमाने भर में बिठा रखी है। एक पैसा भी आर्य समाज से लिए बगैर अपने गुज़ारे के लिए खुद कमाई करके, आर्य समाज की शान को बढ़ाया है। बड़े से बड़ा ईसाई पादरी, शास्त्रार्थ में इनके सामने न ठहर सका। जो भी आया शिकस्त खा कर गया। कुरान शरीफ पं० जी ऐसा शुद्ध उच्चारण करते हैं, कि मुसलमान उनकी बलाएं लेते हैं, अब भी आर्य समाज के इस बूढ़े जरनैल के सामने किसी को आने की हिम्मत नहीं होती।

२. पं० भगवतदत्त जी बी. ए. जिन्होंने रिसर्च करके ऐसा बढ़िया साहित्य आर्य समाज के सिद्धान्तों की पुष्टि के लिए लिखा है कि देश विदेश में इनकी विद्या का डका बज रहा है। आजकल आप भी देहली में ही रहते हैं। विभाजन से पहले डी. ए. वी. कालज के रिसर्च स्कालर थे।

३. महर्षि दयानन्द जी महाराज से प्रेरणा पाकर अनेक पंडितों ने वैदिक धर्म का प्रचार किया और अनेक प्रकार का साहित्य भी रचा है। परन्तु श्रीपाद दामोदर सतवलेकर जी का उत्साह अत्यन्त सराहनीय है। जो इस समय ९७ वर्ष की आयु होने पर भी निरन्तर वेद व्याख्यान में जुटे होते हैं।

(४) वेद और संस्कृत के महान विद्वान्

पद्म भूषण पंडित ब्रह्मदत्त जिज्ञासु

पद्म भूषण पंडित श्री ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु आधुनिक युग के वेद और संस्कृत के एक महान् विद्वान् थे। आप का संस्कृत की व्याकरण पर असाधारण अधिकार प्राप्त था। वेद और संस्कृत की शिक्षा में अष्टाध्यायी की प्रणाली को बड़ा महत्त्व प्राप्त है। पंडित श्री ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु ने अष्टाध्यायी प्रणाली के द्वारा हजारों

विद्यार्थियों को संस्कृत भाषा का पंडित बनाया । हाल ही में २१ दिसम्बर १९६४ का रात को हृदय गति बन्द हो जाने से उन के समाचार से न केवल आर्य जगत में हो बल्कि संस्कृत साहित्य के सारे क्षेत्र में शोक छा गया है और उन के इस महाप्रयाण से एक अपूर्णीय क्षति अनुभव की जा रही है ।

अभी गत मंगलवार १५ दिसम्बर को बात है कि वासनी महाविद्यालय मोती झील में श्री जिज्ञासु की लिखी हुई 'अष्टाध्यायी प्रथमावृत्ति के प्रकाशन के सिलसिले में डाक्टर श्री मगलदेव की अध्यक्षता में एक बहुत बड़ा समारोह हुआ । इस समारोह में भारत भर के बड़े बड़े संस्कृत विद्वान सम्मिलित हुए जिन्होंने स्वर्गीय पंडित श्री ब्रह्मदत्त जिज्ञासु को उनके अष्टाध्यायी प्रणाली को प्राथमिकता देने और 'अष्टाध्यायी प्रथमावृत्ति' को रचना करने के सिलसिले में उनका अभिनन्दन किया । इस समारोह में स्वयं श्री जिज्ञासु जी भी सम्मिलित थे । इस अवसर पर उन्हाने भी अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा—

"मैं ५ जून १९१२ को घर से निकला । मेरे माता-पिता अनपढ़ थे । मैंने हाई स्कूल से मैट्रिक की परीक्षा सर्वप्रथम रह कर पास की । परन्तु मैंने कालिज को शिक्षा के बजाय आर्य ग्रंथ (प्राचीन संस्कृत ग्रंथ) पढ़ने का विचार कर लिया । अत. अष्टाध्यायी पढ़ने के लिए मैं हरिद्वार पहुंचा । ज्वालापुर महर्षि विद्यालय के संचालक से मैंने अपना विचार व्यक्त किया । उन्होंने कहा कि अष्टाध्यायो पर मैं अधिकार प्राप्त नहीं कर सकता । यह एक बहुत कठिन प्रणाली है । मैंने उत्तर दिया कि अष्टाध्यायी में ३२ पाद हैं यदि मैंने जोवन भर में एक पाद पर भी अधिकार प्राप्त कर लिया तो उसे बहुत समझूंगा और शेष भाग अगले जीवन में देखूं और समझूंगा । खैर ! मैं स्वर्गीय श्री पूर्णानन्द जी के साथ रहने और पढ़ने लगा । उन्हीं से मैंने अष्टाध्यायो और कुछ महाभाष्य पढ़ा

इस के बाद बहुत विद्वानों से मैंने शिक्षा प्राप्त की। इसी बीच साधू आश्रम पुल काली नन्दी अलीगढ़ में पहुंचा। वहां जाने का पहले मेरा विचार नहीं था। अकस्मात् एक बारात के साथ मैं वहां चला गया था। यह साधु आश्रम स्व० पण्डित श्री सर्वदानन्द का था। मैं उनसे मिला। उन्होंने मुझ से पूछा—सिद्धांत कौमुदी पढ़ा सकते हो?' मैंने उत्तर दिया—'जिस चीज में श्रद्धा न हो उसको पढ़ाने का सवाल ही पैदा नहीं होता। उन्होंने कहा, अष्टाध्यायी पढ़ाने का सिलसिला हो नहीं सकता क्योंकि हम ने हजारों रुपया खरच किया। सैंकड़ों विद्यार्थी और बीसियों अध्यापक रखे परन्तु सरलता प्राप्त नहीं हुई।

मैंने उत्तर दिया, 'आप ही की यह शिक्षा है कि जहां स्वामी दयानन्द जी सरस्वती और दूसरे विद्वानों में मतभेद हो वहां स्वामी दयानन्द जी की बात ही माननी चाहिए। इसलिए मैं तो उन की ही बात मानता हूं। आप आर्यसमाज के एक प्रमुख पंडित हैं। आप ही का यह कर्त्तव्य है कि यहां अष्टाध्यायी पद्धति चलाएं इस चरण पर उस समय हमारी वार्ता समाप्त हो गई। फिर रात के समय जब श्री सर्वदानन्द जी लेटे हुए थे और दूसरे कुछ लोग उनके पांव और टांगों को दाव रहे थे। मैंने भी उन्हें दबाना शुरू कर दिया। उन्होंने मुझे बहुतेरा मना किया पर मैं दाबता ही रहा। इसी बीच उन्होंने व्याकरण की कोई बात पूछी और मैंने महाभाष्य के आधार पर उसका उत्तर दिया। वह बहुत प्रसन्न हुए उन्होंने मुझे कहा कि मैं उनके यहां रह जाऊं परन्तु मेरा वहां रहने का विचार नहीं था। तो भी उन्होंने दो तीन बार हठ किया और बड़े प्रेम से कहा। अन्ततः मैंने उनसे पूछा—क्या आप सचमुच चाहते हैं कि मैं आप के यहां रहूं। उन्होंने कहा हां।

तब मैंने कहा, मेरी तीन शर्तें हैं। पहली यह कि इस साधु आश्रम में श्री दयानन्द जी की पाठ विधि जारी की जाए। जिन

ग्रंथों का विरोध ऋषि दयानन्द जी ने किया है उन्हे यहां न चलाया जाए। दूसरी शत यह है कि मैं किसी समिति के आधीन नहीं रहूंगा आप जो आज्ञा देंगे वह करूंगा। तीसरी शर्त यह है कि मधुकरी भिक्षा पर निर्वाह करूंगा।

स्वामी सर्वदान्द जी ने शर्तें मान लीं और अगले दिन ही से कौमुदी आदि पढ़ने वाले विद्यार्थियों को बाहर भेज दिया और आदर्श पाठ विधि (प्राचीन पाठ्य प्रणाली) आरम्भ कर दी गई और उसी गडा संगुरु वाला में मैंने नियमत रूप से प्रथमवृति पढ़ना आरम्भ किया। और आज चालीस वर्ष के अष्टाध्यायी को प्रथमावृत्ति का एक मुख्य लक्ष्य पूरा हुआ। इस में सहयोगियों की प्रेरणा, प्रोत्साहन और सहयोग प्राप्त रहा। इस प्रथमावृत्ति में प्रज्ञादेवी की तपस्या और सहयोग विशेष रूप से उल्लेखनोय है। विद्वानो से मेरा नम्र निवेदन है कि मूल अष्टाध्यायी को व्याकरण वालों के लिए अनिवार्य घोषित कर दें। इस से संस्कृत का कल्याण हो सकता है। प्रथमावृत्ति प्रत्येक भारतवासी को पढ़नी चाहिए। स्व० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु के अतिरिक्त और श्री जिन संस्कृत विद्वानों ने इस समारोह में भाषण दिए उनमें से ये नाम उल्लेखनोय हैं :—

प्रथम—पंडित कृष्ण मोहन जी प्रधानाचार्य जिन्होंने अष्टाध्यायो प्रणालो को बहुत सरल किया। और जिस प्रकार दैनिक भोजन में पानी महत्ता के साथ मौजूद है उसो प्रकार अष्टाध्यायो में संस्कृत का सब कुछ मौजूद है।

द्वितीय – संस्कृत विद्यालय श्री सुब्रह्माण्य मोमांसा अध्यापक हिन्दू विश्वविद्यालय जिन्होंने अपने भाषण में श्री जिज्ञासु जी का अभिनन्दन करते हुए कहा की अष्टाध्यायो की अन्ताक्षरो देखकर बहुत प्रसन्नता हुई है। यह अन्ताक्षरी हम ने पहले कहीं नहीं देखी। सब कुछ जिज्ञासु जी के कारण से है।

उनके बाद संगीत विद्यालय के श्री रतिनाथ झा, सुप्रसिद्ध

संगीत मार्तण्ड पण्डित ओंकारनाथ ठाकुर ने अपने विचार व्यक्त किये। फिर पण्डित श्री ढढीराज और मातीझील के स्वत्वाधिकारी श्री बाबू ज्योतिभूषण ने भी श्री जिज्ञासु जी की पद्धति की बहुत प्रशंसा की।

डा० प्रेमलता शर्मा, उपकुलपत्ति, संगीत विद्यालय ने भाषण देते हुए कहा कि आज से बारह वर्ष पूर्व श्री गुरुजी के द्वारा मुझे श्री जिज्ञासु जी का परिचय प्राप्त हुआ। अष्टाध्यायी और काशकादि के पढ़ने का कुछ अवसर मिला और काफी लाभ भी हुआ। इसके बाद चालीस पाठ्य पुस्तकें लिखी गईं। बाद में प्रथमावृत्ति की रचना के सिलसले में विचार विमर्श होता रहा। इन दोनों पुस्तकों के सिलसले में मेरा भी कुछ सहयोग है। मुझे इस बात की अत्यन्त प्रसन्नता है कि यह प्रथमावृत्ति तैयार हुई। अध्यापकों के लिए जिज्ञासु जी एक आदर्श थे मैं पढ़ाते समय उनका उदाहरण अवश्य देती हूं।

इस समारोह में श्री डा. वासुदेव शरण अग्रवाल का भाषण भी उल्लेखनीय है। उन्होंने बताया कि पाणिनी से पूर्व ६८ व्याकरणी हो चुके थे। डाक्टर मंगलदेव शास्त्री ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि जिज्ञासु जी की प्रथमावृत्ति हम लोगों के लिए एक बहुत बड़ी देन है। यह सौभाग्य की बात है कि श्री जिज्ञासु जी कि लिखी हुई प्रथमावृत्ति का पहला भाग प्रकाशित हो गया है। आशा है कि दूसरे भाग भी शीघ्र प्रकाशित हो जाएंगे। इनके परामर्श से स्वामी दयानन्द जी का वेद भाष्य बनारस विश्वविद्यालय में कोरस बनाया गया है।

स्वर्गीय पंडित जी ७३ वर्ष के थे। इतनी आयु होने के बावजूद इन बाल ब्रह्मचारी महात्मा का स्वास्थ्य बहुत अच्छा था। वह पूरी लग्न के साथ न केवल वेद प्रचार करते रहे बल्कि वेद वाणि नामक एक पत्र भी प्रकाशित करते रहे उन्होंने अष्टाध्यायी के आधार पर हजारों विद्यार्थियों को संस्कृत के विद्वान बनाया।

उनकी इस अपूर्व सेवा के दृष्टिगत ही भारत सरकार ने उन्हें पद्म भूषण की उपाधि से विभूषित किया तथा डेढ़ हजार रुपये का वार्षिक पुरस्कार भी दिया। पूज्य पंडित जी में अनुपम गुण यह था कि न केवल स्वयं विद्वान थे बल्कि उन्होंने दूसरों को भी विद्वान बनाने में सफलता प्राप्त पाई। उन्होंने श्री राम लाल कपूर ट्रस्ट की मदद से संस्कृत के कितने ही ग्रन्थों को हिन्दी में अनूवादित किया तथा बहुत सी पुस्तकें भी, प्रकाशित कराईं। हज़ारों युवकों को संस्कृत का प्रकांड पंडित बना दिया।

इस महान विद्वान का देहांत हृदयगति के रुक जाने से हुआ तथा २२ दिसम्बर को उनके पवित्र शरीर को अज़मत गढ़ पैलेस स्थित उनके निवास्थान से विशाल जलूस के साथ वाराणसी के घाट पर ले जाया गया तथा वहां अंतिम संस्कार किया गया।

विशेष कार्य कर्ता

१—राजा नाहर सिंह शाहपुर आघोष महर्षि के परम श्रद्धालु शिष्य थे उन्होंने मथुरा जन्म शताब्दी महोत्सव को सफल बनाने में बड़ा प्रयास किया था उनके पुत्रों के यज्ञोपवीत स्वामी नित्यानन्द जी ने करवाये थे और इस शुभ अवसर पर उन्होंने पुरुषार्थ प्रकाश पुस्तक तैयार करवाई थी। मलकाना राजपूतों की शुद्धी में उनका बड़ा याग रहा और शुद्ध हुए राजपूतों के सह भोजों म भाग लेकर मलकाना शुद्धी को बड़ा परोत्साहन दिया और उनके इस प्रोत्साहन के कारण ढाई तीन लाख मलकाना रानपूत दो तीन महीनों में ही शुद्ध कर लिए गये और उनके सुपुत्र राजा उमोद सिंह जी अजमेर दयानन्द निर्वाण अर्द्ध शताब्दी महोत्सव के प्रधानबन कर उसकी सफलता में सहायक हुए थे। इनके महल में महर्षि के वक्त की जलाई हुई अग्नि आज तक जल रही है।

२—श्री पंडित मेहर चन्द जी ने जालन्धर में आर्य समाज की बहुत सेवा की, दयानन्द कालज जालन्धर जो बहुत विस्तार

पकड़ चुका है, इन्हों की कुर्बानी का फल है। वह भी सारी आयु महात्मा हंसराज की भान्ति विद्या प्रचार में प्रयत्न शील रहे।

३—पं० लखपतराय जी एडवोकेट हिसार ने हरयाना प्रान्त यानि जिला रोहतक, हिसार, करनाल में अपने दूसरे सहायकों के साथ आर्य समाज का बड़ा प्रचार किया। और हरयाना प्रान्त के गांव गांव में आर्य समाज का प्रचार हो जाना और सब जाटों का आर्य समाजी बन जाना भी पं० लखपतराय जी की कोशिश से हुआ है, इसका महत्व इस बात से लग सकता है, कि जहां पंजाब के दूसरे जिलों में देहातों के हिन्दुओं में आर्य समाज का प्रचार न हुआ, और वह आहिस्ता आहिस्ता सब सिख बन कर अब पंजाबी सूबे की समस्या खड़ी कर रहे हैं। वहां पं० लखपतराय और उनके दूसरे साथी अगर हरयाना प्रान्त के देहात में प्रचार न करते तो आज हरियाना प्रान्त के जाट भी जट सिख बने होते। सारे देश में केवल हरियाणा प्रान्त ही ऐसा है जहाँ हर गांव में आर्य समाज का प्रचार है। और यह सिर्फ पं० लखपतराय और उनके सहायक सज्जनों के वैदिक धर्म के प्रचार की लग्न का उज्जवल उदाहरण पेश करता है। आजकल पं० लखपतराय जी के सुपुत्र पं० नानक चन्द जी वैरिस्टर चण्डीगढ़ आर्य समाज के सतम्भ हैं।

४—जालन्धर के श्री देवराज जी ने महात्मा मुन्शी राम जी के सहयोग से जालन्धर कन्या महाविद्यालय स्थापित करके देश में स्त्री शिक्षा के प्रचार का कार्य आरम्भ किया था। जिसकी देखा देखी अनेक कन्या पाठशालाएं बन गगं और यह देवराज जी का विद्यालय देश में सब से शिरोमणि माना जाता है।

५—लाहौर के डा० चिरंजीव भारद्वाज ने मारीशस जज़ीरा में जाकर वैदिक धर्म का प्रचार किया और अब वहां करीबन सारे जज़ीरा की हिन्दू आबादी वदिक धर्मी बनी हुई है।

६—मास्टर आत्मा राम जी अमृतसरी तहसीलदार के पद को ठोकर लगा कर आर्य समाज की सेवा में जट गये थे। पं० लेख-

राय जी ने जो सामग्री महर्षि जीवन की इकट्ठी की थी वह उस में से केवल ५०० पृष्ठ ही लिख पाये थे कि जनूनी मुसलतान के हाथों बलिदान हो गए तब यह काम मास्टर जी को सौंपा गया जिसको उन्होंने बड़ी लगन से पूरा किया तभी महर्षि जी का सब से पहला जीवन चरित्र सभा की ओर से छापा गया। उसके बाद जब महाराजा बड़ौदा ने आर्य प्रतिनिधि सभा से एक विशेष कार्यकर्ता की माँग की ताकि उनके राज्य में सुधार कार्य कर सके तब सभा की नज़र मास्टर जी पर पड़ी और उनको वहाँ भेजा गया। वहां जा कर उन्होंने इतनी लगन से काम किया कि महाराजा साहब ने उन को राव बहादुर की उपाधि प्रदान की वहां उन्होंने अपनी किसम का निराला कन्या महाविद्यालय खोला जिस में कन्याओं को शस्त्र चलाना भी सिखलाया जाता है। मास्टर जी सारी आयु आर्य समाज का काम करते रहे। अब उनके सुपुत्र श्री अनन्दप्रिय जो भी मास्टर जी के पद चिन्हों पर चल कर समाज सेवा कर रहे हैं।

७—आचार्य राम देव जी बड़े स्वाध्याय शील थे व्याख्यान देते तो प्रमाणों का ढेर लगा देते थे। बीसियों पुस्तकें खोल कर सुनाते तो श्रोतागन मुग्ध हो जाते। आप पक्के देश भक्त थे कई साल तक गुरूकुल कांगड़ी के मुख्य अधिष्ठाता रहे कन्या गुरूकुल डेरादून इनके परिश्रम का परिणाग है। आर्य समाज के लिए प्रायः उन्होंने जीवन दान दे रखा था।

८—अजमेर का शारदा परिवार भी आर्य समाजी परिवार है। इस परिवार के सभी मैंमबरों ने राजपूताने में ही नहीं अर्थात् सारे देश में आर्य समाज के प्रचार में प्रचूर सहायता दी है। श्री हर बिलास जी शारदा के परिश्रम से छोटी उमर के विवाह की मनाही का कानून बनाया गया जिसको शारदा एक्ट कहते हैं। राम विलास जी शारदा चांद करण जो शारदा भी तन मन धन से वैदिक धर्म प्रचार में अग्ररसर रहे हैं।

९—श्री पं० ठाकुर दत्त जी अमृत धारा वाले भी आर्य समाज के कार्यों में विशेष भाग लेते रहे। अब उनके नाम से एक टरस्ट

बना हुआ है जो वैदिक साहित्य के प्रचार और गरीबों की सहायता का सराहनीय काम कर रहा है ।

१०—श्री बावा पुरदमन सिंह टरस्ट भी बड़ा सराहनीय काम कर रहा है । बाहा गुरमुख सिंह जी ने एक दफा वेद प्रचार के लिए आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा लाहौर को एक लाख रुपय इक मुठ दान किया था । डेरादून में टरस्ट की तरफ से वैदिक साधन आश्रम बना हुआ है । जिससे वैदिक धर्म का प्रचार विशेष रूप से सम्पन्न हो रहा है ।

११. श्री नानु जी भाई कालीदास मेहता ने डेढ़ लाख रुपये टंकारा टरस्ट के लीये दान किया है ।

१२. श्री प्रकाश वीर जी शास्त्री महर्षि दयानन्द जी के परम भक्त है । यह अपने शुद्ध चरित्र, धार्मिक आचरण विद्या और वाक शक्ति के बल पर कांग्रेस और जन संघ दोनों का विरोध होते हुए भी लोक सभा का चुनाव जीतकर लोक सभा के सदस्य बने हैं और देश हित में हर प्रकार की बातें सभा में कह कर सरकार का ध्यान दिलाते हैं ।

महर्षि दयानन्द जी की फोटो लोक सभा में लगवाना इन का ही काम है, ईसाई और मुसलमानों की देश विरुद्ध सब बातों पर कड़ी निगाह रखते हैं और भारत सरकार को चेतावनी देते रहते हैं भ्रष्टाचार के खिलाफ़ पूरा ज़ोरदार आन्दोलन उठाते हैं, पंजाब के श्री प्रताप सिंह कैरो को गद्दी से उतारने में उनका विशेष भाग है, दयानन्द का एक ही वीर लोक सभा में शेर की भांति गरजना करता है यदि दयानन्द के वीर सैनिक लोक सभा के बहुत सारे मेम्बर बन जायें तो देश की काया चंद दिनों में ही पलट जाये ।

१३. श्री दीवान चन्द जी एम: ए. जिन की कृपा से महर्षि जी की ऋग्वेदादी भाष्य भूमिका आगरा यूनीवर्सिटी में एम. ए. के कोर्स में लगाई थी, प्रसिद्ध फ़िलास्फ़र हैं सारी आयु आर्य समाज

की सेवा करते रहे हैं। अब बुढ़ापे में भी मोरवक प्रचार के साथ-साथ उत्तम साहित्य का निर्माण भी करते रहते हैं जहां आप को वाणी में रस है वहां आपकी लेखनी भी बड़ी रोचक और मनोरंजक होती है।

१३५. सत्याग्रह सूची

१. सन् १९१८ धौलपुर रियासत में आर्य समाज मन्दिर का एक हिस्सा गिरा कर राज्य की ओर से आम आदमियों के लिए टट्टियां बना दीं गईं। वहां के आर्य समाज के अधिकारियों की प्रार्थनाओं को राज्य सरकार ने न माना। जब यह प्रयत्न निष्फल हुआ तब आर्य सन्यासी स्वामी श्रद्धानन्द जी ने सत्याग्रह की घोषणा कर दी। जगह जगह से आर्य समाजों के जत्थे धौलपुर जाने शुरू हो गए। तब रियासती सरकार की अकड़ खतम हो गई और फिर रियासत ने अपने खर्चे से आर्य समाज मन्दिर का वह हिस्सा जो गिराया था बनवा दिया।

२. रियासत हैदराबाद में हिन्दुओं और आर्यों पर कई तरह की धार्मिक पाबन्दिया थीं। कोई नया मन्दिर बनाना तो एक तरफ़ पुराने मन्दिर की मुरम्मत भी नहीं करा सकता था। ओम् का झंडा नहीं लहरा सकता था। हवन नहीं कर सकता था। अपनी धार्मिक शिक्षा के लिए कोई स्कूल पाठशाला स्थापित नहीं कर सकता था। किसी मुसलमान को शुद्ध नहीं किया जा सकता था। यह और इसी किसम के कई प्रकार के प्रतिबन्धों को दूर कराने के लिए जब समस्त उपाय असफल हुए तो रियासत हैदराबाद में एक महान् आर्य सम्मेलन करने की योजना बनाई गई परन्तु वहाँ सम्मेलन करने की आज्ञा न मिलो तब २५ से २९ दिसम्बर १९३८ को शोलापुर में आर्य सम्मेलन विनायक श्री माधवराव अणे जी के सभापतित्व में सम्पन्न हुआ और २७ दिसम्बर १९३८ को सत्याग्रह करने का

प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकार हो गया उस समय के हिन्दू महासभा के प्रधान वीर सावरकर ने सत्याग्रह में सहायता करने की घोषणा कर दी । और महात्मा नारायण स्वामी जी प्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा पहले डिक्टेटर नीयत किये गये। महात्मा नारायण स्वामी जी ने रियासत हैदराबाद को २५ दिन का अल्टीमेटम दे दिया कि अगर हिन्दुओं और आर्यों पर रियासत में लगाये सब प्रतिबन्ध न हटाये गये तो सत्याग्रह शुरू कर दिया जायेगा वीर सावरकर ने भी रियासत हैदराबाद को नोटिस दे दिया कि हिन्दुओं की मांगें पूरी करो नहीं तो सत्याग्रह किया जायेगा। रियासत ने अल्टीमेटम पहुंचने पर पहले से भी ज्यादा सख्तियां आरम्भ कर दीं। अतः २२ जनवरी १९३९ का दिन सत्याग्रह दिवस मनाने की घोषणा की गई। और समस्त भारत में यह दिवस निहायत धूम धाम से मनाया गया। परन्तु १९. १. ३९ तक रियासत हैदराबाद में ८०० सत्याग्रही गिरफ्तार हो चुके थे। ३१—१—३९ को पहले सर्वाधिकारी महात्मा नारायण स्वामी जी ने ४० सत्याग्रहियों के साथ सत्याग्रह कर श्री गणेश कर दिया बस फिर क्या था सत्याग्रहियों के झुण्ड के झुण्ड सारे भारत वर्ष से पहुंचने शुरू हो गए। और ८. ८. ३९ को नजाम सरकार ने हथियार डाल दिये और आर्य समाज की सब मांगें स्वीकार कर लीं। उस वक्त तक १३००० तेरह हजार सत्याग्रही नजाम की जेलों में पहुंच चुके थे। ९०० सौ आर्य वीर सत्याग्रह के केन्द्रों में इकट्ठे हुए थे। स्पेशल गाड़ियां सत्याग्रहियों को हैदराबाद की ओर ले जा रही थीं और हजारों आर्य वीर सत्याग्रह में भाग लेने को तैयार थे। आठ महीने तक सत्याग्रह चलता रहा। इस सत्याग्रह पर आर्य समाज का ८--९ लाख रुपया खर्च हुआ। तेरह हजार सत्याग्रही बन्दी हुए और तीस सत्याग्रही बलिदान हो गये। परन्तु आर्य समाज की इस शानदार विजय का सर्टिफिकेट भारत के प्रसिद्ध लोह पुरुष सरदार पटेल ने उस वक्त

दिया था जब कि नज़ाम के ख़िलाफ़ पोलीस एक्शन किया गया। और दो दिन में ही नज़ाम सरकार ने हथियार डाल दिये थे। उस समय सरदार पटेल ने मुक्त कण्ठ से कहा था कि यदि आर्य समाज ने सत्याग्रह करके नज़ाम के होश ठिकाने न लगाये होते तो नज़ाम इतनी जल्दी हथियार न डाल देता। इस से बढ़ कर आर्य समाज की शानदार विजय का और क्या सबूत हो सकता है। परन्तु खेद की बात है कि श्री राजगोपालाचार्य जो इन दिनों मद्रास की कांग्रेस मनिस्ट्री के मुख्य मन्त्री थे ने मद्रास प्रान्त में आर्य समाज के उत्सवों पर दफा १४४ लगा दी थी। यही राजगोपाल साहब अब हिन्दी के ख़िलाफ़ लठ लिए फिरते हैं। और कह रहे हैं कि काश्मीर पाकिस्तान को दे दो।

3. सन् १९४६ सिन्ध प्रान्त में मुसलमलीग की मिनिस्ट्री ने सत्यार्थ प्रकाश के पढ़ने सुनने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इस के ख़िलाफ़ महाशय खुशहाल चन्द जी खुरसन्द (महात्मा आनन्द जी) ने जो उस समय आर्य प्रादेशिक सभा के प्रधान थे, और महात्मा नारायण स्वामी प्रधान सार्वदेशिक सभा ने सत्याग्रह किया। और सिन्ध सरकार को यह प्रतिबन्ध वापस लेना पड़ा।

४. हिन्दी सत्याग्रह—

सन् १९५७ में पंजाब में हिन्दी सत्याग्रह शुरू हुआ जो करीबन ६—७ मास चलता रहा, हजारों आर्य वीर जेलों में गये और इस सत्याग्रह में फ़िरोजपुर जेल में सैकड़ों आर्य वीरों को लाठियों से ज़ख्मी किया गया। और एक वीर सुमेर सिंह तो जेल में ही शहीद हो गया। करीबन आठ हजार सत्याग्रहियों ने इस में भाग लिया।

१३७. पांच महा सम्मेलन

यूं तो विभाजन से पहले लाहौर आर्य समाजों के वार्षिको-

उत्सव और गुरुकुल कांगड़ी के वार्षिकोत्सव एक बड़े मेले और महासम्मेलन का रूप धारण करते थे। परन्तु कुछ महासम्मेलन भी किये गये। जो अत्यन्त महत्वपूर्ण थे। जिस से सारे देश में आर्य समाज की धाक बैठ गई।

१. सबसे पहले सन् १९२४ में मथरा में दयानन्द शताब्दी का महा सम्मेलन हुआ। जिससे ढाई लाख के करीब स्त्री पुरुष इकट्ठे हुए। सम्मेलन का प्रबन्ध अति उत्तम था। किसी किसम की कोई गड़बड़ इस मेले में न हुई। प्रत्येक वस्तु स्वच्छ और पवित्र उचित दामों पर मिलती थी। जब इस सम्मेलन के सम्बन्ध में बहुय बड़ा जलूस निकाला गया तो सर जेम्ज़ मिस्टन लेफ्टीनेंट गवर्नर यू. पी. ख़ुद देखने आए थे। कार्य कर्ताओं के प्रबन्ध को देखकर अति प्रसन्न हुए सम्मेलन के यात्री रात को खुली चीज़ें छोड़ कर खुले मैदान में सो जाते थे। परन्तु क्या मजाल ज़ो किसी की चोरी हुई हो। सरकार की ओर से पोलीस की नफ़री मौजूद रहती थो, फिर भी सारा प्रबन्ध आर्य समाज़ का अपना था। इस सम्मेलन को सफल बनाने में पूज्य स्वामी श्रद्धानन्द जी, महात्मा हंसराज जी और महात्मा नारायण स्वामी जी का हाथ था। बहुत से राजे महाराजे भी इसमें सम्मिलित हुए थे।

२. मालाबार विद्रोह में आर्य समाज की ओर से बलात्कार मुसलमान बनाये गये। हिन्दुओं की शुद्धि और लाखों की तादाद में मलकाना शुद्धि से मुसलमान घबरा उठे। और उसके साथ ईसाईयों ने भी सुर मिलाकर सरकार से सत्यार्थ प्रकाश को ज़बती की मांग की और इसके बाद २३ दिसम्बर १९२६ को एक जनूनी मुसलमान ने बीमार पड़े स्वामी श्रद्धानन्द पर गोलियां चलाकर उनका बलिदान कर दिया, तो सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने एक महा सम्मेलन करने की योजना बनाई और महात्मा हंसराज जी को इस सम्मेलन का प्रधान बनाया गया। जो ३ नवम्बर १९२७ को

महात्मा जी अन्य प्रतिनिधियों के साथ दिल्ली स्टेशन पर पहुंचे तो उनका अत्यन्त शानदार स्वागत हुआ, सरकार ने जलूस निकालने की मनाही दी थी। जोश और उत्साह का ठाठें मारता हुआ समुन्द्र नजर आता था। श्री पं० मदन मोहन मालवीय, श्री जमना लाल बजाज, खज़ान्ची आल ईण्डिया कांग्रेस कमेटी, पंजाब केसरी लाला लाजपतराय जी, भाई परमानन्द जी, लाला दीवान चन्द जी, एम. ए, आचार्य रामदेव जी, श्री गणेश शंकर विद्यार्थी, राय बहादुर हरबिलास शारदा, मेरठ के पं० घासीराम जी, आदि आदि महानुभाव उपस्थित थे, ५० हज़ार की हाज़री से पंडाल खचाखच भरा हुआ था, महात्मा हंसराज जी ने जो एडरेस इस महासम्मेलन के मंच से अध्यक्ष के रूप में पढ़ा वह अत्यन्त विद्वत्ता पूर्ण निर्भीकता का प्रदर्शक और आर्य समाज का वास्तविक स्वरूप दिखलाने वाला था, जिससे सरकार अंगरेज़ी और ईसाई मुसलमान विरोधियों के दिमाग़ साफ़ हो गये।

३. तीसरा महासम्मेलन

सन् १९३३ में महर्षि दयानन्द की निर्वाण अर्ध शताब्दी के अवसर पर अजमेर में हुआ। इसके अधिपति राजाधिराज उमेद सिंह जी शाहपुरा थे। यह सम्मलन भी बड़ा महत्व पूर्ण था, ढाई तीन लाख यात्री इसमें सम्मिलित हुए और इस महा सम्मेलन का जलूस भी निराली शान का था। जलूस जलसा के स्थान से आरम्भ हो कर सारे अजमेर के बाज़ारों में घूमता हुआ भिनाये की कोठी पर जहां महर्षि ने इस भौतिक देह को त्यागा था करीबन दस घण्टे में जाकर खतम हुआ और अजमेर नगर निवासी जहां चिश्ती साहब की कबर पर हर वर्ष उर्से होते हैं। आर्य समाज के इस महत्वपूर्ण सम्मेलन और जलूस को देख कर दंग रह गये।

४. आर्य महासम्मेलन

२५ दिसम्बर से २६ दिसम्बर १६३८ को शोलापुर में श्री अने की अध्यक्षता में हुआ। जिसमें हैदराबाद रियासत में हिन्दुओं और आर्य समाजियों पर हो रहे अन्याय के ख़िलाफ़ बड़ा जोश खरोश देखने में आया, हैदराबाद रियासत में अपने धार्मिक अधिकारियों की रक्षा के लिए सत्याग्रह करने का प्रस्ताव सर्व-सम्मति से स्वीकार किया गया। यह सम्मेलन महात्मा नारायण स्वामी जी की देख रेख में हुआ था। क्योंकि स्वामी श्रद्धानन्द जी का बलिदान हो चुका था और महात्मा जी भी स्वर्गवास हो चुके थे। परन्तु यह जंगी सम्मेलन अति उत्तम रीति से सम्पन्न हुआ, इसमें भी हज़ारों को संख्या में प्रतिनिधि सम्मिलित थ। इस निश्चय के अनुसार फिर हैदराबाद का सत्याग्रह चला, जिसका वर्णन पृथक् दिया गया है।

५. पांचवां आर्य महासम्मेलन

सन् १६६० में पाँचवां महा महासम्मेलन आर्य प्रतिनिधि सभा यू. पी. की ओर से मथुरा में दयानन्द दीक्षा शताब्दी के रूप में सम्पन्न हुआ जिसके अध्यक्ष राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद बने थे। लाखों स्त्री पुरुषों की हाज़री इस सम्मेलन में थी जलूस की निराली शान थी। और राष्ट्रपति जी ने अपने सभापति के भाषण में मुक्त कंठ से गुरुकुल प्रणाली की, भूरि भूरि प्रशंसा की। और अन्त में स्पष्ट शब्दों में कहा कि महर्षि दयानन्द जी महाराज के शुरू किये हुए कार्य को महात्मा गांधी जी ने सम्पूर्ण किया था।

और भी छोटे बड़े सम्मेलन तो वक्त वक्त पर होते ही रहे पर आर्य समाज के इतिहास में यह पांच महासम्मेलन बड़े महत्व का स्थान रखते हैं। इसलिए इनका दिग्दर्शन मात्र कराया गया है।

१३८ अंग्रेज़ों का षड्यन्त्र और उसका निराकरण

जब भारत देश में महात्मा गांधी जी ने सत्याग्रह आन्दोलन शुरू किये तो उन आन्दोलनों में बहुधा हिन्दु ही भाग लेते रहे, और इस लिए अंग्रेज हिन्दुओं से बहुत चिढ़ गये थे। अंग्रेज़ों ने यह सिद्ध करने के लिये कि हिन्दुओं के अन्दर बहुत सी कुरीतियां और कुप्रथाएं हैं। जिससे वह अभी स्वराज के योग्य नहीं हैं। अमरीका की एक कवारो लड़की मिस म्यो को अपने खर्चे पर भारत मंगवाया इसको अपने खर्चे पर सारे भारत का दौरा करवा कर एक पुस्तक लिखवाई जिसका नाम मदर इण्डिया था। इस पुस्तक को गवर्नमैंट ने अपने खर्चे पर छपवा कर अमरीका आदि सब देशों में बांटा। पारलीयामैंन्ट के हर मैम्बर को इस पुस्तक की एक एक कापी दी गई ताकि वह भारत की स्वतन्त्रता का विरोध करने में तत्पर रहें। इस पुस्तक में मिस म्यो ने हिन्दुओं के सम्बन्ध में जी भर कर ज़हर उगला है और आप यह जानकर हैरान होंगे कि इस पुस्तक में मुसलमानों के विषय में एक शब्द भी नहीं लिखा गया। जिससे अंग्रेज़ों की कूट नीति का दिग्दर्शन होता है कि वह किस तरह हिन्दू मुसलमानों में विरोध उत्पन्न करके अपना उल्लू सीधा करते थे। इस पुस्तक के विषय में लन्दन के अखबार दी न्यू स्टेट मैन के १६-७-२७ के पर्चा में एक लम्बा चौड़ा रीवीयू प्रकाशित हुआ था, वह सारा रीवीयू न लिखकर सिर्फ़ उसके कुछ आखिरी शब्द लिखता हूं जिससे इस पुस्तक के लिखवाने का अंग्रेज़ों का षड्यन्त्र स्पष्ट होता है वह शब्द यूं हैं—

She makes the claim for swaraj seems nonsense and the will to grant it almost a crime. If the

language of this review seems violent. it is not, we are certain more violent than the feelings that are likely to be aroused in the mind of every normal western reader of Miss Maya's book.

भावार्थ—मिस म्यू ठीक कहती है कि भारतीयों की स्वराज्य की माँग वाहयात है और इसको मंजूर करना पाप है। आगे चल कर अखबार लिखता है कि हमारी राए के मुतलिक कोई कहे कि यह उत्तेजना पूर्ण है तो यह ठीक नहीं, मिस म्यो की पुस्तक जो भी पश्चिमी पढ़ेगा वह इसी निष्कर्ष पर पहुंचेगा। देखा आपने अंग्रेजों ने भारतीयों की स्वराज्य की मांग को वाहयात घोषित करने के लिए यह सब प्रयत्न किया था।

और अंग्रेजों के इस षड्यन्त्र को तार तार करने के लिए भी समस्त भारत में महर्षि दयानन्द और उसकी शिक्षा के अतिरिक्त कोई ढाल न बन सका, अतः इसके जवाब में जो एक ही किताब भारत भर में छपाई गई, वह मिस्टर सी. एस. रंगा आयर M L.A मद्रास की तर्फ से फ़ादर इण्डिया के नाम से छपी जिसके पृष्ठ ११५-११६ पर वह लिखते हैं :—

Dayanand Sarawati was the Martin Luther of India. His teachings which millions of his follwers accept and observe in their lives, rejected all pouranic accretions and asked the peopel to go back to the religion of vedas. The Arya Smajists recognise no caste or creed. They live amongst the depressed classes and work for their improvement both moral and material. They have got rid of the curse of early mairiage They educate the girls. Who have given up pardah in their thousand.

Their schools Colleges are not supported by Government but by public The Smaj send out missionaries in their hundreds. Bold spirited, splendid workers they go among the p eople preaching and teaching in open day light the need of reform and reganeration on vedic lines. Their social reform propaganda was out no longer viewed with hostility by a Government which read in every social upheavel a political danger. Dayanad Saraswati brushed aside all un-meaning supsrstitions. The Arya Smajists nor worship Idol nor wear caste marks. They are true followers of Vedas, whose greatness and glory have been brought to light and life, as a result of mission ary propaagndists both Christians and muslims have received a set back. The American Tourist (Miss Mayo) could not be unaware of the work of Arya Smajists. Yet she does not notice their great work and increasing popularity. She quotes as her authority some hindu books which are special pleadings of interested pandits of thousand years ago and omits to quote the authoritative texts of an earlier period and also misses to quote Satyarath Parkash the authority of millions today.

भावार्थ निम्न प्रकार है :—दयानन्द सरस्वती भारत का मार्टन लथर था। इसके हजारों लाखों शिष्य पुरानों की घिनावनी कथाओं को नहीं मानते वह सब वैदिक धर्म में आवाहन करते हैं। आर्य समाजी जन्म से जात-पात नहीं मानते—छोटी आयु के विवाह

का निषेध करते हैं। छूत-छात के विरुद्ध उन्हों ने बड़ा आन्दोलन उठाया है। वह लड़कियों को तालीम देते। पर्दे की मुखालफ़त करते हैं। उनके स्कूल और कालज गर्वनमैंट से सहायता न लेकर जनता जनार्दन के सहारे चलाये जा रहे हैं। वह रोज़ रोशन में हर किसम की कुरीतियों और कुप्रथाओं का खण्डन करते हैं। आर्य समाजो मूर्ति पूजा नहीं करते न ही किसी किसम के भ्रम जाल को मानते हैं। शायद मिस मेयो ने आर्य समाजियों के इस काम की ओर ध्यान ही नहीं दिया। मिस म्यू ने पुराणों और दूसरे स्वार्थी लोगों के लिखे हुए पुस्तकों का हवाला दिया। परन्तु सत्यार्थ प्रकाश जो इस समय का शास्त्र है। जिस को लाखों करोड़ों लोग अपना रहे हैं उसको नहीं देख सकी। यह तो हुआ मिस म्यू की किताब के जवाब में एक भारतीय की लिखी हुई किताब का उद्धर्ण। जो अंग्रेज़ों के षड्यन्त्र से रची हुई किताब का पुरजोर खण्डन करके भारतीयों को स्वराज्य का अधिकारी सिद्ध करती है।

१३९. जादू वह जो सिर चढ़ कर बोले

आप यह जान कर हैरान होंगे, और साथ ही प्रसन्न होकर गौरव से अपना सिर भी ऊंचा कर सकेंगे कि जिस मिस म्यू को सारे भारत वर्ष में हिन्दुओं के अन्दर बुराइयाँ ही बुराईयां नज़र आई। वही मिस म्यू आर्य समाज के काम से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकी। अतः उस ने अपनी उसी पुस्तक मदर इण्डिया में लिखा है :—

Perhaps the most influential person I have met in the Punjab was a lady who has been now for many years Headmistress of an Arya Smaj Girls school. The Arya smaj schools aim at fostering Nationalisim. They are open to criticisn from some

point of view, but even the critics recogniee that they are genuine education institutions, very different from the political mushooms, which non-co-operation called into existence The Aryas have girls schools scattered all over Punjab and this school supplies the teachers.'

भावार्थ—पंजाब में मैं एक अत्यन्त ही प्रभावशाली देवी से मिली हूं। जो बहुत वर्षों से आर्य समाज कन्या महाविद्यालय की मुख्य अध्यापिका है। आर्य समाज के स्कूल भारतीयता का प्रचार करते हैं। यह निहायत अच्छे विद्यालय हैं, और नान कारपोरेशन वालों की तर्फ से चलाये जाने वाले विद्यालयों के बिल्कुल उल्ट हैं। आर्य समाज के कन्याविद्यालय सारे पंजाब भर में फैले हुए हैं और यह विद्यालय अध्यापिकाएं तैयार करता है (यह बात कन्या महा विद्यालय जालन्धर और उसकी मुख्याध्यापिका श्रीमती लज्यावती, जी के सम्बन्ध में प्रतीत होती है)।

१४०. कश्मीर की समस्या

कश्मीर की समस्या जो इस समय तक हल होने में नहीं आ रही, यह कोई समस्या न होती यदि महर्षि दयानन्द जी महाराज को कश्मीर जाने दिया जाता। परन्तु कशमीरी पंडितों ने अपने पांव कुल्हाड़ा चला कर महर्षि को कशमीर के महाराजा रणबीर सिंह जी की अत्यन्त इच्छा होने के बावजूद भी वहां पाँव न रखने दिया।

१. कशमीर नरेश महाराजा रणवीर सिंह जी स्वयं महर्षि जी को मिलने के बड़े इच्छुक थे और इसी अभिप्राय से उन्होंने देहली दरबार के मौका पर अपने मन्त्री नीलाम्बर बाबू और दीवान अनन्तराम को स्वामी जी की सेवामें भेजा था। इन दोनों महानुभावों

ने स्वामी जी से कशमीर नरेश की इच्छा प्रकट की। स्वामी जी ने महाराजा से मिलना स्वीकार कर लिया, परन्तु पंडितों के सिखलाने बहकाने पर महाराजा स्वामी जी से न मिल सके। पंडित गणेश शास्त्री ने जो जम्मू में धर्म शास्त्र के जज थे, पंडित लेखराम के सामने सन् १८८७ में यह स्वीकार किया था, कि महाराजा रणबीर सिंह जी को स्वामी जी को मिलने की उत्कृष्ट इच्छा थी, परन्तु हम लोगों ने नहीं मिलने दिया। जब स्वमी जी लाहौर आए तो उस समय भी महाराजा साहब ने स्वामी जी को श्री नगर बुलाने का विचार प्रगट किया था, तब भी पंडितों ने यह कह कर कि यदि आप दयानन्द को बुलाना चाहते हैं तो पहले देव मन्दिरों को गिरा दीजिए और इस तरह स्वामी जी को निमन्त्रित करने से रोक दिया था।

३. फिर महाराजा रणवीर सिंह ने स्वामी जी से अनुमति मांगी कि मुसलमान हो गये हिन्दुओं को शुद्ध करने की शास्त्र में आज्ञा है या नहीं। इस पर स्वामी जी ने स्पष्ट लिख दिया कि हिन्दुओं से मुसलमान होने वालों की क्या कथा शास्त्रों में तो हजारों सालों से बिछड़े भाईयों को वापस इस विशाल धर्म में ले लेने को भी आज्ञा है। इस पर महाराजा साहब ने अपने पंडितों से विचार प्रकट किया कि लाखों हिन्दु विशेष तौर पर ब्राह्मण लोग जो ज़बरदस्ती या लालच से मुसलमान बनाए गए हैं उनको शुद्ध कर लेना चाहिए। तब भी पंडितों ने महाराजा साहब से कहा कि यदि आप इन को शुद्ध करने की योजना बनायेंगे, तो हम लोग आप के महल के सामने भूक हड़ताल करके अपने प्राण त्याग देंगे। परन्तु महर्षि को जम्मू कशमीर जाने से रोकने और शुद्धि न करने के परिणाम स्वरूप अब कशमीर की यह समस्या कितनी जटिल हो गई है कि अर्बों रुपया खर्च करने और हजारों जवानों की बलि देने पर भी यह हल नहीं हो रही। यदि महर्षि के चरण कमल

कशमीर में पड़ जाते और महर्षि की आज्ञानुसार शुद्धि का चक्कर चलाया जाता तो अब कशमीर को कोई समस्या ही न रहती। पण्डितों के बहकाने पर महाराजा कशमीर ने रियासत में आर्य समाज का प्रचार और आर्य समाज की स्थापना की मनाही भी कर रखी थी। जो कि सन् १८९२ में एक विचित्र घटना से यह मनाही हटाई गई।

३. जब इसाईयों ने देखा कि कशमीर राज्य में तो आर्य समाज का प्रचार ही नहीं हो सकता। तो उन्होने महाराजा को चैलेंज दिया कि वह अपने पण्डितों से इन का शास्त्रार्थ करावे, क्योंकि ईसाई पादरी जानते थे, कि महाराजा कशमीर बड़े धार्मिक विचारों के पुरुष हैं अगर वह ईसाई बन जावें, तो सारी रियासत में ईसाईयत का प्रचार बहुत आसानी से हो जावेगा। अतः शास्त्रार्थ का आयोजन हुआ। और नीयत तिथि और समय पर महाराजा के पण्डितों और ईसाई पादरियों में शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। महाराजा स्वयं इस शास्त्रार्थ में उपस्थित थे। ईसाईयों ने बड़े बड़े पादरी इस शास्त्रार्थ के लिए मंगवाये थे। क्यों कि उन को पूरा निश्चय था कि शास्त्रार्थ में इनकी विजय हो जाने से महाराजा साहब अवश्य ईसाई बन जावेंगे। हज़ारों की हाज़री में शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। ईसाई पादरियों के प्रश्नों का उत्तर देने का महाराजा के किसी पंडित में साहस न था और पंडित विचारे एक दूसरे का मुंह देख रहे थे, और महाराजा साहब मन ही मन में अपने पंडितों की शिकास्त को देखकर घबरा रहे थे, कि देव योग से इस शास्त्रार्थ स्थल में आर्य समाज के महोपदेशक पंडित गणपति शर्मा जो उपस्थित थे। जब उन्होंने देखा कि ईसाईयों का पलड़ा भारी हो रहा है और पंडित निरुत्तर होते चले जा रहे हैं तो वह अपनी जगह से उठ खड़े हुए। बिल्कुल साधारण वेश में एक दुबले पतले आदमी को शास्त्रार्थ स्थल में उठता देख कर सब चकित रह गये।

पंडित गणपति शर्मा ने महाराजा साहब को सम्बोधन करके कहा— यदि मुझ को आज्ञा हो तो मैं आपके पंडितों का पक्ष लेकर पादरी साहबान से शास्त्रार्थ करुं । पंडित जो शास्त्रार्थ के मैदान से भागने वाले ही थे, और महाराजा जो मन में पंडितों की शिकस्त से घबरा रहे थे । उन सब के मन में धैर्य बंधा, और उन्होंने पंडित गणपति शर्मा को शास्त्रार्थ करने की अनुमति दे दी ।

पंडित गणपति शर्मा का शास्त्रार्थ स्थल में खड़ा होना था कि शास्त्रार्थ का पलड़ा ही पलट गया । जब पंडित जी ने पादरियों के प्रश्नों का उत्तर देने के साथ साथ, ईसाई मत पर प्रश्न किये । तो पादरी घबरा गये । क्योंकि अब पादरियों के घबराने की बारी थी, बस फिर क्या था चन्द ही मिनटों में पादरी साहब निरुत्तर होकर शास्त्रार्थ स्थल छोड़ गये । और महाराजा को जय जयकार होने लग गई । शास्त्रार्थ खतम हो गया सब अपने अपने स्थान पर चले गये । पंडित गणपति शर्मा जो जम्मू के रघुनाथ मंदिर में जा कर फ़र्श पर लेट गये । महल में पहुंच कर महाराजा साहब को खयाल आया कि उस पंडित को जिसने हमारी पराजय को जय में परिवतित कर दिया, कुछ पारितोषिक देना चाहिए । अतः उन्होंने अपने पंडितों को पंडित गणपति शर्मा को बुलाने भेजा । और वह रघुनाथ मंदिर से पंडित गणपति शर्मा को बुला कर राजमहल में ले गये । महाराजा साहब ने बड़े आदर सम्मान से उनको बिठाया और एक हज़ार रुपया उनकी भेंट किया । परन्तु पण्डित गणपति जो नें महाराजा साहब से कहा कि यदि आप मुझे पारितोषक देना ही चाहते हैं, तो यह चोजें मुझे नहीं चाहिए । आप अपनी रियासत में आय समाज स्थापन करने की घोषणा कर देवें । फिर आपको न कोई ईसाई पादरी और न ही मुसलमान मौलवी शास्त्रार्थ के लिए चैलेंज करेगा । सो महाराजा साहब ने स्वीकार कर लिया और तब से ही किसो विधर्मी को शास्त्रार्थ का चैलेंज करने की हिम्मत नहीं

हुई। धन्य थे पंडित गणपति शर्मा जो अपने लिए कुछ न लेकर धर्म और आर्य जाति हित का पुरस्कार स्वीकार कर सके।

और

अब आप यह सुनकर भी हर्षित होंगे कि विभाजन के बाद रियासत जम्मू और काश्मीर को भारत के साथ मिलाने का काम भी महर्षि दयानन्द जी के एक श्रद्धालु श्री मेहरचन्द जी महाजन रिटायर्ड चीफ जज सुप्रीम कोर्ट जो इस वक्त महाराज हरि सिंह जी, कशमीर नरेश के प्रधान मन्त्री थे और जिनको महाराजा साहब बहुत इज्ज़त करते थे, की प्रेरणा से हुआ। और महाराजा साहब ने भारत के साथ रियासत का सम्बन्ध करने वाले पत्रों पर हस्ताक्षर किये थे।

१४१. पांच हजार वर्ष से सोने वाले जागो

बाल्मीकि रामायण में एक कथा आती है कि जब नल नील इंजीनियर लंका पर चढ़ाई करने के लिए समुद्र पर पुल बान्ध रहे थे, तो एक गुलहरी भी अपने छोटे छोटे पंजों में रेत के कुछ कण उठा उठा कर पुल बनाने वालों के पास पहुंचा रही थी तब किसी ने गिलहरी से पूछा कि तुम यह क्या कर रही हो। तुम्हारे इस प्रयत्न से पुल बनाने में क्या सहायता मिल रही है। तब उसने जवाब दिया, वह हर एक मनुष्य को सर्वदा स्मरण रखने योग्य है। "गिलहरी ने कहा कि धर्म के काम में जितनी भी सहायता जिससे बन सके, उतना सहायता करने से कभी पीछे न हटे। यह न समझे कि मेरी थोड़ी सी सहायता से क्या होगा। परन्तु अपनी शक्ति के अनुसार धर्म के कार्यों में योग देना ही धर्म है।"

और

महर्षि दयानन्द जी महाराज जब मुरादाबाद प्रचार कर रहे थे तो उनके सत्संग में एक ऐसा निर्धन आदमी अत्यन्त श्रद्धा

से आया करता था। जो रात को चौकीदारी की नौकरी करके अपना निर्वाह करता था। महर्षि जी के सत्संग से वह इतना प्रभावित हुआ कि रात को अपने चौकीदारी का धर्म निभाते हुए वह यह शब्द उच्चारण किया करता था, "पांच हजार वर्ष के सोने वालो जागो" जब कोई इसका कारण पूछता तो वह महर्षि के अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश पढ़ने की प्रेरणा करता था, और अपनी सारी आयु में उसने कितने ही मनुष्यों को सत्यार्थ प्रकाश पढ़ा कर वैदिक धर्मी बना दिया था। रामायण की गिलहरी की भान्ति इस चौकीदार ने भी अपनी शक्ति के अनुसार धर्म प्रचार में योग दिया था। क्या हम भी इस तरह धर्म प्रचार में यथा शक्ति योग नहीं दे सकते। (अवश्य दे सकते हैं यदि इस ओर प्रवृत्ति हो तो) महर्षि जी ने सत्यार्थ प्रकाश के ११वें समुल्लास में भारत वर्ष के ह्रास का हेतु महाभारत का युद्ध ही बताया। महर्षि जी लिखते हैं—"ऐसे शिरोमणी देश को महाभारत के युद्ध ने ऐसा धक्का दिया है कि अब तक भी यह अपनी पूर्व दशा में नहीं आया। क्योंकि जब भाई भाई को मारने लगें तो नाश होने में क्या सन्देह है। "विनाश काले विपरीत बुद्धि" यह किसी कवि का वचन है। जब नाश होने का समय निकट आता है, तब उल्टी बुद्धि होकर उल्टे काम करते हैं। कोई उनको सीधा समझावे तो उल्टा मानते हैं। और जो उल्टा समझावे वह सीधा समझते हैं। जब बड़े बड़े विद्वान राजा महाराजा ऋषि महर्षि लोग महाभारत युद्ध में मारे गये। और बहुत से मर गये तब विद्या और वैदिक धर्म का प्रचार नष्ट हो गया ईर्षा, द्वेष, अभिमान आपस में करने लगे। जो बलवान हुआ वह देश को दबा कर राजा बन बैठा। सर्वत्र आर्यावर्त देश में खण्ड खण्ड राज्य हो गया पुनः द्वीप द्वीपान्तर के राज्य की व्यवस्था कौन करे। ब्राह्मण लोग विद्या से हीन होने लगे। और क्षत्रीय वैश्य शूद्र के होने में तो कथा ही क्या कहनी, जो परम परा से वेदादि शास्त्रों का पढ़ना पढ़ाना था वह भी

छूट गया। वर्ण व्यवस्था गुण कर्म से न रह कर जन्म से सिद्ध होने लगी जिस से ब्राह्मण लोग मूर्ख, विषयी, कपटी, लम्पट आदि हो गए। और अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए ब्रह्मवाक्य जनार्दन का घोष जारी कर दिया यानि जो ब्राह्मण कह दे वही ठीक है। इससे सारा भारत अविद्या की गहरी निद्रा में चला गया और ऐसी निद्रावस्था में इस भारत भूमि पर बाहर से आक्रमण होने शुरू हो गए। पहले यूनानियों ने फिर मुसलमानों ने हमले पर हमले करके इस देश को खूब लूटा और फिर अंग्रेज़ों ने हज़ारों वर्ष तक यह देश गौरों की गुलामी तले फंसा रहा। और विदेशो न केवल अनगिनत धन की राशि ही यहां से लूट कर ले गये। अपितु लाखों करोड़ों हिन्दुओं को मुसलमान और ईसाई भी बना लिया। इस तरह भारत में लूट मची रही। अब पांच हजार वर्ष के बाद बाल ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द जी ने आकर इस सोई हुई भारतीय जाति को हिलोरे दे-दे कर जगाया है। किसी कवि ने महर्षि के इस उपकार की तरफ़ संकेत करते हुए ही कहा है—

धन्य है तुझ को ऐ ऋषि तूने हमें जगा दिया।
सो सो के लुट चुके थे हम तूने हमें बचा लिया।

और महर्षि का वह श्रद्धालु चौकीदार ठीक ही कहता था—

पांच हजार वर्ष के सोने वाले जागो

१४२. नमस्ते

देश की एकता और संगठन के लिए जहां स्वामी जी महाराज ने एक भाषा एक देश यानि देशी वेश और अछूतोद्धार गुण कर्म स्वभाव से वर्ण व्यवस्था की स्थापना का उपदेश किया, वहां उन्होंने आपस में मिलते वक्त अभिवादन के लिए "जो भिन्न भिन्न बोलियां बोली जाती थीं, इस भिन्नता को दूर करके एकता और समानता

का भाव देश वासियों में पैदा करने के लिए वेद भगवान से एक सुन्दर और छोटा सा आसानी से बोला और समझा जाने वाला अति उत्तम, सार्थक शब्द 'नमस्ते' का प्रयोग आरम्भ करा कर भी देश का बहुत बड़ा उपकार किया है और अब यह शब्द इतना प्रचलित हो गया है कि विदेश से आने वाले बड़े बड़े उच्चाधिकारी रूस के खुश्चेव जैसे भी यहां आ कर और यहां से रूस जाने वाले महानुभावों का इस उत्तम शब्द से अभिवादन करते हैं। सिक्कम और नेपाल भूटान में तो सरकारी तौर पर भी यह अभिवादन प्रचलित कर दिया गया है। यजुर्वेद का सोलहवां अध्याय ही नमस्ते अध्याय कहलाता है। हमारे सारे संस्कृत साहित्य में नमस्ते शब्द से ही सब ऋषि मुनि अभिवादन करते चले आए हैं। रामायण महाभारत उपनिषद सब में इसी शब्द का प्रयोग है। नम धातु से यह शब्द सिद्ध होता है, जिस के तीन अर्थ हैं। (क) सत्कार करना, (ख) अन्नदान करना, (ग) दण्ड देना। इसलिए जहाँ वेद में चोर के लिए नमस्ते आया है वहाँ इसका अर्थ दण्ड देना है। जहाँ कुत्ते आदि के लिए आया है उस का अर्थ है अन्न दान करने और बाकी आपस में एक दूसरे का सत्कार करने अर्थ में चलता है। इस एक शब्द के प्रयोग से छोटाई बड़ाई, अमीरी गरीबी, ऊंच, नीच सब का भेद भाव मिटकर, एकता-प्रेम और मित्रता की भावना हर एक में जागृत हो जाती है। और हरेक पढ़ा अनपढ़ा किसी भी देश का हो निहायत आसानी से इस का उच्चारण कर सकता है। महर्षि की दूरदर्शिता का इस से बढ़ कर और कोई उदाहरण नहीं मिल सकता। परन्तु आप हैरान होंगे कि इस शब्द के प्रयोग को वेदानुकूल सिद्ध करने के लिए भी कई सनातन धर्मी पण्डितों से शास्त्रार्थ करने पड़े। जब पहले पहल स्वामी जी ने इस शब्द का प्रयोग शुरू किया तो सब से पहले आर्य समाजी भाईयों ने ही इस पर आपति उठाई थी। अतः

१. मुरादाबाद में मुन्शी इन्द्र मन से स्वामी जी का इस

बात पर के आर्यों का अभिवादन का क्या शब्द होना चाहिए। कुछ विवाद हुआ था। स्वामी जी इस से पहले ही नमस्ते शब्द निर्धारित कर चुके थे और इस का प्रचार करते आते थे. मुन्शी इन्द्रमन चाहते थे कि जब दो आर्य आपस में मिलें तो एक कहे "परमात्मा जयते" और दूसरा उत्तर दे "जयते परमात्मा" बात यह थी कि मुन्शी जी ने यह अभिवादन विधि मुसलमानों के अनुकरण में निर्धारित की थी। क्योंकि एक मुसलमान जब दूसरे को मिलता है तो कहता है, "सलामलेकम' और दूसरा जवाब देता है—'वालेकमसलाम' इस पर स्वामी जी से निम्न प्रकार वाद प्रतिवाद हुआ। मुन्शी जी—हमने पहले जै गोपाल शब्द प्रचलित करना चाहा था फिर परमात्मा जयते प्रचलित किया। इस पर लोगों ने बहुत उपहास किया। परन्तु अब विवाद ठण्डा पड़ गया है। यदि अब नमस्ते शब्द प्रचलित किया जायेगा तो फिर उपहास होगा. इस के अतिरिक्त अभिवादन में परमेश्वर का शब्द अवश्य आना चाहिए। नमस्ते करने में यह बुराई भी है कि जो राजा से नमस्ते कहा जावे, तो राजा भी उसके उत्तर में नमस्ते कहे चाहे वह मनुष्य बहुत छोटा कोली व चमार हो।

स्वामी जी—मुन्शी जी बड़ा किसे कहते हैं, जिस मनुष्य ने यह अभिमान किया कि वह बड़ा है, अर्थात् राजा, विद्वान्, शूरवीर, हों। तो उस की बड़ाई में दोष आयेगा। देखिये जितने महाराजाधिराज, विद्वान्, शूरवीर हुए हैं। उन्होंने अपने मुख से अपने को कभी बड़ा नहीं कहा— नमस्ते का अर्थ मान और सत्कार का है। इस से राजा और प्रजा दोनों को आपस में नमस्ते कहना ठीक है, अब हम आप से यह पूछते हैं। कि जब कोई मनुष्य आप के घर आता है या आप को मिलता है तो आप के मन में क्या विचार आता है, तब मुन्शी जो तो चुप रहे परन्तु स्वामी जी कहने लगे कि कौन नहीं जानता कि किसी प्रति-

ष्ठित को देख कर उसका सन्मान और छोटे को देख कर उस से सद् व्यवहार का भाव अनायास ही उस समय उत्पन्न होता है। फिर बतलाईये ऐसे अवसर पर परमेश्वर के नाम का क्या सम्बन्ध है मनुष्य को चाहिए कि जो इसके मनमें हो वही अपने मुख से कहे, यह आप का दोष है कि पहले आप ने जै गोपाल और अब परमात्मा जयते प्रचलित किया। विचार कर के ऐसा शब्द क्यों न प्रचलित किया जावे। जो पहले इस देश में प्रचलित रहा। अतः सब आर्य समाजियों को नमस्ते कहना ही ठीक है जैसा कि सदा से महर्षि लोग करते चले आये हैं। नमस्ते शब्द वेदों में भी आया है, स्वामी जी ने बहुत से संस्कृत साहित्य से प्रमाण भी दिये, मुन्शी इन्द्रमन स्वामी जी को कोई उत्तर तो न दे सके। परन्तु अपनी हठ पर अड़े रहे, देश को एक सूत्र में परोने के लिए महर्षि का एक यह भी प्रयत्न था कि आपस में मिलते समय एक ही सर्वोत्तम वाक्य सब के मुख से निकले और महर्षि के प्रताप से इस का पूर्ण रूप से प्रचार हो चुका है। अब छोटे-बड़े, अमीर-ग़रीब, मिलते समय नमस्ते करते हैं।

२. अखबार ट्रीब्यून में १४—९—६४ पृष्ठ ८ पर डाक्टर राधाकृष्णन के रूस में जाने और उन के स्वागत के विषय में लिखते हुए रूस से पत्रकार लिखता है कि जब राष्ट्रपति जी लैनिन ग्राड देखने गये, तो एक दस वर्षीय रूसी कन्या ने उन को एक फूलों का गुलदस्ता पेश करके हाथ जोड़ कर नमस्ते कह कर उन का स्वागत किया। यह लड़की लैनिन ग्राड स्कूल में हिन्दी पढ़ रही है।

१४३. राजा बीरबल की मूर्खता की कहानी

राजा बीरबल अकबर बादशाह का वज़ीर था उसकी दानाई होने की कहानियां तो आप ने बहुत सुनी होंगी आज हम आप को उसकी मूर्खता की कहानी सुनाते हैं।

"कहते हैं एक दिन अकबर बादशाह ने बीरबल को कहा कि मैं हिन्दू होना चाहता हूं क्या तुम मुझे हिन्दु बना सकते हो।

बीरबल ने कहा इस का उत्तर कल आप को दूंगा । दूसरे दिन सवेरे ही बीरबल एक गधे को जमना के घाट पर ले जा कर साबन से मल मल कर नहलाने लगा इतने में अकबर बादशाह भी सैर करता उधर आ निकला बीरबल को गधा नहलाते देख कर पूछने लगा बीरबल यह क्या कर रहे हो बीरबल ने कहा कि गधे की गौ बना रहा हूं अकबर ने कहा मूर्ख आदमी कभी गधे की भी गौ बन सकती है तब बीरबल ने हाथ जोड़ कर कहा "तो महाराज कभी मुसलसान भी हिन्दू बन सकता है।" इस जवाब को सुनने से अकबर हिन्दु बनने से रुक गया यदि बीरबल ऐसा मूर्खता पूर्ण उत्तर ना देता बलकी जैसा अकबर ने प्रस्ताव किया था उसको हिन्दू बना लिया जाता तो भारत का इतिहास ही बदल जाता और जिस बीर बल को इतना भी पता न था कि गधे और गौ की तो योनी हो अलग अलग है और योनी नहीं बदल सकती । परन्तु मनुष्य ती योनी एक ही है उस ने मनुष्य के विचार परिवर्तन की योनी परिवर्तन के साथ उपमा दी उस बीरबल से बड़ा मूर्ख सारे संसार में दीपक लेकर तलाश करने से भी नहीं मिल सकता, बीरबल भी जन्म से ब्राह्मण था और उन्हीं पौराणिक संसकारों में पला था जिन संस्कारों ने इस देश इस जाति को एक हज़ार साल तक दूसरों का गुलाम बनाए रखा यह तो भला हो दयानन्द सरस्वती स्वामी का जिस ने अपने सदयोपदेशों से इस मूर्खता के जाल को तोड़ कर फैंक दिया—किसी कवी ने ठीक ही कहा है ।

'जव रिषी आऐ जहालत से भरा संसार था'

एक मूर्ख कारख़ाना दार की कहानी

दीयासलाई के एक कारखानादार ने एक अखबार में एक Accountant की जरूरत का विज्ञापन दिया जिसमें लिखा कि प्रार्थी कम से कम वेतन और अपनी Qualificatians लिखे एक

Chartered Account ने जवाब दिया कि मैं पहला तारीख का एक दूसरी को दो तीसरो को चार इस हर रोज़ दुगनी के हिसाब से दीयासलाईयां लेकर आप के पास काम करने को तैयार हूं। कारखाने के मालिक ने उसको इस शरत पर रख लिया वह भी बड़ी मेहनत से काम करता रहा पहला महीना ३१ दिन का था। जब महीना समाप्त हुआ तो उसने अपना वेतन मांगा मालक ने कहा हिसाब करके ले लो उसने कहा कि मेरा वेतन ४. २६, ४५१/- रुपए बनता है दे दोजिए मालक यह आंकड़े सुनकर चकित रह गया कहने लगा मुझे हिसाब करके समझाओ उसने निम्न प्रकार हिसाब मालक के सामने करके रख दिया।

१=१
२=२
३=४
४=८
५=१६
६=३२
७=६४
८=१२८
९=२५६
१०=५१२
११=१,०२४
१२=२,०४८
१३=४,०९६
१४=८,१९२
१५=१६,३८४
१६=३२,७६८

१७=६५,५३६
१८=१,३१,०७२
१९=२,६२,१४४
२०=५,२४,२८८
२१=१०,४८,५७६
२२=२०,९७,१५२
२३=४१,९४,३१४
२४=८३,८८,६२८
२५=१,६७,७७.२५६
२६=३,३५,५४;५१२
२७=६,११,०९,०२४
२८=१३,४२,१८,०४८
२९=२६,८४,३६,०९६
३०=५३,५८,७२,१९२
३१=१,०७,३६,४४,३८४

५० दीयासलाई की एक डबी के हिसाब से २, १४, ७२, ८८७ डबी बनती है और २ नये पैसे फी डब्बी के हिसाब से मेरा वेतन ४, २९, ४५% रुपए बनता है। यह हिसाब का चमतकार देख कर मालक के होश उड़ गये और लगा मिन्नत करने तब अपना आधा कारखाना देकर Accountant से राज़ी नामा कर लिया किया हिन्दू जाति ने भी इसी तरह मूर्खता का व्यवहार कर अपने भारत का बटवारा करवा कर पाकिस्तान नहीं बनवाया ? मुसलमान बहुत थोड़ी संख्या में बाहर से आए करोड़ों हो गए और पाकिस्तान लेकर भी अभी ४/५ करोड़ भारत में दनदना रहे हैं और अब ईसाई भी बढ़ते बढ़ते १ करोड़ तो हो गऐ हैं और वह भी ईसाईसतान मांगेंगे । नागा लैंड में भी तो ईसाई पादरी माइकल सकाट की कृपा से बग़ावत फैल रही है हिन्दू जाति ने अपनी मूर्खता के कारण कभी हिसाब के जमा ज़रब के काइदे नहीं पढ़े तफ़रीक और तकसीम ही करती चली आ रही है। एक हज़ार साल के बाद महर्षि दयानन्द ने जाति के इस हरास को अपनी दिव्य दृष्टि से देखा को निकास द्वार तो खुला पड़ा है जाति के लाल धड़ा धड़ मुसलमान वा ईसाई हो रहे हैं और प्रवेश दरबार बद पड़ा है तब महाराज ने कृण्वन्तो विश्वमार्यम के वेद मन्त्र से इस बंद पड़ प्रवेश दरबार को खोल कर जाती में मची हुई लूट को बन्द करने और लूटे माल को वापिस लाने का उपदेश दिया जिस से लाखों करोड़ों जातो के लाल मुसलमान वा ईसाई होने से बच गये और लाखों गये हुए वापस भी लाये गये । किसी कवि ने ठीक ही कहा है ।

धन्य है तुझ को ए ऋषी तूने हमें बचा लिया ।
सो सो के लुट चुके थे हम तूने हमें जगा दिया ।

१४५. महात्मा गान्धी के लड़के की शुद्धि

एक हजार वर्ष तक मसलमान इस देश में राज्य करते रहे,

और उन्होंने अपनी राज्य शक्ति के बल पर करोड़ों हिन्दुओं को मुसलमान बना लिया। और दो सौ वर्ष तक अंग्रेज़ शासक रहे, और उनके राज्य काल में भी दो करोड़ के लगभग हिन्दू ईसाई बनाए गये। इतने लम्बे समय में इस देश में कितने ही सन्त महात्मा, भक्त विद्वान हुए जो ईश्वर भक्ति का, एकता का ऊंच नीच मिटाने का उपदेश तो करते रहे परन्तु एक भी महात्मा के मन में जाति के इस निकास को रोकने का विचार उत्पन्न न हुआ। और यह निकास अधिक से अधिक तेज़ होता चला गया। जिसके परिणाम स्वरूप मुसलमानों ने अपने लिए अब अलग पाकिस्तान बना लिया है। इस बारह सो साल के समय में केवल एक ही महापुरुष स्वामी दयानन्द सरस्वती ऐसा हुआ है जिसने जाति की इस घोर हानि की ओर ध्यान दिया। और न केवल इस निकास को रोकने के लिए ज़ोरदार आवाज उठाई। बल्कि वैदिक धर्म के प्रवेश द्वार पर बारह सौ साल से लगे हुए ताले को "कृण्वन्तो विश्वमार्यम" के वेद मन्त्र रूपी हथौड़े से तोड़ कर वैदिक धर्म का द्वार मनुष्य मात्र के लिए खोल दिया। और सब से पहले १८७८ में डेरादून निवास के समय मुहम्मद उमर नामी जन्म के मुसलमान को शुद्ध कर, अलख धारी नाम रखकर, वैदिक धर्म में प्रवेश करा कर एक उदाहरण कायम कर दिया।

महर्षि के उपदेश से जहां लाखों करोड़ों हिन्दू विधर्मी होने से बच गये, वहां महर्षि की आज्ञानुसार आर्य समाज ने लाखों विधर्मियों को वापस वैदिक धर्म में प्रवेश कराया। यदि महर्षि के बताये हुए मार्ग पर चलते तो पाकिस्तान कदाचित न बन सकता। क्योंकि जिस समय महर्षि ने यह घोषणा की थी, उस समय ब्राह्मण और सनातन धर्मी हिन्दू विरोध न करते तो लाखों करोड़ों विधर्मी वैदिक धर्मी बनने को तैयार हो सकते थे। अफ़सोस कि हिन्दुओं ने महर्षि के इस उपकार की कदर न की और अब पछता रहे हैं। महर्षि के

उपकार का ही यह नतीजा है कि महात्मा गांधी जी का लड़का हीरा लाल गान्धी जो मुसलमान होकर अब्दुल्ला गान्धी बन गया था। पुनः वापस लाया गया। यदि महर्षि वैदिक धर्म का प्रवेश द्वार न खोलते और आर्य समाज स्थापित न करते तो न जाने लाखों करोड़ों हीरा लाल गान्धी, अब्दुल्ला आदि बने हुए होते। महात्मा गान्धी का लड़का हीरालाल गान्धी व्यसनी था। बुरी संगत में पड़ कर मुसलमान हो गया। और इसका नाम अब्दुल्ला गान्धी रखकर मुसलमानों ने इस घटना को खूब उछाला। जगह जगह इसको ले जा कर बड़ें बड़े जलसे किये गये। जलूस निकाले गये। क्योंकि आम जनता को गान्धी जी के लड़के का व्यसनी होना मालूम न था और गान्धी जी का नाम सारे देश में गूंज रहा था। इसलिए हीरालाल के मुसलमान बन जाने पर और भी हजारों आदमियों के मुसलमान हो जाने का डर पैदा हो जाना कुदरती था। क्योंकि जनता जनार्दन आम तौर पर बड़े आदमियों की पैरवी करती है। यह एक मानी हुई बात है—जैसा कि श्री मद भगवगगीता में भी लिखा है—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्ततदवैतरो जन:

सा यत्प्रमाणं कुरुते, लोकसतदनुवर्तते।

यानि बड़े आदमी जैसा आचरण करते है, जनता जनार्दन भी वैसा ही आचरण करती है, जिसको बड़े लोग प्रमाण या प्रचलित कर देते हैं। आम लोग उस ही पैरवी करते हैं। मुसलमानों के इस तरह हीरालाल गान्धी के मुसलमान हो जाने को और अपने मत की श्रेष्ठता का सिक्का जमाने के जिए जलसे और जलूस निकालते हुए देखकर आर्य समाजियों के मन में इसको वापस वैदिक धर्म में लाने का बड़ा जोश पैदा हो गया। और दूसरी ओर माता कस्तूरबा ने भी बम्बई के आर्य समाजियों को प्रेरणा दी कि कि वह हीरालाल को अवश्य शुद्ध कर लें क्योंकि इस तरह उनकी



महात्मा गान्धी के लड़के की शुद्धि
महर्षि दयानन्द ने शताब्दियों से बन्द धर्म मन्दिर के प्रवेश द्वार पर लगे ताले को तोड़कर धर्म द्वार को मनुष्य मात्र के लिए खोल दिया।

बहुत बदनामी हो रही है। अतः आर्य समाजियों ने अपना पूरा यत्न करना आरम्भ कर दिया। जिसके परिणाम स्वरूप आर्य समाज बम्बई में अब्दुल्ला गान्धी को फिर हीरा लाल गान्धी बना कर जहां माता कस्तूरबा की मनो कामना पूरी कर दी वहां वैदिक धर्म की जय का झंडा भी संसार में गाड़ दिया।

बोलो वैदिक धर्म की जय, दयानन्द की जय।

संघठन काण्ड समाप्त

१४. बलिदान काण्ड

१४५. "धर्म पर बलिदान"

सोस जिनके धर्म पर चढ़े हैं,
झण्डे दुनियां में उनके गड़े हैं।

१. महर्षि दयानन्द ज़ी सरस्वति। अंग्रेज़ों और मुसलमानों के षड्यन्त्र से ज़हर दिया गया।

२. प० लेखराम जो को ६. ३. १८९७ में, मिर्जा कादयानी की साज़श से एक नामालूम मुसलमान ने पेट में छुरा मार दिया।

३. पं० तुलसी राम जी। १९०३ में फ़रीद कोट में स्टेशन मास्टर थे। आर्य समाज के जलसे के उपलक्ष में बाजारों में प्रचार करते जा रहे थे कि जैनियों ने आंखों में लाल मिर्चें पिसी हुई डालीं और छुरा मार दिया। स्थान फरीद कोट। आयु ३२ वर्ष।

४. वीर राम चन्द्र जी। २०. १. २३ अछूतोद्धार करते हुए जम्मू के राजपूतों ने भटेरा गांव में लाठियां मार मार मार डाला।

५. स्वामी श्रद्धा नन्द जी। २३. १२. २६ अब्दुल रशीद कातल ने पिस्तौल की गोलियां मार कर मार डाला।

६. ला० नन्द लाल जी। १२. ११, २७। आर्य समाज के प्रचार से चिढ़ कर लाहौर के नजदीक गला घोंट कर मार दिया और लाश दरिया रावी में बहा दी। आयु १९ वर्ष।

७. महाशय राजपाल जी। ६. १०. २७। को भी उन की दुकान पर लाहौर में अब्दुल अज़ीज़ नामी मुसलमान ने छुरे से हमला करना था, लेकिन वह दुकान पर न थे। स्वामी सत्यानन्द को ही, राजपाल समझ कर उसने छुरा मार दिया पर वह मरने से बच

गये। परन्तु बहुत देर तक इन को हस्पताल में रहना पड़ा।

८. महाशय राजपाल जी। ६. ४. २६। लाहौर के प्रसिद्ध पुस्तक विक्रेता को इलमदीन कातल ने छुरा मार कर मार दिया। आयु ४६ वर्ष।

६. धुन्ना सिंह जी। १६३०। ह्यताला जिला लुधियाना में सिख खानदान में पैदा हुए परन्तु आर्य समाज का रंग चढ़ गया। अकाली दुश्मन हो गये, और धुन्ना सिंह को आर्य समाज का प्रचार करने से रोकने लगे। जब वह न रुका तो उस को लाठियां मार-मार कर कत्ल कर दिया।

१०. लोड़िन्दाराम जी। एम. ए. एल. एल. बी.। ५. ११. ३४। को किसी न लूम मुसलमान ने बन्नू में गोली मार कर कत्ल कर दिया।

११. विद्यासागर जी। १५. ४. ३६। एक मुसलमान ने छुरा मार कर कत्ल कर दिया।

१२. सुनेहरा—बुटाना जिला रोहतक, जब सत्याग्रह का निश्चय हुआ तो इस के गौने का निश्चय हो चुका था। परन्तु वह सत्याग्रह करने चले गये। और औरंगाबाद जेल में जेल अधिकारियों के अत्याचारों से इनका बलिदान हो गया। आयु २० वर्ष। ८ जून ३६।

१३. श्री वेद प्रकाश जी। गुन्जोरी रियासत हैदराबाद के रहने वाले थे। ६८—३६ को ७०—८० जनूनी मुसलमानों ने घेर लिया और लाठियाँ मार मार कर मार दिया।

१४. श्री भीमराव पटेल हुवला ग्राम हैदराबाद के मुखिया थे।

१५. श्री मानक राव जी भी उसी गाँव के रहने वाले थे। बहलोल खाँ नामी पठान ने मानकराव जी की बहिन को अपने पंजे में फँसा लिया। भीमराव जी ने फौरन उस को मुसलमानों के चुँगल से निकाल कर शुद्ध कर लिया। इसी अपराध पर २००-३००

मुसलमानो ने आपके घर पर हमला कर दिया। श्री भीमराव जी तलवार लेकर इन का मुकाबला करने निकले परन्तु उनको गोली से मार दिया गया। इनकी चाची इन्हें बचाने दौड़ी उसको भी गोली मार दी गई और उसी दिन भीम राव जी को भी निर्दयता पूर्वक मुसलमानों ने कत्ल कर दिया।

१६. श्री धर्म प्रकाशन नागपाल—कल्याणी रियासत हैदराबाद के उत्साही नवयुवक थे २७—६—३८ को जब आप आर्य समाज मन्दिर से घर को जा रहे थे। तो मुसलमानों की भारी भीड़ ने आप पर हमला कर दिया। और लाठियां मार मार कर मार डाला। आपके शरीर पर १६ घाव थे।

१७. श्री महादेव जी। आप नज़ाम राज्य की अकोमक सैदां नामी जागीर के निवासी थे, आर्य समाज के सेवक होने के कारण आप मुसलमानों की आँखों में कांटे के समान चुभते थे। अतः १४—७—३८ को २५ वर्ष की भरपूर जवानी में किसी जनूनी मुसलमान ने छुरा घोंप कर आपका बलिदान कर दिया।

१८. श्री उमा जी। आप नजाम राज्य में तापती ग्राम के अस्पर्श कहे जाने वाले परिवार में से थे। आप दृढ़ आर्य समाजी बड़े निडर और साहसी थे, इसी ग्राम के पठानों ने मन्दिर को तोड़ना चाहा। आप मन्दिर की रक्षा के लिए उनके सामने खड़े हो गये। किसी को मन्दिर तोड़ने का साहस न हुआ। परन्तु आपका बन्दूक की गोली से बलिदान कर दिया गया।

१९. श्री सत्यानारायण जी। अम्बोलगा जिला बीदर के रहने वाले थे। आप आर्य समाज के बड़े उत्साही कार्य करता थे। मुहर्रम के दिनों में धोखे से मुसलमानों ने हमला करके आपको कत्ल कर दिया।

२०. श्री अर्जुन सिंह जी २६—६—३९ आप कुछ स्वयं सेवकों

के साथ शहर हैदराबाद में जा रहे थे कि मुसलमानों ने छाती में छुरा घोंप दिया।

२१. श्री श्याम लाल जी वकील नज़ाम राज्य के ज़िला बीदर झालकी नामक ग्राम में १९०३ में पैदा हुए। सन् २५ में आप वकील बन गये। आप की रुचि आर्य समाज के सिद्धान्तों की ओर विशेष रूप से थी जिससे मुसलमान तड़प उठे। १६—२—३९ को बीदर जेल अधिकारियों के अत्याचारों से आपका बलिदान हो गया।

२२. श्री वेकंट राव जी । सत्याग्रह के दौरान जेल अधिकारियों के अत्याचारों का शिकार हो गये।

२३. श्री परमानन्द जी । आप हरद्वार के निवासी थे। सत्याग्रह में भाग लेकर कैदी हुए और चंचल गुडा जेल में आपका देहान्त हो गया।

२४. स्वामी सत्यानन्द जी महाराज । ८० वर्ष के त्यागी संन्यासी बंगलौर के रहने वाले थे। सत्याग्रह किया। आप ने जेल में जेल अधिकारियों के विरुद्ध भूख हड़ताल कर दी, तब आप को काल कोठड़ी में डाल दिया गया। और मार मार कर मार डाला।

२५. श्री विष्णु भगवन्त । नज़ाम राज्य के तान्दूर नामी ग्राम के निवासी थे। आप जन सेवा के लिए आजन्म ब्रह्मचारी रहे। सत्याग्रह में भाग लेने से आपका बलिदान जेल में ही हो गया।

२६—श्री छोटे लाल जी का देहान्त गुलबर्गा जेल में ३.५.६८. को हुआ।

२७. श्री पांडुरंग जी का देहान्त गुलबर्गा जेल में १७. ५ ३९. को हुआ।

२८. श्री माधव राव जी का २८ मई को ३९ जेल में देहान्त हो गया।

२९. श्री नानू मल जी, १. ६. ३९ को हैदराबाद ज़ेल में जेल अधिकारियों ने लाठी से हमला करके मार डाला।

३०. श्री फ़कीर चन्द जी। आप पंजाब के श्रद्धा ग्राम, तहसील कैथल के निवासी है। आप ३०. ६. ३९ को जेल में आपका देहान्त हो गया।

३१. श्री मलखान सिंह जी, आप रुड़की के नज़दीक रामपुर गांव के निवासी थे। आप १. ७. ३९. को जेल के अत्याचारों के कारण बलिदान देना पड़ा।

३१—श्री स्वामी कल्याण नन्द जी, ७५ वर्ष के सन्यासी थे। मुज़फर नगर यू. पी. के रहने वाले थे। सत्याग्रह में आए तो जेल में ८ जुलाई को उनका देहान्त हो गया।

३२—श्री शान्ति प्रकाश जी, आप देहली के एक टिक्ट कलक्टर श्री राम रतन जी शर्मा जी के सुपुत्र थे। आपने २४१ सत्याग्रहियों के एक जत्थे के साथ सत्यग्रह किया। आपको उस्मानाबाद जेल में रखा गया। आप को नमोनिया हो गया। माफ़ी मांगने पर मुक्त कर देने का प्रस्ताव उनके पिता जी के सामने रखा गया। परन्तु उन्होंने न माना। और १८ वर्ष का नौजवान १७ जुलाई को बलि वेदि पर कुर्बान हो गया।

३३—श्री भानु राम जी मलक पुर जिला हिसार के रहने वाले थे। औरंगाबाद जेल में उनका बलिदान हो गया

३४—श्री राधा किशन जी आप को नज़माबाद में गंज रोड के थाने के सामने कुछ अरब मुसलमानों ने छुरों से हमला करके मार डाला।

३५—श्री भगत अरुड़ा मल जी। भगत जी सरगोधा के निवासी थे। १३ मार्च को बीमार हो गये। और ५६ वर्ष की आयु में उनका देहान्त हो गया।

३६—श्री गोविन्द सिंह जी। आप नज़ाम राज्य के नलगीर स्थान के निवासी थे। आप का २० जुलाई को उस्मानिया जेल हस्पताल में देहान्त हो गया।

३७—श्री बदन सिंह जी । आप मुज़फ़राबाद ज़िला मुलतान के निवासी थे । १७ जून को आपने सत्याग्रह किया । वारंगल जेल में आप बीमार हो कर मर गये ।

३८—श्री रती राम जी । २३ अगस्त को हैदराबाद जेल से बीमारी की हालत में छोड़ दिया गया । परन्तु वह अपने जन्म ग्राम साँपला जिला रोहतक में पहुंच कर बलिदान हो गये ।

३९—श्री अशर्फ़ीलाल जी । आप चम्पारन के सत्याग्रही थे । २६ अगस्त को आप का देहान्त हो गया ।

४०—श्री शान्ति प्रकाश जी । आप का जन्म कलानौर जिला गुरदासपुर पंजाब में हुआ । आपने सत्याग्रह किया । जेल की सख़्तियों से बीमार हो गये । क्षमा मांग कर मुक्त होने का प्रस्ताव न माना २७. ७. ३९. को मनमाद जेल में उनका शरीर छूट गया ।

४१—चौधरी मातु राम जी । आप मानकपुर तहसील हांसी ज़िला हिसार के निवासी थे । आप सीधे सांधे पवित्र विचारों के आर्य समाजी थे । सत्याग्रह किया २८. ७. ३९. को ५० वर्ष की आयु में धर्म की बलि वेदि पर औरंगाबाद जेल में बलिदान हो गये ।

४२—श्री खांडे राव दत्तात्रेय जी । सत्याग्रह किया । औरंगाबाद जेल में जेल अधिकारियों के अत्याचारों से बलिदान हो गये ।

४३—भगत फूल सिंह जी का जन्म ग्राम माहरा तहसील सोनीपत जिला रोहतक में हुआ । यह पटवारी थे, और कुछ साथी पटवारियों की संगत से आर्य समाजी बने थे, आप पर भी आर्य समाज का रंग चढ़ गया । और आप ने नौकरी छोड़ दी । और आर्य समाज के कार्यों में अग्रसर होने लगे । छूतछात निवारण आन्दोलन, आदि तपस्या से काम करने लगे । १३. ५. ३९. को स्वामी ब्रह्मानन्द जी के जत्थे को ४०० रुपया की थैली भेंट करने आ रहे थे कि रोहतक शहर की एक मस्जिद से मुसलमानों ने इन पर हमला कर दिया । इस तरह आर्य समाज का काम करते हुए मुसलमानों की

आंखों में चुभते रहे। और १४. ८. ४२. रात के करीबन ८ बजे गुरुकुल खान पुर में ५९ वर्ष की आयु में कातलो ने गोलियों से इनका बलिदान कर दिया।

४४—श्री परमानन्द जी। लाहौर में जिल्द बन्दी का काम करते थे। और कुछ मुसलमान इनकी दुकान पर नौकर थे। आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा ने उर्दू सत्यार्थ प्रकाश छपवाया। वह जिल्द बन्दी के लिए उनकी दुकान पर जो लाहौर चौक मत्ती में थी लाया गया! मुसलमान नौकरों ने अपने घर ले जा कर काम करने की आज्ञा मांगी, जो उनको दे दी गए २५. ५. ४४. को हथ रेढ़ि पर किताब के फर्मे उनकी दुकान पर लाये गये। परमानन्द जी दुकान बन्द करके घर जा चुके थे, उनको घर से बुलाया गया। इस पर उन्होंने कहा कि मुसलमान हमसे कहते हैं कि यह काम मत करो। तब मुसलमानों ने सत्यार्थ प्रकाश के फ़र्मों में आग लगा दी। और एक मुसलमान ने श्री परमानन्द पर चाकू से हमला करके उसका बलिदान कर दिया।

४५. देवकी नन्दन जी। कैमबल पुर तहसील पिण्डो घेप, मुखड ग्राम के निवासी थे। आपने एक सैयद लड़की को शुद्ध करके, उसके साथ विवाह कर लिया। इस पर मुसलमानों ने हमला करके उस को कत्ल कर दिया।

४६. श्री छोटे लाल जी। अलालपुर जिला मैनपुरी के निवासी थे। सत्याग्रह किया। ३. ५. ३९ को गुलबर्गा जेल में जेलरों के अत्याचार से इन का देहान्त हो गया।

४७. चौधरी तारा चन्द जी लम्बू जिला मेरठ के निवासी थे। सत्याग्रही बने और जेल के अत्याचारा से इनका बलिदान हो गया।

४८. ब्रह्मचारी दयानन्द जी। सरसा ग्राम जिला हरदोई यू. पी. के निवासी थ। महा विद्यालय ज्वालापुर के तीसरे सत्याग्रही जत्थे के साथ सत्याग्रह किया। जेल में इन पर बड़े अत्याचार हुए।

और जब सत्याग्रह में सफलता प्राप्त कर वापस आए तो जेल में झेली यातनाओं के कारण इन का शरीर ६. ३. ४० को छूट गया।

४६. श्री बाबू नारायण सिंह जी ने आर्य समाज से, अनाथों का उद्धार, अबलाओं की रक्षा, जाति सुधार और वैदिक धर्म का प्रचार सीखा और अपना जीवनध्येय बना लिया था। दुष्ट लोगों के मन में यह कांटे की भान्ति खटकते थे। एक दिन, दिन दिहाड़े, दुष्ट लोगों ने पटना के बाज़ार में गोलियां मार कर इन की बलि दे दी।

५०. श्री वैद्यनाथ जी। जिला चम्पारन के रहने वाले थे। आप हैदराबाद सत्याग्रह में कूद पड़े और २५. ६. ३६ को इन का देहान्त हो गया।

५१. श्री बृजलाल जी आर्य। चँचोली जिला बैतूल मध्य भारत के निवासी थे। आर्य समाज के उत्साही कार्य कर्ता थे। आर्य समाज के प्रचार से चँचोली के हिन्दुओं ने ताज़िये निकालने बन्द कर दिये और फिर एक हिन्दू लड़की जो मुसलमान हो गई थी, उस को भी शुद्ध कर लिया। इस पर मुसलमान वहुत नाराज़ हो गये। क्योंकि वृजलाल जी ने इन दोनों कार्यों में बहुत योग दिया था। इस लिए मुसलमान इन की जान के लागू हो गये। अतः १२. १०. २८ को अबास खां नामी मुसलमान ने इन को छाती में छुरा घोंप दिया।

५२. श्री नन्हू सिंह जी, बुन्देलखण्ड के निवासी थे। हैदराबाद सत्याग्रह में गिरफ्तार हुए। चंचल गुड़डा जेल में २६. ५. ३६ को स्वर्गवास हो गये।

५३. श्री पुरुषोत्तम जी ज्ञानी, बुरहान पुर मध्य प्रान्त के निवासी थे। कर्मठ आर्य थे, भजन गा गा कर वैदिक धर्म का प्रचार करते थे। हैदराबाद सत्याग्रह में कैद हुए, जेल में रुग्ण होने से और बूढ़ा होने से उन को छोड़ दिया गया, परन्तु उसी जेल की

लगी बीमारी के कारण २६. ८. ३९ को उन का देहान्त हो गया।

५४. माधो राव, सदा शिव राव जी लातूर। ३० वर्ष की आयु में हैदराबाद का सत्याग्रह किया और जल के कष्टों के कारण बीमार हो गये और गुलबर्गा जेल में २६. ५. ३९ को इन का देहान्त हो गया।

५५. श्री लक्ष्मण राव जी ने हैदराबाद सत्याग्रह किया और हैदराबाद जेल में २. ८. ३९ को इन का देहान्त हो गया।

५६. श्री शिव चन्द राव जी। ५७. श्री लक्ष्मण राव जी।
५८. श्री नृसिंह राव जी। ५९. श्री राव जी अँगडे।
यह चारों आर्य समाज के अनथक प्रचारक और प्रेमी थे ३—३—४२ को हुमनाबाद रियासत हैदराबाद में आर्य समाज के होली के अवसर पर जलूस निकल रहा था कि जनूनी मुसलमानों के एक बड़े ग्रोह ने हमला कर दिया, और इन चारों आर्य वीरों को गोली का निशाना बना दिया।

६०. श्री मानक राव जी, हुपला निवासी थे, इनकी बहिन को मुसलमानों ने अगुवा करके मुसलमान बना लिया। इस वीर पुरुष ने अपनी बहिन को वापस लाकर शुद्ध किया, इस पर मुसलमानों ने इनको गोली का निशाना बना दिया।

६१. श्री महादेव जी, नजाम राज्य के ही निवासी थे। और सत्याग्रह में निज़ाम राज्य में ही इनका देहान्त हो गया।

६२. श्री पुरुषोत्तम मगनलाल शाह B. A. L. L. B. बम्बई प्रान्त के जिला पंचमहल के गोधरा शहर में रहते थे। वहां के मुसलमान हिन्दुओं पर बहुत अत्याचार करते थे। मुसलमान हिन्दुओं को चिढ़ाने के लिए जलूस निकाला करते थे। और हिन्दुओं के मुहल्लों में से गुजरते समय यह गीत गाते थे, हम हिन्दुओं को मुसलमान बनावेंगे, हम हिन्दुआनियों को बीवी बनावेंगे। ऐसे जलूसों

से तंग आकर कुछ नौजवान हिन्दुओं ने संगठन कायम किया । जिसके प्रधान श्री पुरुषोत्तम दास जी चुने गये । इससे हिन्दुओं के अन्दर कुछ साहस पैदा हो गया । और मुस्लमान ऐसे गीत गाने छोड़ गये परन्तु मुसलमानों के दिल में श्री पुरुषोत्त दास जी काँटा बन कर खटकने लगे । और सितम्बर १९२८ में जैनियों के एक पर्व के सिलसिले में हिन्दुओं का जलूस निकला जिस पर मुस्लमानों ने हमला कर दिया । और २० हिन्दुओं को कत्ल कर दिया । पुरुषोत्तम दास जी को भी सख्त चोटें आईं और वह दूसरे तीसरे दिन स्वर्ग वास हो गये ।

६३. श्री खाण्डे राव जी जनपा राव,दृढ़ आर्य समाजी थे । इनके शरीर में जब तक श्वास रहा । इन्होंने विधवाओं को रक्षा की अछूतों को गले लगाया । भूलों को मार्ग बताया असहायों के सहारा बने,चलते फिरने वैदिक धर्म के प्रचार करते रहे, आपका जन्म हेर तालुका वारदौली जिला सूरत में हुआ था १९१४ में आर्य समाज के सदस्य बन गये । और आर्य समाज का हर काम बड़े उत्साह से करते रहे । जब कभी हिन्दुओं पर अन्याय अत्याचार मसलमानों की ओर से होता आप छाती तान कर खड़े हो जाते । इससे आप मुसलमानों को आंख में खटकने लग गये । और एक दिन मुसलमानों ने साजश करके ६—३—१९३० को जबकि वह अपने स्कूल को जा रहे थे । दो तीन मुस्लमानों ने उन पर हमला कर दिया और तेज धार हथियारों ने उनकी हत्या कर दी ।

६४. सदा शिवराम जी पाठक शोलापुर जिला के सदूला गाम के निवासी थे । मराठी भाषा का वीर रस गान बड़ा उत्तम गाया करते थे । हैदराबाद में सत्याग्रह किया । तो जेलर ने इनको यह गान गाने से मना किया गया । जेल अधिकारियों ने इन पर बहुत अत्याचार किये जिस से २३—८—३९ को इनका देहान्त जेल

में ही हो गया।

६५. श्री रामनाथ जी असरावर जिला अहमदाबाद में १९१७ को पैदा हुए। गुरुकुल नवसारी में ८ वीं जमायत में पढ़ते थे जब छुट्टियों में घर आए तो गांव में प्लेग फैला हुआ था। रोगियों की सेवा में जुट गये। वह फिर गुरुकुल कांगड़ी में चले गये। और सत्याग्रहियों के पहले जत्थे में गये थे। जेल में बीमार हो गये। क्षमा मांगकर मुक्त होना स्वीकार न किया। इतने में हैदराबाद सत्याग्रह की विजय होने पर इनको छोड़ दिया गया। परन्तु जेल की बीमारी के कारण ८—९—३९ को इनका देहान्त हो गया।

६६—श्री नाथूराम जी ९—४—१९०८ को हैदराबाद सिन्ध के सम्भ्रान्त सारस्वत ब्राह्मण परिवार में पैदा हुए: १९२७ में आप आर्य समाज की ओर आकर्षित हुए आपके पिता जी और अन्य सम्बन्धी आप के आर्य समाजी बनने पर रुष्ट हो गये। १९३१ में अहमदी फिर्के की एक अँजमन हुई, कुछ इश्तिहार निकाले गये। जिस में हिन्दू धर्म और हिन्दू वीरों पर गंदे आक्रमण किये गये। श्री नाथूराम जी इस को सहन न कर सके और इसके जवाब में तारीख इसलाम का हिन्दी तर्जमा प्रकाशित किया और एक ट्रेक्ट निकाल कर मुसलमान मौलवी पर बहुत से स्वालात किए, दोनों किताबें मुफ्त बांट दीं। इस पर मुसलमान बहुत उत्तेजित हो उठे, और उनके बरखिलाफ़ इतना हल्ला गुल्ला किया कि १९३३ में उनके खिलाफ़ मुकद्दमा सरकार ने चला दिया। श्री नाथू राम जी ने अपने मुकदमा में यह सिद्ध कर दिया कि यह पुस्तक तो ईसाईयों की लिखी हुई है, मैंने तो केवल अनुवाद ही किया है. शिशन जज ने डेढ़ वर्ष सख्त कैद की सज़ा दे दी। २०. ९. ३४ को हाईकोर्ट में अपील की तारीख थी, सारी कचहरी आदमियों से भरी हुई थी, अभी जज फैसला सुनाने ही वाले थे, कि श्री नाथू राम के पास बैठे हुए अब्दुल कयूम नामी मुसलमान ने

बाकी भी तकरीबन २००/३०० सत्याग्रहियों को सख्त चोटें आई, इसके अतिरिक्त सत्याग्रही जब अम्बाला जेल से रिहा हो कर अम्बाला से देहली जाने वाली गाड़ी पर सवार हुए तो गाड़ी की टक्कर हो जाने से छः—सात सत्याग्रही शहीट हो गये और एक सज्जन जालन्धर में श्री घनश्याम दास गुप्ता के जलूस में पोलीस की गोलियों से शहीद हुआ था।

१४५. देश हित बलिदान

शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर वर्ष मेले
वतन पर मरने वालों का यही बाकी निशां होगा

भारत देश को अंग्रेजों की ग़ुलामी से आज़ाद कराना महर्षि का मुख्य उद्देश्य था इस के लिए वह हर प्रकार के प्रयत्न का समर्थन करते थे। अतः धार्मिक सामाजिक और पोलीटिकल जागृति उत्पन्न करके भारतीयों को स्वराज्य के लिए तैयार करने का काम आर्य समाज कांग्रस और हिन्दू महासभा ने सम्भाल लिया। परन्तु महर्षि जी स्वराज्य प्राप्ति के लिए शस्त्र-क्रान्ति के भी समर्थक थे। उनके मन में सन् १८५७ की स्वतन्त्रता की पहली लड़ाई के बाद अंग्रेजों ने जो निहत्थे भारतीयों पर जुल्म किये थ, उनका बहुत आघात लगा था। क्योंकि इस युद्ध में वह खुद भी भाग ले रहे थे। यह बात अब निश्चयात्मक हो चुकी हैं। मेहता पृथ्वी सिंह आजाद ने स० २००७ में हमारा राजस्थान नामी किताब छपवा कर २५ पृष्ट इस बात के समर्थन में लिखे थ कि महर्षि सन् १८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेते रहे। क्योंकि १८५७ से १८३० तक जब कि वह महर्षि विरजानन्द जी के पास आए तीन वर्ष उनके अज्ञातवास में ही गुज़रे प्रतीत होते हैं। और फिर सत्यार्थ प्रकाश १२ वें समुल्लास में उनके हृदय से निकले हुए शब्द इस बात को पुकार पुकार कर कह रहे हैं कि वह

१८५७ के युद्ध में भाग लेते रहे और वह अंग्रेजों को देश से निकालने के लिए हथियार बन्द क्रान्ति के भी समर्थक थे। महर्षि के वह शब्द ज़रा ग़ौर से पढ़ने योग्य है।

जब संवत १९१४ के वर्ष तोपो के मारे मन्दिर मूर्तियां अंग्रेज़ों ने उड़ा दी थीं। तब मूर्ति कहां गई थीं। प्रत्युत बाघेर लोगों ने जितनी वीरता की और लड़े शत्रुओं को मारा। परन्तु कोई मूर्ति एक मक्खी की टांग भी न तोड़ सकी। जो श्री कृष्ण के सदृश कोई होता तो इनके धुर्रे उड़ा देता और यह भागते फिरते।

अब इसमे एक तो यह विचारणीय है कि महाराज ने बाघेर लोगों को अग्रेजों से लड़ते वा मारते देखा था। दूसरे महाराज अंग्रजों के लिए दुश्मन शब्द का प्रयोग कर रहे हैं, तीसरे उनके धुर्रे उड़ते देखना चाहते हैं। यह तीनों निष्कर्ष सिद्ध करते हैं कि महाराज १८१७ के स्वतन्त्रता युद्ध में अवश्य भाग लेते रहें हैं और वह अंग्रेजों को देश से निकालने के लिए शस्त्र क्रान्ति के पूर्ण रूप से समर्थक थे। महाराज के इस अभिप्राय को जान कर अपने देश से अग्रेजों को निकालने के लिए जिन जिन महानुभावों ने जेलों को यातनाएं सहीं और फ़ांसी पर चढ़ अंग्रेज़ की गोलियां और लाठियां खाईं देश निकाला भी भोगा, इनमें कुछेक का संक्षिप्त वर्णन पढ़िये।

१. शेरे पंजाब लाला लाजपतराय जी

लाला लाजपतराय जी भी क्रान्ति कारी गुरु के क्रान्ति कारी शिष्य थे और अग्रेजों को देश से निकालने के लिए हर तरीका इस्तमाल करने के हक़ में थे लाला जी का जन्म २८. १. १८६५. को मौजा ढड्डे की तहसील मोगा, जिला फिरोजपुर में हुआ, आप की माता जी का नाम गुलाब देवी था। और पिता जी का नाम मुन्शी राधा कृष्ण था। उनके पिता जी पर मुसलमानी मज़हब का



लाला लाजपत राय
1865—1929



शहीद भगत सिंह

रंग बहुत चढ़ा हुआ था। अतः वह तीन वक्त नमाज़ भी पढ़ा करते थे। उनको कुरान शरीफ़ ज़बानी याद था। लाला जी की परवरिश और तालीम एक दरम्याना दर्जे के युवक की भान्ति हुई। जब आप लाहौर में पढ़ने गये तो उनकी मित्रता पंडित गुरुदत और महात्मा हंसराज से जो कि उस समय गवर्नमैंट कालिज में पढ़ते थे हो गई। ये तीनों गहरे दोस्त बन गए। इस वक्त आर्य समाज का बहुत ज़ोर था। लाला जी महर्षि दयानन्द जी से भी मिल चुके थे। और इस तरह इन तीनों नौजवानों ने आर्य समाज का बड़ा काम किया। दयानन्द कालिज बनाने में भी लाला जी का बहुत हाथ था। और सन् १९०० तक कई आश्रम खोले और हजारों हिन्दू बच्चों को विधर्मी होने से बचा लिया। इसके बाद लाला जी ने देश की सियासत में भी हिस्सा लेना शुरू कर दिया। क्योंकि क्रान्तिकारी दयानन्द का चेला भला कैसे चुप बैठ सकता था। और थोड़े अर्से में ही इनका शुमार कांग्रेस के चोटी के लीडरों में होने लग गया। और वह कांग्रेस के दल के नेता बन गए। सन् १९०७ में नहरी मामला की ज़ियादती के खिलाफ़ बड़ी ज़बरदस्त तहरीक चलाई। जिस से अंग्रेज़ हकूमत कांप उठी। और उन्होंने लाला लाजपतराय और सरदार अजीत सिंह को गिरफ़्तार करके मांडले जेल में भेज दिया लाला लाजपतराय और सरदार अजीत सिंह दोनों आर्य समाजी थे। इसलिए इन दिनों आर्य समाज पर अंग्रेज़ सरकार का बहुत कोप था। और आर्य समाज के उपदेशिक और वर्कर बिना किसी कसूर के गिरफ़्तार कर लिए जाते थे। डी. ए. वी. कालिज पर अंग्रेजों की खास नजर थी। मांडले से वापिस आने पर फिर भी अंग्रेज़ सरकार इनको बहुत तंग करती थी। तब सन् १९०९ में आप अमरीका चले गये और वहां भारत की आजादी की तहरीक का प्रचार करते रहे और १९१६ तक वह अमरीका रहे। और जगह जगह लैक्चर दिए।

यं इंडिया नाम का अख़बार निकाला। इंडिया होम रूल लीग कायम की। जिस की ब्रांचे अमरीका के बड़े बड़े शहरों में खोली गईं। और अमरीका के बड़े बड़े आदमियों से मिल कर भारत को आज़ाद कराने की तरफ़ इनका ध्यान दिलाते रहे। सन् १९२० में जब वापिस आए तो इनका शानदार स्वागत हुआ और कलकत्ता कांग्रेस के स्पैशल इजलास के प्रधान चुने गए। लाला जी ने तिलक स्कूल आफ पालिटैक्स कायम किया। और यही स्कूल फिर सरवैन्टस आफ़ दी पीपल सोसाइटी के नाम से काम करता रहा। लाला जी इकलाबी स्प्रिट के थे। एक बार कांग्रेस से इनका मतभेद हो गया और सैन्टल असैंम्बली का चुनाव आया तो पंजाब के दोनों शहरी हल्कों से चुनाव में कांग्रेसी उम्मीदवार दीवान चमनलाल और रायज़ादा हंसराज को पराजित करके कामयाब हो गये। आप की तकरीर में जादू भरा होता था। लाला जी सचमुच शेरे पंजाब थे। यहां तक कि जब महात्मा गांधी जी को किसी ने कहा कि आप पंजाब चले तो उन्होंने साफ़ कह दिया कि जब तक लाला लाजपतराय मुझे नहीं बुलाते मैं नहीं जाऊंगा। सन् १९२८ में साइमन कमीशन आया तो इसका बाईकाट करने का निश्चय किया गया। अतः ३० अक्तूबर १९२८ को जब साईमन कमीशन लाहौर आया तो इस के खिलाफ़ मुज़ाहिरा करने के लिए लाला लाजपतराय जी स्वयं एक बहुत बड़ा जत्था और हाथ में काली झंडियाँ लिए हुए लाहौर के रेलवे स्टेशन पर पहुंच गये। जब कमीशन को लाने वाली गाड़ी लाहौर स्टेशन पर आई तो पुलिस ने लाठी चार्ज शुरू कर दिया। चूंकि लाला लाजपतराय जी सब से आगे थे इसलिए सब से पहले लाठियां इन को ही लगीं। अगर्चे जत्थे के दूसरे मैम्बरों ने लाला जी को घेरे में ले लिया था। तब भी लाठियों की काफी चोटें लाला जी को लग चुकी थीं। मिस्टर साईमन स्टेशन की दूसरी ओर से निकल कर खिसक गए। और इन्हीं लाठियों की ज़रबात से १७

१७ नवम्बर १९२८ को लाला जी देश की खातिर बलिदान हो गए। लाला जी ने कहा था कि मेरे जिसम पर लगी हुई अंग्रेज़ की लाठियों की चोट अंग्रेज़ी राज्य के कफ़न में कील साबित होगी। और वही हुआ। लाला जी कहा करते थे कि आज़ादी मांगने से नहीं मिलती बल्कि इस के लिए लड़ना होगा, कुर्बानी देनी होगी, और ख़ून देना होगा। यह था वह पाठ जो लाला जी ने अपने गुरु महर्षि दयानन्द से सीखा। और आर्य समाज रूपी माता की गोद में बैठ कर इस पर अमल किया। लाला लाजपतराय ने अपने जीवन चरित्र में स्पष्ट शब्दों में लिखा है।

"जो मेरे जीवन में कमज़ोरियां हैं वह मेरी अपनी है। परन्तु जो कुछ भी गुण मेरे में हैं वह महर्षि दयानन्द और आर्य समाज की देन है। मैं जो कुछ भी देश जाति के लिए कर पाया हूं यह गुरुदेव की कृपा से कर पाया हूं।

२. भगत सिंह

लाला लाजपतराय जी के अंग्रेज़ों द्वारा किए गए इस अपमान और फिर अंग्रेजी लाठियों से घायल हो कर देश पर वलिदान होने पर पंजाव के शेर नौजवान सरदार भगत सिंह जी जो इनकलाबी पार्टी के लीडर थे उन्होंने इसका बदला लेने की ठान ली। और डी. ए. वी. कालिज लाहौर के सामने ही पुलीस के दफ़्तर से निकलते हुए पुलीस कप्तान सांडरस और उस का बचाने की कोशिश करने वाला चानन सिंह पुलीस वाला दोनों ही भगत सिंह की गोलियों का निशाना बन गए। इन दोनों पुलिस अफ़सरों को गोलियां मार कर सब पार्टी डी. ए. वी. कालिज के अन्दर घुस कर निकल गई। और इस लिए डी. ए. वी कालिज वालों को पुलीस अफ़सरान कई दिनों तक तंग करते रहे। पर वहां से पुलीस वालों को कोई पता न मिल सका। परन्तु जब उन्होंने असैम्बली हाल में जाकर बम्ब फैंका तब भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव तीनों गिरफ़्तार कर लिए गए। और फ़िर

इन पर मुकद्दमा चलाया गया। मुकद्दमा की पैरवी भगत सिंह स्वयं किया करते थे। जिस मजिस्ट्रेट की डियूटी इस मुकद्दमा के सुनने पर लगाई गई थी वह हर वक्त भयभीत रहता था कि कहीं मुझ को गोली का निशाना न बना दिया जावे। एक दिन जब मुकद्दमा के दौरान में ही किसी ने समोसे भेजे। जब पुलिस ने समोसे खोले तो उनमें से एक बम्ब निकल आया। पुलीस ने वह मजिस्ट्रेट की मेज पर रख दिया। मजिस्ट्रेट ने पुलिस से पूछा यह बम्ब कारामद है या चला हुआ। तो भगत सिंह झट बोल उठे, मिस्टर मैजिस्ट्रेट पौलीस से क्या पूछते हो हमें दिखाओ हम आप को बता देंगे कि यह बम्ब चला हुआ है या चलने वाला है।

भगत सिंह जी इतनी निर्भयता से अपने मुकद्दमा की पैरवी किया करते थे, और इतनी लियाकत से कि बड़े बड़े वकील भी सरकारी गवाहों पर उनकी जिरह को सुनकर दंग रह जाते थे। अन्त में उनको फांसी की सजा हुई। इन्हीं दिनों १९२९ में कांग्रस का साजाना इजलास लाहौर में हो रहा था। किसी ने गाँधी जी से कहा कि भगत सिंह जैसे नौजवानों की हौसला अफज़ाई करने के लिए आप उन्हें मिलें। परन्तु महात्मा गांधी जी ने यह कह कर कि वह तशदद के हामी हैं, उनको मिलने से इन्कार कर दिया। भगत सिंह राजगुरु और सुखदेव को फांसी की सजा दी गई। जब भगत सिंह जी फांसी की कोठड़ी में बन्द थे तो किसी ने उनके सामने क्षमा मांगने का प्रस्ताव रखा। जिसका उन्हों ने तिरस्कार पूर्वक अस्विकार कर दिया। जिस दिन भी इस पार्टी की पेशी इस अदालत में होती थी तो यह पार्टी, आर्य समाजी इन्कलाबी नौजवान पं० राम प्रसाद बिस्मिल की प्रसिद्ध कविता अदालत की कारवाई शुरू होने से पहले अदालत के कमरे में पढ़ा करते थे। जो निम्नलिखित है—

सर फ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है।
देखना है जोर कितना बाजूए कातल में है॥

राह रवे राहे मुहब्बत रह न जाना राह में ।
लज़्ज़ते सहरा नवर्दी दूरिए मंज़िल में है ॥
यूं खड़ा मकतल में कातल कह रहा था बार बार ।
क्या तमन्नाए शहादत भी किसी के दिल में हैं ॥
वक्त आने पर बता देंगे तुझे ऐ आसमां ।
हम अभी से क्या बताएं क्या हमारे दिल में है ॥
ऐ शहीदे मुल्को मिल्वत तेरे जज़बों पर निसार ।
तेरी कुर्बानी की चर्चा ग़ैर की महफ़िल में है ॥
अब न अगले वलवले हैं और न अरमानों की भीड़ ।
एक मिट जाने की हसरत बस ।।दिले बिस्मिल में है ॥

इतनी बड़ी ताकतवर अंग्रेज़ हकूमत को इन नौजवानों को दिन के समय फांसी देने को हिम्मत न हुई, वह हकूमत जिसमें कभी सूरज गुरूब न होता था । उस हकूमत के कारिन्दों ने आर्य समाज के ट्रेनिंग कालज के विद्यार्थी भगत सिंह और उनके साथियों को रातो रात फांसी देकर, उनकी लाशें रात रात ही लाहौर के फ़िरोजपुर लाकर दरया सतलुज के किनारे दिन चढ़ने से पहले आग के सुपुर्द कर दीं।

मौज़ा खटकर कलां जिला जालन्धर में सर्दार अर्जुन सिंह रहते थे । वह महात्मा मुन्शीराम जी जब जालन्धर में वकालत करते थे, उनके मुन्शी थे । और उनके सत्संग से इन पर भी आर्य समाज का रग चढ़ गया । उनके दो लड़के थे । सरदार किशन सिंह और सरदार अजीत सिंह, सरदार अजीत सिंह तो लाला लाजपतराय के साथी बन गये । और सन् १९०७ में उनके साथ ही मांडले जेल में नजरबन्द रहे और नजरबन्दी से रिहा होकर आए तो फिर विदेश चले गये । क्योंकि अंग्रेज़ी सरकार इनको फिर भी तंग करने के

मंसूबे बना रही थी। और वह विदेश में रह कर भी मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए भरपूर यत्न करते थे। आज़ादी से थोड़ी देर पहले वापस आए थे। आखिर को १५ अगस्त १९४७ को जब देश आज़ाद होने की घोषणा हुई तो उन्होंने देहरादून में प्राण त्याग दिये और उन्होंने मरने से पहले देश को आज़ाद देख ही लिया।

सरदार किशन सिंह जी के तीन लड़के थे। भगतसिंह इन सब से बड़े थे। आपका जन्म भी आर्य घराने में हुआ। आप का यज्ञोपवीत संस्कार भी वैदिक रीति से हुआ, और आपकी तालीम भी आर्यसमाज के स्कूल और कालजों में हुई। जिन दिनों यह डी. ए. वी कालज में पढ़ते थे। भाई परमा नन्द जी श्री जै चन्द विद्यालंकार जी इतिहास के प्रोफ़ैसर और रिसर्चस्कालर थे। इन दोनों महानुभावों ने राजनीति और देश सेवा के लिए इन को तैयार करना शुरू कर दिया था। गुरु कुल कांगड़ी से स्नातक और पंजाब के बहादुर सपूत जो उन दिनों रावल पिण्डी लण्डा बाजार आर्य समाज के पुरोहित थे के पास सरदार भगतसिंह और उस के साथियों ने आर्य समाज मन्दिर में रहकर देशभक्ति और राजनीति की विशेष शिक्षा प्राप्त की। इस प्रकार सरदार भगत सिंह जो कुछ भी थे, वह सोलह आने आर्य समाज के ट्रेनिंग कालज से शिक्षा प्राप्त कर के ही बन पाये थे। और एक बड़ी जत्थे बन्दो के लीडर बन कर देश की ख़ातर फाँसी के तख्तों पर चढ़ कर देश की शान को चार चांद लगा गए।

भगत सिंह का प्यारा गीत जो वह फांसी की कोठड़ी में गाया करते थे।

मेरा रंग दे नाम विच चोला
मेरा रंग दे नाम विच चोला
जेहा जेहा रंग तूं भक्तां दा रंगया
उहो जेहा रंग मैं वीं तैथों मंगैया

रंग बड़ा अनमोला
मेरा रंग दे नाम विच चोला
जेहा रंग दयानन्द रंगाया
लेख राम जिस रंग नहाया
लाजपत राये जिस नूं अपनाया
उही रंग मेरे मन भाया
रंग बड़ा अनमोला
मेरा रंग दे नाम विच चोला

३. पं० राम प्रसाद विस्मिल यू. पी. के नौजवान थे। उन को जवानी में ही आर्य समाज की लगन लग गई और इस ट्रेनिंग कालज में शिक्षा प्राप्त कर देश के लिए बलिदान हो गये। एक बार उन के पिता जी ने जो पुराने विचार के थे। अपने सुपुत्र राम प्रसाद विस्मिल के सामने यह प्रस्ताव रखा कि या तो तुम आर्य समाज को छोड़ दो, वरना मेरे घर को छोड़ दो। तब नौजवान राम प्रसाद सिर्फ तीन कपड़ों में घर त्याग कर चला आया था। आर्य समाज के लिए इन का प्रेम इसी एक घटना से स्पष्ट हो रहा है। तब इस नौजवान ने एक इन्कलाबी जत्था बनाया और देश में इन्कलाब करने की खातर रुपया बटोरने के लिए राम प्रसाद के जत्थे ने काकोरी रेलवे स्टेशन पर रेल गाड़ी पर जा रहे सरकारी खज़ाना पर डाका डाला। लेकिन गिरफ्तार हो गये। मुकद्दमा चला जो काकोरी केस के नाम से प्रसिद्ध है और उन को और उनके साथियों को फांसी की सज़ा दी गई। इन्हीं राम प्रसाद विस्मिल की नज़म सरदार भगतसिंह जी पढ़ा करते थे और यह नज़म उन दिनों इतनी सर्व प्रिय हो गई थी कि हर कांग्रेस के जलसे और जलूसों में नौजवान बड़े जोश से पढ़ा करते थे। जब राम प्रसाद जी को फांसी की सज़ा हुई और

फांसी की कोठड़ी में बन्द किया गया तो वहां भी वह संध्या आदि अपना नित्य नियम पूरा करते थे, व्यायाम भी करते थे। एक दिन फाँसी देने वाले जल्लाद ने पुछा—राम प्रसाद नौजवान हो, फ़ांसी की सज़ा तुम को हो चुकी है, परन्तु तुम्हारे चेहरे पर बल नहीं पड़ा। तुम्हारा कौन गुरु है। जिसने तुम को ऐसा विचित्र पाठ पढ़ाया है। तब राम प्रसाद विस्मिल ने जवाब दिया कि जिस दिन फांसी के तख्ते पर मैं चढ़ूंगा, उस दिन तुम को अपने गुरु का नाम बताऊँगा। वह दिन आ गया। विस्मिल फाँसी के तख्ते पर खड़ा हो गया। जल्लाद ने जो पास ही खड़ा था, फिर वही सवाल पूछा, तब विस्मिल जी ने उस को कहा—अपना कान मेरी तर्फ़ करो उस ने अपना कान जब विस्मिल की तर्फ़ किया, तब उसने फाँसी की रस्सी खींच जाने से एक मिनट पहले जल्लाद को बताया मेरा गुरु है—

बाल ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द सरस्वती

५. सोहन लाल पाठक पट्टी ज़िला अमृतसर के रहने वाले थे, कट्टर आर्य समाजी थे। पट्टी आर्य समाज के मेम्बर थे। डी. ए. वी हाई स्कूल में मास्टर भी रहे सन् १९०८ में जब ला० हरदयाल जी एम. ए. आई. सी. एस. का इमतिहान दिये वगैरह वापस हिन्दुस्तान आ गये तो सोहन लाल जी उन के पास आने जाने लग पड़े और उन की आपस में मित्रता हो गई। इन्हीं दिनों इन की धर्म पत्नी का देहान्त हो गया। फिर ला० लाजपत राय जी ने दयानन्द ब्रह्मचारी आश्रम मुजंग में खोला। तब लाला जी ने पं० सोहन लाल जी को इस आश्रम में टीचर रख लिया। इतने में ला० हरदयाल जी देश से बाहर चले गये और पंडित जी के मन में भी देश से बाहर जा कर देश की आज़ादी के लिए काम करने का विचार हुआ। तब पहले वह स्याम गये, फिर वह अमरीका चले गये। और वहां ग़दर पार्टी में शामिल हो गये। पहले महा युद्ध में ग़दर पार्टी ने भी

वही काम किया था, जो दूसरे महा युद्ध में सुभाष चन्द्र बोस की आज़ाद हिन्द फौज़ ने। इस वक्त तक ला० लाजपत राय जी भी अमरीका पहुँच चुके थे और अंग्रेजों के खिलाफ़ बाहर के देशों में ख़ूब प्रचार किया। पंडित सोहन लाल पाठक कहा करते थे कि हकूमत माँगने से नहीं मिलती। माँगने से तो भीख भी नहीं मिल सकती, जैसा कि कांग्रेस आजकल कर रही है। हकूमत सीधे हाथ कौन देने लगा है। हकूमत तो डण्डे के ज़ोर से मिलेगी और जब तक हज़ारों नौजवान शहीद नहीं होते, तब तक हकूमत मिलनी कठिन है। फिर पंडित जी को बर्मा गवर्नमैंट ने गिरफ़्तार कर लिया और उन को फांसी की सज़ा दी गई। जब उन से पूछा गया कि आप की आखिरी ख्वाहिश क्या है। तो उन्होंने कहा मेरे शरीर को दबाना मत जला देना। क्यों कि बर्मा में मृतक शरीर दबाये जाते थे। इस तरह सोहन लाल पाठक न सिर्फ़ ख़ुद मुल्क के लिए शहीद हुए, बल्कि उन के संसर्ग में आने वाले कई और नौजवान भी देश को आज़ाद कराते कराते शहीद हो गये।

६. इस तरह आर्य समाज की गोदी में पले हुए सैंकड़ों नौजवानों ने जेल की कड़ी यातनाएं सहीं। फांसी के रस्सों को चूमा, नौजवान भाई बालमुकन्द जी फांसी पर लटकाए गए। भाई परमानन्द जी काले पानी की यातताएं सहते रहे। महात्मा हंसराज जी के सुपुत्र श्री बलराज जी को पहले फांसी, फिर सात वर्ष कैद सख्त को सज़ा हुई। देश और विदेश में सैंकड़ों आर्य समाजियों ने देश को आज़ाद कराने के लिए अपना सब कुछ बलिदान कर दिया। यह थी आग जो महर्षि ने स्वराज्य प्राप्ति के लिए भारतीयों के दिलों को लगा दी थी। महर्षि की शिक्षा पाकर जहां धर्म की बलि वेदी पर सैंकड़ों बलिदान हो गये, वहां देश के हित के लिए भी कम कुर्बानियां नहीं दी गई थीं। पुस्तक का कलेवर बढ़ जाने के भय से संक्षिप्त ही लिखा है।

उपर्योक्त लेख के समर्थन में केवल एक ही उच्च कोटि के मुसलमान कांग्रेसी लीडर का लेख दिया जाना काफी है अतः मौलाना हसरत मुहानी फरंगी महल लखनऊ वाले फरमाते हैं।

"मैं देखता हूं कि कोई भी हिन्दु जब आर्य समाज में आता है तो उसमें बहुत विशेषता आ जाती है। उसके अन्दर उत्साह, देशभक्ति और कर्मशीलता और एक तरह की अजीब स्पिरिट काम करने लगती है।

देश के कामों को ही लीजिये, जब तक और लोग स्वराज्य का स्वप्न देख रहे थे, स्वामी दयानन्द और आर्य समाज अपनी पुस्तकों द्वारा उसका प्रचार करने लगे थे।

मैं खुशी के साथ कहता हूं कि असहयोग केज़माने से पहले करीब ६० फी सदी आर्य समाजी स्वराज्य के कार्यों में हिस्सा लेने वाले और लीडर थे जबकि और सुसाइटियों के मुश्किल से २/३ फी सदी आदमी ही स्वराज्य का काम करते थे।

("महर्षि दयानन्द सरस्वती" पृष्ठ ३७७ से

दयानन्द के वीर सैनिकों को देश-धर्म और जाति सेवा की शमा पर प्रवानों की भान्ति हंस हंस कर बलिदान देते हुए देख कर किसी कवि ने ठीक ही तो कहा था।

"ए शमा एहले बज़म तो बैठे ही रह गये
जो बात कहने वाली थी प्रवाने कह गये"

१४६ शहीदों के पत्र

कुछ आरज़ू नहीं है, है आरज़ू तो यह है।
रखदे कोई जरा सी, खाके वतन कफ़न में ॥
मौत और जिन्दगी तो, दुनियां का है तमाशा
पैग़ाम कृष्ण का था, अर्जुन को बीच रन में ॥

काकोरी केस के वीरों ने फांसी पाने से पहले जो पत्र अपने घर वालों को लिखे उनको पढ़ कर आप इन नौजवानों की देश भक्ति का थोड़ा सा अनुमान लगा सकेंगे। इस लिये वह नीचे दिए जाते हैं—

काकोरी केस के शहीद ठाकुर रोशन सिंह जी भी पक्के आर्य समाजी थे। फांसी पाने तक रोजाना इलाहाबाद जेल में आप संध्या और व्यायाम करते रहे। जिस रोज़ आप को फांसी के तख्ते पर चढ़ाया जाना था, उस दिन भी आप संध्या के बाद व्यायाम करने लगे, तब जेल के सन्तरी ने कहा—ठाकुर साहब अब इस कसरत और डण्ड बैठक का क्या फ़ायदा अभी तो आप को फांसी के तख्ते पर चढ़ना है। इस पर दयानन्द के वीर सैनिक ने हंस कर जवाब दिया हम अपने नियम को क्यों तोड़ें। जो काम जिस समय होना चाहिए वह उस समय करना ही चाहिए। मौत अपना काम करे हम अपना काम करते चले जायेंगे। ये थे दयानन्द के वीर सैनिक जो फांसी के तख्तों पर इस तरह चढ़ गये जैसे डोली व्याह कर लाने वाला दुल्हा घोड़ी पर चढ़ता है।

आज़ादी की जद्दोजहद में कुछ ऐसे देश प्रेमी भी हुए हैं जिन्होंने जेल की तंग वा तारीक कोठड़ियों से अपने रिश्तेदारों वा दोस्तों को निहायत दलेराना जज़बात उभारने वाले खत लिखे हैं जिनको पढ़ने से मुर्दा रगों में भी ज़िन्दगी का खून हरकत करने लगता है। इसी प्रकार के ख़तों में से चन्द ख़त शहीदान काकोरी के पढ़ कर देखिए।

राम प्रसाद बिस्मिल का ख़त

हिन्दुस्तानी नेताओं को और मुसलमानों को एक होकर हम लोगों की याद मनानी चाहिए। 'सरकार ने अशफ़ाकुल्लाह खां को राम प्रशाद का दाहिना हाथ माना है, अशफ़ाक उल्लाह कट्टर मुसलमान होकर सच्चे आर्य समाजी बिस्मिल का इन्कलाबी रूप में

साथ देकर अगर दाहिना हाथ हो सकते हैं, तो क्या भारतवर्ष को आजादी के नाम पर हिन्दुस्तानी एक होकर वतन को आजाद नहीं करा सकते। परमात्मा ने मेरी पुकार सुन ली है, और मेरी ख्वाहिश पूरी दिखाई देती है, मैं तो अपने फ़र्ज़ में पूरा उतरा हूं। मैंने मुसलमानों में से एक नौजवान को निकाल कर भारत वासियों को दिखला दिया है, मेरा यह पहला तजरबा है जो कामयाब हुआ, अब देश वासियों से मेरी प्राथना है कि अगर वह हमारी मौत से ज़रा भी दुखी हैं तो एक हु जाएं।

दूसरा खत

१६ दिसम्बर ७½ बजे इस शरीर को फांसी पर लटका दिया जायेगा। यह सब कुछ भगवान की मर्ज़ी से हो रहा है, और उसी की लीला है। मेरी भगवान से यही प्रार्थना हैं कि वह बार बार मुझे इस देश में जन्म दे कि देश की सेवा करता रहूं। देशवासियों से भी मेरी यही प्रार्थना है कि वह जो कुछ भी करें सब एक होकर करें और सब कुछ देश की भलाई के लिए हो। इस से सब का भला होगा। बस—

मरे बिस्मिल रोशन हरि, अशफ़ाक अत्याचार से
होंगे पैदा सैंकड़ों इनके खून की धार से

अशफाक उल्लाह खां का खत

जनाब वालदा साहबा, मैं बखैरियत हूं, आप की खैराफीयत का ख्वाहां हूं। कल फैसला सुनाया जायेगा। खुदा मुझे हिम्मत दे और सकूं अता फ़रमाए और आप सब को सबर। बीबो दुनिया सराए फ़ानी है, कौन हमेशा यहां रहा है। और कौन हमेशा यहा रहेगा। अज़ आदम ता इंदम मौत वा जीस्त का सिलसिला चला जा रहा है और चलता जाएगा। कहां तक अर्ज़ किया जाए, मुझे

अपनी सज़ा का कोई ग़म नहीं है, कोई रंज नहीं है, सज़ा दायमुल हब्स हो या कोई और—मेरा ईमान है कि सब मिन्जानब अल्लाह होगी। "सरे तसलीमख़म है जो मिज़ाजे यार में आए" मुझे आप की जुदाई का दुख है, तकलीफ़ है, ख़ुदा वाकफ़ है कि इस इतवार की मुलाक़ात के बाद में किसी पल आपको भूल न सका। आप के न उम्मोदी से भरे अलफ़ाज़ भी फ़रामोश न कर सका, खैर जो मर्जी मौला मैं निहायत बद किस्मत हूं कि आप की खिदमत करने का मौक़ा आया तो आप के कदमों से दूर हो गया। खैर ख़ुदा की मर्जी यही थी। आप सबर कीजिए और मेरे लिए दुआ कीजिए। आप को बहुत दुख पहुंचा है ख़ुदा रा मुझे माफ़ कर दीजिए, इससे मेरे दिल को तसकीन होगी। ज्यादा क्या लिखूं।

(अशफ़ाक वारसी लखनऊ जेल)

ठाकुर रोशन सिंह का ख़त

इस सप्ताह के अन्दर अन्दर मुझे फांसी दी जाएगी। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह आप की मुहब्बत का बदला दे। आप मेरे लिए हरगिज़ रंज न करें। मौत मेरी ख़ुशी का बाईस है। दुनिया में पैदा होकर मरना ज़रूरी है। दुनियां में बुरा फेल करके आदमी अपने को बदनाम न करे। और मरते समय ईश्वर को याद करे। यही दो बातें होनी चाहिएं और ईश्वर की कृपा से मेरे साथ यह दोनों बातें हैं। इसलिए मेरी मौत किसी भी तरह काबिले अफ़सोस नहीं। कई दिनों से मैं बाल बच्चों से अलग हूं। इन दिनों मुझे ईश्वर भक्ति का काफ़ी मौका मिला। मझे ख़ुशी है कि दुनिया की दुख भरी यात्रा समाप्त करके अब आराम की ज़िन्दगी के लिए जा रहा हूं। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि जो आदमी धर्म युद्ध में प्राण देता है। उसकी वही गति होती है, जो जंगल में रह कर तपस्या करने वाले की।

जिन्दगी ज़िन्दा दिली का नाम है रोशन
वरना कितने मरते और पैदा होते जाते हैं

आपका—रोशन । आखरी नमस्ते,

बाबू राजेन्द्र नाथ हरी का ख़त

मुझे इस सप्ताह के अन्दर ही अन्दर दुनिया से रिश्ता तोड़ लेना होगा। परन्तु बज़ाहर हिन्दुस्तान के लोगों से मेरा जो रिश्ता हो गया है, वह कभी टूटने वाला नहीं। मैं अपने प्यारे वतन पर कुर्बान हो रहा हूं फ़िर मेरे वतन के लोग मुझ से सम्बन्ध क्यों न रखेंगे। मैं अपने आप को अत्यन्त खुश किस्मत समझता हुं कि भारत माता ने मेरा बलिदान कबूल किया और मुझे जामे शहादत पीने का मौका दिया। हिन्दुस्तान के हर वाशिन्दा को मेरी नमस्ते।

आपका—हरी, गौण्डा जेल

बलिदान काण्ड समाप्त

———

१५. काण्ड

१४७. च्यवन प्राश का असली नुसखा

(Secret of Rejuvenation)

ब्राह्मण ग्रन्थ और पुराणों में एक सुन्दर कथा आती है, जिसका सार यह है कि, बुड्ढे, जीर्ण-शीर्ण ज्यवन ऋषि को अश्वनी-कुमारों ने फिर से युवा बना दिया। अश्विनीकुमार देवों के वैद्य थे। उन्हें वैद्य होने के कारण सोम याग में भाग नहीं मिलता था। उन्हों ने च्यवन से कहा—'यदि हम तुम्हें फिर से युवा बना दें, तो हमें क्या दोगे?' च्यवन ने कहा—'हम तुम्हें देवताओं के सोमयज्ञ में सोम का भाग दिलावेंगे।' अश्विनीकुमार प्रसन्न हुए। उन्होंने च्यवन को यौवन दिया और स्वयं सोमपान के अधिकारी हुए।

इस कथा का क्या अभिप्राय है? अश्विनीकुमार कौन हैं? च्यवन कौन है? कैसे वे वृद्धावस्था को त्याग कर युवावस्था को प्राप्त कर सके? सोम क्या है और उसका पान करने से अश्विनी कुमारों का कल्याण क्यों हुआ? इन प्रश्नों का उचित समाधान यदि हम समझ लें, तो प्राचीन भारतवर्ष की वाजपेयविद्या या यौवन प्राप्ति के उपायों (Rejuvenation) के सम्बन्ध में हम बहुत कुछ जान सकेंगे।

अश्विनीकुमार

वेदों में अश्विनीकुमारों को देवताओं का वैद्य या दैव भिषक् कहा गया है, यथा—

प्रत्यौहतामवश्विना मृत्युमस्मद

देवानामाग्रे भिषजा शचीभिः

अथर्व० ७। ५३। १

हे देवताओं के भिषक् अश्विनीकुमारो ! अपनी शक्ति के द्वारा मृत्यु को हम से दूर करो।

वे दिव्य वैद्य कौन से हैं, जो समस्त ब्राह्माण्ड की चिकित्सा करते हैं. जिनकी विद्यमानता में मृत्यु का आक्रमण नहीं हो पाता ? इस प्रश्न का उत्तर भी अगले मन्त्र में स्पष्ट कर दिया गया है—

संक्रामतं या जहीतं शरीरं प्राणपानौ ते सयुजाविह स्ताम् ।
शतं जीव शरदो वर्धमानो ऽगिन्ष्टे गोपा अधिपा वशिष्ठः ॥

अर्थात्—'हे प्राण और अपान ! तुम इस शरीर में बराबर संचरण करते रहो, शरीर को छोड़ कर मत जाओ, तुम दोनों जोड़ीदार सयुजौ) बनकर संयुक्त सखा की तरह रहो। हे मनुष्य ! तुम निरन्तर वर्धिमान या वर्धिष्णु होते हुए सौ वर्षों तक जीवित रहो। वसिष्ठ अग्नि तुम्हारा रक्षक है।'

मन्त्र में स्पष्ट ही अश्विनीकुमारों की व्याख्या करके बताया गया है कि प्राण और अपान ही सदा साथ रहने वाले अश्विनी हैं। अश्विनी की एक संज्ञा नासत्य है। नासिका में संचरण करने वाले श्वास-प्रश्वास या प्राणापान ही नासत्य हैं। जैसा कहा है—

नसोर्मे प्राणो अस्तु ।

प्राणापान नामक अश्विनीकुमार देवताओं के वैद्य क्यों हैं ? भारतीय विचारकों के अनुसार चिकित्सा-पद्धति तीन प्रकार की होती है।

(१) चीर-फाड़ के द्वारा शल्यादि—आसुरी-चिकित्सा।

(२) काष्ठादि ओषधियों के द्वारा—मानुषी चिकित्सा।

(३) प्राणायाम-योगादि के द्वारा—दैवी-चिकित्सा।

ग्रन्थियों की शल्प-क्रिया (Gland-therpy) के द्वारा यौवन की प्राप्ति (Rejuvenation) आसुरी विधि है। काष्ठादि औष-

धियों की सहायता से शरीरस्थ रसों की जीर्णता दूर करके उनमें नवीन बल उत्पन्न करना अधिक उत्तम और स्थायी होता है, क्योंकि इसमें रोगी के मन का भी किसी हद तक संस्कार होता हैं। मन ही शरीर है, मन की शक्ति से शरीर का स्वास्थ्य और रसों की पवित्रता उत्पन्न होती है। क्रोध चिन्ता आदि मानसिक व्याधियों के कारण ही शरीर में लगभग चालीस प्रकार के विष उत्पन्न होते हैं। उन विषों को दूर करके शरीर की नस नाड़ियों को निर्विष बनाना (Detoxination) मन के शान्त शिवात्मक संकल्पों (Healthy, peaceful auto-suggestions) तथा योग-विधि का काम है। प्राणायाम के द्वारा यह कार्य सर्व श्रेष्ठ रीति से सिद्ध होता है। नाड़ी शुद्धि और निर्विषता की प्राप्ति के लिए आसन और प्राणायाम के समान गुणकारी दूसरा उपाय नहीं है। इस लिये प्राण विद्या की चिकित्साप्रणाली को दैवी माना गया है। वस्तुतः प्राण ही अमृत है। जहाँ प्राण हैं, वहीं अमृत है। मर्त्य शरीर को अमर बनाने वाले प्राण ही हैं।

प्राण एवामृता आमः, शरीर मर्त्यम्

श० १० । १ । ४ । १

प्राणों के द्वारा यजमान अथवा प्राणिमात्र हम सब अपने आप को अजर-अमर बना रहे हैं। सनातन योग विधि जिस का यम ने नचिकेता को उपदेश दिया, प्राणविद्या ही है। इसी से आयुःसूत्र का संवर्धन तथा अजर, अमर, अरिष्ट (Ageless DeathleestDecay-less) स्थिति प्राप्त होती है। वैदिक उपाख्यानों में सोम का और अमृत का घनिष्ठ सम्बन्ध है। सोम ही अमृत है। सोम भी प्राण और अमृत भी प्राण है। परन्तु यहां सोम विद्या के सम्बन्ध में अधिक न लिख कर प्रस्तुत उपाख्यान को ही स्पष्ट करना अभीष्ट है।

चयवन

शरीर की प्राणशक्ति (Vitality) का स्वास्थ्य बहुत कुछ आदान और विसर्ग की क्रिया (Assimilation and Elimination Process) की स्थापना पर निर्भर है। इसी को 'Metabolic rate' भी कहते हैं वस्तुतः प्राणोत्पादिनी जीवन-शक्ति सब कुछ है। कभी यह वर्धिष्णु या वर्धमान रहती है, जैसे किशोरावस्थ में। उस अवस्था को (Anabolic condition) कहते हैं। कभी यह शक्ति क्षयिष्णु (Catabolic) हो जाती है, छीजने लगती है, जैसे बुढ़ापे में। तभी मृत्यु का आक्रमण होने लग जाता है। शरीरस्थ स्नायु; मज्जा, रस (Secretions) सभी पर वृद्धावस्था या जीर्णता का प्रभात्र पड़ता है। शक्ति का आधार आधिभौतिक (Physiologipal) है। इस कारण शरीर की धातुएं जीर्ण या जरा-ग्रस्त होने लगती हैं। यदि हम इस क्षयिण्णु प्रवृत्ति को रोकना चाहें तो शरीरस्थ रस और धातुओं को स्वस्थ और निर्मल बनाना आवश्यक है। अस्तु, इस क्षयशील दशा का नाम ही चयवनस्थिति है। इस स्थिति में शरीर का ह्रास होने लगता है। व्याधि, जरा, जीर्णता, मृत्यु सब चयवन के हीं रूप हैं।

मनुष्य की शक्ति की संज्ञा वाज है वाज को वीर्य या रेत भी कहा जाता है। वाजका पान करने वाले, जी कर्मकाण्ड थे, उन को ही वाजपेय कहा जाता था। शरीरस्थ रेतःशक्ति को शरीर में ही पचा लेना सफल वाजपेय है। उस जीवन-रस को क्षीण कर डालना वाज की हानि है। जिस देह में से वाज रिस रहा हो, वह कभी पुष्ट नहीं हो सकती। वाज से शुन्य व्यक्ति को पुनः वाज-सम्पन्न बनाना ही वाजीकरण-बिधि है, जिसका वर्णन आयुर्वेद के वाजीकरण-तन्त्रों में आता है। जिस शरीर में वाज भरा रहा हो, जहां ब्रह्मचर्य की धारणा निष्कलंक हो, उस का प्राण भरद्वाज कहलाता है। चयवन प्राण का

उल्टा भरद्वाज प्राण है । भरद्वाज प्राण वाज का भरण करने वाला अर्थात् वाजपेयी होता है । पुनः यौवन की प्राप्ति के लिए धातु और रसों की शुद्धि के लिए प्राकृतिक चिकित्सकों ने जो अनेक (Systems of nature-therapy) उपाय बताये हैं और जो अर्वाचीन काल के आयुर्विज्ञान के पुष्पित कमल के समान अत्यन्त आदरभाव से देखे जाते हैं, उन सबका समावेश प्राणविद्या या वाजपेयीविद्या में समझना चाहिए । भारतीय ऋषियों ने आयुष्य-संवर्धन और स्वास्थ्य-सम्पादन के प्रकृति-सिद्ध विधानों की ओर कुछ कम ध्यान नहीं दिया था । वस्तुतः उन्होंने इस विषय के जितने गम्भीर रहस्य जान लिए थे, उनका यथार्थ परिज्ञान हमारे समय के लिए बहुत ही श्रेयस्कर हो सकता है । शरीर के भीतर जो प्राण की गर्मी है, वही प्राणाग्नि (Metabolic heat) हमको निरोग बनाती है । औषधियां तो उपचार मात्र है । शरीर की अत्यन्त अद्भुत और चमत्कारिणी शक्ति ही प्राकृतिक चिकित्सकों का विश्वसनीय शस्त्र है । इसी के द्वारा शरीर की रक्षा, आयुष्य की वृद्धि और रोगों की निवृत्ति होती है । इसी तनूपा (तनू—रक्षक) अग्नि को सम्बोधन करके हम इस संकल्प का पाठ करते है—

तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि,
आयुर्दा अग्नेऽसि आयुर्मे देहि,
वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि,
अग्ने, यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृर्ण ॥

अर्थात्—हे अग्नि, तुम तनूपा हो, मेरे शरीर की रक्षा करो ।
हे अग्नि, तुम आयु को देने वाले हो, मुझे आयु दो ।
हे अग्नि, मेरे शरीर में जो कमी हो, उसे पूरा करो ।

यहां अग्नि का प्राण (Vitality) अर्थ कुछ हमारे मन को

कल्पना नहीं है। उपनिषदों और ब्राह्मणों में अनेक बार अग्नि का प्राण अर्थ किया गया है, यथा—

प्राणो अमृत तद्हि अग्ने रूपम्। शतपथ १०।२।६।१८

प्राणो वाऽग्निः (श० २।२।२।१५

तदग्निर्वै प्राणः ४।२२।११

प्राणो अग्निः (श० ६।३।१।२१

ते वा एते प्राणा एव यद् आवहनीयगार्हपत्यान्वाहार्यपचनाख्या, अग्नयः। (श० २।२।२।१८)

इन का तात्पर्य यह है कि प्राण ही अग्नि है। यज्ञ में जो गार्हपत्य दक्षिणाग्नि और आवहनीय नामक तीन अग्नियों की स्थापना को जाती है. उन का क्या अर्थ है, इस सम्बन्ध में प्रश्न उपनिषद् में लिखा है—

प्राणाग्नय एवैतस्मिन् पुरे जागृति। गार्हपत्यो ह वा एषोऽपानः, व्यानोऽन्वाहार्यपचनः यद् गार्हयत्यात्प्रणीयते प्रणयनादावहनीयः प्राणः, यदुच्छ्वासनिःश्वासावेतावाहूती, समं नयतोति स समानः, मनो ह वाव यजमानः, इष्टफलमेवोदानः स एनं यजमानमहरहब्रह्म गमयति।

अर्थात्—इस शरीर-रूपी ब्रह्मनगरो में प्राणाग्नियां सुलगती रहती हैं (उस समय भी जब अन्य इन्द्रियादि देव सो जाते हैं) गार्हपत्य अग्नि अपान, अन्वाहार्यपचन या दक्षिणाग्नि व्यान और आहवनीय प्राण हैं। श्वासप्रश्वासरूप आहुतियों को साम्यावस्था में रखने वाला समान है। मन यजमान है। इष्टफल उदान है वह इस मन को नित्य ब्रह्म के समोप ले जाता रहता है।

इस प्रकार विचार-पूर्वक मनन करने से हमें प्राचीन यज्ञ सम्बन्धी परिभाषाओं के शाश्वत अर्थों का परिचय प्राप्त होता है।

उनको जानकर हम प्राचीन भारतवर्ष के ज्ञान के अधिक सन्निकट पहुँच कर उसके नित्य मूल्य को पहिचानने में समर्थ हो जाते हैं। च्यवन अश्विनीकुमार जैसी कथाओं के अर्थों को खोलने के लिए इन्हीं संशोधित परिभाषाओं का अवलम्बन आवश्यक है।

अश्विनी कुमारों का सोम-पान

हमने ऊपर अश्विनीकुमारों का स्वरूप बताया, फिर च्यवन किसे कहते है, इसको स्पष्ट किया। अब प्रश्न शेष रहता है कि च्यवन ने जब अश्विनीकुमारों से यौवन मांगा,तब बदले में क्यों अश्विनीकुमारों ने यह शर्त रक्खी कि यदि तुम हमें यज्ञ में सोम-पान कराओ तो हम तुम्हें यौवन दे सकते हैं। इसको जानने के लिए सोम को समझना आवश्यक है। वीर्य रेत या शरीरस्थ रस का नाम ही सोम-रस है। केन्द्रिय नाड़ी-जाल (Central Nervous System) औषधि वनस्पतियां हैं, जिन से मिल कर सुषुम्णा जाल या मेरुदण्ड-रूप वनस्पति (Arbor Vitae) अथवा वानस्पत्य यूप तैयार होता है। जिनमें सोम-रस भरा रहता है। नाड़ीरस की शुद्धि ही स्वास्थ्य का लक्षण है। मस्तिष्क में भी यही रस भरा रहता है, जो नीचे सुषुम्णा नाड़ी की शाखा-प्रशाखाओं को सींचता है। इस रस पर ही मस्तिष्क की समस्त चेतना निर्भर है। इस रस (Cerebro spinal fluid) के सम्बन्ध में अर्वाचीन शरीर शास्त्री (Physiologists) भी अनेक आश्चर्यजनक महत्व की बातें बताते हैं। मस्तिष्क को सींचकर शुद्ध और बलवान बनाना इसी रस का कार्य है यह सोम रस, रेत या वीर्यरूप से शरीर में संचित होता। असंयम के कारण इसका शरीर से बाहर क्षय हो जाता है। जब तक प्राणपान-रूप अश्विनीकुमार इस सोम को पी सकते हैं, तब तक शरीर में जरा का आक्रमण नहीं होता। च्यवन की क्षीण शक्ति (Catabolic state of deplete energy) को फिर से ऊर्जित और वलिष्ठ बनाने के लिए यह आव-

श्यक है कि शरीर के सोमरस से उत्पन्न शक्ति शरीर में ही रहे अर्थात् प्राणापान उस सोम-रस का पान करें।

यह शरीर भी एक यज्ञ है। ब्राह्मण और उपनिषदों में बार-बार यह परिभाषा दुहराई गई है –

पुरुषो वै यज्ञः

इसके भीतर जो प्राकृतिक क्रियाएं होती हैं, उनका ही अनुकरण यज्ञ के कर्मकाण्ड में किया जाता है। शक्ति संवर्धन के लिए सोम या रेत का ही शरीर में पाचन अनिवार्य है, इसी कारण अश्विनीकुमारों ने च्यवन से यह प्रतिज्ञा कराई कि हम तुम्हें यज्ञ में सोमपान का भाग अवश्य दिलावेंगे। च्यवन के तप से यह सम्भव हुआ उसी की महिमा से च्यवन की जीर्णता दूर हुई जो उचित प्रकार से सोम का पान करके मन और शरीर की स्वस्थता का संपादन करता रहता है, वही सदा अरिष्ट, अजर, अमर, रह सकता है। उसी के लिए यह कहा गया है—

प्रविशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम।
अयं जरिम्णः शेविधररिष्ट इह वर्धताम्॥

(अथर्व ७।५।३।५)

अर्थात्—प्राणापान इसके शरीर में प्रविष्ट होते रहें, जैसे गोष्ठ में दो बृषभ हों। स्तोता की यह आयुरूप निधि अरिष्ट (अक्षय) रूप में बढ़ती रहे। च्यवन के सदृश हम सब को भी दृढ़ संकल्प से कहना चाहिए—

पुनः प्राण पुनरात्मा न ऐतु पुनश्चक्षुः पुनरसुर्न ऐतु।
वैश्वानरो नो अदब्धस्तनूपा अन्तस्तिष्ठाति दूरतानि विश्वा
सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा संशिवेन।

त्वष्टा नोऽत्र वरीयः कृणोत्वनु नो मार्ष्टु तन्वो यद्विरिष्टम्
(अथर्व ६।५३।२।३)

अर्थात्—मेरे शरीर में प्राण, आत्मा, चक्षु और जीवन की पुनः प्रतिष्ठा हो। शरीर-रक्षक तनूपा अग्नि अधृष्य रहकर सब दुरितों को हटाता रहे। वर्चस्, प्राण रस और तनु के साथ हमारा मेल रहे। हमारे शरीर में जो जीर्णताका अंश (विरिष्ट (Decaying elements) हो, उसे त्वष्टा या शरीर के निर्माता प्राण धो डालें।

महर्षि स्वामी दयानन्द जी स्वयं वैदिक विधि अनुसार ब्रह्मचर्य पूर्वक प्राणायाम रूपी च्यवनप्राश औषध नित्य प्रति प्रयोग करके पूर्ण पुरुष बन गए और दूसरी सब सच्चाईयों की भान्ति इस अनुभूत सचाई को भी सारे संसार की भलाई के निमित्त अपने व्याख्यानों और लेखों में अत्यन्त उत्तमत्तासे दरशाते रहे और सध्या के मन्त्रों में प्रामायाम मन्त्र को स्थान देकर बहुत बड़ा उपकार कर गए। अब तो पश्चिसी देशों के विद्वान भी इस ओर आकर्शित हो रहे हैं। और इस औषध का नाम Long breatthing रखकर इस का अभ्यास कर रहे हैं। एक अमरीकन विद्वान ने अपने निजी अनुभव को Young at sixty नामी पुस्तक में प्रकाशित कर च्यवन ऋषि की कथा का समर्थन कर दिया है। आओ महर्षि के बताए इस असल च्यवन प्राश का सेवन कर बुढ़ापे और कमजोरी को दूर कर युवा-वस्था को प्राप्त करके महर्षि की जय जयकार मनाएं। जिनकी कृपा से दूसरे अमूल्य रत्नों के साथ ही यह अमूल्य प्रयोग भी प्राप्त हुआ है।

१५ काण्ड समाप्त

१६. काण्ड

अचम्भे की बातें

१—क्या यह अचम्भे की बात नहीं है कि जिस नमक के कानून को महर्षि ने १८७५ में अन्याय पूर्ण घोषित किया था १९२९ में सब से पहले गान्धी जी ने उसको तोड़ने के लिए डान्डी मार्च किया था। और सारे देश में इस कानून को सब ने तोड़ा था।

(2) क्या यह अचम्भे की बात नहीं है कि अंग्रेज़ी देश से निकल जाओ की अपनी इच्छा महर्षि ने १८७२ में इस वक्त के Viceroy Lord Northbrook के सामने प्रगट की थी उसी को १९४२ में Quit India नाम प्रस्ताव कांग्रेस ने स्वीकार किया था

(३) क्या यह अचम्भे की बात नहीं है कि वरतमान काल में सारे संसार में अब से पहले १९०३ में महर्षि के एक शिष्य ने हवाई जहाज़ बना कर उड़ाया था (देखो इसी पुस्तक का पृष्ठ ४५६)

(४) क्या यह अचम्भे की बात नहीं है कि १९०५ की बंगाल बग़ावत में आर्य समाज का हाथ था जैसा की फ्रांस के प्रसिद्ध लेखक ने लिखा है।

'His Arya smaj whether he wished it or not prepared the way in 1905 for the revolt of Bengal. He was one of the most ardent prophets of re-cnstruction and national organisation. I feel that it was he who kept the vigil'.

भावार्थ—इसके आर्य समाज के सन् १९०५ में, बंगाल की

बग़ावत के लिए रास्ता साफ़ किया। वह यानि स्वामी दयानन्द पुन निर्माण का एक अत्यन्त उत्साही पैग़म्बर था।

(५) क्या यह अचम्भे की बात नहीं है कि १९०४ में जब कांग्रेस दो दलों में बट गई तो दोनों दला के नेता महर्षि के ही शिष्य थे।

(६) क्या यह अचम्भे की बात नहीं है कि १९०५ में कांग्रेस ने लाला लाजपतराए और गोपाल कृष्ण गोखले को भारत के हितों का प्रचार करने विलायत भेजा था और यह दोनों ही महर्षि जी के शिष्य थे।

(७) क्या यह अचम्भा नहीं है कि विधान सभा में कांगरसियों का बहु मत होते हुए और बापू वा नेहरू की इच्छा न होते हुए भी हिन्दी भाषा देव नागरी अक्षरों में राष्ट्र भाषा स्वीकृत की गई।

आठवां अचम्भा

जब अंगरेज़ों के सर पर आर्य समाज सवार हो गया था

१९०७ ई० में लाला लाजपतराय और शहीद सरदार भगत सिंह के चाचा श्री अजीतसिंह को बन्दी बना कर माण्डले ले जाया गया उन दिनों आर्य समाज अंग्रेज़ों के सर पर बुरी तरह सवार था। श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी उन दिनों की घटना सुनाया करते थे जिस से अग्रेजों की उस समय की मानसिक दशा का ठीक रूप से पता चल जाता है। स्वामी जी कहा करते थे कि उन दिनों एक मुसलमान सैनिक ने अपने अंग्रेज़ आफ़िसर से किसी आवश्यक काम के लिए छुट्टी मांगी। अंग्रेज़ आफ़िसर ने छुट्टी देने से इन्कार कर दिया। फ़ौजी ने पुनः अपनी प्रार्थना को दोहराया। अग्रेज आफिसर ने फिर भी इन्कार कर दिया। इस पर वह सिपाही बोला साहब मझे बहुत आवश्यक काम है आप छुट्टी स्वीकार करें या न करें मैं अवश्य चला जाऊंगा। इस पर अंग्रेज आफ़िसर ने कहा कि तुम आर्य समाजी

मालूम होते हो (क्योंकि उन दिनों अंग्रेज़ों के मस्तिष्क में यह बात घर कर चुकी थी कि आर्य समाजियों के अतिरिक्त और कोई अंग्रेज़ों के सामने बोलने का साहस नहीं कर सकता) इस पर फौजो कहने लगा साहब मैं तो मुसलमान हूं तो अंग्रेज बोला वैल ! तुम मुसलमान आर्य समाजी हैं।

(६) महत्व-पूर्ण अचम्भा

महर्षि की महानता का एक अनुपम उदाहरण जिस को आर्य कहलाने वालों में से घी ६६ प्रतिशत सज्जन नहीं जान पाये ॥

अंग्रेज़ों की कूट नीति की तह तक महर्षि दयानन्द कितनी शीघ्रता से पहुंचते थे और कितनी ज़ोरदार भाषा में उसका खण्डन करते थे, ये बात आप को निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट हो जायेगी, सन् १६५७ में आज़ादी की पहली लड़ाई जिसको अंग्रेज़ ग़दर का नाम देते थे, समाप्त हो गई। और किन्हीं कारणों से वह सफल न हुई, इस पर भारतवासियों को राम करने के लिए अंग्रेज़ों ने एक गहरी चाल चली। जिस तरह जानवरों के पकड़ने के लिए शिकारी ऊपर जाल बिछाकर नोचे दाना बखेरते हैं, इतो तरह नवम्बर १८५८ में उस वक्त के गवर्नर जनरल लार्ड कार्निवालस ने इलाहाबाद में एक दर्बार आम किया, और उस में मलका विक्टोरिया की तर्फ से वह घोषणा पढ़ कर सुनाई। जिससे महारानी विक्टोरिया ने यह विश्वास दिलाया था "कि उनके राज्य में किसी के भी धर्म में कोई हस्ताक्षेप नहीं किया जावेगा, अपने वा पराए का भेद-भाव न बर्ता जावेगा, भारतीय प्रजा के प्रति माता पिता के समान कृपा, न्याय एवं दया दृष्टि से व्यवहार किया जावेगा। और अंग्रेज़ी राज्य को भारतीयों के लिए पूरी तरह सुखदायक बनाया जावेगा।'

और महर्षि जी ने सन् १८७५ में सत्यार्थ प्रकाश बना कर इस घोषणा के बखिये उधेड़ दिये, आप स्वराज्य महिमा शीर्षक में दिये गये महर्षि के शब्द पढ़िये जो इस पुस्तक के पृष्ठ १४६ पर लिखे हैं तो आप हैरान होंगे, कि महर्षि ने कितनी निर्भयता से मलका विक्टोरिया के राजकाल में, मलका के एक एक शब्द को लिख कर उसका कितना पुरज़ोर खण्डन किया है। क्या इससे भी बढ़ कर महाराज की नीति कुशलता, निर्भीकता और आत्मिक शक्ति का प्रमाण कहीं मिल सकता है। विदेशियों और विदेशी राज्य के प्रति उनकी घृणा उनके एक एक शब्द से फूट फूट कर जाहिर हो रही है। स्वराज्य महिमा के यह शब्द जो महर्षि जी ने सत्यार्थ प्रकाश (८) में लिखे हैं वह तो आप के से बहुत से सज्जनों ने कई बार पढ़े और सुने होंगे, परन्तु यह शब्द महर्षि जी ने किन विचारों की प्रति क्रिया में लिखे थे, यह आप में से बहुत ही कम सज्जनों को पता लगा होगा। इन शब्दों के लिखने का महर्षि का प्रयोजन महारानी विक्टोरिया की घोषणा का पुरज़ोर खण्डन था, ताकि भोले भाले भारतीय अंग्रेज़ों के इस शब्द जाल में फंस कर अपने देश के प्रति कर्त्तव्य को भूल न जावें यह जानोकारी होने पर निश्चय रूप से आप महर्षि की महानता को समझने में समर्थ हो सकेंगे।

(११) पचास करोड़ रुपए का मन्दिर

महर्षि दयानन्द सरस्वति जो ने अपनी पुस्तक भ्रान्ति निवारण में लिखा है कि "मैं अपने निश्चय और परोक्षा के अनुसार ऋग्वेद से लेकर पूर्व मीमांसा पर्यन्त अनुमान से ३००० ग्रन्थों के लगभग प्रामाणिक मानता हूं। अब यह विचारणीय विषय है कि जिस महापुरुष ने ३००० ग्रन्थ मानने योग्य चुने होंगे, उसने कितने हजार ग्रन्थ पढ़े और विचारे होंगे। ऐसा अनुमान सहज में ही हो सकता है। और अजमेर में जिन्होंने महर्षि का पुस्तकालय देखा है।

उनको पता लग सकता है कि तीस चालीस हज़ार ग्रन्थ इसमें रखे हैं। इतने ग्रन्थ पढ़ कर महर्षि जी ने लासानी ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश की रचना की थी । इस गन्थ को आदि से अन्त तक ग़ौर से पढ़ लेने वाला मनुष्य संसार भर के सब मज़हब और सारी विचार धाराओं को अत्यन्त सरलता से समझ सकता है, और सभी के गुण दोष उसको प्रत्यक्ष हो जाते हैं। आप यह जान कर खुश होंगे के महर्षि के इसी प्रयत्न के अनुकूल सकल संसार की रुहानियत की देख रेख़ करने वाली संस्था Spiritual united Nations ने अमरीका में ५० करोड़ रुपया कीलागत से एक ऐसा मन्दिर तैयार करने की योजना बनाई है। जिसमें हिन्दुइज़म, बुद्धइजम, कनफ्यूशसइज़म जोडाइज़म, (यहूदी मज़हब) ईसाईयत और इस्लाम की सब पुस्तकें रखी जायेगो और इस मन्दिर का नाम करण किया गया है। समझने का मन्दिर।" इसके मुतल्लिक हिन्दुस्तानस्टेण्डर्ड अखबार ७—१०—६२ का निम्नलिखित उद्धरण है :—

"Temple of understanding' spiritual united Nations have planned to erect a temple at the cost of ten kror dollars in America, where Hinduism, Buddism Confusiousism, Judaism, Christianity and Islam will be lodged in one temple.

क्या यह मन्दिर सत्यार्थ प्रकाश का हो मन्दिर सिद्ध नहीं होता। जिस एक पुस्तक को पढ़ लेने से सब मज़ाहब की एक दम समझ आ जाती है। निश्चय से सत्यार्थ प्रकाश ही Temple of undeistanding है इसक सम्बन्ध में निम्नलिखित पंक्तियां पढ़ कर आप मेरे साथ पूर्ण रूप से सहमत हो जाएंगे।

महर्षि दयानन्दजी का एक उद्देश्य

(Mutual Understanding)

'सत्यार्थप्रकाश' भूमिका में ऋशि दयानन्द जी ने इस प्रकार अपने मुख्य उद्देश्य का वर्णन किया है।

"जिससे सब से सब का विचार होकर परस्पर प्रेमी हो के एक सत्यमतस्थ होवें। यद्यपि मैं आर्यावर्त देश में उत्पन्न हुआ और बसता हूं, तथापि जैसे इस देश के मत मतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर यथातथ्य प्रकाश करता हूं, वैसा ही दूसरे देशस्थ व मतोन्नति वालों के साथ भी वर्तता हूं, जैसा स्वदेश वालों के साथ मनुष्योन्नति के विषय में वर्तता हूं, वैसा विदेशियों के साथ भी, तथा सब सज्जनों को भी वर्तना योग्य है।"

"आजकल अनेक विद्वान प्रत्येक मत में मौजूद हैं। यदि वे पक्षपात रहित होकर सर्वतंत्र सिद्धान्तों (उच्च असूलों) को, अर्थात जो बातें सब के अनुकूल सब में सत्य हैं, उनका ग्रहण करें और जो एक दूसरे के विरोधी बातें हैं उनका त्याग कर परस्पर प्रेम का व्यवहार करें और करायें तो जगत को ठीक ठीक उपकार हो सकता है। क्योंकि विद्वानों के विरोध से मूर्खों में द्वेष-भाव बढ़ाने से भिन्न भिन्न प्रकार के दु:खों का बाहुल्य और सुखों का अभाव होता है।"

ग्यारवें समुल्लास की अनुभूमिका में फिर इस प्रकार स्वामी जी लिखते हैं—"यह निश्चय है कि इन विद्वानों के विरोध ने ह सब को विरोध जाल में फंसा रखा है। यदि ये लोग अपने प्रयोजन में न फंसकर सब के प्रयोजन को सिद्ध करना चाहें तो अभी एक्यमत हो जावें। इसके होने की युक्ति इस ग्रन्थ की पूर्ति में लिखेंगे। सर्वशक्तिमान परमात्मा एक मत में प्रवृत होने का उत्साह सब मनुष्यों के आत्माओं में प्रकाशित करें।"

पुन: तेरहवें समुल्लास की अनुभूमिका में ऋषिजी ने लिखा

है कि जो जो सर्वमान्य सत्य विषय हैं। वे तो सब में एक से हैं, झगड़ा झूठे विषयों में होता है।

चौदहवें समुल्लास की अनुभूमिका में ये शब्द आते हैं। "यह लेख केवल मनुष्यों की उन्नति और सत्यासत्य के निर्णय के लिए सब मतों के विषयों का थोड़ा थोड़ा ज्ञान होवे इससे मनुष्यों को परस्पर विचार करने का समय मिले और एक दूसरे के दोषों का खण्डन कर गुणों का ग्रहण करें न किसी अन्य मत पर न इस मत पर झूठ मूठ बुराई लगाने का प्रयोजन है किन्तु जो जो भलाई है वही भलाई और जो बुराई है वही बुराई सब को विदित होवे, न कोई किसी पर झूठ चला सके और न सत्य को रोक सके और सत्यासत्य विषय प्रकाशित किये पर भी जिसको इच्छा हो वह न माने वा माने किसी पर बलत्कार नहीं किया जाता और यही सज्जनों की रीति है कि अपने वा पराये दोषों के दोष और गुणों को गुण जान कर गुणों को ग्रहण कर और दोषों का त्याग करें करावें क्योंकि पक्षपात से क्या क्या अनर्थ जगत में न हुए और न होते हैं। सच तो यह है कि इस अनिश्चित क्षणभंग जीवन में पराई हानि करके लाभ से स्वयं रिक्त रहना और अन्य को रखना मनुष्यपन से बहिः है क्योंकि परस्पर हानि पहुंचाने से दूर होकर, प्रत्येक को लाभ पहुंचाना हमारा विशेष कार्य है।"

ऋषि दयानन्द जी का मुख्य उद्देश्य है कि सब को परस्पर निकट लाना और मनुष्य मात्र का कल्यण्ण करना। भेद भाव का परित्याग कर मनुष्यों में प्रेम और परस्पर सहानुभूति उत्पन्न करना इसलिए आर्यसमाज का छठवां नियम इस प्रकार निर्धारित करते हैं।

"संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।"

फिर सातवें नियम में कहा गया है, 'सब से प्रेम पूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्ताव करना चाहिए।'

अभी इस प्रकार के वायुमण्डल पैदा करने के लिये ऋषि दयानन्दजी ने प्रथम बल दिया है। इस बात पर तो सब मतान्तरों में मूल धार्मिक सिद्धान्तों में समानता है। अपने निश्चय वर्णन करने के पूर्व स्वामी जी ने कहा है कि "सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् साम्राज्य सार्वजनिक धर्म जिस को सदा से मानते आये, मानते हैं और मानेंगे भी इसीलिये उसको सनातन नित्य धर्म कहते हैं।"

इस विचार को अधिक स्पष्ट करने के लिये ऋषिजी सत्यार्थ प्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में इस प्रकार उल्लेख करते हैं "देखो! जिस बात में वे हजार ही एक्यमत के हों, वही वेदमत है और स्वीकार करना चाहिए। फिर उस सहस्त्रों की सभा में जिज्ञासु ने खड़े होकर कहा 'सुनिये सब लोगो! सत्य बोलने में धर्म है अथवा असत्य में। सब ने एक स्वर में कहा कि सत्य कहने में धर्म और असत्य बोलने में अधर्म। उसी प्रकार विद्याध्यन, ब्रह्मचर्य पालन पूर्ण जवानी में विवाह करना, सत्संग, पुरुषार्थ और सत्य व्यवहार को धर्म कहा गया है

मनुष्य मात्र में एकता स्थापनाथ यह बात सुविचारणीय है कि धर्म उन मुख्य सिद्धान्तों का नाम है, जो सर्व मतों में विद्यमान हों, और जिन्हें सब मनुष्यों की आत्मा मानती है। उन सिद्धान्तों को ईश्वर के अतिरिक्त धृति, क्षमा, तप, चोरी का त्याग, शुद्धता, इन्द्री निग्रह विचार, प्रभु परायणता आदिनामों से पुकारा जाता है। उन्हीं सिद्धान्तों को ऋषि पाताजालनेयम और नियमों रूपी दो पंचकों में वर्णन किया है। आजकल पंचशील का नाम राजनीति में साधारणतः लिया जाता है। यह भी इन सिद्धान्तों पर ही निर्भर है।

इस बात को सभी मान्य करेंगे। इसमें विचारों का अधिक मतभेद दिखाई नहीं देता। परन्तु कठिनाई वहां पैदा होती है, जहां दंतकथाओं और महात्मय आते हैं। वे कथायें भिन्न भिन्न मतों में

विभिन्न प्रकार से वर्णित हैं इसलिए संसार में संघर्ष हो रहा है। इस संघर्ष को दूर करने के लिए आवश्यक है कि अपनी आलोचक दृष्टि को तीव्र बनावें। परन्तु उस दृष्टि की तीव्रता को रखते हुए उस में से उदारताओं को दूर नहीं करना चाहिए। इस दृष्टिकोण का व्यापक विस्तार करने का ऋषि दयानन्दजी को वर्णन करने का समय प्राप्त नहीं हुआ। परन्तु उन्होंने मत मतान्तरों की आलोचना करते, कुछ कुछ संकेत दिये हैं। यहूदियों को कुर्बानी को आर्यों के यज्ञ का अपभ्रंश करके दिखाया है। मुसलमानों के रोजों की चन्द्रायण व्रत से तुलना करते हैं ऋषिजो के इन इशारों के आधार पर उनके अनुयायों ने बाद में कई पुस्तकें लिख डाली हैं। उदाहरणार्थ मास्टर लक्ष्मण रामनगरी के वेद और कुरान नामक पुस्तक के कितने पृष्ठ प्रकाशित हुए हैं। जज गंगाशसादजी ने अग्रेजी मेंFountain head of Religions पुस्तक लिखी है। जिस में आपने इस्लाम, ईसाईयों, पारसियों और बुद्ध धर्म आदि के सिद्धान्तों और विचारों को वेद की उपज सिद्ध किया है। पण्डित रघुनन्दनशर्मा ने वैदिक सम्पत्ति नामक एक सुन्दर ग्रन्थ में इसी विचारधारा को विकासित किया है न सिर्फ आर्य समाज के लोगों ने इस क्षेत्र में अपना पग बढ़ाया है, परन्तु अन्यों पर भी ऋषिजी समालोचना का अमिट प्रभाव पड़ा है। मुसलमानों में नचरलियन और तावानयिन स्वग नरक आदि और हूरों आदि के विचारों का नया रूप प्रदर्शित किया है। उमेदअली की पुस्तक और स्वर्गीय मौलाना अब्दुलकलाम आजाद के कुरान का अनुवाद भी इस बात के साक्षी हैं। नारायण आयर ने भारत वर्ष के नित्य नैमत्तिक इतिहास नामक पुस्तक में पौराणिक कथाओं को ज्ञान, धर्म और भक्ति को तीन काण्डों के अन्तगत लाने का प्रयत्न किया है। यथार्थवादियों में से कितने भागवद् को नया रूप प्रदान करते हैं। ईसाईयों ने भी वह रास्ता अपनाया है इस विचारधारा पर अधिक विचा पूर्वक ख्याल किया जायेगा। हज़रत नूह की किश्ती

की कथा मनुमहाराज की मच्छी कमाई वाली कहानी के तुलनात्मक भाव में आती है। पारसियों के अहरमज़ो और अहरमन का ख्याल इन्द्र और वृत्तासुर के युद्ध से भेंट करते हैं चतुर गुप्त और करामताल का-तबियन में परस्पर साम्यता दिखाई देती है। चौथा आसमानत्रिया-वस्था में ठहर सकता है। इस प्रकार सभी मतमतान्तरों की कथाओं के अन्तर्गत एकता दिखने में आयेगी और विरोध कम हो जायेगा।

मनुष्य मात्र में एकता स्थापित करने के लिए मौलिक नैतिक सिद्धान्तों को ही सच्चा धर्म मानना चाहिये। इसके पश्चात् किव-दंतियों और देव देवताओं का तुलनात्मक वर्णन करना चाहिये। भेंट करने से विदित होगा कि पद्धति भिन्न है, किन्तु उसूल अभिन्न है। आत्मा एक है देह अनेक।

इस प्रकार एकता स्थापित करने के पश्चात् भी कुछ भ्रम आदि रहेंगे। इन भ्रमों को मिटाने के लिये, उन के इतिहास का अभ्यास करना होगा। उनकी वास्तविकता को देखना होगा। जैसे जैसे वस्तु स्थिति का पता लगाया जायेगा वैसे वैसे इन भ्रमों के जाल से छुटकारा प्राप्त होगा और सैद्धान्तिक एकता दृढ़ होगी।

ऋषि दयानन्द का लक्ष्य प्रत्येक मनुष्य मात्र को संगठित करने का था न कि परस्पर द्वेष भाव बढ़ाने का। इसलिये उन्होंने तीन साधन प्रयोग में लाये हैं। प्रथम नैतिक सिद्धान्तों पर बल दिया है, दूसरा दंतकथाओं की साम्यता का संकेत दिया है और तीसरा भ्रमों को दलील की बारूद से उड़ाने का प्रयत्न किया है।

इस लिए ही तो मैंने कहा है कि सत्यार्थ प्रकाश ही Tem-pole of Understandieng सिद्ध होता है।

अचम्भा काण्ड समाप्त हुआ

१८ महिमा कांड

१. सत्यार्थ प्रकाश की महिमा

"महर्षि दयानन्द जी के सभी ग्रंथ राष्ट्र भाषा में हैं, जिस से स्पष्ट ज्ञात होता है कि वे राष्ट्र भाषा के कट्टर पुजारी थे। उनका महत्वपूर्ण ग्रंथ "सत्यार्थ प्रकाश" है। एक बार विरोधी भी इस ग्रंथ को पढ़ ले तो वह ऋषि का भक्त बन जाता है। इस ग्रंथ के सामने विरोधी टिक नहीं सकते हैं। इस में १४ समुल्लास हैं। प्रथम समुल्लास में ईश्वर नामों की व्याख्या और मंगलाचरण का वर्णन है, द्वितीय में शिक्षा, भूतप्रेतादि निषेध और जन्मपत्री समीक्षा, तृतीय में पठन पाठन स्त्री शूद्र वेदाधिकार, चतुर्थ में विवाहकाल तथा गृहस्थाश्रम का पूर्ण वर्णन पंचम में बानप्रस्थ और संन्यास, षष्ठ में राजधर्म सप्तम में ईश्वर, ईश्वरीय ज्ञान वेदोत्पत्ति, वेद विषयक विचार. अष्टम में सृष्टि की उत्पत्ति स्थलनिर्णय नवम में विद्याऽविद्या बंध मोक्ष का वर्णन दशम में आचारानाचार भक्ष्याभक्ष्य; एकादश में आचाराचार, भक्ष्याभक्ष्थ, एकादश में अवतार, मूर्तिपूजा, तीर्थ तथा समस्ष सम्प्रदायों की आलोचना है। द्वादश में बौद्ध, जैन और नास्तिकों का, त्रयोदश में वाईबिल आलोचना और चतुर्दश में कुरान की अलोचना है।

यह ग्रंथ वैदिक धर्म का निचोड़ है। ऐसा निष्पक्ष ग्रंथ आज तक किसी भाषा में नहीं लिखा गया है। पौराणिक पण्डितों ने इस पर लेखनी उठाई पर सब को मुंह की खानी पड़ी यथा विद्या वारधि पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र ने "दयानन्द तिमिर भास्कर' लिखा, जिसका करारा उत्तर पं० तुलसीराम स्वामी ने "भास्कर

प्रकाश" के द्वारा दिया । पं० कालूराम शास्त्री ने "आर्य समाज की मौत" लिखे, जिसका करारा उत्तर पं० मनसाराम वैदिकतोप' ने 'पौराणिकपोल-प्रकाश' के द्वारा दिया । 'सत्यार्थप्रकाश' पर प्रतिबंध लगाने के लिए सिंध सरकार, भोपाल सरकार ने आज्ञा निकाली पर आर्य समाज के आगे उनको घुटने टेकने पड़े । 1. बंगाली, 2. उर्दू . 3. अंगजी, 4. पंजाबी, 5. संस्कृत, 6. सिंधी, 7. उड़िया, 8. कनाड़ी, 9. तमिल, 10 तेलगू, 11. मलयालम, 12. मराठी, 13. गुजराती, 14. फ्रेंच 15. जर्मन, 16. पश्तो, 17. ब्रह्मी और नैपोली भाषाओं में इस अमर ग्रंथ का अनुवाद हो चुका है ।

बड़े २ दिग्गज विद्वानों ने सत्यार्थ-प्रकाश' को एक महान् तथा उपयोगी ग्रंथ बतलाया है । यहां थोड़े से मत उन विद्वानों के दिए जाते हैं—

१. "स्वामी दयानन्द कृत ग्रंथों में सत्यार्थप्रकाश सर्वोत्तम है । उन्होंने इस पुस्तक में स्पष्ट रूप से बतलाया है कि मैं हिन्दुओं में कोई नया मत स्थापित करना नहीं चाहता ।'

२. "स्वामी दयानन्द के सिद्धांत उनके सत्यार्थ प्रकाश में सन्निवेष्टित हैं । यही सिद्धांत वेद भाष्य भूमिका में है । स्वामी दयानंद एक धार्मिक सुधारक थे ।' (सर वेलन्टायन चिरौल)

३. "हिन्दू जाति की ठण्डी रगों में उष्ण रक्त का संचार करने वाला यह ग्रंथ अमर रहे, यही मेरी कामना है । 'सत्यार्थ-प्रकाश' की विद्यमानता में कोई विधर्मी अपने मजहब की शेखी नहीं मार सकता ।' (श्री विनायक दामोदर सातवलेकर जी)

४. "...ऋषि ने अपने देशवासियों तथा समस्त विश्व को 'सत्यार्थप्रकाश' के रूप में जो अविनश्वर वसीयत दी है, वह उसकी प्रकाण्ड प्रतिभा का प्रतीक है । (श्री श्याम प्रसाद जी मुखर्जी)

५. "मैं ने सत्यार्थप्रकाश को कम से कम १८ बार पढ़ा । जितनी बार मैं उसे पढ़ता हूं मुझे मन और आत्मा के लिए कुछ

नवीन भोचन मिलता है। पुस्तक गूढ़ सचाइयों से भरी पड़ी है।' (स्व० पं० गुरुदत्त जी विद्यार्थी एम. ए.)

६. सत्यार्थप्रकाश स्वामी दयानन्द का ज्ञान कोष है। इस में वैदिक धर्म का सर्वथा क्रियात्मक रूप वर्णित है। यह दक्षिण भारत में प्रचलित विभिन्न मतवादों और धार्मिक विश्वासों के कारण वहां अत्यधिक उप ोगी सिद्ध होगा।' (श्री. ए. रंगास्वामी आयंगर एम. एल. ए, सम्पादक 'हिन्दु' ग स्वदेश मित्रन् मद्रास)

७ "मैंने भारत में आकर सच्चे हिन्दू धर्म का परिचय सत्यार्थप्रकाश के स्वाध्याय से पाया है, क्योंकि मार्ग से भटकने वालों के लिए यह पथप्रदर्शक है' (पादरी सी० एफ० एण्ड्र्यूज)

८. 'मैंने सत्यार्थप्रकाश' को पढ़ा है। मुझे इस में अपनी आत्मा के दर्शन होते हैं, मैं अनुभव करता हूं कि ऋषि दयानंद के जीवन के साथ मेरा कितना घनिष्ट सम्बन्ध है।' (साधु टी० एल० बास्वानी)

"मैं अपनी जनता को महर्षि दयानन्द के महान् ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' पढ़ने का परामर्श दूंगा। यह उन्हें वेदों की महती और स्थायी सत्यता का ज्ञान देगा। उन्होंने स्त्रियों के अधिकारों का जैसा पक्ष ग्रहण किया है, वैसा प्रगतिशील समर्थन संसार में कहीं नहीं मिलेगा। (श्रीसत्यमूर्ति बी० ए०, बी० एल, एम० एल० ए० सैन्ट्रल)

१०. "...सत्यार्थ प्रकाश केवल आर्य समाजियों की ही पवित्र पुस्तक नहीं हैं,वरन् जिन का विश्वास वैदिक संस्कृति में है उन लाखों लोगों के लिए है।' (श्री एन० सी० चटर्जी बार-एट-ला कलकत्ता)

११. 'जेल की दीवारों के पीछे एक वर्ष तक 'सत्यार्थ प्रकाश' मेरा मित्र, प्रकाशदाता और जीवन बना रहा। 'सत्यार्थ-प्रकाश में वेदों का तत्व है।'

(श्री सी० एस० रंगा आयर एम० ए०)

१२. इस महान ग्रंथ के अध्ययन से मेरी विचार धारा ही बदल गई है। सोई हुई जाति के स्वाभिमान को जागृत करने वाला, यह ग्रंथ अद्वितीय है। (श्री हरदयाल जी एम० ए० पी० एच० डी)

१३. "सनातन धर्म का रहस्य समझने के लिए वेद और केवल वेद ही हमारा मार्ग प्रदर्शन कर सकते हैं। सत्यार्थ प्रकाश में वेदों का तत्व है। मैं खण्डन किए बिना कह सकता हूं कि सत्यार्थ प्रकाश हमारी सभ्यता की कुंजी है।' (सर टी० वी० शेषगिरि आयर, रिटायर्ड जज मद्रास हाईकोर्ट)

१४ "...स्वामी दयानन्द हमारे महर्षियों में से एक थे और उन का लिखा हुआ 'सत्यार्थ-प्रकाश, हमारे धर्म का एक महत्वपूर्ण शास्त्र है। (श्री सी० विजय राघवाचार्य एम. ए.)

१५. "सत्यार्थ-प्रकाश का ग्रंथ सच्चे सनातन धर्म का सन्देश देन के साथ साथ अंधश्रद्धा और पाखण्ड को दूर करता है। उसके पढ़ने से तर्कशक्ति का विकास होता है। मनुष्यमात्र के कल्याण की भावना से यह ग्रंथ लिखा गया है'। (सेठ जुगल किशोर जी बिड़ला)

"...ऋषि दयानन्द ने अपने सत्यार्थ-प्रकाश में एक ओर तो युक्ति प्रमाणों से वैदिक सिद्धांत की स्थापना की और विविध मत-मतांतरों की न्यायपूर्ण युक्तियुक्त समीक्षा भी की।...सत्यार्थ प्रकाश ने धार्मिक जगत् में क्रांति उत्पन्न कर दी है। सत्यार्थ प्रकाश संसार का दिग्दर्शक यन्त्र है।' (प्रो० रमेशचन्द्र बैनर्जी एम. ए.)

"...सत्यार्थ प्रकाश वेद के तत्वों का प्रकाशक है। (डा० राधा कुमुद मुकर्जी एम० ए०)

महर्षि महिमा

दयानन्द—भारतीय एकता का प्रतिपादक

गौतम बुद्ध ने शुद्धोदन राजा के घर जन्म लेकर और जीवन के दुःख-क्लेश मोचन करने के अभिप्राय से गृह त्याग किया था और फल्गु नदी के तीर पर छः वर्ष तक ध्यानावस्थित रहकर, उसके

प्रभाव से बुद्धिलाभ किया था। पहले वाराणसी में और उसके पश्चात उत्तर भारत में अनेक स्थानों में परिभ्रमण करके और निर्वाणतत्व को प्रचरित करके लखूखा मनुष्यों के लिए कल्याणपथ को उन्मुक्त किया था। और अन्त में कृष्ण नगरी के पास एक आम्रकानन में देह त्याग करके परम धाम किया था। परन्तु बुद्ध ने विच्छिन्न भारत को एकता के सूत्र में बांधने के पक्ष में क्या कभी एक बात भी कही ? हमें उत्तर में यही कहना पड़ता है कि नहीं।

नम्बूद्रि ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर शङ्कराचार्य ने छोटी ही अवस्था में संन्यास ग्रहण कर लिया था। अलौकिक प्रतिभा से वह अल्पावस्था में ही अगाध विद्या के पारदर्शी हो गये थे। वेदान्त-सूत्र का अनुपम भाष्य रचकर वह संसार में अविनश्वर कीर्ति स्थापित कर गए हैं, भारत के बहुत से स्थानों में पर्य्यटन करके अपने सुशाणित तर्कास्त्र के प्रभाव से नाना दिग्देशीय पण्डित-मण्डली को पराभूत करके वेदान्त मत का प्राधान्य स्थापित कर गये हैं, सौ मनुष्य भी अपने जाने हुए विषय को एकत्र करके जिस कार्य के करने में असमर्थ हैं, शङ्कराचार्य उसे बत्तीस वर्ष की आयु में अकेले ही सम्पादित करके दिव्यधाम को प्रस्थान कर गये हैं। शङ्कराचार्य यह सब कुछ कर गये, परन्तु क्या उन्होंने विभक्त और विच्छिन्न भारत में ऐक्य स्थापन के लिए कोई यत्न किया ? उत्तर सिवाय नहीं के और कुछ नहीं हो सकता।

बङ्गभूमि के प्रान्चल भाग गौरव श्री गौराङ्गदेव नवद्वीप में आविर्भूत होकर बङ्गाल को भक्ति की तरङ्ग में निमग्न कर गये, नमाजपन और नामकीर्तन के महात्म्यविस्तार को चारों दिशाओं में प्रतिष्ठित कर गये, सङ्कीर्तन के पूत, पवित्र, पुण्यमय स्त्रोत को उन्मुक्त करके दीन-हीन मनुष्यों को स्वर्ग की ओर खींच ले गये, तन्त्रोक्त घृणित और जुगुप्सित आचार, विचार से सैंकड़ों मनुष्यों की रक्षा करके देश का अशेष कल्याण कर गये। परन्तु क्या उन्होंने

भारत में भारतीयता स्थापन करने के लिए कभी एक बात भी कही ? हमें कहना पड़ता है, एक भी नहीं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत में जितने भी आचार्य हुए हैं वे सब के सब इस विषय में चुप हैं। यह हो सकता है कि उनके लिए जो समग्र मानव मण्डली के दुखःहरण का कठोरतम व्रत धारण करते हैं देश विदेश अथवा जातिविशेष की उन्नति साधन करना क्षुद्र बात हो। यह भी हो सकता है कि जो अपनी आलौकिक ज्ञान-चक्षु के आलोक से संसार को ही नहीं, विश्व भर को ही मिथ्या सिद्ध करके दिखा गये हैं। जो अपनी अद्भुत शक्ति के प्रभाव से सारे जगत के अस्तित्व बोध को "सर्प और रज्जु" के उदाहरण के समान एक महा भ्रम बताए गये हैं, उनके लिए किसी देश में ऐक्य स्थापन करना एक तुच्छ बात रही हो। यह ठीक ही है कि उनके लिए जो ईश्वर प्रेम में अहर्निश उन्मत रहते थे कि किसी देश विशेष की उन्नति एक गौण बात रही हो। हम यहाँ तक भी कह सकते हैं कि इन बातों का वास्तविक आध्यात्मिक महत्व न भी हो तथापि यह अवश्य मानना पड़ेगा कि यह सब बातें किसी न किसी अंश में आवश्यक हैं। यदि मनुष्य अपने घर में दाल, चावल, घी, तेल, मिरच, मसाला आदि का संग्रह करता है, तो क्या दार्शनिक दृष्टि से वह कोई बड़ा काम करता है ? निस्सन्देह नहीं, परन्तु फिर भी ऐसा करना उसके लिए अत्यन्तावश्यक है, क्योंकि इन वस्तुओं के बिना उसकी देह रक्षा ही नहीं हो सकती। यदि कोई सूई के छिद्र में धागा पिरोकर वस्त्र सीता है वा अपने पुराने कपड़ों की मुरम्मत करता है तो क्या ऐतिहासिक दृष्टि से यह बड़ा काम गिना जाता है ? कदापि नहीं, परन्तु इसका करना उसके लिए आवश्यक है। यदि मनुष्य अपने घर के चारों ओर के गढ़े भरने के लिए गोबर मिट्टी लाता है, तो क्या राष्ट्रीय दृष्टि से इसे कोई महान कार्य कहा जा सकता है ? गढ़ों में सर्पादि जन्तु आश्रय लेकर पास रहने वाले मनुष्यों का प्राणनाश तक कर सकते हैं। फलतः उपर्युक्त कार्य समूह यद्यपि महत्वहीन समझे जाते हैं,

तथापि उन्हें करना ही पड़ेगा। यदि उनका सम्पादन न किया जाएगा तो देह रक्षा के विषय में अनेक विघ्न उपस्थित होंगे, यहां तक कि असमय में शरीर के विनाश की भी सम्भावना हो सकती है। यह सभी स्वीकार करते हैं कि देह रक्षा, समस्त आशा, भरोसा उन्नति और अकांक्षा की मूल है। इसलिए यह कार्य्य समूह सामान्य और अगण्य है और यद्यपि राष्ट्रीय वा दार्शनिक दृष्टि से इसका कुछ मूल्य नहीं है, तथापि उसका नियमित रूप से सम्पादन करना मनुष्य के लिए आवश्यक है।

इसी प्रकार देश में एकता स्थापन करना वा जातीयता के संसाधन की चेष्टा करना भी आवश्यक है। जिस देश में एकता नहीं परस्पर की प्रीति नहीं, सद्भाव और समवेदना का बन्धन नहीं, उस देश में जीवन यात्रा का निर्वाह निरापद नहीं हो सकता। जिस जाति के अन्दर जातीयता नहीं, जो जाति भाषागत, सम्प्रदायगत, रीति नीतिगत, आदर्शगत और धर्म्मगत विभिन्नताओं से शतधा छिन्न भिन्न हो रही हो, उस जाति का सदस्य रहना अनेक अंशों में ऐहिक और पारमार्थिक उन्नति में अनेक प्रकार से विघ्नकर ही होगा। यह बात कुछ सूक्ष्म है इसलिए हम उसे कुछ खोलकर कहना चाहते हैं।

बात यह है कि मनुष्य सामाजिक जीव है। वह अकेला रहकर सर्वतो भावेन, निःसंग वा सम्बन्ध रहित रहकर, किसी से कुछ साहयता न लेकर, देह यात्रा का निर्वाह नहीं कर सकता और उन्नति के मार्ग में एक पग भी आगे नहीं रख सकता। एक मनुष्य की उन्नति अवनति और कल्याण अकल्याण का सम्बन्ध उसके पड़ोसियों नगर निवासियों यहां तक की "समस्त स्वदेशवासी जन साधारण की उन्नति अवनति, कल्याण अकल्याण के साथ अविछिन्न रूप से है, यदि हमारे ग्राम, पथ, घाट आदि परिष्कृत और स्वच्छ न हों तो हम स्वास्थ्य भोग नहीं कर सकते। जैसे हम अपने शिक्षा भवन को

परिष्कृत रखना अपना कर्त्तव्य समझते हैं, वैसे ही अपने ग्राम, पथ, घाट आदि को भी स्वच्छ और निर्मल रखना हमें अपना कर्तव्य समझना चाहिए। यदि हम अपने पुत्र को सत्स्वभाव सम्पन्न रखना चाहते हैं तो हमें अपने ग्राम निवासियों को भी सच्चरित्र बनाने का यत्न करना पड़ेगा। यदि ऐसा न किया जाएगा तो ग्राम के बालक दुष्ट हो जाएंगे और उनके साथ मिलने जुलने से हमारे पुत्र के भी दुश्चरित्र हो जाने की सम्भावना होगी। यदि हम स्वयं साधु रहना चाहते हैं तो हमें अपने मोदी को भी साधु रखना होगा। कल्पना कीजिए कि हम छुट्टी पाकर वा पेंशन लेकर यह संकल्प करके अपने घर आये हों कि जीवन का शेष काल अध्यात्मिक चर्चा में बिताएंगे। अब यदि हमारा मोदी कुत्सित भक्ष्य द्रव्य हमारे उदर में पहुंचता है, हमारा ग्वाला अस्वच्छ पानी मिला हुआ दूध पिलाकर हमारे शरीर में रोग का संच्चार कर देता है, तो हम आध्यात्मिक चर्चा वा भजन साधन निरापद रूप से कैसे कर सकेंगे? बारम्बार रोगाक्रान्त रहते और अनेक प्रकार की घोरतर अशान्ति से पूर्ण जीवन व्यतीत करने से हम असमय में ही देह त्याग करके परलोक सिधार जाएंगे, फिर कहां रहेगा हमारा भजन साधन और कहां रहेगा आध्यात्मिक चर्चा का सङ्कल्प? इस प्रकार का एक और भी दृष्टान्त दिया जा सकता है, जिससे यह प्रमाणित होगा कि जैसे राष्ट्रीय उन्नति समष्टिगत उन्नति पर निर्भर है वैसे ही समष्टिगत उन्नति व्यक्तिगत उन्नति पर स्थित है। हमारी उन्नति दस मनुष्यों की उन्नति के साथ सम्बद्ध है और हमारी अवनति भी दूसरे मनुष्यों की अवनति के साथ ग्रथित है, क्योंकि हम सामाजिक जीव हैं। अब हम समझते हैं कि इस बात को अधिक विस्तार पूर्वक बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि देशवासियों में देशप्रेम का बन्धन वा देश में जातीयता का संगठन होना अत्यन्तावश्यक है।

मनुष्य जाति का इतिहास इस सत्य की स्पष्टाक्षरों में घोषणा करता है कि धन धान्य की उन्नति, शिल्प की उन्नति, साहित्य की उन्नति और अन्य सब प्रकार की उन्नति जातीय एकता, बल्कि यों कहना चाहिए, जातीय स्वाधीनता के बिना हो हो नहीं सकती। इसलिए स्थल विशेष के निष्कण्टक वा निरापद हुए बिना जीव को कैवल्य प्राप्ति वा परम पुरुषार्थ साधन की चेष्टा भी सफल नहीं हो सकती।

आर्य्यजाति के इतिहास की क्रमपूर्वक आलोचना करने से ज्ञात होता है कि इस अपेक्षाकृत सामान्य परन्तु नितान्त आवश्यक विषय के सम्बन्ध में न तो वैदिक समय के आचार्य गण, न बुद्ध और बौद्ध युग के उपदेष्टा और न चैतन्य, नानक प्रभृति सन्त महाजनों में से एक के मुख से ही एक शब्द निकला, मनु, अत्रि प्रभृति ऋषिगण स्मृतिकार भी अपनी स्मृतियों के किसी सूत्र में इस विषय पर किसी बात का वर्णन करके नहीं गये। मध्यवर्त्ती काल के पौराणिकगण भी इस विषय पर न अख्यान के रूप में और न उपदेश भाव से ही कोई उल्लेख कर गये हैं। अपेक्षाकृत आधुनिक समय के व्यवस्थापक और संग्रहकर्त्तागण भवदेवभट्ट, शूलपाणि, स्मार्त वृषोत्सर्गादि श्राद्ध के विषय में विस्तार पूर्वक व्याख्या कर गए हैं, यहां तक कि छींक और छपकली आदि के शुभाशुभ फल के सम्बन्ध में भी व्याख्या दे गए हैं, परन्तु इस अत्यन्त प्रयोजनीय विषय के सम्बन्ध में एक पंक्ति भी लिखकर नहीं गये। यही भारत का दुर्दृश्य है, वही आर्यों का अमिट कलङ्क है. यही हमारी जाति की उन्नति के विषय में विघ्न है। ऐसा ज्ञात ही नहीं होता कि भारत में कभी किसी अंश में भी स्वदेशता" वा स्वजातित्व का भाव रहा हो। इस देश के लोग कुलगत वा वर्णगत गौरव में ही व्यस्त रहते थे। हम अब तक कुलगौरव वा वर्णगौरव ही की बातों की भरमार करते आए हैं। जितना हम इस बात के लिए उत्सुक रहते हैं कि तुम ब्राह्मण हो व क्षत्रिय, श्रोत्रिय हो वा स्मार्त्त परमारों के वंशधर

हो वा सीशोदियों के कुल में, इतना हम यह जानने के इच्छुक नहीं रहते कि तुम भारतवासी हो वा आर्य्य जाति के सदस्य हो। यही कारण है कि हमारे शास्त्र और संहिताएं कुल गाथाओं और ब्राह्मणादि वर्ण की कथाओं से परिपूर्ण हैं। सारांश यह है कि जाति की एकता वा जाति की उन्नति के विषय में भारतीय आचार्यगण जैसा मौन हैं भारत की शास्त्र संहिताएं भी वैसा ही निर्वाक् हैं।

यह देश का सौभाग्य था कि वर्त्तमान समय के आचार्य्य स्वामी दयानन्द ने हमारी युग युग व्यापिनी नीरवता को भङ्ग करके चिरन्तनी उदासीनता को छिन्नभिन्न करके शास्त्र संस्कार और धर्म संस्कार के साथ साथ जातीय एकता की आवश्यकता को भी प्रतिपादित किया। उन्होंने कोपीनधारी संन्यासी होते हुए भी इस बात को सुस्पष्ट रूप से जान लिया था कि जब तक स्वदेशीजनों में बल नहीं बढ़ेगा, स्वदेश में जातीयता प्रतिष्ठित नहीं होगी, जाति के अन्दर एकता बन्धन दृढ़तर न होगा, तब तक धर्म-संस्कार, शास्त्र संस्कार, देशोन्नति, समाजिकोन्नति आदि कुछ भी न हो सकेगा। इसी कारण से जैसे वह समस्त भारत में एक शास्त्र अर्थात वेदशास्त्र को स्थापित करने के लिए आजीवन संग्राम करते रहे, वैसे ही वेद प्रतिपादित एक अद्वितीय परमेश्वर उपासना को प्रतिष्ठित करने के लिए भी मन, वचन कर्म से चेष्टा करते रहे। उन्होंने जैसा प्रयास भारत के कुलगत, वर्णगत, सम्प्रदायगत शाखाप्रशाखा गत भेद को छिन्न भिन्न करके आर्य्य जाति के संगठन के निमित किया था, वैसा ही प्रबल परिश्रम उन्होंने इसके निमित्त भी किया था कि आर्य्यवर्त्त में आदि से अन्त तक एक भाषा प्रचलित हो जाए। वस्तुतः इसी उद्देश्य से उन्होंने हिन्दी भाषा को आर्य्य भाषा अर्थात समस्त आर्य्यावर्त्त में प्रचलित भाषा का नाम दिया था।

बहुत दिन हुए जब कि प्रसिद्ध हंटर (Hunter) साहब की अध्यक्षता में शिक्षाकमीशन (Education commission) बैठा

था तो उन्होंने उसके सामने हिन्दी का पक्ष स्थापित करने के पक्ष में साक्षी देने के लिए देश के उच्च पदारूढ़ और सम्भ्रान्त मनुष्यों को प्रोत्साहित किया था। इन सब बातों की आलोचना करने से स्पष्ट रूप से मालूम होता है कि इस सन्यासी के हृदय में यह प्रबल इच्छा और प्रबल उत्साह था कि सारे भारतवर्ष में एक शास्त्र प्रतिष्ठित हो, एक देवता पूजित हो, एक जाति संगठित हो और एक भाषा प्रचलित हो। यही नहीं कि उनमें केवल ऐसी सद्इच्छा और उत्साह ही था, वरन वह इस इच्छा और उत्साह को किसी अंश तक कार्य में परिणत करने में भी कृतकार्य हुए थे। अतएव स्वामी दयानन्द केवल सन्यासी ही नहीं थे, केवल वेद व्याख्याता ही नहीं थे, केवल दिग्विजयी पण्डित ही नहीं थे, वह भारतीय एकता के स्थापन कर्ता भी थे, भारत की जातीयता के प्रतिष्ठाता भी थे। इसलिए भारत की आचार्य्य मण्डली में दयानन्द का स्थान विशिष्ठ और अद्वितीय है। देवेन्द्र बाबू की भूमिका सहग्रभार

श्रद्धांजलियाँ

पंजाब केसरी ला० लाजपतराय

१. 'स्वामी दयानन्द मेरे गुरु हैं, मैंने संसार में केवल उन्हीं को गुरु माना है। वह मेरे धर्म के पिता हैं और आर्य समाज मेरी धर्म की माता है। इन दोनों की गोद में मैं पला। मुझे इस बात का गर्व है कि मेरे गुरु ने मुझे स्वतन्त्रता पूर्वक विचार करना, बोलना और कर्त्तव्य पालन करना सिखाया तथा मेरी माता ने मुझे एक संस्था में बद्ध होकर नियमानुवर्तिता का पाठ दिया।"

देवता स्वरूप भाई परमानन्द जी,

२. 'स्वामी दयानन्द उन रोशनी के मीनारों में से एक हैं, जो संसार को सत्य का मार्ग दिखाने के लिए आते हैं और भटकते लोगों को मार्ग दिखला कर चले जाते हैं।'

३. वह दिव्य ज्ञान का महान सैनिक, ईश्वरीय सृष्टि में एक योद्धा, मनुष्यों और संस्थाओं का शिल्पी तथा प्रकृति द्वारा आत्मा के मार्ग में उपस्थित की जाने वाली बाधाओं का निर्भीक और शक्तिशाली विजेता था। उसके चिन्तन से मेरे सामने आध्यात्मिक क्रियात्मिकता की एक शक्तिशाली मूर्ति उपस्थित होती है। इन दो शब्दों का, जो कि हमारी धारणाओं के अनुसार एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं, मिश्रण ही मुझे दयानन्द की उपयुक्त परिभाषा प्रतीत होती है......उसके व्यक्तित्व की व्याख्या यूं की जा सकती है कि वह एक ऐसा मनुष्य था जिसकी आत्मा में परमात्मा की अनुभूति, आंखों में दिव्य तेज और हाथों में इतनी शक्ति है कि जीवन तत्व से अभीष्ट स्वरूप वाली मूर्ति गढ़ सके। (श्री योगीराज अरविन्द)

महात्मा गान्धी

४. (स्वामी दयानन्द एक भारी विद्वान तथा संशोधक थे) देश की आवश्यकता को देख कर अपने घर को त्याग दिया। ऐसे व्यक्ति का यदि कोई अपमान करेगा, तो मैं उसे महापापी समझूंगा। मुझे आर्य समाज बड़ा प्रिय है। यह बुद्धि के प्रयोग से काम करता है और उसका काम देश के लिए लाभकारी है।

१. महर्षि दयानन्द हिन्दुस्तान के आधुनिक ऋषियों में, सुधारकों में और श्रेष्ठ पुरुषों में एक थे। उनके जीवन का प्रभाव हिन्दुस्तान पर बहुत अधिक पड़ा है।"

२. छुआछूत का प्रबल प्रतिवाद निःसन्देह दयानन्द की हमें महान् देन है।'

माता कस्तूरबा

५. 'स्वामी दयानन्द के जीवन में सत्य की खोज दीख पड़ती है इसलिये केवल आर्य समाजियों के लिए ही नहीं, वरन् सारी दुनियां के वह पूज्य हैं।'

श्री रैम्ज़े मैक्डौनल्ड, इंग्लैंड के स्वर्गीय प्रधानमन्त्री

६. 'दयानन्द सैनिक मनोवृति की धर्म परम्परा के अंग थे, उनके चरित्र में दृढ़ता, स्वतन्त्रता, प्रभावशालिता और सुधारप्रियता थी।'

फ्रांस के सुप्रसिद्ध दार्शनिक श्रीयुत रोमन रोलां

७. दयानन्द ने भारत के शक्ति-शून्य शरीर में अपनी दुर्धर्ष शक्ति, दृढ़ता और सिंह-पराक्रम फूंक दिया। उसकी ध्वनि वीरोचित शक्ति के साथ गूंज उठी। दयानन्द छूआछूत के अस्तित्व के अन्याय को सहन करने को तैय्यार न थे और उन के समान पददलित अधिकारों का पोषक आज तक कोई नहीं हुआ। दलित जातियों को समानता के आधार पर आर्य समाज में प्रवेश किया गया क्योंकि आर्य कोई उपजाति नहीं हैं।

भारत में स्त्रियो की शोचनीय दशा को सुधारने में भी दया-दयानन्द ने बड़ो उदारता और साहस से काम लिया। वह राष्ट्रीय संगठन और पुर्ननिमाण के उत्साही सूत्रधाराओं में से एक थे।

श्रीमति एनीबीसैण्ट

८. 'स्वामी दयानन्द ही पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने हिन्दुस्तान हिन्दुस्थानियों के लिए' का नारा लगाया था (Swami Dayanand was first to proclaim India for Indians.) आर्य समाज के लिए मेरे हृदय में शुभ इच्छाएं हैं और उस महान पुरुष के लिए मेरे हृदय में सच्ची पूजा की भावना है।

९. 'दयानन्द के व्यक्तित्व और चरित्र के विषय में सर्वत्र प्रशंसा की जा सकती है। वह सर्वथा पवित्र और अपने सिद्धान्तों के

अनुसार आचरण करने वाले महानभाव थे। वह सत्य के अत्याधिक प्रेमी थे।'
(Rev. C. F. Andrews)

सर सैयद अहमदखां

१०. 'स्वामी दयानन्द के अनुयानी उन्हें एक देवता के रूप में मानते हैं और वह वस्तुतः इस योग्य भी थे कि उन्हें इस रूप में देखा जाये। उन्होंने केवल एक ज्योतिर्मय निराकार परमेश्वर की पूजा करने की शिक्षा दी। हमारा स्वामीजी से घनिष्ट सम्बन्ध था और हम उनका अत्याधिक आदर करते थे। वह ऐसे विद्वान और श्रेष्ठ व्यक्ति थे कि अन्य मतावलम्बी भी उनका मान करते थे। उन की समानता का व्यक्ति इस समय सारे भारत वर्ष में कोई नहीं।'

स्वर्गीय ला० हरदयाल जी एम. ए.

११. 'न तो मैं आर्य समाजी हूं और न मुझे मतमतान्तरों के झगड़ो का शौक है, लेकिन महर्षि स्वामी दयानन्द जी के काम को इतिहास और सामाजिक शास्त्र की दृष्टि से परखा जा सकता है। स्वामी दयानन्द जी एक बड़े सुधारक थे। उन्होंने भारतवर्ष और जाति के सुधार के लिए अपना जीवन अर्पण कर दिया था।'

स्वर्गीय सरदार वल्लभ भाई पटेल

१२. 'यद्यपि मैं आर्य समाज का कोई विशेष चिन्ह नहीं लगाता तो भी मैं आर्य सज्जनों के समान ही स्वामी दयानन्द का भक्त हूं। हिन्दु समाज में जो त्रुटियां, कुरीतियां, अज्ञान और भ्रम थे, उन सब के विरुद्ध स्वामी जी ने धर्मयुद्ध शुरु कर दिया था। अगर स्वामी जी न आते तो आज हिन्दु समाज का क्या हाल हुआ होता, इसकी कल्पना कीजिये।'

वीर सावरकार

१३. सचमुच स्वामी दयानन्द सक ऋषि, एक महान् सुधारक और एक सच्चे देशभक्त थे।

एम. ह्यूम, संस्थापक इण्डियन नेशनल कांग्रेस

१४. 'सब को यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि स्वामी दयानन्द एक महान और श्रेष्ठ व्यक्ति थे। अपने देश के लिए वह गौरव स्वरूप थे। सभी अनुभव करते हैं कि दयानन्द को खोकर भारत को बहुत बड़ी हानि उठानी पड़ी।'

स्वर्गीय डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी

१५. भारतीय प्रगति के इतिहास के इस महान आपत्तिकाल में कुछ महान् व्यक्ति प्रकट हुए जिन में दयानन्द सर्वोच्च थे, जिन्होंने देश को उत्कृष्ट नेतृत्व दिया। दयानन्द सरस्वती का मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण प्राचीनता लिए हुए था धार्मिक सचाईयों के नाम पर चलने वाले खोखले कर्म-कांड, अर्थहीन रीतिरिवाजों और भ्रान्तियों में उनका अन्धविश्वास न था। वह भारतीय जनता के सब हाथों में वेद के लिए उपस्थित और अनेक जातियों और मत-मतान्तरों में विभक्त हुए पथ-भ्रष्ट लोगों को उन्होंने एक नया संदेश दिया और सामाजिक क्षेत्र में हर प्राणी को पवीत्रतम भारतीय परम्परा के अनुकूल समानता का अधिकार दिया।

साधु टी. एल. विस्वानी

१६. 'मेरे निर्बल शब्द ऋषि की महत्ता का वर्णन करने में अशक्त हैं। ऋषि के अप्रतिम ब्रह्मचर्य, सत्य संग्राम और घोर तपश्चर्या के लिए अपने हृदय के पूज्य भावों से प्रेरित होकर मैं उनकी वन्दना करता हूं।

मैं ऋषि को शक्ति-सुत अर्थात् कर्मवीर योद्धा समझ कर उन का आदर करता हूं। उन का जीवन राष्ट्र-निर्माण के लिए स्फूर्ति-दायक, बलदायक और माननीय है।

दयानन्द उत्कट देश-भक्त थे, अतः मैं राष्ट्र-वीर समझ कर उनकी वन्दना करता हूं।

श्री अंडरयू जैकसन डैविस

१७. 'प्राचीन आर्य धर्म की अपने पुरातन यथार्थ स्वरूप में संस्थापना यह थी उस भट्टी की आग 'जिसे आर्य समाज' कहा जाता है और जो परमात्मा के दिव्य पुत्र दयानन्द सरस्वती के हृदय में प्रदीप्त थी।'

महर्षि जी के चरित्र की प्रशंसा भारतीय विद्वान तो करते हैं पर विदेशियों ने भी उनकी विद्वत्ता की प्रशसा मुक्त-कण्ठ से की है। यथा—

१८."सब वर्णनों से, जो स्वामी दयानन्द के विषय में मिलते हैं। उनमें वे असाधारण शारीरिक शक्ति सम्पन्न प्रभावशाली व्यक्ति और महान् संकल्पवान पुरुष सिद्ध होते हैं। उनको विद्वत्ता सर्वसम्मत थी।...' (श्री एस० ई० स्टोक्स)

१९. "स्वामी दयानन्द निःसन्देह एक ऋषि था, सब पण्डितों ने उस पर पत्थर फेंके। उसने अपने में महान् भूत और महान् भविष्य को मिला दिया। वह तुम्हारे राष्ट्र को पुनर्जीवन देने आया, (प्रसिद्ध फ्रान्सीसी लेखक पाल रिचर्ड।)

२०. "मेरी राय में स्वामी दयानन्द एक सच्चे जगद्गुरु और सुधारक थे।' (श्री फौक्सपिट जनरल सैक्रेटरी)

२१ "महर्षि दयानन्द ने भारतवर्ष और संसारमात्र की जो सेवा की है, उसको मैं भली लांति समझता हूं। वह भारतवर्ष के सर्वोत्तम महापुरुषों में से एक थे। (श्री जी० एस० अण्डेल)

२२. "जिन सिद्धान्तों का स्वामी दयानन्द ने प्रचार किया है, वे कुछ नए नहीं हैं। वे उतने ही प्राचीन हैं, जितना कि हिमालय। वस्तुतः वे सच्चे अर्थों में हमको फिर से वास्तविक प्राकृतिक नियमों की ओर ले जाना चाहते हैं और समस्त प्रकार की धोखेबाज़ी, मक्कारी, असत्यता और बनावटी बातों का बाहिष्कार करना सिखाते हे। (श्री मेजर टी० एफ० ओडोनल)

२३. 'स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों के विषय में चाहे कोई मनुष्य कैसी ही रायम कायम कर ले, परन्तु यह सब को मान लेना पड़ेगा कि वह एक विशाल और श्रेष्ठ पुरुष थे।' (मि० ए० ओ ह्यूम)

२४. "स्वामी दयानन्द सरस्वती ने हिन्दू धर्म सुधार का बड़ा कार्य किया और जहां तक समाज सुधार का सम्बन्ध है, वह बड़े उदार-हृदय थे।...उन्होने वेदों पर बड़े बड़े भाष्य किए, जिस से मालूम होता है कि वे संस्कृत से पूर्ण भिज्ञ थे।' (प्रो० एफ० मैक्समूलर)

महिमा काण्ड समाप्त

१८. काण्ड

१४८. दण्डी स्वामी विरजानन्द जी

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के गुरु दण्डी स्वामी विरजानन्द जी का जन्म संम्वत् १८३५ तदानुसार सन् १७७८ में पं० नरायणदत्त भारद्वाज गोत्री करतापुर ज़िला जालन्धर के नज़दीक गंगा पुर गांव निवासीके घर एक पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ, जन्म समय इनकी माता अपने पितृ गृह कस्बा नूरमहल ज़िला जालन्धर में हुई थी, अतः इनका जन्म नूरमहल में हुआ था, ५ वर्ष की आयु में विद्यारम्भ हुआ। करीबन ७—८ वर्ष की आयु में शीतला से दोनों आंखें बन्द हो गईं। ११ वर्ष के हुए तो माता पिता का देहान्त हो गया। भाई और भावज़ के दुर्व्यवहार से १२ वर्ष की आयु में गंगापुर त्याग दिया, इस समय तक संस्कृत बोलने का कुछ अभ्यास हो चुका था। कुछ समय तक साधुओं के साथ फिरते रहे। ऋषिकेश पहुंच कर तीन वर्ष तक गंगा में खड़े होकर गायत्री जाप करते रहे, संवत १८०४ में हरिद्वार में स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती से संन्यास लेकर विरजानन्द नाम रखाया, इन्हीं पूर्णानन्द से आर्ष ग्रन्थों में श्रद्धा उत्पन्न हुई। हरिद्वार से चलकर काशी पहुंचे, इस समय इनकी आयु २२ वर्ष की हो चुकी थी। काशी में १० वर्ष रह कर विद्या पढ़ते रहे, यहां उन्होंने व्याकरण, दर्शन, उपनिषद, आयुर्वेद भी पढ़े। और सम्वत् १८६७ में काशी की पंडित मण्डली के सदस्य बन गये, और प्रज्ञाचक्षु की उपाधि पाई। काशी से गया गये; वहां वेदान्त का अभ्यास किया। रास्ते में चोरों ने लूट लिया, फिर गंगा के क़िनारे किनारे विचरते कलकत्ते गये। और यहां इन्होंने नवीन न्याय, साहित्य

आयुर्वेदादि का विशेष ज्ञान प्राप्त किया। कलकत्ता से फिर गंगा तट पर पैदल चलते हुए हरिद्वार वापस आ गये। फिर वह सौरों आकर रहने लगे। इस समय सम्वत् १८८० चलरहा था। सम्वत् १८८९ में विनय सिंह जी अल्पर नरेश सौरों आए और दण्डी जी से विद्या अध्यन की प्रतिज्ञा कर इनको अल्वर ले गये। और वहां १८९२ तक रहे, फिर सौरों वापस चले गये। सम्वत् १९०२ में सख्त बीमार हुएं स्वस्थ होने पर सौरों से मथरा चले आए। और पहले एक मन्दिर में रहे पश्चात् सेठ केदार नाथ जी स्वामी जो को अपने घर ले गये। और अपने घर के स्वतन्त्र भाग में इन्हें आदर पूर्वक रखा। और फिर उसी जगह साढ़े बाई वर्ष तक सुख पूर्वक रह कर सम्वत् १९२५ तदानुसार १४. ९. १८६८ सोमवार को यह भौतिक शरीर त्याग दिया। १४. ११. ६० में स्वामी दयानन्द जी ने आकर विरजानन्द जी का द्वार खटखटाया और मार्च १८६३ को विद्या समाप्त कर समावर्तन संस्कार हुआ। जिस समावर्तन संस्कार में गुरु ने जीवन दान मांगा। और शिष्य ने तत्काल तथास्तु कह कर अपना शीश गुरु में चरणों में रख दिया। इस समावर्तन संस्कार ने संसार के कल्याण के लिए एक ऐसी ज्योति जगाई, जिस ज्योति ने अविद्या अन्धकार मिटा कर संसार को सत्यसनातनवैदिक मार्ग दिखलाया। जब विरजानन्द जी के देहान्त की खबर महर्षि दयानन्द को मिली तो उन्होंने कहा, आज व्याकरण का सूर्य अस्त हो गया। अगर विरजानन्द न होता तो दयानन्द भी न होता, और अगर दयानन्द न होता तो विरजानन्द को कौन जानता। अपूर्व गुरु और अपूर्व शिष्य।

हिन्दी सत्याग्रहियों की भरती का सब से अधिक काम आचार्य भगवान देव जी ने किया। कहा जाता है कि जो दस हज़ार सत्याग्राही जेल में गए उनमें से चार पाँच सहस्र सत्याग्रही ज़िला रोहतक अथवा हरियाणा के थे। जो आचार्य जी की प्रेरणा से ही सत्याग्रह में सम्मिलित हुए थे। उन के प्रति इस श्रद्धा का कारण उनका त्याग और तपस्यामय जीवन है। आप का जन्म स्थान नरेला है। सन इकत्तीस में गाँधी जी के विदेशी शिक्षा बहिष्कार आन्दोलन के कारण आपने कालेज शिक्षा छोड़ दी। और लोक सेवा आरम्भ कर दी। आप १९३९ में गुरुकुल चित्तौड़ गढ़ में संस्कृत की उच्च शिक्षा की प्राप्ति के लिए गये। १९४२ से गुरुकुल झज्झर के आचार्य हैं। आप अपने माता पिता के इकलौते लड़के हैं और बाल ब्रह्मचारी हैं। आपने अपनी सहस्रों की सम्पत्ति आर्य समाज के अर्पण कर दी है। अपने तप और त्यागमय जीवन के कारण हरियाणा भर में उन की पूजा होती है। श्री सिद्धान्ती जी के शब्दों में वह 'हरियाणा के नबी हैं।

१८ प्रश्नों का एक उत्तर

१. सब से प्रथम पराधीनता के दुःख को किस ने अनुभव किया?

२. सर्वप्रथम भारत के अतीत गौरव की स्मृति किस ने दिलाई?

३. फूट के विषैले फल की भंयकरता से बचने के लिए किस ने सबसे पूर्व एकता की मधुरमयी, सुनिश्चित चिकित्सा बतलाई?

४. किसने सबसे पहले भारतीयता की महत्ता तथा सर्वोत्कृष्टता के अकाट्य प्रमाण देकर भारत को जगाया?

५. केवल भौतिकवाद से जगत के कल्याण को असम्भव समझ कर विश्व के सुधार का आधार आध्यात्मिकता को इस युग

में सबसे पूर्व किस महात्मा ने घोषित किया ?

६. सब मनुष्यों के अधिकारों की समानता किसने घोषित की ?

७. स्त्रियों और शुद्रों के अधिकार किसने वापिस दिलवाए ?

८. वेद मानव जाति मात्र के लिए हैं, यह किसने बताया ?

९. अनाथों एवम विधवाओं की करुण पुकार किसने सुनी ?

१०. देश की एकता व संगठन के लिये राष्ट्रभाषा हिन्दी किसने सुझाई ।

११. नाना मत-मतान्तरों के कीचड़ में धंसे भारतीयों को निकालने का सर्वप्रथम सफल प्रयास किसने किया ।

१२. राजनीति से शुन्य धर्म तथा धर्म से शून्य राजनीति का थोथापना किसने स्पष्ट दर्षाया ?

१३. स्वराज्य का नाद, भारतवर्ष अवश्य ही एक दिन स्वतन्त्र होगा और अंग्रेज अपने देश को लौट जाएगे, यह सबसे पूव किस वीर ने गुंजाया ।

१४. बाल विवह, वृद्ध विवाह, बहु विवाह की प्रचलित कुप्रथाओं के विरुद्ध सबसे पहले किसने आन्दालन खड़ा किया ।

१५. सारे ससार में से कोई भी पंडित मौलवी, पादरी, फ्लोस्फर, पौलीटीशियन जिसके सामने दम न मार सका वह कौन महापुरुष था ।

१६. मल्का विक्टोरिया के राज्यकाल में मल्का विक्टोरिया के एलान का किस वीर पुरुष ने खण्डन किया ।

१७. अंग्रेज़ी न पढ़ कर भी सारे संसार के विज्ञानकों को किसने चनौती दी ।

१८. गौ रक्षा के लिए सबसे पहले कौन यतन वान हुआ ।

इन सब का एक ही उत्तर महर्षि दयानन्द सरस्वती ।